नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग **28**

आगम ४०

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्तिः [१]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

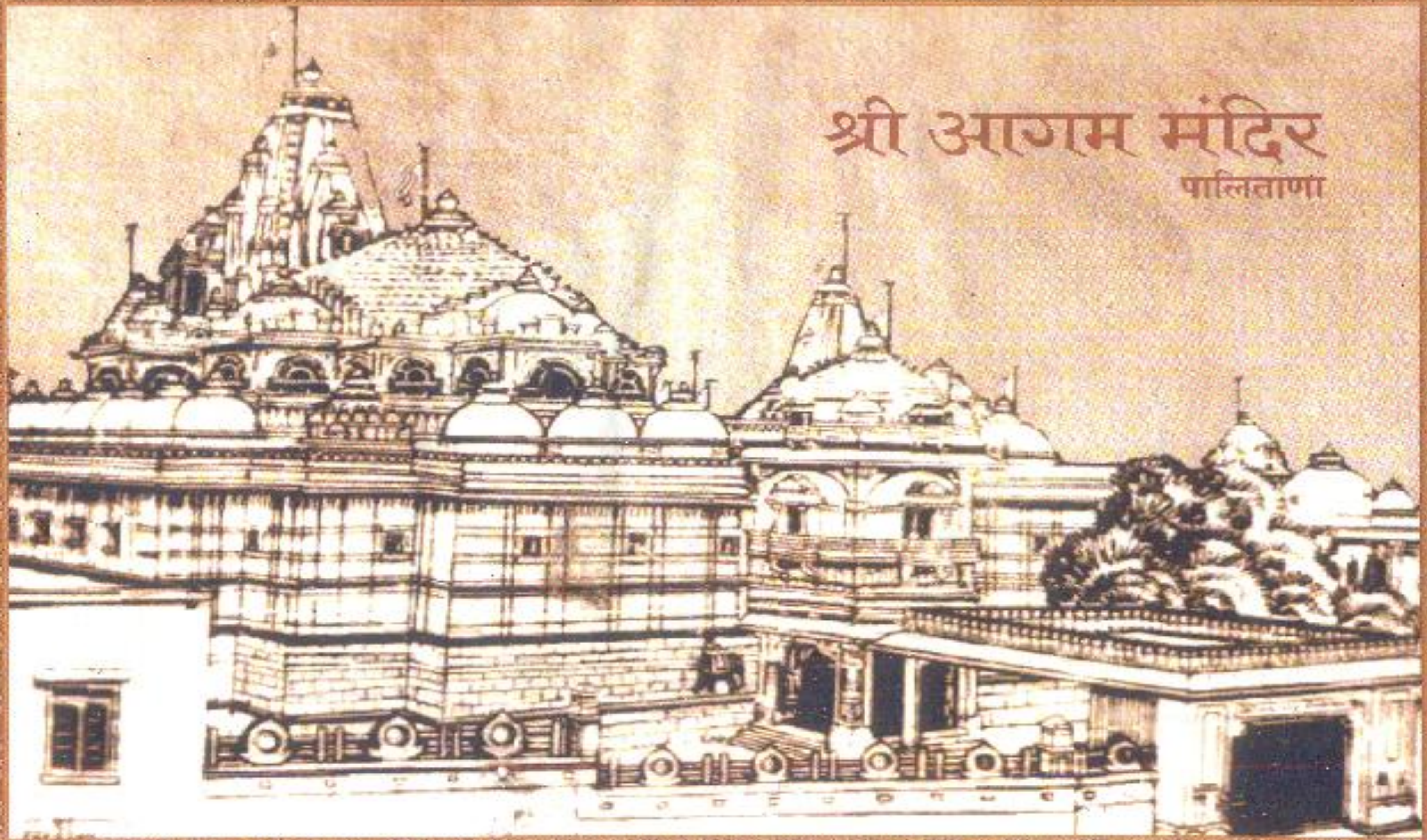

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

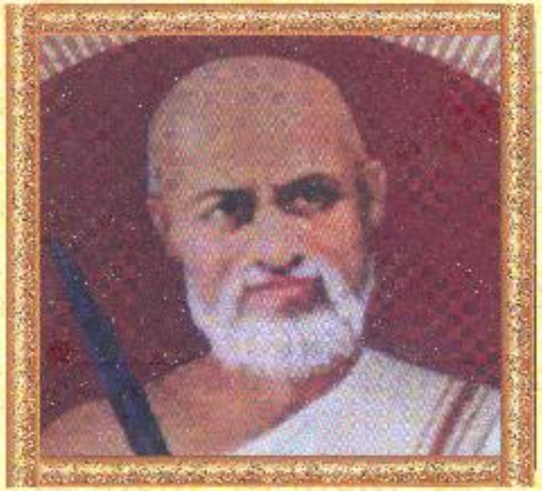

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

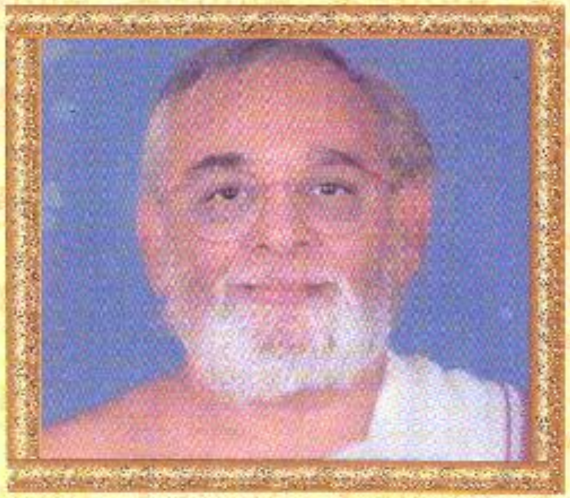

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-२८] श्री आवश्यक सूत्रम् (मूलसूत्रम्-१/१)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

“आवश्यक” मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं + भद्रबाहुस्वामी कृत् निर्युक्ति; + भाष्यं + हरिभद्रसूरि रचिता-वृत्ति:]

भाग-२८, निर्युक्ति:- (००१-५२१)

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ ‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग-२८

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त ‘आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट’

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही “जैन-आगम-शास्त्रो” को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और “आगम मंजूषा” नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति,   चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव “सागरजी”...

......मुनि दीपरत्नसागर...

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- *"अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण"* इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

‘सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी’

इस “सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे ‘सागर समुदाय’ के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये “सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.......मुनि दीपरत्नसागर

मूलाङ्का: ५०+२१	आवश्यक मूल-सूत्रस्य विषयानुक्रम	दीप-अनुक्रमा: ९२

मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक	मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:	मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:
०१-०२	१-सामायिकं	०९११	०३-०९	२-चतुर्विंशतिस्तव:	०९८४	१०- --	३-वंदनकं	१०२४
११-३६	४-प्रतिक्रमणं	११०३	३७-६२	५-कायोत्सर्गं	१५२९	६३-९२	६-प्रत्याख्यानं	१६०६

आवश्यक सटीकं (संक्षिप्त) विषयानुक्रम

निर्युक्ति / भाष्य	पीठिका ➔➔➔	०११	नि./भा.	अध्ययनं-१- सामायिकं		नि./भा.	अध्ययनं-४- प्रतिक्रमणं	
		----	८९०	नमस्कार-व्याख्या			नमस्कार व सामायिक-सूत्रं	
---	--मंगलं	०११	९१९	अर्हत्, सिद्धादे: निर्युक्ति:			चत्वार: लोकोतम-मङ्गल एवं	
००१	--ज्ञानस्य पञ्चप्रकारा:	०२३	९६०	सिद्धशिला वर्णनं			--------------शरणभूत पदार्था:	
०१३	--उपक्रम-आदि:	०४६	९९३	आचार्य-आदीनाम निक्षेपा:			संक्षिप्त व ईर्यापथ प्रतिक्रमण	
०८०	--उपोद्घात-निर्युक्ति:	१२७	१०१३	सामायिक- व्याख्या, स्वरुपम्			शयन संबंधी प्रतिक्रमणं	
०८१	--वीरआदिजिनवक्तव्यता	१३०	-----	उद्देश-वाचना-अनुज्ञा आदि:			भिक्षाचर्याया: प्रतिक्रमणं	
३४३	--भरतचक्री-कथानकं	३०६	-----	सूत्र स्पर्श भङ्गा:			स्वाध्याय, उपकरणप्रतिलेखन	
भा.०३९	--बलदेव-वासुदेव कथानकं	३२७	-----	सामायिक-उपसंहार:			असंयम आदि ३३-आशातना	
५४३	--समवसरण वक्तव्यता			अध्ययनं-२- चतुर्विंशतिस्तव:			सूत्रोच्चारणे मिथ्यादुष्कृतम्	
५८८	--गणधर वक्तव्यता			सूत्रपाठ:, कीर्तनं, प्रतिज्ञा,			प्रवचनस्तुति, वंदना, क्षमापना	
६६६	--दशधा सामाचारी			--अर्हत: विशेषणं,			अध्ययनं-५- कायोत्सर्ग:	
७५४	--निक्षेप, नय, प्रमाणादि			--ऋषभादि नामानि, प्रार्थनादि			सूत्रपाठ:, कायोत्सर्गस्थापना	
७७८	--निह्नव वक्तव्यता			अध्ययनं-३- वन्दनं			श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठ:	
७८९	--सामायिकस्वरुपम्			--गुरुवन्दन सूत्रपाठ:			अध्ययनं-६- प्रत्याख्यानं	
८१२	--गति आदि द्वाराणि			--मितावग्रह प्रवेशयाचना			सम्यक्त्व व श्रावकव्रतप्रतिज्ञा	
				--क्षमापना, प्रतिक्रमण-आदि:			विविध प्रत्याख्यानादि:	

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

[आवश्यक- मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "आवश्यक सूत्र" के नामसे सन १९१६ (विक्रम संवत १९७२) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे 'जिनशासन आराधना ट्रस्ट' की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

इसी आवश्यक-सूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से दुसरोने भी भी प्रकाशित करवाई है, किसीने पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुनः संपादक रूप से पेश किया है तो किसीने अपना नाम आगे कर दिया है और पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजीका नाम गौण कर दिया है या उड़ा दिया है |

✜ हमारा ये प्रयास क्यों? ✜ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर अध्ययन--मूलसूत्र-निर्युक्ति-भाष्य आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके | बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या 'गाथा' शब्द लिखा है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२८ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.......मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

॥ अर्हम् ॥

श्रीमद्गणधरवरसुधर्मस्वामिविरचितं

श्रीमद्भद्रबाहुश्रुतकेवलिततनिर्युक्तियुतं

श्रीमद्भवविरहहरिभद्रसूरिप्रणीतवृत्तिसमवेतं

श्रीआवश्यकसूत्रम्.

श्रीगणधरेन्द्रो विजयतेतराम्.

प्रणिपत्य जिनवरेन्द्रं, वीरं श्रुतदेवतां गुरून् साधून्। आवश्यकस्य विवृतिं, गुरूपदेशादहं वक्ष्ये ॥ १ ॥

१ अनेनाभीष्टदेवतास्तवः (अभियुक्तैरिज्यते इत्यभीष्टः) जिनाः अवधिजिनादयस्तेषु वराः केवलिनस्तेषामिन्द्रः. २ अनेनाभिमतदेवतास्तवः (अभिमन्यते विघ्नविघातकत्वेनेत्यभिमता शासनदेवतादिः) ३ श्रुताधिष्ठात्री देवता श्रुतदेवता, श्रुतरूपा देवता श्रुतदेवतेतिविग्रहे तु नाभिमतदेवतात्वं किन्तु अधिकृतदेवतात्वं स्यात्, अस्या ज्ञानावरणीयक्षयोपशमसाधकत्वेन प्रणिपातो नानुचितः, “सुयदेवये” त्यादिवचनात्। अनेनाविरतत्वेऽपि श्रुतदेवतायाः स्तवनीयता ज्ञापिता, मिथ्यात्वापादनं तु सिद्धान्ताचरणोभयोत्तीर्णमेव ४ अनेनाधिकृतदेवतास्तवः (शास्त्रप्रणेतृत्वेनाधिक्रियते इत्यधिकृता). ५ साधुत्वाव्यभिचारादुपाध्यायवाचनाचार्यगणावच्छेदकादयः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्तिकार-कृत् प्रतिज्ञा

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ १ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः१

यद्यपि मया[1] तथा[2]ऽन्यैः, कृताऽस्य विवृतिस्तथापि संक्षेपात्[3]। तद्रुचि[4]सत्त्वानुग्रहहेतोः क्रियते प्रयासोऽयम् ॥२॥

इहा[5]वश्यकप्रारम्भप्रयासोऽयुक्तः, प्रयोजनादि[6]रहितत्वात्, कण्टकशाखामर्दनवत्[7] इत्येवमाद्याशङ्कापनोदाय प्रयोजनादि पूर्वं[8] प्रदर्श्यते इति, उक्तं च[9]—"प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं, फलादित्रितयं स्फुटम्[10] । मङ्गलं चैव शास्त्रादौ, वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥१॥" इत्यादि[11] । अतः[12] प्रयोजनमभिधेयं संबन्धो मङ्गलं च यथावसरं प्रदर्श्यते इति । तत्र प्रयोजनं तावत् परा[13]परभेदभिन्नं द्विधा, पुनरेकैकं कर्तृश्रोत्रपेक्षया[14] द्विधैव[15], तत्र[16] द्रव्यास्तिकनयालोचनायामागमस्य[17] नित्य[18]त्वात् कर्तुरभाव एव, "इत्येषा द्वादशाङ्गी न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्न भविष्यति, न कदाचिन्न भवति" इतिवचनात्[19] । पर्यायास्तिकनयालोचनायां चानित्यत्वा[20]त्तत्सद्भाव[21] इति । तस्या[22]लोचनायां तु सूत्रार्थोभयरूपत्वादागमस्य अर्थापेक्षया नित्यत्वात् सूत्ररचना[23]पेक्षया

१ विवृतं विस्तरतोऽभियुक्तैरेभिरिति ध्वनितं, चतुरशीतिसहस्रप्रमितं च तदिति प्रघोषः २ अनेनास्याः समूलतामाह. ३ संक्षेपरुचिजीवोपकाराय तन्निमित्तमाश्रित्येति वा. ४ चिकीर्षितायामावश्यकविवृतौ. ५ सूत्रार्थोभयरूपस्यावश्यकस्य. ६ अभिधेयसंबन्धौ मङ्गलं च. ७ काकदन्तपरीक्षाषडपूपादिवाक्यदृष्टान्तयोरुपलक्षकमिदम्. ८ पूर्वाचार्यैः प्ररूपितं, मयेति शेषः. ९ चर्चितविषयसाम्मत्याय. १० अविघ्नेन पारगमनादिरूपेष्टार्थसिद्धिः ११ सिद्धार्थं सिद्धसंबन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते इत्यादिवाक्यग्रहः. १२ उक्तनियमात्. १३ परं प्रकृष्टम् अपरं तत्साधनभूतं फलम् १४ उपदेशस्योभयाश्रितत्वात्. १५ इष्टावधारणार्थः, उभयोरुभयफलास्पदता तेन १६ कर्तृप्रयोजनविचारे "नत्थि नएहि विहूणं सुत्तं अत्थो व जिणमए किंची"ति वचनान्नयविचारणामाह–तत्रेत्यादिना. १७ अर्थरूपस्य (जीवादेर्वाच्यस्य) १८ सर्वक्षेत्रापेक्षया (विदेहेषु तु सर्वदाभावः सूत्रस्य) श्रुतवतामविनाशात्पर्यायाणां द्रव्याभेदात्. १९ इत्यभिप्रायवन्नन्द्यादिशास्त्रवाक्यात् , तात्पर्यं तुत्रिकालावस्थायित्वे. २० उत्पत्तिभाववत्त्वात्. २१ कर्तृसद्भावः २२ नययोरेकदेशग्राहित्वात्स्याद्वादश्रुतरूपप्रमाणविचारणादर्शनाय. २३ गणभृद्विहितां सूत्ररचनामपेक्ष्य.

॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति-रचनायाः उद्देशः

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

चानित्यत्वात् कथञ्चित् कर्तृसिद्धिरिति । तत्र सूत्रकर्तुः[1] परमपवर्गप्राप्तिः अपरं सत्त्वानुग्रहः, तदर्थप्रतिपादयितुः किं प्रयोजनमिति चेत्, न किञ्चित्, कृतकृत्यत्वात्[2], प्रयोजनमन्तरेणार्थप्रतिपादनप्रयासोऽयुक्तः इतिचेत्, न, तस्य[3] तीर्थकरनामगोत्रविपाकित्वात्, वक्ष्यति च[4]—"तं च कहं वेइज्जइ?, अगिलाए धम्मदेसणादीहिं" इत्यादिना[5] । श्रोतॄणां त्व[6]परं [7]तदर्थाधिगमः, परं मुक्तिरेवेति । कथम्? ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षस्तन्मयं चावश्यकमितिकृत्वा, नावश्यकश्रवणमन्तरेण विशिष्टज्ञानक्रियावाप्तिरुपजायते, कुतः?, तत्कारणत्वात्त[9]दवाप्तेः[10], तदवाप्तौ[11] च पारम्पर्येण मुक्तिसिद्धेः, इत्यतः प्रयोजनवानावश्यकप्रारम्भप्रयास इति । [12]तदभिधेयं तु [13]सामायिकादि। संबन्धश्च उपायोपेयभावलक्षणः तर्कानुसारिणः प्रति, कथम्?, उपेयं सामायिकादिपरिज्ञानं[14], मुक्तिपदं[15] वा, उपायस्तु आवश्यक[16]मेव वचनरूपापन्न[17]मिति, यस्मात्तत[18]ः सामायिका[19]द्यर्थनिश्चयो भवति, सति च तस्मिन् सम्यग्दर्शनादिवैमल्यं क्रियाप्रयत्नश्च, तस्माच्च मुक्तिपदप्राप्तिरिति । अथवा[20] उपोद्धातनिर्युक्तौ "उद्देसे निद्देसे य" इत्यादिना ग्रन्थेन सप्रपञ्चेन स्वयमेव वक्ष्यति। कश्चि[21]दाह—अधिगतशास्त्रार्थानां स्वयमेव प्रयोज-

१ वयःशक्तिशीले इति तृन्, याजकादिभिरित्यस्याकृतिगणत्वाद्वा तृजपि. २ प्रयोजनं परं मुक्तिः, सा प्राप्तकेवलत्वात् 'मोक्षे भवे चे' ति वचनान्नोद्देश्या, अवश्यम्भाविनी च सेति कृतकृत्यः. ३ प्रयासस्य तीर्थकृतो वा. ४ (गाथा १८५) ५ ग्रन्थेन. ६ अल्पवक्तव्यत्वात् सूचीकटाहन्यायेनादावपरं. ७ सूत्रार्थाभिगमवाच्यावबोधः. ८ परमपदानुकूला ९ आवश्यकश्रवणं १०-११ विशिष्टज्ञानक्रियावाप्तिः १२ आवश्यकस्य. १३ ज्ञानाद्यापादकक्रियादि १४ अपरप्रयोजनं. १५ परप्रयोजनं १६ एवकारस्येष्टावधारणार्थत्वात् अपरप्रयोजनस्य नान्यच्छास्त्रमुत्तराध्ययनादि परस्याप्यसामायिकादिमतोऽभावात् मुक्तेर्नान्यः कोऽपि उपायः १७ रचितं. १८ आवश्यकात् १९ चतुर्विंशतिस्तवादीनां. २० श्रद्धानुसारिणः प्रति. २१ धर्मोत्तरानुसारी व्यपोहवादी बौद्धः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ २ ॥

नादिपरिज्ञानात् शास्त्रादौ[1] प्रयोजनाद्युपन्यासवैयर्थ्यमिति, तन्न, अनधिगतशास्त्रार्थानां प्रवृत्तिहेतुत्वात् तदुपन्यासोप[2]-
पत्तेः। प्रेक्षावतां हि प्रवृत्तिर्निश्चयपूर्विका, प्रयोजनादौ उक्तेऽपि च अनधिगतशास्त्रार्थस्य[3] तन्निश्चयानुपपत्तेः[4], संशयतः
प्रवृत्त्यभावात्तदुपन्यासोऽनर्थकः इति चेत्, न, संशयेविशेषस्य[5] प्रवृत्तिहेतुत्वदर्शनात्, कृषीवलादिवत्, इत्यलं प्रसङ्गेन।
साम्प्रतं[6] मङ्गलमुच्यते—यस्मात् श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति इति, उक्तं च--"श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि।
अश्रेयसि प्रवृत्तानां, क्वापि[7] यान्ति विनायकाः[8] ॥ १ ॥" इति। आवश्यकानुयोगश्च[9] अपवर्गप्राप्तिबीजभूतत्वात्[10] श्रेयोभूत
एव, तस्मात्तदारम्भे[11] विघ्नविनायकाद्युपशान्तये[12] तत् प्रदर्श्यत इति। तच्च मङ्गलं शास्त्रादौ मध्ये[13] अवसाने[14] चेष्यत इति।
सर्वमेवेदं शास्त्रं मङ्गलमित्येतावदेवास्तु[15], मङ्गलत्रयाभ्युपगमस्त्वयुक्तः[16], प्रयोजनाभावात्[17] इति चेत्, न, प्रयोजनाभाव-
स्यासिद्धत्वात्। तथाच कथं नु नाम विनेया विवक्षितशास्त्रार्थस्याविघ्नेन पारं गच्छेयुः ?, अतोऽर्थमादिमङ्गलोपन्यासः[18],
तथा स[19] एव कथं नु नाम तेषां[20] स्थिरः स्यात्? ‡इत्यतोऽर्थं मध्यमङ्गलस्य[21], स एव च कथं नु नाम शिष्यप्रशिष्यादिवंशस्य अवि-
च्छित्त्या उपकारकः स्यात् ? इत्यतोऽर्थं चरममङ्गलस्य इत्यतो हेतोरसिद्धता इति। तत्र "आभिणिबोहियणाणं, सुयणाणं

१ शास्त्रारम्भे. २ प्रयोजनादेरुपन्यासस्य युक्तियुक्तत्वात्. ३ केवलशास्त्रस्य मूकत्वात् शास्त्रार्थस्येति. ४ प्रयोजनादेः ५ अनिष्टाननुबन्धीष्टसिद्धिसंशयस्य ६ निर्युक्तिकृता साक्षादुक्तत्वात्. ७ पृथगवतारणा. ८ महान्तो विघ्नाः (पूर्वपदलोपाद् विघ्ननायकाः) ९ निर्युक्तिरूपः १० कल्पत्वात्. ११ आवश्यकानुयोगारम्भे. १२ विघ्नेशानामादिना मध्यानां. १३-१४ शास्त्रस्येत्यध्याहार्यम्. १५ तपोवन्निर्जरार्थत्वात्. १६ निर्विघ्नसमाप्तिस्थैर्याव्यवच्छित्तिनिमित्तकेति. १७ मङ्गलप्रयोजनस्य शास्त्रेण साधनात्प्रयोजनान्तराभावादित्यर्थः १८ "विभक्तिथमन्ततसाद्याभाः" इति तसन्तमव्ययं, तथा चैतदर्थमिति. १९ शास्त्रार्थः २० विनेयानाम्. २१ उपन्यास इति. + शास्त्रस्यादौ १-४ ‡ इत्यतः ८-४

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'मङ्गल'स्य व्याख्या एवं स्वरुपम्

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

चैवे'' त्यादिनाऽऽदिमङ्गल[3]माह । तथा “वंदण चिति कितिकम्मं” इत्या[4]दिना मध्यमङ्गलं, वन्दनस्य विनयरूपत्वात्, तस्य चाभ्यन्तरतपोभे[5]दत्वात्, तपोभेदस्य च मङ्गल[6]त्वात् । तथा “पच्चक्खाणं” इत्यादिना चावसानमङ्गलं, प्रत्याख्यानस्या[7]पि तपोभेदत्वादेव मङ्गलत्वमिति ॥ तत्रैतत्स्यात्, इदं मङ्गलत्रयं शास्त्राद्भिन्नमभिन्नं वा ?, यदि भिन्नमतः शास्त्रममङ्गलं, तद्भेदान्यथानुपपत्तेः, अमङ्गलस्य च सतोऽन्यमङ्गलशतेनापि मङ्गलीकर्तुमशक्यत्वात् तन्मङ्गलोपन्यासवैयर्थ्यं, तदुपादानेऽनिष्ठा वा, यथा प्रागमङ्गलस्य सतःशास्त्रस्य मङ्गलमुक्तम्, एवं मङ्गलान्तरमप्यभिधातव्यम्, आद्यमङ्गलाभिधानेऽपि तदमङ्गलत्वात्, इत्थं पुनरप्यभिधातव्यमित्यतोऽनिष्ठेति । अथाभिन्नम्, एवं सति शास्त्रस्यैव मङ्गलत्वात् अन्यमङ्गलोपादानानर्थक्यमेव, अथ मङ्गलभूत[10]स्याप्यन्यन्मङ्गलमुपादीयत इति, एवं [11]सति तस्याप्यन्यदुपादेयमित्यनवस्थानुषङ्ग एव, [12]अथानवस्था नेष्यत इति मङ्गलाभावप्रसङ्गः, कथम् ? यथा मङ्गला[*]त्मकस्यापि सतः शास्त्रस्य अन्यमङ्गलनिरपेक्षस्यामङ्गलता[†], एवं मङ्गल[13]स्याप्यन्य[14]मङ्गलशून्यस्य, इत्य[15]तो मङ्गलाभा[16]व इति ।

अत्रोच्यते—आद्य[17]पक्षोक्तदोषाभावस्तावदनभ्युपगमादेव, तदभ्युपगमेऽपिच मङ्गलस्य लवणप्रदीपादिवत् स्वपरानुग्रहकारित्वादुक्तदोषाभा[18]व इति । [19]चरमपक्षेऽपि न मङ्गलोपादानानर्थक्यं, शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहाय शास्त्रस्यैव मङ्गलत्वा-

१ प्रयोजनाभावरूपस्य. २ गाथा १ आदिशब्देनाद्यभागावसानपर्यन्तस्य ग्रहः ३ जं नेरइओ इत्यादिना ज्ञानस्य स्पष्टं निर्जरार्थत्वान्मङ्गलता ४ गाथा वन्दनकति. ५ द्वितीयभेदः ६ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो इति वचनात् ७ बाह्येति ८ मङ्गलभेदवत्त्वस्य. ९ न पर्यवसानम्. १० शास्त्रस्य ११ मङ्गलरूपस्याप्यन्यन्मङ्गलकरणे. १२ मूलक्षयकरीति (अन्यद्वितीयमङ्गलकरणाभावात्) १३ कृतस्य. १४ द्वितीयेति १५ द्वितीयकरणाभावात्. १६ शास्त्रे संपन्नः. १७ भेदेति १८ अनिष्ठालक्षणेति. १९ अभेदपक्षे. * मङ्गलभूतस्यापि १-४ † स्वं १-४-५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नुवादात्, एतदुक्तं भवति—कथं नु नाम विनेयो मङ्गलमिदं शास्त्रमित्येवं गृहणीयात् ?, अतो मङ्गलमिदं शास्त्रमिति कथ्यते। आह—यद्यपि मङ्गलमिदं शास्त्रमित्येवं न गृह्णाति विनेयस्तथापि तत् स्वतो मङ्गलरूपत्वात् स्वकार्यप्रसाधनायालमेवेति कथं नानर्थक्यं ?, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह मङ्गलमपि मङ्गलबुद्ध्या परिगृह्यमाणं मङ्गलं भवति, साधुवत्, तथाहि—साधुर्मङ्गलभूतोऽपि सन्मङ्गलबुद्ध्यैव गृह्यमाणः प्रशस्तचेतोवृत्तेर्भव्यस्य तत्कार्यप्रसाधको भवति, यदा तु न तथा गृह्यते तदा कालुष्योपहतचेतसः सत्त्वस्य न भवतीति, एवं शास्त्रमपीतिभावार्थः। आह–यद्येवममङ्गलमपि मङ्गलबुद्धेः प्राणिनो मङ्गलकार्यकृत्प्राप्नोतीति, अनिष्टं चैतदिति, न, तस्य स्वरूपेणैवामङ्गलत्वात्, मङ्गलस्य च स्वबुद्धिसापेक्षस्य स्वकार्याभिनिवर्त्तकत्वादिति, तथाहि—यदि कश्चित्काञ्चनमेव काञ्चनतयाऽभिगृह्य प्रवर्त्तते ततस्तत्फलमासादयति, न पुनरकाञ्चनं सत्काञ्चनबुद्ध्या, नाप्यतद्बुद्ध्येति । मङ्गलत्रयापान्तरालद्वयमित्थममङ्गलमापद्यत इति चेत्, न, अशेषशास्त्रस्यैव तत्त्वतो मङ्गलत्वात्, तस्यैव च संपूर्णस्यैव त्रिधा विभक्तत्वात् मोदकवदपान्तरालद्वयाभाव इति, यथा

॥ ३ ॥

१ सिद्धस्य कथनम्. २ इष्टनमस्कारादिमङ्गलविधानद्वाराऽनूद्यते. ३ शास्त्रम्. ४ अन्यनमस्कारादिमङ्गलनिरपेक्षत्वेन. ५ निर्विघ्नपारगमनादि. ६ मङ्गलरूपस्यापि मङ्गलकरणे. ७ मङ्गलकार्यकृत्. ८ 'नोआगमओ भावो सुविसुद्धो खाइयाइओ' त्ति (वि० ४९ गाथा) वचनात्क्षायिकादिभाववतो यतेर्मङ्गलता. ९ लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिमत्ताज्ञापनाय. १० आसन्नसिद्धिताज्ञापनाय. ११ प्रधानमङ्गलतासंपादनेति १२ मङ्गलबुद्ध्या. १३ मङ्गलकार्यकृत्. १४ मङ्गलबुद्ध्या गृह्यमाणं मङ्गलभूतमपि मङ्गलकार्यकृत्. १५ मङ्गलबुद्धेर्मङ्गलकार्यकृत्त्वे. १६ अमङ्गलस्य. १७ स्वरूपेण मङ्गलस्यापि तथात्वापत्तराह मङ्गलेति १८ चो विशेषार्थः १९ मङ्गलत्वेति २० विघ्नविध्वंसादि. २१ सुवर्णकार्यं दारिद्र्यनाशादि. २२ काञ्चनकार्यकृद्भवतीति शेषः २३ काञ्चनमपि काञ्चनकार्यकृत् भवतीतिशेषः २४ मङ्गलं मङ्गलबुद्ध्या गृह्यमाणं तत्कार्यकृदितिनियमे. * तस्य च १-३-४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

हि मोदकस्य त्रिधाविभक्तस्य अपान्तरालद्वयं नास्ति, एवं प्रकृतशास्त्रस्यापीति भावार्थः । मङ्गलत्वं चाशेषशास्त्रस्य निर्जरार्थत्वात्, प्रयोगश्च—विवक्षितं शास्त्रं मङ्गलं, निर्जरार्थत्वात्, तपोवत् । कथं पुनरस्य निर्जरार्थतेति चेत्, ज्ञानरूपत्वात्, ज्ञानस्य च कर्मनिर्जरणहेतुत्वात्, उक्तं च—"जं नेरइओ कम्मं, खवेइ बहुयाहि वासकोडीहिं । तं नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥ १ ॥" । स्यादेतत्, एवमपि मङ्गलत्रयपरिकल्पनावैयर्थ्यमिति, न, विहितोत्तरत्वात्, तस्मात्स्थितमेतत्—शास्त्रस्य आदौ मध्येऽवसाने च मङ्गलमुपादेयमिति ।

आह—मङ्गलमिति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, अगिरगिलगिवगिमगि इतिदण्डकधातुः, अस्य "इदितो नुम्धातोः" (पा० ७–१–५८) इति नुमि विहिते औणादिकालचूप्रत्ययान्तस्यानुबन्धलोपे कृते प्रथमैकवचनान्तस्य मङ्गलमितिरूपं भवति, मङ्ग्यते हितमनेनेति मङ्गलं, मङ्ग्यते अधिगम्यते साध्यत इतियावत्, अथवा मङ्गेतिधर्माभिधानं, 'ला आदाने' अस्य धातोर्मङ्ग उपपदे "आतोऽनुपसर्गे कः" (पा० ३–२–३) इति कप्रत्ययान्तस्य अनुबन्धलोपे कृते "आतो लोप इटि च क्ङिति" (पा० ६–४–६४ आतो लोप इटि च) इत्यनेन सूत्रेणाकारलोपे च प्रथमैकवचनान्तस्यैव मङ्गलमिति भवति, मङ्गं लातीति मङ्गलं धर्म्मोपादानहेतुरित्यर्थः, अथवा मां गालयति भवादिति मङ्गलं संसारादपनयतीत्यर्थः ।

१ अनुमानस्य. २ मङ्गलत्रयस्य अविघ्नसमाप्त्यादिकार्यत्रयस्य पृथक्पृथक्तया साधकत्वात्. ३ सिद्धम्. ४ सदृशधातूनामेकार्थे पाठात्. ५ प्राहयर्थत्वात् गत्यर्थानां. ६ निदर्शनमात्रत्वाद्धातूनाम्. ७ पर्यायस्य पर्यायकथने प्रयोग एतस्य.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मङ्गलस्य व्याख्या एवं द्रव्यादि चत्वारः भेदाः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ४ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

तच्च नामादि चतुर्विधं, तद्यथा–नाममङ्गलं १ स्थापनामङ्गलं २ द्रव्यमङ्गलं ३ भावमङ्गलं ४ चेति। तत्र "यद्वस्तुनोऽभिधानं स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षम्। पर्यायानभिधेयं (च) नाम याद्दच्छिकं च तथा ॥ १ ॥" अस्यायमर्थः—'यद्' 'वस्तुनो' जीवाजीवादेः 'नाम' यथा गोपालदारकस्येन्द्र इति, 'स्थितमन्यार्थे' इति परमार्थतः त्रिदशाधिपेऽवस्थानात्, 'तदर्थनिरपेक्षम्' इति इन्द्रार्थनिरपेक्षं, कथम्? तत्र गुणतो वर्त्तत इति, इन्दनादिन्द्रः 'इदि परमैश्वर्ये' इति तस्य परमैश्वर्ययुक्तत्वात्, गोपालदारके तु तदर्थशून्यमिति, तथा पर्यायैः—शक्रपुरन्दरादिभिः नाभिधीयत इति, इह नामनामवतोरभेदोपचाराद्गोपालवस्त्वेव गृह्यते, एवंभूतं नामेति, तथाऽन्यत्रावर्त्तमानमपि किञ्चिद् याद्दच्छिकं डित्थादिवत्, चशब्दात् यावद्द्रव्यभावि च प्रायस इति। यत्तु सूत्रोपदिष्टं "णामं आवकहियं" तत् प्रतिनियतजनपदसंज्ञामाश्रित्येति, नाम च तन्मङ्गलं चेतिसमासः, तत्र यत् जीवस्याजीवस्योभयस्य वा मङ्गलमिति नाम क्रियते तन्नाममङ्गलं, जीवस्य यथा –सिन्धुविषयेऽग्निर्मङ्गलमभिधीयते, अजीवस्य यथा–श्रीमल्लाटदेशे दवरकवलनकं मङ्गलमभिधीयते, उभयस्य यथा–वन्दनमालेति। "यत्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण यच्च तत्करणि। लेप्यादिकर्म तत् स्थापनेति क्रियतेऽल्पकालं च ॥ २ ॥" अस्यायमर्थः—'यद्' वस्तु 'तदर्थवियुक्तं' भावेन्द्राद्यर्थरहितं, तस्मिन्नभिप्रायस्तदभिप्रायः, अभिप्रायो बुद्धिः, तद्बुद्ध्येत्यर्थः, करणिराकृतिः, यच्चेन्द्राद्याकृति 'लेप्यादिकर्म क्रियते' चशब्दात्तदाकृतिशून्यं चाक्षनिक्षेपादि 'तत्स्थापनेति' तच्चे- ॥ ४ ॥

---

१ तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्येतिनियमात् प्राक्तत्त्वं मङ्गलस्य हितप्राह्याद्यभिधाय भेददर्शनाय. २ चतुर्विधे मङ्गले. ३ आर्यावृत्तस्य नामलक्षणप्रतिपादकग्रन्थस्येति वा. ४ आदिना तदुभयस्य. ५ गुणतः. ६ त्रिदशाधिपे. ७ इन्द्रस्य. ८ इन्द्रार्थेति. ९ अभिधानान्तरेऽपि प्रागभिधानवाच्यत्वात्. १० परावृत्तिभावात्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

त्वरमल्पकालमितिपर्यायौ, चशब्दाद्यावद्द्रव्यभावि च, स्थाप्यत इति स्थापना, स्थापना चासौ मङ्गलं चेति समासः, तत्र स्वस्तिकादि स्थापनामङ्गलमिति । “भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ ३ ॥” अस्यायं भावार्थः—‘भूतस्य’ अतीतस्य ‘भाविनो वा’ एष्यतो ‘भावस्य’ पर्यायस्य ‘कारणं’ निमित्तं ‘यद्’ एव ‘लोके’ ‘तद् द्रव्यम्’ इति द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायान् क्षरति चेति द्रव्यं ‘तत्त्वज्ञैः’ सर्वज्ञैस्तीर्थकृद्भिरितियावत् सचेतनम् अनुपयुक्तपुरुषाख्यम् अचेतनं ज्ञशरीरादि तथाभूतमन्यद्वा ‘कथितं’ आख्यातं प्रतिपादितमित्यर्थः । तत्र द्रव्यं च तन्मङ्गलं चेतिसमासः, तच्च द्रव्यमङ्गलं द्विधा—आगमतो नोआगमतश्च, तत्र आगमतः खल्वागममधिकृत्य आगमापेक्ष-मित्यर्थः,नोआगमतस्तु तद्विपर्ययमाश्रित्य, तत्रागमतो मङ्गलशब्दाध्येता अनुपयुक्तो द्रव्यमङ्गलम् ‘अनुपयोगो द्रव्य’ मिति-वचनात्, तथा नोआगमतस्त्रिविधं द्रव्यमङ्गलं, तद्यथा–ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलं १ भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलं २ ज्ञशरीरभव्यशरी-रव्यतिरिक्तं ३ द्रव्यमङ्गलमिति । तत्र ज्ञस्य शरीरं ज्ञशरीरं, शीर्यत इति शरीरं ज्ञशरीरमेव द्रव्यमङ्गलं ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलम्,

१ आकृत्यन्तरे पूर्वाकारोच्छेदात्. २ नन्दीश्वरद्वीपादिस्थप्रतिमादि. ३ स्थाप्यमानापेक्षया,अन्यत्र तु तिष्ठतीति स्थापना.४ आदिना नन्दावर्त्तादि. ५ आग-मनोआगमाभ्यां विचारयिष्यमाणत्वाद्भावार्थ इति । ६ वाशब्दस्य निपातानामनेकार्थत्वेन समुच्चयार्थत्वाद्भूतभविष्यतोश्चेति ज्ञेयं (चकाराद्भूतभविष्यत्पर्यायमिति विशेषावश्यके) ७ विवक्षितस्य भावतया ८ “आगमकारणमाया देहो सद्दो य तो दव्वं” ति३०विशेषावश्यकवचनादुपादानादीनि विविधानि कारणानि. ९ इष्टावधारणार्थत्वाद्योग्यत्वसद्भाव इति ज्ञापयति । १० पर्यायस्य क्रमभावित्वात्पूर्वपर्यायान् क्षरति, भूतापेक्षया क्षरति, भविष्यदपेक्षया गच्छतीत्यपि ११ द्वादशाङ्गार्थप्ररूपणाकारित्वात्तेषाम्. १२ आदिना भव्यशरीरग्रहः. १३ ज्ञभव्यशरीरव्यतिरिक्तमप्रधानं कारणादि च. १४ युक्तिदर्शनपुरस्सरं दर्शितं द्रव्यस्व-स्वरूपमेतदिति १५ पठिता. * उपलक्षणादनुपयुक्तानुष्ठानादि व्यतिरिक्तमङ्गलत्वात्तस्य. + पेक्षयेत्यर्थः १–४ † ज्ञाता २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ ५ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

अथवा ज्ञशरीरं च तद्द्रव्यमङ्गलं चेतिसमासः। एतदुक्तं भवति—मङ्गलपदार्थज्ञस्य यच्छरीरमात्मरहितं तदतीतकालानुभूततद्भावानुवृत्त्या सिद्धशिलोदितलगतमपि घृतघटादिन्यायेन नोआगमतो ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलमिति, मङ्गलज्ञानशून्यत्वाच्चं तस्य, इह सर्वनिषेध एव नोशब्दः। तथा भव्यो योग्यः, मङ्गलपदार्थं ज्ञास्यति यो न तावद्विजानाति स भव्य इति, तस्य शरीरं भव्यशरीरं, भव्यशरीरमेव द्रव्यमङ्गलम्, अथवा भव्यशरीरं च तद्द्रव्यमङ्गलं चेतिसमास इति। अयं भावार्थः—भाविनीं वृत्तिमङ्गीकृत्य मङ्गलोपयोगाधारत्वात् मधुघटादिन्यायेनैव तत् बालादिशरीरं भव्यशरीरद्रव्यमङ्गमिति,नोशब्दः पूर्ववत्। ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं च द्रव्यमङ्गलं संयमतपोनियमक्रियानुष्ठाता अनुपयुक्तः, आगमतोऽनुपयुक्तद्रव्यमङ्गलवत्, तथा यच्छरीरमात्मद्रव्यं वा अतीतसंयमादिक्रियापरिणामं, तच्च उभयातिरिक्तं द्रव्यमङ्गलं, ज्ञशरीरद्रव्यमङ्गलवत्, तथा यद् भाविसंयमादिक्रियापरिणामयोग्यं तदपि उभयव्यतिरिक्तं, भव्यशरीरद्रव्यमङ्गलवत्, तथा यदपि स्वभावतः शुभवर्णगन्धादिगुणं सुवर्णमाल्यादि, तदपि हि भावमङ्गलपरिणामकारणत्वाद् द्रव्यमङ्गलम्, अत्रापि नोशब्दः सर्वनिषेध एव द्रष्टव्यः, इत्युक्तं द्रव्यमङ्गलम्। “भावो विवक्षितक्रियानुभूतियुक्तो हि वै समाख्यातः। सर्वज्ञैरिन्द्रादिवदिहेन्दनादिक्रियानुभवात् ॥ ४ ॥” अस्यायमर्थः—भवनं भावः, स हि वक्तुमिष्टक्रियानुभवलक्षणः सर्वज्ञैः

॥ ५ ॥

१ मङ्गलभावेति. २ यत्र विधायानशनं जग्मुः शोभनां गतिं वाचंयमाः सेति, (अनु०) आदिना तीर्थकरनिर्वाणभूम्यादि, ३ आदिना मधुकुम्भादि. ४ नोआगमतोपपादनाय. ५ भावमङ्गलकारणताज्ञापनाय. ६ आदिना युवादि. ७ सर्वनिषेध एव. ८ उभयसमुच्चयायापि. ९ आदिना तपोनियमादि. १० शरीरमात्मद्रव्यं वा. ११ ज्ञभव्यशरीरेति उभयं १२ निमित्तकारणस्यापि द्रव्यत्वार्थं. १३ वदित्यन्तः. * नानुपयुक्तः १-२-३-४ + चाती० १३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

समाख्यातः, इन्दनादिक्रियानुभवनयुक्तेन्द्रादिवदिति । तत्र भावतो मङ्गलं भावमङ्गलम्, अथवा भावश्चासौ मङ्गलं चेति समासः, तच्च द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो मङ्गलपरिज्ञानोपयुक्तो भावमङ्गलं, कथमिह भावमङ्गलोपयोगमात्रात् तन्मयताऽवगम्यत इति, नह्यग्निज्ञानोपयुक्तो माणवकोऽग्निरेव, दहनपचनप्रकाशनाद्यर्थक्रियाप्रसाधकत्वाभावाद् इति चेत्, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, संवित् ज्ञानम् अवगमो भाव इत्यनर्थान्तरं, तत्र 'अर्थाभिधानप्रत्ययाः तुल्यनामधेयाः' इति सर्वप्रवादिनामविसंवादस्थानम्, अग्निरितिच यज्ज्ञानं तदव्यतिरिक्तो ज्ञाता तल्लक्षणो गृह्यते, अन्यथा तज्ज्ञाने सत्यपि नोपलभेत, अतन्मयत्वात्, प्रदीपहस्तान्धवत् पुरुषान्तरवद्वा, नचानाकारं तज्ज्ञानं, पदार्थान्तरवद्विवक्षितपदार्थापरिच्छेदप्रसङ्गात्, बन्धाद्यभावश्च, ज्ञानाज्ञानसुखदुःखपरिणामान्यत्वाद्, आकाशवत्, न चानलः सर्व एव दहनाद्यर्थक्रियाप्रसाधको, भस्मच्छन्नादिना व्यभिचारात्, इत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतमुच्यते–नोआगमतो भावमङ्गलम् आगमवर्जं ज्ञानचतुष्टयमिति, सर्वनिषेधवचनत्वान्नोशब्दस्य, अथवा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपयोगपरिणामो यः स नागम एव केवलः न चानागमः, इत्यतोऽपि मिश्रवचनत्वान्नोशब्दस्य नोआगमत इत्याख्यायते, अथवा अर्हन्नमस्काराद्युपयोगः

---

१ मङ्गलाधिकारे भावाधिकारे भावलक्षणसिद्धौ वा. २ अर्थाभिधानप्रत्ययेतिन्यायादग्निज्ञानस्याग्निरूपत्वं, तदव्यतिरिक्तस्य ज्ञातुरपि, तथा सति अग्निलक्षणत्वमिति ज्ञायते. ३ ज्ञानात्मनोर्व्यतिरिक्तत्वे. ४ ज्ञानात्मनोर्भेदात्. ५ प्रदीपवज्ज्ञानम्, अन्धवज्ज्ञानातिरिक्तः पुरुषः, प्रदीपहस्तत्वं च निकटत्वाय. ६ समवायापेक्षया दृष्टान्तान्तरं अन्तरापेक्षया वा. ७ विषयवैशिष्ट्यशून्यं, तथाच ज्ञेयस्य भिन्नत्वं ज्ञानात्. ८ प्रसङ्गोऽनिष्टापत्तिः ९ चकारो नोपलभेतेत्यनेन सह समुच्चयार्थः, ज्ञानात्मनोर्भेदे दूषणान्तरमेतदिति १० स्यादित्यध्याहार्यम्. ११ चन्द्रकान्तमणिव्यवहितादेर्ग्रहः, भस्मच्छन्नादिवदुपयोगरूपोऽपि न दाहकादिगुण इति तत्त्वम् । १२ नोशब्दस्य पर्युदासप्रतिषेधार्थत्वादागमवर्ज्यं ज्ञानचतुष्टयमिति. * ज्ञानोपयुक्तो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

खल्वागमैकदेशत्वात् नोआगमतो भावमङ्गलमिति ॥ ननु नामस्थापनाद्रव्येषु मङ्गलाभिधानं विवक्षितभावशून्यत्वाद् द्रव्यत्वं च समानं वर्त्तते; ततश्च क एषां विशेष इति, अत्रोच्यते, यथा हि स्थापनेन्द्रे खल्विन्द्राकारो लक्ष्यते, तथा कर्तुश्च सद्भूतेन्द्राभिप्रायो भवति, तथा द्रष्टुश्च तदाकारदर्शनादिन्द्रप्रत्ययः, तथा प्रणतिकृतधियश्च फलार्थिनः स्तोतुं प्रवर्त्तन्ते, फलं च प्राप्नुवन्ति केचिद्देवतानुग्रहात्, न तथा नामद्रव्येन्द्रयोरिति, तस्मात्स्थापनायास्तावदित्थं भेद इति । यथा च द्रव्येन्द्रो भावेन्द्रस्य कारणतां प्रतिपद्यते, तथोपयोगापेक्षायामपि तदुपयोगतामासादयिष्यति अवाप्तवांश्च, न तथा नामस्थापनेन्द्राविल्ययं विशेषः । भावमङ्गलमेवैकं युक्तं, स्वकार्यप्रसाधकत्वात् , न नामादयः, तत्कार्याप्रसाधकत्वात्, पापवद् इति चेत्, न, नामादीनामपि भावविशेषत्वात्, यस्मादविशिष्टमिन्द्रादि वस्तु उच्चरितमात्रमेव नामादिभेदचतुष्टयं

१ नोशब्दस्य सर्वदेशनिषेधैकदेशवाचकत्वात् ,क्रमेण नोआगमतो मङ्गलपदार्थत्रयं ज्ञानचतुष्टयादिरूपम्. २ द्रव्येषु दधिदूर्वादिषु अक्ष्यादिषु च मङ्गलाभिधानं. ३ "अभिहाणं दव्वत्तं तयत्थसुन्नत्तणं च तुल्लाइं" इतिविशेषावश्यके पृथक् प्रोक्तं, अत्र तु तदर्थशून्यत्वं द्रव्यत्वे हेतुतयोक्तम्, 'यद्वस्तुनोऽभिधान'मिति 'यत्तु तदर्थवियुक्त' मिति वचनान्नामस्थापनयोरपि द्रव्यत्वं, कारणता सर्वत्रेति वा द्रव्यता, पूर्वं निक्षेपचतुष्कस्य प्रक्रान्तत्वान्नामद्रव्यभेदविषयाशङ्का, विवक्षितेत्यादेस्तु द्रव्यत्वे हेतुता. ४ भावे संभवान्नाम्न आह–द्रव्यत्वमिति,विवक्षितभावशून्यत्वं हि तत्,नच तद्भाव इति । ५ स्पष्टं लक्ष्यमानत्वादादौ स्थापनाभेदनिरूपणम्. ६ सद्भावस्थापनापेक्षया. ७ अवितथेति. ८ बुद्धिः ९ सहस्राक्षवज्रधरत्वादि १० प्रतीतिः ११ आराधनातत्परताद्दर्शनाय. १२ सुतधनादि फलं. १३ तत्पाक्षिकेति. १४ स्थूलबुद्धेर्लोकस्य तत्र तथाध्यवसायाद्यभावात्. १५ नोआगमतो भावेन्द्रस्य. १६ लब्धिज्ञानवतां. १७ भव्यशरीरद्रव्यं. १७ ज्ञशरीरद्रव्यं. १९ अर्थक्रियाकारि वस्त्वित्यभिप्रेत्याह. २० निर्विघ्नशास्त्रार्थपारगमनादि. २१ नाममङ्गलादीनां. २२ धर्मरूपत्वात्. २३ अभ्युत्पादितं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रतिपद्यन्ते[1], भेदाश्च पर्याया एवेति, अथवा[2] नामस्थापनाद्रव्याणि भावमङ्गलस्यैवाङ्गानि[3], तत्परिणाम[4]कारणत्वात्, तथा च मङ्गलाद्य[5]भिधानं सिद्धाद्य[6]भिधानं चोपश्रुत्य अर्हत्प्रतिमास्थापनां[7] च दृष्ट्वा भूतयतिभावं भव्ययतिशरीरं[8] चोपलभ्य[9] प्रायः[10] सम्यग्दर्शनादि[11]भावमङ्गलपरिणामो जायते, इत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः—तत्र नोआगमतोऽर्हन्नमस्करादि भावमङ्गलमुक्तं[12], अथवा[13] नोआगमतो भावमङ्गलं नन्दी, तत्र नन्दनं नन्दी, नन्दन्त्यनयेति वा भव्यप्राणिनः[14] इति नन्दी, असावपि च मङ्गलवन्नामादिचतुर्भेदभिन्ना अवगन्तव्येति, तत्र नामस्थापने पूर्ववत्, द्रव्यनन्दी द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाताऽनुपयुक्तो, नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरोभयव्यतिरिक्ता च द्रव्यनन्दी द्वादशप्रकारस्तूर्यसंघातः[15] 'भंभा मुकुंद मद्दल कडंब झल्लरि हुडुक्क कंसाला। काहलि तलिमा* वंसो, संखो पणवो य बारसमो ॥ १ ॥' तथा भावनन्द्यपि द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाता †उपयुक्तः, नोआगमतः पञ्चप्रकारं ज्ञानं, तच्चेदम्—

आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं चेव ओहिनाणं च। तह मणपज्जवनाणं केवलनाणं च पंचमयं ॥ १ ॥

---

१ जानीते. २ निक्षेपचतुष्कस्य भिन्नभिन्नाधिकरणतामाश्रित्याह. ३ अवयवाः. ४ भावमङ्गलनिदानत्वात्. ५ आदिना ज्ञाननिर्जरादिग्रहः. ६ विशेषनाम्नां कारणतायै, आदिना जिनेन्द्रादिः. ७ सम्यग्दर्शनादेः प्रबलकारणत्वात्, शय्यम्भवादिवत्. ८ 'इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं आवस्सएत्ति पयं सेअकाले सिक्खिस्सइ न ताव सिक्खति' इति अनुयोगद्वारवचनात्. ९ ज्ञात्वा दृष्ट्वा वा १० क्लिष्टस्याभावात्. ११ ज्ञानचारित्रोपयोगग्रहः. १२ 'कयपंचनमुक्कारस्स दिन्ति सामाइयाइयं विहिणा' इतिवचनात्सूत्रापेक्षं, १३ अनुयोगापेक्षं, नन्द्यनुयोगस्यैकदेशत्वात्. १४ कर्तृतामापन्नाः. १५ 'दव्वे तूरसमुदओ' इति वचनात्, क्रियाविशिष्ट इत्यध्याहार्यमन्यथा नामनन्दीत्वापत्तेः. *तिलिमा १–४. † तदुपयुक्तः १–३–४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानस्य आभिनिबोधिक आदि पञ्च प्रकारा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ ७ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

व्याख्या—अर्थाभिमुखो नियतो बोधः अभिनिबोधः, अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकं, विनयादिपाठात् अभिनिबोधशब्दस्य "विनयादिभ्यष्ठग्" (पा० ५.४-३४) इत्यनेन स्वार्थ एव ठक्प्रत्ययो, यथा विनय एव वैनयिकमिति अभिनिबोधे वा भवं तेन वा निर्वृत्तं तन्मयं तत्प्रयोजनं वाअथवा*ऽभिनिबुध्यते तद् इत्याभिनिबोधिकं, अवग्रहादिरूपं मतिज्ञानमेव, तस्य स्वसंविदितरूपत्वात्, भेदोपचारादित्यर्थः, अभिनिबुध्यते वाऽनेनेत्याभिनिबोधिकं, तदावरणकर्मक्षयोपशम इति भावार्थः, अभिनिबुध्यते अस्मादिति वाऽऽभिनिबोधिकं, तदावरणकर्मक्षयोपशम एव, अभिनिबुध्यतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशम इत्याभिनिबोधिकं, आत्मैव वाऽभिनिबोधोपयोगपरिणामानन्यत्वाद् अभिनिबुध्यत इत्याभिनिबोधिकं, आभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं चेति समासः । तथा श्रूयत इति श्रुतं शब्द एव, भावश्रुतकारणत्वादिति भावार्थः, अथवा श्रूयतेऽनेनेति श्रुतं, तदावरणक्षयोपशम इत्यर्थः, श्रूयतेऽस्मादिति वा श्रुतं, तदावरणक्षयोपशम एव, श्रूयतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशम इति श्रुतं, शृणोतीति वाऽऽत्मैव तदुपयोगानन्यत्वात्, श्रुतं च तज्ज्ञानं चेति समासः, चशब्दस्त्वनयोरेवं तुल्यकक्षतोद्भावनार्थः, स्वाम्यादिसाम्यात्, कथम्?, य एव मतिज्ञानस्य स्वामी स एव श्रुतज्ञानस्य "जत्थ मइनाणं तत्थ सुयणाण"

॥ ७ ॥

१ पदार्थनान्तरीयकः. २ नियतविषयं, ननु द्विचन्द्रादिवत्. ३ प्रकाश्यप्रकाशकोभयरूपत्वादित्यर्थः, प्राक् प्रकाशकम्. ४ एकत्वात् कर्तृकर्मैक्यात्. ५ 'भावाकर्त्रोः' इत्यभिनिबोधशब्दनिष्पत्तौ प्राग्वदाभिनिबोधिकशब्दनिष्पत्तिः, कर्तरि तु लिहादित्वादच्, ६ बहुलवचनात् कर्मादिष्वपि क्तो नपुंसके, प्राभृतज्ञो द्रव्यमिति भव्यमाहेतिवचनात्प्राभृताद्वा निष्पत्तिरेवमन्यत्राप्यूह्यम्. ७ ज्ञानद्वयानन्तरं चस्य पाठात्. ८ तुल्यपक्षतोद्बोधनाय. * कृदन्तव्युत्पत्तये, उपसर्गावत्र विशेषकौ धातोः † प्रकाशकमतौ + भिन्नत्वाशङ्कापनोदाय ‡ ०कर्म० १–४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

मिति वचनात्, तथा यावान्मतिज्ञानस्य स्थितिकालस्तावानेवेतरस्य, प्रवाहापेक्षया अतीतानागतवर्त्तमानः सर्व एव, अप्रतिपतितैकजीवापेक्षया च षट्षष्टिसागरोपमाण्यधिकानीति, उक्तं च भाष्यकारेण "दोवारे विजयाइसु गयस्स तिण्णच्चुए अहव ताइं । अइरेगं णरभविअं णाणाजीवाण सव्वद्धं ॥ १ ॥" यथा च मतिज्ञानं क्षयोपशमहेतुकं, तथा श्रुतज्ञानमपि, यथा च मतिज्ञानमादेशतः सर्वद्रव्यादिविषयम्, एवं श्रुतज्ञानमपि, यथा च मतिज्ञानं परोक्षम्, एवं श्रुतज्ञानमपि इति, एवकारस्त्ववधारणार्थः, परोक्षत्वमनयोरेवावधारयति, आभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने एव परोक्षे इति भावार्थः। तथा अवधीयतेऽनेन इत्यवधिः, अवधीयते इति अधोऽधो विस्तृतं परिच्छिद्यते, मर्यादया वेति, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशम एव, तदुपयोगहेतुत्वादित्यर्थः, अवधीयतेऽस्मादिति वेति अवधिः, तदावरणीयक्षयोपशम एव, अवधीयतेऽस्मिन्निति वेत्यवधिः, भावार्थः पूर्ववदेव, अवधानं वाऽवधिः, विषयपरिच्छेदनमित्यर्थः, अवधिश्चासौ ज्ञानं च अवधिज्ञानं, चशब्दः खल्वनन्तरोक्तज्ञानद्वयसाधर्म्यप्रदर्शनार्थः, स्थित्यादिसाधर्म्यात्, कथम्?, यावान्मतिश्रुतस्थितिकालः प्रवाहापेक्षया अप्रतिपतितैकसत्त्वाधारापेक्षया च, तावानेवावधेरपि, अतः स्थितिसाधर्म्यात्,

१ एकेन्द्रियादिषु क्षयोपशमसद्भावाद्वयोः संज्ञासद्भावाच्च श्रुतसत्ता (वि० १०२ प्रभृतिके), सम्यग्ज्ञानापेक्षया. २ श्रीमता जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणेन. ३ द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य त्रीन् वारान् अच्युतेऽथवा तानि (षट्षष्टिसागरोपमाणि) अतिरिक्तं नरभविकं (अप्रतिपतितैकजीवापेक्षया) नानाजीवानां सर्वाद्धं (वि० ४३६). ४ ओघादेशात्सूत्रादेशाद्वा. ५ आदिना क्षेत्रकालभावग्रहः. ६ द्रव्येन्द्रियमनोनिष्पाद्यत्वात्. ७ दर्शनरूपबोधव्यवच्छेदाय. ८ रूपिद्रव्यात्मिकया. ९ क्षयोपशमस्याभावरूपत्वेनेदम्. आत्मस्वरूपं ज्ञानमित्युक्तमिदम्. * तदावरण० १–४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ ८ ॥

हारिभद्री यवृत्तिः विभागः १

यथा मतिश्रुते विपर्ययज्ञाने भवतः, एवमिदमपि मिथ्यादृष्टेर्विभङ्गज्ञानं भवतीति विपर्ययसाधर्म्यात्, य एव च मतिश्रुतयोः स्वामी स एव चावधेरपि भवतीति स्वामिसाधर्म्यात्, विभङ्गज्ञानिनः त्रिदशादेः सम्यग्दर्शनावाप्तौ युगपज्ज्ञानत्रयं संभवतीति लाभसाधर्म्याच्च । तथा मनःपर्यवज्ञानं, अयं भावार्थः—परिः सर्वतो भावे, अवनं अवः, अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अवः पर्यवः पर्यवनं वा पर्यव इति, मनसि मनसो वा पर्यवो मनःपर्यवः, सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, स एव ज्ञानं मनःपर्यवज्ञानं, अथवा मनसः पर्याया मनःपर्यायाः, पर्याया भेदा धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनप्रकारा इत्यनर्थान्तरं, तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, तेषां वा सम्बन्धि ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, इदं चार्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्बनमेवेति, तथाशब्दोऽवधिज्ञानसारूप्यप्रदर्शनार्थः, कथम् ?, छद्मस्थस्वामिसाधर्म्यात्, तथा पुद्गलमात्रालम्बनत्वसाम्यात्, तथा क्षायोपशमिकभावसाम्यात्, तथा प्रत्यक्षत्वसाम्याच्चेति । केवलमसहायं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षं, शुद्धं वा केवलं, तदावरणकर्ममलकलङ्काङ्करहितं, सकलं वा केवलं, तत्प्रथमतयैव अशेषतदावरणाभावतः संपूर्णोत्पत्तेः, असाधारणं वा केवलं, अनन्यसदृशमिति हृदयं, ज्ञेयानन्तत्वाद् अनन्तं वा केवलं, यथावस्थिताशेषभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासीति भावना, केवलं च तज्ज्ञानं चेति समासः, चशब्दस्तूक्तसमुच्चयार्थः, केवलज्ञानं च पञ्चमकमिति, अथवाऽनन्त-

१ विषयसप्तमी. २ सम्बन्धे षष्ठी. ३ विना दर्शनं ज्ञानेनानेन विशेषोपयोग इति, विशुद्धतराणि वा मनोद्रव्याणि जानात्यनेनेति ज्ञापनाय वा. ४ अरूपिद्रव्यालम्बनव्यवच्छेदाय मात्रेति. ५ "जीवो अक्खो अत्थव्वावणभोयणगुणण्णिओ जेणं । तं पइ वट्टइ नाणं, जं पच्चक्खं तयं तिविहं" (वि० ८९) इति. ६ अपेक्षाऽत्र सहावस्थानरूपा. ७ मत्यादीनां स्वावरणोपेतत्वात्, अङ्को लक्ष्म. ८ उत्पत्तिसमय एव. ९ न तारतम्यवत् न्यूनं वा कदापि. १० अन्यस्य कस्यापि रूप्यरूपिसूक्ष्मदूरेतरादिपदार्थाग्राहकत्वात्. ११ आधारापेक्षयाऽसंख्येयत्वेऽपि. * ०यसंभवतो † परि.

॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

राभिहितज्ञानसारूप्यप्रदर्शक एव, अप्रमत्तभावयतिस्वामिसाधर्म्यात् विपर्ययाभावयुक्तत्वाच्चेति गाथासमासार्थः ॥

आह—मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः कः प्रतिविशेष इति, † उच्यते, उत्पन्नाविनष्टार्थग्राहकं साम्प्रतकालविषयं मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं तु त्रिकालविषयं उत्पन्नविनष्टानुत्पन्नार्थग्राहकमिति, भेदकृतो वा विशेषः, यस्मादवग्रहाद्यष्टाविंशतिभेदभिन्नं मतिज्ञानं, तथाऽङ्गानङ्गादिभेदभिन्नं च श्रुतमिति, अथवाऽऽत्मप्रकाशकं मतिज्ञानं, स्वपरप्रकाशकं च श्रुतमित्यलं प्रसङ्गेन, गमनिकामात्रमेवैतदिति । अत्राह—एषां ज्ञानानामित्थं क्रमोपन्यासे किं प्रयोजनं इति, उच्यते, परोक्षत्वादिसाधर्म्यान्मतिश्रुतसद्भावे च शेषज्ञानसंभवात् आदावेव मतिश्रुतोपन्यासः, मतिज्ञानस्य पूर्वं किमिति चेत्, उच्यते, मतिपूर्वकत्वात् श्रुतस्येति, मतिपूर्वकत्वं चास्य “श्रुतं मतिपूर्वम्” (०द्व्यनेकद्वादशभेदम् श्रीतत्त्वार्थे अ० १ सू० २०) इति वचनात्, तत्र प्रायो मतिश्रुतपूर्वकत्वात्प्रत्यक्षत्वसाधर्म्याच्च ज्ञानत्रयोपन्यास इति, तत्रापि कालविपर्ययादिसाम्यान्मतिश्रुतोपन्यासानन्तरमेवावधेरुपन्यास इति, तदनन्तरं च छाद्मस्थिकादिसाधर्म्यान्मनःपर्यायज्ञानस्य, तदनन्तरं भावमुनिस्वाम्यादिसाधर्म्यात्सर्वोत्तमत्वाच्च केवलस्येति गाथार्थः ॥ १ ॥

साम्प्रतं ‘यथोद्देशं निर्देशः’ इति न्यायाद् ज्ञानपञ्चकादावुद्दिष्टस्य आभिनिबोधिकज्ञानस्य स्वरूपमभिधीयते—तच्चाभि-

१ न शेषज्ञानानामित्यर्थः २ मत्यादीनामपि तेन स्वरूपनिरूपणात् . ३ संक्षेपविवरणरूपत्वात् . ४ भावश्रुतस्य. ५ मिथ्यादृष्टेस्त्रिज्ञानावाप्तौ न प्राक् मतिश्रुते स्त इति प्राय इति । ६ ज्ञानत्रयोपन्यासे. ७ लाभादिग्रहः. ८ पुद्गलावलम्बनत्वादिः ९ विपर्ययाभावत्वादिः. † अत्रोच्यते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक/मति-ज्ञानस्य स्वरुपम् एवं भेद-प्रभेदा:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ ९ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

निबोधिकज्ञानं द्विधा, श्रुतनिश्रितमश्रुतनिश्रितं च, यत्पूर्वमेव +कृतश्रुतोपकारं इदानीं पुनस्तदनपेक्षमेवानुप्रवर्त्तते तद् अवग्रहादिलक्षणं श्रुतनिश्रितमिति । यत्पुनः पूर्वं तद[1]परिकर्मितमतेः क्षयोपशमपटीयस्त्वा[2]त् औत्पत्तिक्यादिलक्षणं उपजायते तदश्रुतनिश्रितमिति । आह—"तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला" इति वचनात् तत्रापि किञ्चित् श्रुतोपकारादेव जायते, तत्कथमश्रुतनिश्रितमिति, उच्यते,. अवग्रहादीनां श्रुतनिश्रिताभिधानाद् औत्पत्तिक्यादिचतुष्टयेऽपिच अवग्रहादिसद्भावात् यथायोगमश्रुतनिश्रितत्वमवसेयं, न तु सर्वमेवेति, अयमत्र भावार्थः—श्रुतकृतोपकारनिरपेक्षं यदौत्पत्तिक्यादि तदश्रुतनिश्रितं, प्रातिभमि[3]तिहृदयं, वैनयिकीं विहाये[4]त्यर्थः, बुद्धिसाम्याच्च तस्या अपि निर्युक्तौ उपन्यासोऽविरुद्ध इत्यलं प्रसङ्गेन । तत्र श्रुतनिश्रितमतिज्ञानस्वरूपप्रदर्शनायाह—

उग्गह ईहाऽवाओ य धारणा एव हुंति चत्तारि । आभिणिबोहियनाणस्स भेयवत्थू समासेणं ॥ २ ॥

व्याख्या—तत्र सामान्यार्थस्याशेषविशेषनिरपेक्षानिर्देश्यस्य रूपादेरवग्रहणं अवग्रहः, तदर्थविशेषालोचनं ईहा, तथा प्रक्रान्तार्थविशेषनिश्चयोऽवायः, चशब्दः पृथक् पृथक् अवग्रहादिस्वरूपस्वातन्त्र्यप्रदर्शनार्थः, अवग्रहादीनां ईहादयः ॥ ९ ॥

१ औत्पत्तिक्यादिविषयकवस्तुसम्बन्धिपरिकर्म न श्रुतकृतमिति । २ परिकर्म विना. ३ "प्रज्ञा नवनवोल्लेखशालिनी प्रतिभा मता" सैव प्रातिभं, न त्वत्र श्रुतकेवलातिरिक्तं सामर्थ्ययोगजन्यं प्रातिभम्. ४ सकृच्छ्रुतनिश्रितत्वात् त्यागः, बाहुल्यापेक्षया तदननुसरणं त्वश्रुतनिश्रितत्वं, यद्वा पूर्वमशिक्षितशास्त्रार्थस्याश्रुतनिश्रितत्वं वैनयिकी त्वन्यथेति ज्ञानं, विमर्शप्राधान्याच्च बुद्धिचतुष्टयान्तर्भावः + श्रुतकृतो०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

पर्याया न भवन्तीत्युक्तं भवति, अवगतार्थविशेषधरणं धारणा, एवकारः *क्रमप्रदर्शनार्थः, 'एवं' अनेनैव क्रमेण भवन्ति, चत्वारि, आभिनिबोधिकज्ञानस्य भिद्यन्त इति भेदा विकल्पा अंशा इत्यनर्थान्तरं, त एव वस्तूनि भेदवस्तूनि, कथम् ?, यतो नानवगृहीतमीह्यते, न चानीहितमवगम्यते, न चानवगतं धार्यत इति। अथवा काक्वा नीयते—एवं भवन्ति चत्वार्याभिनिबोधिकज्ञानस्य भेदवस्तूनि ?, 'समासेन' संक्षेपेण अविशिष्टावग्रहादिभावस्वरूपापेक्षया, न तु विस्तरत इति, विस्तरतोऽष्टाविंशतिभेदभिन्नत्वात्तस्येति गाथार्थः ॥२॥ इदानीमनन्तरोपन्यस्तानामवग्रहादीनां स्वरूपप्रतिपिपादयिषयेदमाह—

अत्थाणं ओगहणंमि उग्गहो तह वियारणे ईहा। ववसायंमि अवाओ धरणंमि [1]य धारणं बिंति ॥ ३ ॥

व्याख्या—तत्र अर्यन्ते इत्यर्थाः, अर्यन्ते गम्यन्ते परिच्छिद्यन्त इतियावत्, ते च रूपादयः, तेषां अर्थानां, प्रथमं दर्शनानन्तरं ग्रहणं अवग्रहणं ‡ अवग्रहं ब्रुवत इतियोगः । आह—वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकतयाऽविशिष्टत्वात् किमिति प्रथमं दर्शनं न ज्ञानमिति, उच्यते, तस्य प्रबलावरणत्वात्, दर्शनस्य चाल्पावरणत्वादिति। स च द्विधा—व्यञ्जनावग्रहोऽर्थावग्रहश्च, तत्र व्यञ्जनावग्रहपूर्वकत्वादर्थावग्रहस्य प्रथमं व्यञ्जनावग्रहः प्रतिपाद्यत इति । तत्र व्यञ्जनावग्रह इति कः शब्दार्थः ?, उच्यते, व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं, तच्च उपकरणेन्द्रियं शब्दादिपरिणतद्रव्यसंघातो वा, ततश्च व्यञ्जनेन उपकरणेन्द्रियेण शब्दादिपरिणतद्रव्याणां च व्यञ्जनानां अवग्रहो

---

१ (अत्थाणं ओगाहणं, उग्गहं तह वियालणं ईहं। ववसायं च अवायं, धरणं पुण धारणं बिंति ॥ ३ ॥) * क्रमदर्शनार्थः † धरणं पुण ‡ ग्रहणं अवग्रहं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्यञ्जनावग्रह इति । अयं च नयनमनोवर्जेन्द्रियाणामवसेय इति, न तु नयनमनसोः, अप्राप्तकारित्वात्, अप्राप्तकारित्वं चानयोः “पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु” इत्यत्र वक्ष्यामः । तथा च व्यञ्जनावग्रहचरमसमयोपात्तशब्दाद्यर्थावग्रहणलक्षणोऽर्थावग्रहः, सामान्यमात्रानिर्देश्यग्रहणमेकसामयिकमिति भावार्थः । ‘तथा’ इत्यानन्तर्ये ‘विचारणं’ पर्यालोचनं अर्थानामित्यनुवर्त्तते, ईहनमीहा तां, ब्रुवत इति संबन्धः । एतदुक्तं भवति— अवग्रहादुत्तीर्णः अवायात्पूर्वं सद्भूतार्थविशेषोपादानाभिमुखोऽसद्भूतार्थविशेषत्यागाभिमुखश्च प्रायो मधुरत्वादयः शङ्खशब्दधर्मा अत्र घटन्ते न खरकर्कशनिष्ठुरतादयः शार्ङ्गशब्दधर्मा इति मतिविशेष ईहेति । विशिष्टोऽवसायो व्यवसायः, निर्णयो निश्चयोऽवगम इत्यनर्थान्तरं, तं व्यवसायं च, अर्थानामिति वर्त्तते, अवायं ब्रुवत इति संसर्गः, एतदुक्तं भवति— शाङ्ख एवायं शार्ङ्ग एव वा इत्यवधारणात्मकः प्रत्ययोऽवाय इति, चशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, व्यवसायमेवावायं ब्रुवत इति भावार्थः । धृतिर्धरणं, अर्थानामिति वर्त्तते, परिच्छिन्नस्य वस्तुनोऽविच्युतिस्मृतिवासनारूपं तद्धरणं पुनर्धारणां ब्रुवते, पुनःशब्दोऽप्येवकारार्थः, स चावधारणे, धरणमेव धारणां ब्रुवत इति, अनेन शास्त्रपारतन्त्र्यमाह, इत्थं तीर्थकरगणधरा ब्रुवत इति । एवं शब्दमधिकृत्य श्रोत्रेन्द्रियनिबन्धना † अवग्रहादयः प्रतिपादिताः, शेषेन्द्रियनिबन्धना अपि रूपादिगोचराः स्थाणुपुरुष–कुष्ठोत्पल–संभृतकरिल्लमांस–सर्पोत्पलनालादौ इत्थमेव द्रष्टव्याः, एवं मनसोऽपि स्वप्ने शब्दादिविषया अवग्रहादयोऽवसेया इति, अन्यत्र चेन्द्रियव्यापाराभावेऽभिमन्यमानस्येति । ततश्च व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः, ॥ १० ॥

१ गाथा० ५ २ चक्षुरादीनां क्रमशो दृष्टान्तदर्शनात् कोष्ठपुटाख्यो गन्धद्रव्यविशेषः ३ स्वप्नात्. * अप्राप्यकारित्वात् ५-६ † ०न्धनावग्र०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

तस्य नयनमनोवर्जेन्द्रियसंभवात् , अर्थावग्रहस्तु षोढा, तस्य सर्वेन्द्रियसंभवात् । एवमीहादयोऽपि प्रत्येकं षट्प्रकारा एवेति* । एवं संकलिताः सर्व एव अष्टाविंशतिर्मतिभेदा अवगन्तव्या इति १ अन्ये त्वेवं पठन्ति—'अत्थाणं उग्गहणंमि †उग्गहो' तत्र अर्थानामवग्रहणे सति अवग्रहो नाम मतिभेद इत्येवं ब्रुवते, एवं ईहादिष्वपि योज्यं, भावार्थस्तु पूर्ववदिति । अथवा प्राकृतशैल्या 'अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम' इति यथाऽऽचाराङ्गे–"अगणिं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जंति" इत्यत्र अग्निना च स्पृष्टाः, अथवा स्पृष्टशब्दः पतितवाची, ततश्चायमर्थः—अग्नौ च पतिता 'एके' शलभादयः 'संघातमापद्यन्ते' अन्योऽन्यगात्रसंकोचमासादयन्तीत्यर्थः,तस्मादू अग्निसमारम्भोऽनेकसत्त्वव्यापत्तिहेतुः इत्यतो न कार्यः इत्यादिविचारे द्वितीया तृतीयार्थे सप्तम्यर्थे च २व्याख्यातेति । एवमत्रापि सप्तमी प्रथमार्थे द्रष्टव्येति गाथार्थः ॥ ३ ॥

इदानीमभिहितस्वरूपाणामवग्रहादीनां कालप्रमाणमभिधित्सुराह—

+उग्गह इक्कं समयं ईहावाया ‡मुहुत्तमद्धं तु । कालमसंखं संखं च धारणा होइ णायव्वा ॥ ४ ॥

व्याख्या—तत्र अभिहितलक्षणोऽर्थावग्रहो ३जघन्यो नैश्चयिकः, स खलु एकं समयं भवतीति संबन्धः, तत्र कालः

---

१ नोइन्द्रियस्यापि ग्रहणमुपलक्षणात् , अन्यथा न स्युर्भेदाः षट् , इन्द्रियत्वं वाभिप्रेतमत्र तस्याभ्यन्तरनिर्वृत्त्यन्वितत्वात्. २ ज्ञायतेऽनेन आचाराङ्गव्याख्या श्रीमतां कालात्प्राक्तनीति ३ अर्थावग्रहो द्विधा जघन्य उत्कृष्टश्च, आद्यो नैश्चयिक एवेतरः सांव्यवहारिक इति जघन्यो नैश्चयिक इति प्रोचुः, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणमिति न्यायात्. *एवेत्यर्थः, संक० † उवग्गहो. *उग्गहु (नि० ३) ‡ मुहुत्तमन्तं तु (वृ०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक- ॥ ११ ॥

परमनिकृष्टः समयोऽभिधीयते, स च प्रवचनप्रतिपादितोत्पलपत्रशतव्यतिभेदोदाहरणाद् *जरत्पट्टशाटिकापाटनदृष्टान्ताच्च अवसेयः, तथा सांव्यवहारिकार्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहौ तु पृथक् पृथग् अन्तर्मुहूर्त्तमात्रं कालं भवत इति †विज्ञातव्यौ। ईहा चावायश्च ईहावायौ, प्राकृतशैल्या बहुवचनं, उक्तं च–"दुवयणे बहुवयणं छट्ठीविहत्तीऍ ‡भण्णइ चउत्थी। जह हत्था तह पाया, णमोऽत्थु देवाहिदेवाणं[2] ॥१॥" तावीहावायौ मुहूर्तार्धं ज्ञातव्यौ भवतः, तत्र मुहूर्त्तशब्देन घटिकाद्वयपरिमाणः कालोऽभिधीयते, तस्यार्धं तु मुहूर्त्तार्धं, तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि?–व्यवहारापेक्षया एतद् मुहूर्त्तार्धमुक्तं, तत्त्वतस्तु अन्तमुहूर्त्तमवसेयमिति। अन्ये त्वेवं पठन्ति 'मुहुत्तमन्तं तु' मुहूर्त्तान्तस्तु द्वे पदे, अयमर्थः—अन्तर्मध्यकरणे, तुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, एतदुक्तं भवति–ईहावायौ मुहूर्त्तान्तः, भिन्नं मुहूर्त्तं ज्ञातव्यौ भवतः, अन्तर्मुहूर्त्तमेवेत्यर्थः। कलनं कालः तं कालं, न विद्यते संख्या इयन्तः पक्षमासर्त्वयनसंवत्सरादय इत्येवंभूता यस्यासावसंख्यः, पल्योपमादिलक्षण इत्यर्थः, तं कालमसंख्यं, तथा संख्यायत इति संख्यः, इयन्तः पक्षमासर्त्वयनादय इत्येवं संख्याप्रमित इत्यर्थः, तं संख्यं च, चशब्दात् अन्तर्मुहूर्त्तं च, धारणा अभिहितलक्षणा भवति ज्ञातव्या, अयमत्र भावार्थः—अवायोत्तरकालं अविच्युतिरूपा–अन्तर्मुहूर्त्तं भवति, एवं स्मृतिरूपाऽपि, वासनारूपा तु तदावरणक्षयोपशमाख्या स्मृतिधारणाया बीजभूता संख्येयवर्षायुषां सत्त्वानां संख्येयं कालं असंख्येयवर्षायुषां पल्योपमादि[3]जीविनां चासंख्येयमिति गाथार्थः ॥ ४ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥ ११ ॥

१ भाष्यकारादिव्याख्यानात्. २ बहुवचनं द्विवचने षष्ठीविभक्तौ भण्यते चतुर्थी। यथा हस्तौ तथा पादौ नमोऽस्तु देवाधिदेवेभ्यः. ३ "अद्धाजोगुक्कोसे" इत्यादिवचनादपवर्त्तनासंभवात्तद्रहितानामसंख्येयायुषामितिदर्शनाय पल्योपमेत्यादि. *जीर्णत्० ५-६ † ज्ञातव्यौ १-२-३-४ ५ बहुवयणेण दुवयणं १-२-३-४ ‡ भण्णए ५-६.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

इत्थमवग्रहादीनां स्वरूपमभिधाय इदानीं श्रोत्रेन्द्रियादीनां प्राप्ताप्राप्तविषयतां प्रतिपिपादयिषुराह—

पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु। गंधं रसं च फासं च बद्धपुट्ठं वियागरे ॥ ५ ॥

व्याख्या—आह—ननु व्यञ्जनावग्रहनिरूपणाद्वारेण श्रोत्रेन्द्रियादीनां प्राप्ताप्राप्तविषयता प्रतिपादितैव, किमर्थं पुनरयं प्रयास इति, उच्यते, तत्र प्रक्रान्तगाथा व्याख्यानद्वारेण प्रतिपादिता, साम्प्रतं तु सूत्रतः प्रतिपाद्यत इत्य दोषः। तत्र 'स्पृष्टं' इत्यालिङ्गितं, तनौ रेणुवत्, श्रृणोति गृह्णाति उपलभत इति पर्यायाः, कम् ?—शब्द्यतेऽनेनेति शब्दः तं शब्दप्रायोग्यं द्रव्यसंघातं, इदमत्र हृदयम्—तस्य सूक्ष्मत्वात् भावुकत्वात् प्रचुरद्रव्यरूपत्वात् श्रोत्रेन्द्रियस्य चान्येन्द्रियगणात्प्रायः पटुतरत्वात् स्पृष्टमात्रमेव शब्दद्रव्यनिवहं गृह्णाति। रूप्यत इति रूपं तद्रूपं पुनः, पश्यति गृह्णाति उपलभत इत्येकोऽर्थः, अस्पृष्टमनालिङ्गितं गन्धादिवन्न संबद्धमित्यर्थः, तुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, रूपं पुनः पश्यति अस्पृष्टमेव, चक्षुषः अप्राप्तकारित्वादिति भावार्थः, पुनःशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ?—अस्पृष्टमपि योग्यदेशावस्थितं, न पुनरयोग्यदेशावस्थितं अमरलोकादि। गन्ध्यते घ्रायत इति गन्धस्तं, रस्यत इति रसस्तं च, स्पृश्यत इति स्पर्शस्तं च, चशब्दौ पूरणार्थौ, 'बद्धस्पृष्टं' इति बद्धमाश्लिष्टं नवशरावे तोयवदात्मप्रदेशैरात्मीकृतमित्यर्थः, स्पृष्टं पूर्ववत्, प्राकृतशैल्या चेत्थमुपन्यासो 'बद्धपुट्ठं' ति, अर्थतस्तु स्पृष्टं च बद्धं च स्पृष्टबद्धं। आह—यद्बद्धं गन्धादि तत् स्पृष्टं भवत्येव, अस्पृष्टस्य

१ चक्षुर्मनसोरसत्यपि व्यञ्जनावग्रहेऽर्थावग्रहसद्भावादस्त्येव पटुतरतेति प्राय इति. २ स्पर्शाभावे बन्धाभावसत्त्वेऽपि स्पष्टत्वार्थमेतत्, घ्राणादीन्द्रियेभ्यो निपुणताख्यानाय वा. * नास्तीदम् १-२-३-४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ १२ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

बन्धायोगात्, ततश्च स्पृष्टशब्दोच्चारणं गतार्थत्वादनर्थकमिति, उच्यते, सर्वश्रोतृसाधारणत्वाच्छास्त्रारम्भस्यायमदोष इति। त्रिप्रकाराश्च श्रोतारो भवन्ति—केचिद् उद्घाटितज्ञाः, केचित् मध्यमबुद्धयः, तथाऽन्ये प्रपञ्चितज्ञा इति, तत्र प्रपञ्चितज्ञानां अनुग्रहाय गम्यमानस्याप्यभिधानमदोषायैव, अथवा विशेषणसमासाङ्गीकरणाददोषः, स्पृष्टं च तद्बद्धं च स्पृष्टबद्धं, तत्र स्पृष्टं गन्धादि विशेष्यं, बद्धमिति च विशेषणं। आह—एवमपि स्पृष्टग्रहणमतिरिच्यते, यस्माद्यद्बद्धं न तत्स्पृष्टत्वव्यभिचारि, उभयपदव्यभिचारे च विशेषणविशेष्यभावो दृष्टो यथा नीलोत्पलमिति, न चेह उभयपदव्यभिचारः, अत्रोच्यते, नैष दोषः, यस्मादेकपदव्यभिचारेऽपि विशेषणविशेष्यभावो दृष्टो, यथा अब्द्रव्यं पृथिवी द्रव्यमिति, भावना—अब् द्रव्यमेव, न द्रव्यत्वं व्यभिचरति, द्रव्यं पुनरब् *चानब् †चेति व्यभिचारि, अथ च विशेषणविशेष्यभाव इति। प्रकृतभावार्थस्त्वयम्—आलिङ्गितानन्तरमात्मप्रदेशैरागृहीतं गन्धादि बादरत्वाद् अभावुकत्वात् अल्पद्रव्यरूपत्वात् घ्राणादीनां चापटुत्वात् गृह्णाति निश्चिनोति घ्राणेन्द्रियादिगण इत्येवं व्यागृणीयात् प्रतिपादयेदितियावत्।

आह—भवतोक्तं योग्यदेशावस्थितमेव रूपं पश्यति, न पुनरयोग्यदेशावस्थितमिति, तत्र कियान् पुनश्चक्षुषो योग्यविषयः?, कियतो वा देशादागतं श्रोत्रादि शब्दादि गृह्णातीति, उच्यते, श्रोत्रं तावच्छब्दं जघन्यतः खल्वङ्गुलासंख्येयमात्राद्देशात्, उत्कृष्टतस्तु द्वादशभ्यो योजनेभ्य इति, चक्षुरिन्द्रियमपि रूपं जघन्येनाङ्गुलसंख्येयभागमात्रावस्थितं पश्यति, उत्कृष्टतस्तु योजनशतसहस्राभ्यधिकव्यवस्थितं इति, घ्राणरसनस्पर्शनानि तु जघन्येनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रा- ॥ १२ ॥

१ श्रोत्रापेक्षयाऽपि २ पुनःशब्देन विशेषितेऽस्पृष्टत्वे या भणितिस्तदपेक्षया प्राक् प्रश्नः, समग्रगाथापेक्षया विषयक्षेत्रपरिमाणज्ञानार्थश्च द्वितीय इति.
* वा. † वेति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	

देशादागतं गन्धादिकं गृह्णन्ति, उत्कृष्टतस्तु नवभ्यो योजनेभ्य इति। आत्माङ्गुलनिष्पन्नं चेह योजनं ग्राह्यमिति। आह–उक्तप्रमाणं विषयमुलङ्घ्य कस्माच्चक्षुरादीनि रूपादिकमर्थं न गृह्णन्तीति, उच्यते, सामर्थ्याभावात्, द्वादशभ्यो नवभ्यश्च योजनेभ्यः परतः समागतानां शब्दादिद्रव्याणां तथाविधपरिणामाभावाच्च, मनसस्तु न क्षेत्रतो विषयपरिमाणमस्ति, पुद्गलमात्रनिबन्धनाभावात्, इह यत् पुद्गलमात्रनिबन्धनियतं न भवति, न तस्य विषयपरिमाणमस्ति, यथा केवलज्ञानस्य, यस्य च विषयपरिमाणमस्ति, तत्पुद्गलमात्रनिबन्धनियतं दृष्टं, यथाऽवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं वेति गाथासमासार्थः ॥

साम्प्रतं यदुक्तमासीत् यथा "नयनमनसोरप्राप्तकारित्वं 'पुट्ठं सुणेइ सद्दं' इत्यत्र वक्ष्यामः, तदुच्यते, नयनं योग्यदेशावस्थिताप्राप्तविषयपरिच्छेदकं, प्राप्तिनिबन्धनतत्कृतानुग्रहोपघातशून्यत्वात्, मनोवत्, स्पर्शनेन्द्रियं विपक्ष इति। आह—जलघृतवनस्पत्यालोकनेष्वनुग्रहसद्भावात् सूर्याद्यालोकनेषु चोपघातसद्भावात् असिद्धो हेतुः, मनसोऽपि प्राप्तविषयपरिच्छेदकत्वात्साध्यविकलो दृष्टान्तः, तथा च लोके वक्तारो भवन्ति–"अमुत्र मे गतं मनः" इति, अत्रोच्यते, प्राप्तिनिबन्धनाख्यहेतुविशेषणार्थनिराकृतत्वाद् अस्याक्षेपस्येत्यदोषः। किं च–यदि हि प्राप्तिनिबन्धनौ विषयकृतावनुग्रहोपघातौ स्यातां, एवं तर्हि अग्निशूल[†]जलाद्यालोकनेषु दाहभे[‡]दक्लेदादयः स्युरिति। किं च—प्राप्तविषयपरिच्छेदकत्वे सति अक्षिअञ्जनमलशलाकादिकमपि गृह्णीयात्। आह—नायना मरीचयो निर्गत्य तमर्थं गृह्णन्ति, ततश्च तेषां तैजसत्वात्

१ सर्वेन्द्रियापेक्षया. २ प्राप्यकारीन्द्रियचतुष्कापेक्षया. ३ क्षेत्रेति. ४ विषयेति. ५ विप्रकृष्टे कस्मिंश्चिन्निर्दिश्यमाने स्थले इति. ६ नयनमरीचीनामेव निर्गमात् चक्षुषश्चानिर्गमात्. * निबन्धन. १-२-३-४ + निबन्धन. १-२-३-४ † जलशूला. ‡ क्लेदभेदा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ १३ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

सूक्ष्मत्वाच्चानलादिसंपर्के सत्यपि दाहाद्यभाव इति, अत्रोच्यते, प्राक् प्रतिज्ञातयोरनुग्रहोपघातयोरप्यभावप्रसङ्गाद् अयुक्तमेतत्, तदस्तित्वस्य उपपत्त्या ग्रहीतुमशक्यत्वाच्च। व्यवहितार्थानुपलब्ध्या तदस्तित्वावसाय इति चेत्, न, तत्रापि तदुपलब्धौ क्षयोपशमाभावात् व्यवहितार्थानुपलब्धिसिद्धेः, आगममात्रमेवैतत् इति चेत्, न, युक्तिरप्यस्ति, आवरणाभावेऽपि परमाण्वादौ दर्शनाभावः, स च तद्विधक्षयोपशमकृतः, यच्चोक्तं–'साध्यविकलो दृष्टान्त' इति, तदप्ययुक्तं, ज्ञेयमनसोः संपर्काभावात्, अन्यथा हि सलिलकर्पूरादिचिन्तनादनुगृह्येत, वह्निशस्त्रादिचिन्तनाच्चोपहन्येत, न चानुगृह्यते उपहन्यते †वेति। आह—मनसोऽनिष्टविषयचिन्तनातिशोकात् दौर्बल्यं आर्त्तध्या†नादुरोऽभिघातश्च उपलभ्यते, तथेष्टविषयचिन्तनात्प्रमोदः, तस्मात्प्राप्तकारिता तस्येति, एतदप्ययुक्तं, द्रव्यमनसा अनिष्टेष्टपुद्गलोपचयलक्षणेन सकर्मकस्य जन्तोरनिष्टेष्टाहारेणेवोपघातानुग्रहकरणात्कथं प्रा‡प्तविषयतेति। किं च—द्रव्यमनो वा बहिः नि§स्सरेत्, मनःपरिणामपरिणतं जीवाख्यं भावमनो वा?, न तावद्भावमनः, तस्य शरीरमात्रत्वात्, सर्वगतत्वे च नित्यत्वात् बन्धमोक्षाद्यभावप्रसङ्गः। अथ द्रव्यमनः, तदप्ययुक्तं, यस्मान्निर्गतमपि सत् अकिञ्चित्करं तत्, अज्ञत्वात्, उपलवत्। आह—करणत्वाद्द्रव्यमनसस्तेन प्रदीपेनेव प्रकाशितमर्थमात्मा गृह्णातीत्युच्यते, न, यस्मात् शरीरस्थेनैवानेन जानीते, न बहिर्गतेन, अन्तःकरणत्वात्, ¶इह यदात्म-

१ सुवर्णादीनां भेदादिभावात् तैजसत्वेऽपि आह—सूक्ष्मत्वाच्चेति. २ शूलजलादिः. ३ प्राप्तिनिबन्धनेत्यादिहेतोरसिद्धतोद्भावने. ४ नायनमरीचीनां. ५ अयुक्तमेतदिति संटङ्कः ६ शरीरप्रमाणत्वात् विहाय तत्र तदवस्थानमित्यर्थः. ७ आकाशादिवत्. ८ यमनियमोच्छेदप्रसङ्गः. ९ द्रव्यमनसा. * त्रमेतत् ४. + वेति. † अति० १–२–३. अर्त्ति० ४. ‡ प्राप्ति० ५–६. § श्चरेत् ५–६. ¶ नास्तीदम् ५–६.

॥ १३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नोऽन्तःकरणं स तेन शरीरस्थेनैव उपलभते, यथा स्पर्शनेन, प्रदीपस्तु नान्तःकरणमात्मनः, तस्माद् दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यमित्यलं विस्तरेण, प्रकृतं प्रस्तुम इति गाथार्थः ॥ ५ ॥

किं च प्रकृतं ?, स्पृष्टं शृणोति शब्दमित्यादि, अत्र किं शब्दप्रयोगोत्सृष्टान्येव केवलानि शब्दद्रव्याणि गृह्णाति ? उत अन्यान्येव तद्भावितानि ? आहोस्विन्मिश्राणि इति चोदकाभिप्रायमाशङ्क्य, न तावत्केवलानि, तेषां वासकत्वात्, तद्योग्यद्रव्याकुलत्वाच्च लोकस्य, किन्तु मिश्राणि तद्वासितानि वा गृह्णाति इत्यमुमर्थमभिधित्सुराह—

भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसयं सुणई । वीसेढी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ६ ॥

व्याख्या—भाष्यत इति भाषा, वक्त्रा शब्दतयोत्सृज्यमाना द्रव्यसंहतिरित्यर्थः, तस्याः समश्रेणयो भाषासमश्रेणयः, समग्रहणं विश्रेणिव्युदासार्थं, इह श्रेणयः क्षेत्रप्रदेशपङ्क्तयोऽभिधीयन्ते, ताश्च सर्वस्यैव भाषमाणस्य षट्सु दिक्षु विद्यन्ते, यासूत्सृष्टा सती भाषाऽऽद्यसमय एव लोकान्तमनुधावतीति, ता इतो भाषासमश्रेणीतः, इतो गतः प्राप्तः स्थित इत्यनर्थान्तरम्, एतदुक्तं भवति—भाषासमश्रेणिव्यवस्थित इति । शब्द्यतेऽनेनेति शब्दः—भाषात्वेन परिणतः पुद्गलराशिस्तं शब्दं 'यं' पुरुषाश्वादिसंबन्धिनं शृणोति गृह्णात्युपलभत इति पर्यायाः, यत्तदोर्नित्यसंबन्धात्तं मिश्रं शृणोति, एतदुक्तं भवति—व्युत्सृष्टद्रव्यभावितापान्तरालस्थशब्दद्रव्यमिश्रमिति । विश्रेणिं पुनः इत इति वर्त्तते, ततश्चायमर्थो भवति—विश्रेणिव्यवस्थितः पुनः श्रोता 'शब्दं' इति, पुनः शब्दग्रहणं पराघातवासितद्रव्याणामपि तथाविधशब्दपरिणाम-

१ भाषावर्गणाद्रव्येति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ख्यापनार्थं, शृणोति 'नियमात्' नियमेन पराघाते सति यानि शब्दद्रव्याणि उत्सृष्टाभिघातवासितानि तान्येव, न पुनरुत्सृष्टानीति भावार्थः । कुतः ?–तेषामनुश्रेणिगमनात् प्रतीघाताभावाच्च, अथवा विश्रेणिस्थित एव विश्रेणिरभिधीयते, पदे॑ऽपि पदावयवप्रयोगदर्शनात् 'भीमसेनः सेनः सत्यभामा भामा' इतिगाथार्थः ॥ ६ ॥ केन पुनर्योगेन एषां वाग्द्रव्याणां ग्रहणमुत्सर्गो वा कथं वेत्येतदाशङ्क्य गुरुराह—

गिण्हइ य काइएणं, निस्सरइ तह वाइएण जोएणं । एगन्तरं च गिण्हइ, णिसिरइ एगंतरं चेव ॥ ७ ॥

व्याख्या—तत्र कायेन निर्वृत्तः कायिकः तेन कायिकेन योगेन, योगो व्यापारः कर्म क्रियेत्यनर्थान्तरं, सर्व एव हि वक्ता कायक्रियया शब्दद्रव्याणि गृह्णाति, चशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चाप्यवधारणे, तस्य च व्यवहितः संबन्धः, गृह्णाति कायिकेनैव, निसृजत्युत्सृजति मुञ्चतीति पर्यायाः,तथेत्यानन्तयार्थः, उक्तिर्वाक् वाचा निर्वृत्तो वाचिकस्तेन वाचिकेन योगेन। कथं गृह्णाति निसृजतीति वा ? किमनुसमयं उत अन्यथेत्याशङ्कासंभवे सति शिष्यानुग्रहार्थमाह—एकान्तरमेव गृह्णाति, निसृजति एकान्तरं चैव, अयमत्र भावार्थः–प्रतिसमयं गृह्णाति मुञ्चति चेति, कथम् ?, यथा ग्रामादन्यो ग्रामो ग्रामान्तरं, पुरुषाद्वा पुरुषोऽनन्तरोऽपि सन्निति, एवमेकैकस्मात्समयाद् एकैक एव एकान्तरोऽनन्तरसमय एवेत्यर्थः । अयं गाथासमुदा- ॥ १४ ॥
यार्थः। अत्र कश्चिदाह—ननु कायिकेनैव गृह्णातीत्येतद् युक्तं, तस्यात्मव्यापाररूपत्वात्, निसृजति तु कथं वाचिकेन ?, को

१ 'ते लुग्वा' इति सूत्रेण पूर्वस्योत्तरस्य वा लोपात् पदावयवप्रयोगेण सम्पूर्णपदोपस्थित्या तदवबोधः, एवं च समस्तस्थल एवायं न तु व्यस्तस्थले.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

वाऽर्थं वाग्योग इति । किं वागेव व्यापारापन्ना आहोश्वित् तन्निसर्गहेतुः कायसंरम्भ इति ?, यदि पूर्वो विकल्पः, स खल्वयुक्तः, तस्या योगत्वानुपपत्तेः, तथा च न वाक्केवला जीवव्यापारः, तस्याः पुद्गलमात्रपरिणामरूपत्वात्, रसादिवत्, योगश्चात्मनः शरीरवतो व्यापार इति, न च तया भाषया निसृज्यते[1], किन्तु सैव निसृज्यत इत्युक्तं, अथ द्वितीयः पक्षः, ततः स कायव्यापार एवेति[2]कृत्वा कायिकेनैव निसृजतीत्यापन्नं, अनिष्टं चैतत् इति, अत्रोच्यते, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह तनुयोगविशेष एव वाग्योगो मनोयोगश्चेति, कायव्यापारशून्यस्य सिद्धवत् तदभावप्रसङ्गात्, ततश्चात्मनः शरीरव्यापारे सति येन[3] शब्दद्रव्योपादानं करोति स कायिकः, येन तु कायसंरम्भेण तान्येव मुञ्चति स वाचिक इति, तथा येन मनोद्रव्याणि मन्यते स मानस इति, कायव्यापार एवायं व्यवहारार्थं त्रिधा विभक्त इत्यतोऽदोषः । तथा 'एकान्तरं च गृह्णाति, निसृजत्येकान्तरं चैव' इत्यत्र केचिदेकैकव्यवहितं एकान्तरमिति मन्यन्ते, तेषां च विच्छिन्नरत्नावलीकल्पो ध्वनिरापद्यते, सूत्रविरोधश्च, यत उक्तं–"अणुसमयमविरहियं निरन्तरं गिण्हइ" त्ति । आह–यत्पुनरिदमुक्तं "संतरं निसरति, नो निरंतरं, एगेणं समएणं गिण्हति, एगेणं णिसरती"त्यादि, तत्कथं नीयते ?, उच्यते, इह ग्रहणापेक्षया निसर्गः सान्तरोऽभिहितः, एतदुक्तं भवति–[5]यथा आदिसमयादारभ्य प्रतिसमयं ग्रहणं, नैवं निसर्ग इति, यस्मादाद्यसमये नास्तीति[6], ग्रहणमपि निसर्गापेक्षया सान्तरमापद्यत इति चेत्[7], न, तस्य[8] स्वतन्त्रत्वात्, निसर्गस्य च ग्रहणपरतन्त्रत्वात्, यतो नागृहीतं निसृ-

१ शब्दद्रव्यसंहतिरूपा भाषा. २ इतिहेतोः. ३ व्यापारविशेषेण. ४ समयस्य सूक्ष्मतमत्वेन आह–सूत्रेत्यादि ५ व्याख्यायत इत्यर्थः, भवद्व्याख्यानेन विरुद्धतमत्वात्. ६ पूर्वमगृहीतत्वात् गृहीतानां च द्वितीयसमये निसर्गात्. ७ गृहीतानां विना निसर्गं ग्रहणाभावात् सान्तरता यथा तथा विसर्जने एव ग्रहणाद्ग्रहणस्यापि सान्तरतेत्यर्थः. ८ ग्रहणस्य–पूर्वसमयेऽनिसर्गेऽपि ग्रहणादित्यर्थः, निसर्जनं तु गृहीतानामेवेति तस्य परतन्त्रत्वं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ १५ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

ज्यत इति, अतः पूर्वपूर्वग्रहणसमयापेक्षया सान्तरव्यपदेश इति । तथा एकेन समयेन गृह्णाति एकेन निसृजति, किमुक्तं भवति ?–ग्रहणसमयानन्तरेण सर्वाण्येव तत्समयगृहीतानि निसृजतीति । अथवा एकसमयेन गृह्णात्येव, आद्येन, न निसृजति, तथा एकेन निसृजत्येव, चरमेण, न गृह्णाति, अपान्तरालसमयेषु तु ग्रहणनिसर्गावर्थगम्यौ इत्यतोऽविरोध इति । आह—ग्रहणनिसर्गप्रयत्नौ आत्मनः परस्परविरोधिनौ एकस्मिन्समये कथं स्यातामिति, अत्रोच्यते, नायं दोषः, एकसमये कर्मादाननिसर्गक्रियावत् तथोत्पादव्ययक्रियावत् तथाऽङ्गुल्याकाशदेशसंयोगविभागक्रियावच्च क्रियाद्वयस्वभावोपपत्तेरिति गाथार्थः ॥ ७ ॥

यदुक्तं–'गृह्णाति कायिकेन' इत्यादि, तत्र कायिको योगः पञ्चप्रकारः, औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणभेदभिन्नत्वात्तस्य, ततश्च किं पञ्चप्रकारेणापि कायिकेन गृह्णाति आहोस्विदन्यथा इत्याशङ्कासंभवे सति तदपनोदायेदमाह—

तिविहंमि सरीरंमि, जीवपएसा हवन्ति जीवस्स । जेहि उ गिण्हइ गहणं, तो भासइ भासओ भासं ॥ ८ ॥

व्याख्या—'त्रिविधे' त्रिप्रकारे, शीर्यत इति शरीरं तस्मिन् , औदारिकादीनामन्यतम इत्यर्थः, जीवतीति जीवः तस्य प्रदेशाः जीवप्रदेशाः, भवन्ति, एतावत्युच्यमाने 'भिक्षोः पात्रं' इत्यादौ षष्ठ्या भेदेऽपि दर्शनात् मा भूद् भिन्नप्रदेशत-

॥ १५ ॥

---

१ निसर्गात्. २ समयेन. ३ प्रागिति. ४ अर्थापत्तितो ज्ञेयौ, अन्यथाऽऽद्यान्त्यसमयग्रहणनिसर्गावधारणानुपपत्तेः. ५ मनोवाक्काययोगानामात्मव्यापाररूपत्वात् , आत्मनश्चैकत्वात् , एकसमये परस्परविरुद्धक्रियाकरणानुपपत्तिरित्यर्थः. ६ यावदन्तिमं गुणस्थानं भाव्येव बन्धः कर्मणां, तद्विपाकवेदतश्च निसर्गः तेषामनुसमयं, आगमोपपन्ने च तस्मिन्नविरोधो यथा तथाऽत्रापीत्यर्थः,. * प्रदर्शनात्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

याऽप्रदेशात्मसंप्रत्यय इत्यत आह—जीवस्य आत्मभूतां भवन्ति, ततश्चानेन निष्प्रदेशजीववादिनिराकरणमाह, सति निष्प्रदेशत्वे करचरणोरुग्रीवाद्यवयवसंसर्गाभावः, तदेकत्वापत्तेः, कथम् ?—करादिसंयुक्तजीवप्रदेशस्य उत्तमाङ्गादिसंबद्धात्मप्रदेशेभ्यो भेदाभेदविकल्पानुपपत्तेरिति । यैः किं करोतीत्याह—'यैस्तु गृह्णाति' तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ? —न सर्वदैव गृह्णाति, किन्तु तत्परिणामे सति, किं ?—गृह्यत इति ग्रहणं, ग्रहणमिति "कृत्यल्युटो बहुलं" (पा०३-३-११३) इतिवचनात्कर्मकारकं, शब्दद्रव्यनिवहमित्यर्थः, 'ततो' गृहीत्वा 'भाषते' वक्ति, भाषत इति भाषकः क्रियाऽऽविष्ट इत्यर्थः, अनेन निष्क्रियात्मवादव्यवच्छेदमाह, सति तस्मिन्निष्क्रियत्वात् अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपत्वाद्भाषणाभावप्रसङ्गः, काम् ?—भाष्यत इति भाषा तां भाषां । आह–'ततो भाषते भाषक' इत्यनेनैव गतार्थत्वाद्भाषाग्रहणमतिरिच्यते इति, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह भाष्यमाणैव भाषोच्यते, न पूर्वं नापि पश्चाद्, इत्यस्यार्थस्य ख्यापनाय भाषाग्रहणमदुष्टमेवेति गाथार्थः ॥८॥

यदुक्तं—'त्रिविधे शरीरे' इत्यादि, तत्र न ज्ञायते कतमत् त्रैविध्यमिति, अतस्तदभिधातुकाम आह—

ओरालियवेउव्वियआहारो गिण्हई मुयइ भासं । सच्चं मोसं सच्चामोसं च असच्चमोसं च ॥ ९ ॥

---

१ अभेदषष्ठ्या तत्रस्थाः प्रदेशा जीवाभिन्नाः, एतदेव च जीवस्येत्युच्चारणे फलं, अन्यथा 'जीवप्रदेशा' इत्यनेन संबद्धार्थावगमात्. २ नैयायिकवैशेषिकादयः, तन्मते हि नित्यं निरवयवमेव, सावयवत्वे हि कार्यत्वापत्त्या अनित्यत्वापत्तिः, घटादीनामिव । ३ करचरणादयो हि सावयवा इत्युभयसंमतं, आत्मा च तैः प्रत्यवयवमेव संयुज्यते, संयोगश्च स्यात्तदा यदि स्यादात्मा सावयवः, प्रतिप्रदेशं च संयोगवान्, ततो निष्प्रदेशे करचरणाद्यवयवसंयोगो न स्यादात्मनः, संसर्गे हि निष्प्रदेशस्यात्मनः करादिभिः, करादीनामपि निष्प्रदेशैकात्मनः प्रत्यवयवेन संसर्गात्स्वरूपापत्त्या निष्प्रदेशत्वेनैकत्वापत्तिः. ४ भेदे सावयवत्वात्प्रतिज्ञातहानिः, अभेदे भिन्नावयवसंयोगानुपपत्तेस्तदेकतरेण सात्मकता न सर्वैरित्यनिष्टिः. ५ जीवप्रदेशैः. ६ भाषणपरिणामे. ७ निष्क्रिय आत्मनि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ १६ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

व्याख्या—तत्र औदारिकवानौदारिकः, इहौदारिकशब्देनाभेदोपचाराद् मतुब्लोपाद्वा औदारिकशरीरिणो ग्रहणमिति, एवं वैक्रियवान्वैक्रियः, आहारकवानाहारक इति । असौ औदारिकादिः, 'गृह्णाति' आदत्ते 'मुञ्चति' निसृजति च, भाष्यत इति भाषा तां भाषां, शब्दप्रायोग्यतया तद्भावपरिणतद्रव्यसंहतिमित्यर्थः।किंविशिष्टामित्याह–सतां हिता सत्या, सन्तो मुनयस्तदुपकारिणी सत्येति, अथवा सन्तो मूलोत्तरगुणास्तदनुपघातिनी सत्या, अथवा सन्तः पदार्था जीवादयः तद्धिता तत्प्रत्यायनफला जनपदसत्यादिभेदा सत्येति, तां सत्यां, सत्याया विपरीतरूपा क्रोधाश्रितादिभेदा मृषेति तां, तथा तदुभयस्वभावा वस्त्वेकदेशप्रत्यायनफला उत्पन्नमिश्रादिभेदा सत्यामृषेति तां, तथा तिसृष्वप्यनधिकृता शब्दमात्रस्वभावाऽऽमन्त्रण्यादिभेदा असत्यामृषेति तां च, चशब्दः समुच्चयार्थः,आसां च स्वरूपमुदाहरणयुक्तानां सूत्रादवसेयमिति गाथार्थः ॥९॥

आह—'औदारिकादिः गृह्णाति मुञ्चति च भाषां' इत्युक्तं, सा हि मुक्ता उत्कृष्टतः कियत्क्षेत्रं व्याप्नोतीति, उच्यते,

---

१ प्रज्ञापनायाः, यतस्तत्र भाषालक्षणं पदमेकादशं "जणवय १ सम्मय २ ठवणा ३ नामे ४ रूवे ५ पडुच्च ६ सच्चे य । ववहार ७ भाव ८ जोगे ९ दसमे ओवम्मसच्चे १० य ॥ १ ॥ कोहे १ माणे २ माया ३ लोभे ४ पेज्जे ५ तहेव दोसे ६ य । हासे ७ भए ८ य खाइय ९ उवघाइयणिस्सिया १० दस ॥ २ ॥ आमंतणी १ आणवणी २ जायणी ३ तह पुच्छणी ४ य पण्णवणी ५ । पच्चक्खाणी ६ भासा, भासा इच्छाणुलोमा ७ य ॥ ३ ॥ अणभिग्गहिया भासा ८, भासा अ अभिग्गहंमि ९ बोद्धव्वा । संसयकरणी भासा १० वोयड ११ अव्वोयडा १२ चेव ॥ ४ ॥ इति सत्यासत्यासत्यामृषास्वरूपं, सत्यमृषा तु 'उप्पण्णमीसिया १ विगयमीसिया २ उप्पण्णविगयमीसिआ ३ जीवमिस्सिया ४ अजीवमिस्सिआ ५ जीवाजीवमिस्सिआ ६ अणंतमिस्सिआ ७ परित्तमिस्सिआ ८ अद्धामिस्सिआ ९ अद्धद्धामीसिआ १०.

॥ १६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

समस्तमेव लोकमिति, आह—यद्येवं 'कइ०' त्तिगाहा, अयं सूत्रतोऽभिसंबन्धः, अथवाऽर्थतः प्रतिपाद्यते, आह—द्वादशभ्यो योजनेभ्यः परतो न शृणोति शब्दं, मन्दपरिणामत्वात्तद्रव्याणामित्युक्तं, तत्र किं परतोऽपि द्रव्याणामागतिरस्ति ?, यथा च विषयाभ्यन्तरे नैरन्तर्येण तद्वासनासामर्थ्यं, एवं बहिरप्यस्ति उत नेति, उच्यते, अस्ति, केषाञ्चित् कृत्स्नलोकव्याप्तेः, आह—यद्येवं —

कइहि समएहि लोगो, भासाइ निरन्तरं तु होइ फुडो । लोगस्स य कइभागे, कइभागो होइ भासाए ॥ १० ॥

व्याख्या—'कतिभिः समयैः' 'लोकः' लोक्यत इति लोकः चतुर्दशरज्ज्वात्मकः क्षेत्रलोकः परिगृह्यते, भाषया निरन्तरमेव भवति स्पृष्टः व्याप्तः पूर्ण इत्यनर्थान्तरं, लोकस्य च कतिभागे कतिभागो भवति भाषायाः ?, ॥ १० ॥ अत्रोच्यते—

चउहि समएहि लोगो, भासाइ निरंतरं तु होइ फुडो । लोगस्स य चरमंते, चरमंतो होइ भासाए ॥ ११ ॥

व्याख्या—चतुर्भिः समयैर्लोको भाषया निरन्तरमेव भवति स्पृष्टः, आह—किं सर्वयैव भाषया उत विशिष्टयैवेति, उच्यते, विशिष्टया, कथम् ?—इह कश्चिन्मन्दप्रयत्नो वक्ता भवति, स ह्यभिन्नान्येव शब्दद्रव्याणि विसृजति, तानि च

---

१ पूर्वसूत्रे 'ओरालियवेउब्विये' त्यादिप्रतिपादनात्,. २ 'भासासमसेढीओ' इत्यादौ श्रोत्रेन्द्रियादीनां द्वादशयोजनादिरूपस्य विषयस्य प्रतिपादनात् वृत्तिकृता. ३ मन्दपरिणामलक्षणं विशेषहेतुं श्रुत्वा द्रव्यगतौ प्रश्नः. ४ द्वादशसु योजनेषु. ५ विषयकथनात् शब्दद्रव्याणां वासकत्वात् वास्यैः पूर्णत्वाच्च लोकस्येति वा. ६ श्रोत्रेन्द्रियाग्राह्यत्वेऽनुमानज्ञापनाय केषाञ्चिदित्यादि. ७ शब्दद्रव्याणां केषाञ्चिल्लोकव्याप्तिप्रतिपत्तौ. ८ न तु पञ्चास्तिकायरूपो द्रव्यक्षेत्रादिरूपो वा. ९ परमाणोः सप्तप्रदेशा यथा स्पर्शना तथा नात्रेत्यनर्थान्तरदर्शनं. * सर्वयैव १-३-५-६.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

विसृष्टानि असंख्येयात्मकत्वात् परिस्थूलत्वाच्च विभिद्यन्ते, भिद्यमानानि च संख्येयानि योजनानि गत्वा शब्दपरिणामत्यागमेव कुर्वन्ति, कश्चित्तु महाप्रयत्नः, स खलु आदाननिसर्गप्रयत्नाभ्यां भित्त्वैव विसृजति, तानि च सूक्ष्मत्वाद्बहुत्वाच्च अनन्तगुणवृद्ध्या वर्धमानानि षट्सु दिक्षु लोकान्तमाप्नुवन्ति, अन्यानि च तत्पराघातवासितानि वासनाविशेषात् समस्तं लोकमापूरयन्ति, इह च चतुःसमयग्रहणात् त्रिपञ्चसमयग्रहणमपि प्रत्येतव्यं, तुलादिमध्यग्रहणवत्, तत्र कथं पुनस्त्रिभिः समयैः लोको भाषया निरन्तरमेव भवति स्पृष्ट इति ?, उच्यते, लोकमध्यस्थवक्तृपुरुषनिसृष्टानि, यतस्तानि प्रथमसमय एव षट्सु दिक्षु लोकान्तमनुधावन्ति, जीवसूक्ष्मपुद्गलयोः 'अनुश्रेणि गतिः' (तत्त्वार्थ० अ० २ सूत्र २७) इति वचनात्, द्वितीयसमये तु त एव हि षट् दण्डाश्चतुर्दिशमेकैकशो विवर्धमानाः षट् मन्थानो भवन्ति, तृतीयसमये तु पृथक् पृथक् तदन्तरालपूरणात् पूर्णो भवति लोक इति, एवं त्रिभिः समयैर्भाषया लोकः स्पृष्टो भवति, यदा तु लोकान्तस्थितो वा भाषको वक्ति, चतसृणां दिशामन्यतमस्यां दिशि नाड्या बहिरवस्थितस्तदा चतुर्भिः समयैरापूर्यत इति, कथम् ?, एकसमयेन अन्तर्नाडीमनुप्रविशति, त्रयोऽन्ये पूर्ववद्द्रष्टव्याः, यदा तु विदिग्व्यवस्थितो वक्ति, तदा पुद्गलानामनुश्रेणिगमनात् समयद्वयेनान्तर्नाडीमनुप्रविशति, शेषसमयत्रयं पूर्ववद्द्रष्टव्यमित्येवं पञ्चभिः समयैरापूर्यत इति । अन्ये तु जैनस-

---

१ असंख्येयाः स्कन्धा न तु परमाणवोऽसंख्येयाः. २ तीव्रप्रयत्नवक्तृविसृष्टद्रव्यापेक्षया. ३ ज्ञायतेऽनेन त्रसाणां गतिर्व्यवस्थितिश्च नाड्या बहिः, जन्माद्यभावश्च नरलोकरीत्या नराणामिव न तत्रेति चानुमीयते. ४ तथास्वाभाव्यादेव अनुकूलसामग्र्यभावाद्वा बहिर्नाड्या न श्रेण्यारम्भ इति. ५ व्यावहारिकी विदिगत्र, अन्यथा व्यवस्थानाभावात्. * स्थूरत्वाच्च १-३-५-६. + स्यां वा १-२-३-४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मुद्घातगत्या लोकापूरणमिच्छन्ति, तेषां चाद्यसमये भाषायाः खलु ऊर्ध्वाधोगमनात् शेषदिक्षु न† मिश्रशब्दश्रवणसंभवः, उक्तं चाविशेषेण—"भासासमसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसयं सुणइ" (६) त्ति। अथ मतं—'व्याख्यानतोऽर्थप्रतिपत्तिः' इति न्यायाद्दण्ड एव मिश्रश्रवणं भविष्यति, न शेषदिक्ष्विति, ततश्चादोष इति, अत्रोच्यते, एवमपि त्रिभिः समयैर्लोकापूरणमापद्यते, न चतुःसमयसंभवोऽस्ति, कथम्?—प्रथमसमयानन्तरमेव शेषदिक्षु पराघातद्रव्यसद्भावात् द्वितीयसमय एव मन्थानसिद्धेः, तृतीये च तदन्तरालापूरणात् इति। आह—जैनसमुद्घातवच्चतुर्भिरेवापूरणं भविष्यतीति को दोष इति, अत्रोच्यते, न, सिद्धान्तापरिज्ञानात्, इह जैनसमुद्घाते स्वरूपेणापूरणात्, न तत्र पराघातद्रव्यसंभवोऽस्ति, सकर्मकजीवव्यापारत्वात्तस्य, ततश्च कपाटनिर्वृत्तिरेव तत्र द्वितीयसमय इति, शब्दद्रव्याणां त्वनुश्रेणिगमनात्पराघातद्रव्यान्तरवासकस्वभावत्वाच्च द्वितीयसमय एव मन्थानापत्तिरिति, अचित्तमहास्कन्धोऽपि वैश्रसिकत्वात् पराघाताभावाच्च चतुर्भिरेव पूरयति, न चैवं शब्द इति, सर्वत्रानुश्रेणिगमनात्, इत्यलमतिविस्तरेण, गमनिकामात्रमेवैतत् प्रस्तुतमिति। यदुक्तं-'लोकस्य च कतिभागे कतिभागो भवति भाषायाः' इति, तत्रेदमुच्यते—'लोकस्य च' क्षेत्रगणितमपेक्ष्य 'चरमान्ते' असंख्येयभागे 'चरमान्तः' असंख्येयभागो भवति 'भाषायाः' समग्रलोकव्यापिन्याः इति गाथार्थः ॥ ११ ॥

१ केवलिसमुद्घातमर्यादया. २ ऊर्ध्वाधोदण्डभागस्थितश्रोतुः श्रुतेर्मिश्रशब्दस्य, चतुरङ्गुलादिमानो दण्डो वक्त्रानुसारेण. ३ वास्यद्रव्यसंभवः. ४ समुद्घातस्य. ५ वैश्रसिकत्वाभावात्तस्य पराघात (वास्य) द्रव्याभावरहितत्वाच्च. ६ ऊर्ध्वाधोदण्डभवनानन्तरं चतसृषु दिक्षु अनुश्रेणि गमनात् मन्थानसंपत्तिरित्यर्थः ७ क्षेत्रस्य आकाशस्य गणितं लोकप्रदेशद्वारा गणनमसंख्येयरूपं. † नेदम्. १ श्रवणासं०. * ना. + स्वभावाच्च ४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक- ॥ १८ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

'तत्त्व-भेद-पर्यायैर्व्याख्या' इति न्यायात् तत्त्वतो भेदतश्च मतिज्ञानस्वरूपमभिधाय इदानीं नानादेशजविनेयगणसुखप्रतिपत्तये तत्पर्यायशब्दान् अभिधित्सुराह—

ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा । सण्णा सई मई पण्णा, सव्वं आभिणिबोहियं ॥ १२ ॥

व्याख्या—'ईह चेष्टायां' ईहनमीहा सतामर्थानां अन्वयिनां व्यतिरेकिणां च पर्यालोचना इतियावत्, अपोहनं अपोहः निश्चय इत्यर्थः, विमर्शनं विमर्शः ईहाया उत्तरः, प्रायः शिरःकण्डूयनादयः पुरुषधर्मा घटन्ते इति संप्रत्ययो विमर्शः, तथा अन्वयधर्मान्वेषणा मार्गणा, चशब्दः समुच्चयार्थः, व्यतिरेकधर्मालोचना गवेषणा, तथा संज्ञानं संज्ञा, व्यञ्जनावग्रहोत्तरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः, स्मरणं स्मृतिः, पूर्वानुभूतार्थालम्बनः प्रत्ययः, मननं मतिः—कथञ्चिदर्थपरिच्छित्तावपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा बुद्धिरिति, तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा—विशिष्टक्षयोपशमजन्या प्रभूतवस्तुगतयथावस्थितधर्मालोचनरूपा मतिरित्यर्थः, सर्वमिदं 'आभिनिबोधिकं' मतिज्ञानमित्यर्थः, एवं किञ्चिद्भेदाद्भेदः प्रदर्शितः, तत्त्वतस्तु मतिवाचकाः सर्व एवैते पर्यायशब्दा इति गाथार्थः ॥ १२ ॥

तत्त्वभेदपर्यायैर्मतिज्ञानस्वरूपं व्याख्यायेदानीं नवभिरनुयोगद्वारैः पुनस्तद्रूपनिरूपणायेदमाह—

संतपय परूवणया दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य । कालो अ अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ॥ १३ ॥ ॥ १८ ॥

गइ[1] इंदिए[2] य काए[3], जोए[4] वेए[5] कसाय[6] लेसासु[7] । सम्मत्त[8]नाण[9]दंसण[10]संजय[11]उवओगे[12] आहारे[13] ॥ १४ ॥

१ "अत्थाणं ओग्गहणं" (गाथा ३) "उग्गह ईहावाओ य" (गाथा २) भेददर्शनद्वारा भेदलक्षणाख्यानद्वारा च. + ०लम्बनप्र० २-३-४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक-ज्ञानस्य पर्याया: एवं संतपदादि अनुयोगा:

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	

भासंगे[(१४)] परित्त[(१५)] पज्जत्त[(१६)] सुहुमे[(१७)] सण्णी[(१८)] य होइ भवं[(१९)] चरिमे[(२०)] ।आभिणिबोहिअनाणं,मग्गिज्जइ एसु ठाणेसु॥१५॥

व्याख्या—सच्च तत्पदं च सत्पदं तस्य प्ररूपणं सत्पदप्ररूपणं तस्य भावः सत्पदप्ररूपणता गत्यादिभिर्द्वारैराभिनिबोधिकस्य कर्त्तव्येति, अथवा सद्विषयं पदं सत्पदं, शेषं पूर्ववत्, आह—किमसत्पदस्यापि प्ररूपणा क्रियते ? येनेदमुच्यते 'सत्पदप्ररूपणेति,' क्रियत इत्याह खरविषाणादेरसत्पदस्यापीति, तस्मात् सद्ग्रहणमिति, अथवा सन्ति च तानि पदानि च सत्पदानि गत्यादीनि तैः प्ररूपणं सत्पदप्ररूपणं मतेरिति । तथा 'द्रव्यप्रमाणं' इति जीवद्रव्यप्रमाणं वक्तव्यं, एतदुक्तं भवति—एकस्मिन् समये कियन्तो मतिज्ञानं प्रतिपद्यन्त इति, सर्वे वा कियन्त इति, चः समुच्चये, 'क्षेत्रं' इति क्षेत्रं वक्तव्यं, कियति क्षेत्रे मतिज्ञानं संभवति, 'स्पर्शना च' वक्तव्या, कियत् क्षेत्रं मतिज्ञानिनः स्पृशन्ति, आह—क्षेत्रस्य स्पर्शनायाश्च कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, यत्रावगाहस्तत् क्षेत्रं, स्पर्शना तु तद्बाह्यतोऽपि भवति, अयं विशेष इति, चशब्दः पूर्ववत्, कालश्च वक्तव्यः, स्थित्यादि*कालः, अन्तरं च वक्तव्यं प्रतिपत्त्यादाविति, भागो वक्तव्यः, मतिज्ञानिनः शेषज्ञानिनां कतिभागे वर्त्तन्त इति, तथा भावो वक्तव्यः, कस्मिन् भावे मतिज्ञानिन इति, अल्पबहुत्वं च वक्तव्यं, आह–भागद्वारादेवायमर्थोऽवगतः, ततश्चालमनेनेति, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह मतिज्ञानिनामेव पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकापेक्षया अल्प-

१ पूर्वं हि पदस्य सत्त्वं अत्र तु वाच्यस्येति न संभवव्यभिचाराभावेन विशेषणानर्थक्यं. २ असदर्थविषयस्य. ३ वाच्यविचारणाप्रक्रमात्. ४ मतेर्गुणत्वात् जीवाभिन्नत्वाच्च. ५ जीवद्रव्यप्रमाणस्याप्रासङ्गिकत्वापत्तेः. ६ अभेदोपचारात्तद्वान्. ७ अपिनाऽवगाढक्षेत्रसमुच्चयः. ८ आदिना प्रतिपत्तिकालः सुषमादिः. ९ आदिना प्रतिपद्यमानतायाः, प्राप्तनाशोत्तरोत्पादान्तरालं प्रतिपत्त्यन्तरालं, तच्चान्तर्मुहूर्त्तादि वक्ष्यमाणं, उभयोः प्रतिपाद्यमानयोर्द्वितीयं, विरहकालोऽत्र समयादिः. * त्यादिः कालः १.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ १९ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

बहुत्वं वक्तव्यमिति समुदायार्थः । इदानीं प्रागुपन्यस्तगाथाद्वयेनाभिनिबोधिकस्य सत्पदप्ररूपणाद्वारावयवार्थः प्रतिपाद्यते, कथम् ?, अन्विष्यते 'आभिनिबोधिकज्ञानं किमस्ति नास्तीति,' अस्ति, यद्यस्ति क्व तत् ?, तत्र 'गताविति' गतिमङ्गीकृत्यालोच्यते, सा गतिश्चतुर्विधा–नारकतिर्यङ्नरामरभेदभिन्ना, तत्र चतुष्प्रकारायामपि गतौ आभिनिबोधिकज्ञानस्य पूर्वप्रतिपन्ना नियमतो विद्यन्ते, प्रतिपद्यमानास्तु विवक्षितकाले भाज्याः, कदाचिद्भवन्ति कदाचिन्नेति, तत्र प्रतिपद्यमाना अभिधीयन्ते ते ये तत्प्रथमतयाऽऽभिनिबोधिकं प्रतिपद्यन्ते, प्रथमसमय एव, शेषसमयेषु तु पूर्वप्रतिपन्ना एव भवन्ति १ । तथा 'इन्द्रियद्वारे' इन्द्रियाण्यङ्गीकृत्य मृग्यते, तत्र पञ्चेन्द्रियाः पूर्वप्रतिपन्नाः नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमानास्तु विकल्पनीया इति, द्वित्रिचतुरिन्द्रियास्तु पूर्वप्रतिपन्नाः संभवन्ति, न तु प्रतिपद्यमानाः, एकेन्द्रियास्तु उभयविकलाः २ । तथा 'काय इति' कायमङ्गीकृत्य विचार्यते, तत्र त्रसकाये पूर्वप्रतिपन्ना नियमतो विद्यन्ते, इतरे तु भाज्याः, शेषकायेषु च पृथिव्यादिषु उभयाभाव इति ३ । तथा 'योग इति' त्रिषु योगेषु समुदितेषु पञ्चेन्द्रियवद्वक्तव्यं, मनोरहितवाग्योगेषु विकलेन्द्रियवत्, केवलकाययोगे तूभयाभाव इति* ४ । तथा 'वेद इति' त्रिष्वपि वेदेषु विवक्षितकाले पूर्वप्रतिपन्ना अवश्यमेव सन्ति, इतरे

१ ज्ञानादावतिदेशसुगमत्वाय तिसृणां सहोपन्यासः, यद्वा 'आभिणिबोहियनाणं मग्गिज्जइ एसु ठाणेसु' त्तिवचनात् तिसृणां गाथानामेकवाक्यतेति सहोपन्यासः. २ द्वारगाथयोः द्वारेषु विंशतौ. ३ छद्मस्थप्ररूपकापेक्षया चेदं, सर्वज्ञानां तु निश्चिते एव प्रतिपद्यमानेतरे. ४ विवक्षितलब्ध्युपयोगस्थित्यपेक्षया, न त्वपूर्वोवाप्त्यपेक्षया. ५ स्थित्यपेक्षया. ६ लब्धिपर्याप्तानां, करणापर्याप्तावस्थायां भवान्तरासादितसासादनसम्यक्त्वसद्भावसंभवात्. ७ सहचरितेषु, प्रत्येकस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्. ८ विकलेषु सासादनाभ्युपगमेऽपि एकेन्द्रियेष्वनभ्युपगमात्तस्य. * नेदं ५–६.

॥ १९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तु भाज्या इति ५। तथा 'कषाय इति द्वारं' कषायाः क्रोधमानमायालोभाख्याः प्रत्येकमनन्तानुबन्धप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदभिन्ना इति, तत्राद्येषु अनन्तानुबन्धेषु[*] क्रोधादिषूभयाभाव इति, शेषेषु तु पञ्चेन्द्रियवद् योज्यम् ६। तथा 'लेश्यासु' चिन्त्यते, तत्र श्लेषयन्त्यात्मानमष्टविधेन कर्मणा इति लेश्याः—कायाद्यन्यतमयोगवतः कृष्णादिद्रव्यसंबन्धादात्मनः परिणामा इत्यर्थः, तत्रोपरितनीषु तिसृषु लेश्यासु पञ्चेन्द्रियवद्योजनीयं इति, आद्यासु तु पूर्वप्रतिपन्नाः संभवन्ति, नत्वितर इति ७। तथा 'सम्यक्त्वद्वारं' सम्यग्दृष्टिः किं पूर्वप्रतिपन्नः किं वा प्रतिपद्यमानक इति, अत्र व्यवहारनिश्चयाभ्यां विचार इति, तत्र व्यवहारनय आह—सम्यग्दृष्टिः पूर्वप्रतिपन्नो न प्रतिपद्यमानकः आभि[+]निबोधिकज्ञानलाभस्य, सम्यग्दर्शनमतिश्रुतानां युगपल्लाभात्, आभिनिबोधिकप्रतिपत्त्यनवस्थाप्रसङ्गाच्च। निश्चयनयस्त्वाह—सम्यग्दृष्टिः पूर्वप्रतिपन्नः प्रतिपद्यमानश्च आभिनिबोधिकज्ञान[†]लाभस्य, सम्यग्दर्शनसहायत्वात्, क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदात्, भेदे च क्रियाऽभावाविशेषात् पूर्ववद्वस्तु[‡]नोऽनुत्पत्तिप्रसङ्गात्, न चेत्थं तत्प्रतिपत्त्यनवस्थेति ८। तथा 'ज्ञानद्वारं' तत्र ज्ञानं पञ्चप्रकारं, मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलभेदभिन्नं इति, अत्रापि व्यवहारनिश्चयनयाभ्यां विचार इति, तत्र व्यवहारनयमतं—मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानिनः पूर्वप्रतिपन्ना न तु प्रतिपद्यमानका इति, मत्यादिलाभस्य सम्यग्दर्शनसहचरितत्वात्, केवली तु न पूर्वप्रतिपन्नो नापि प्रतिपद्यमानकः, तस्य क्षायोपशमिकज्ञानातीतत्वात्, तथा मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञान-

---

१ सास्वादनकालस्याल्पत्वादविवक्षेति मलधारिपादाः. २ शेषाणां पूर्वप्रतिपन्नत्वात् प्रतिपद्यमानत्वे भजना, पूर्वमवाप्याधुना तदुपयोगे तल्लब्धौ वा वर्त्तमाना अत्र प्रतिपन्नत्वेन ग्राह्या नतु प्रतिपद्य य उज्झितवन्तस्ते. * बन्धिषु ४. + नेदं १-३. † कलाभस्य १-३-५-६. ‡ वद्वस्तुतो० ५-६.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

वन्तस्तु विवक्षितकाले प्रतिपद्यमाना भवन्ति, न तु पूर्वप्रतिपन्ना इति । निश्चयनयमतं तु मतिश्रुतावधिज्ञानिनः पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमाना अपि सम्यग्दर्शनसहचरितत्वात् मत्यादिलाभस्य संभवन्तीति, क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदात्, मनःपर्यायज्ञानिनस्तु पूर्वप्रतिपन्ना एव, न प्रतिपद्यमानकाः, तस्य चँ भावयतेरेवोत्पत्तेः, केवलिनां तूभयाभाव इति । मत्याद्यज्ञानवन्तस्तु न पूर्वप्रतिपन्ना नापि प्रतिपद्यमानकाः, प्रतिपत्तिक्रियाकाले मत्याद्यज्ञानाभावात्, क्रियाकालनिष्ठाकालयोश्चाभेदात्, अज्ञानभावे च प्रतिपत्तिक्रियाऽभावात् ९ । इदानीं 'दर्शनद्वारं', तद्दर्शनं चतुर्विधं, चक्षुरचक्षुरवधिकेवलभेदभिन्नं, तत्र चक्षुर्दर्शनिनः अचक्षुर्दर्शनिनश्चे,किमुक्तं भवति ?–दर्शनलब्धिसम्पन्ना न तु दर्शनोपयोगिन इति 'सव्वाओ लद्धीओ सागारोवओगोवउत्तस्स उप्पंज्जइ' इति वचनात्, पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमानास्तु विवक्षितकाले भाज्याः, अवधिदर्शनिनस्तु पूर्वप्रतिपन्ना एवँ, न तु प्रतिपद्यमानकाः, केवलदर्शनिनस्तूभयविकलाँ इति १० । 'संयत इति द्वारं', संयतः पूर्वप्रतिपन्नो न प्रतिपद्यमान इति ११ । 'उपयोगद्वारं' स च द्विधा–साकारोऽनाकारश्च, तत्र साकारोपयोगिनः पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमानास्तु विवक्षितकाले भाज्या इति, अनाकारो-

---

१ विशेषेति. २ ज्ञानज्ञानिनोरभेदात् आभिनिबोधिकज्ञानवन्त इति बोध्यम्. ३ साकारानाकारयोः उपयोगयौगपद्याभावात् किञ्चित्यादि. ४ एतदुपयोगवन्तः, न चाहताऽत एव लब्धिचिन्ता पूर्ववत्. ५ इष्टावधारणार्थत्वादेवकारस्य प्रतिपद्यमानानां निषेधार्थैषः, नतु मिथ्यात्ववतां अवधिदर्शनव्यवच्छेदाय, यद्वा तद्वत्सु तद्वत्तामवश्यंभावात्. ६ साकारोपयोगोपयुक्तानामेव मतिज्ञानस्योत्पत्तेः ७ 'नहंमि उ छाउमत्थिए नाणे' इति सिद्धान्तमङ्गीकृत्य. * नास्तीदम् ५-६. + उत्पद्यन्ते १-२-३-५-६.

॥ २० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	

पयोगिनस्तु पूर्वप्रतिपन्ना एव न प्रतिपद्यमानकाः । १२ अधुना 'आहारकद्वारं', आहारकाः पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमानास्तु विकल्पनीया विवक्षितकाल इति, अनाहारकास्तु अपान्तरालगतौ पूर्वप्रतिपन्नाः संभवन्ति, न तु प्रतिपद्यमानका इति १३ । तथा 'भाषक इति द्वारं', तत्र भाषालब्धिसंपन्ना भाषकाः, ते* भाषमाणा अभाषमाणा वा पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमानास्तु विवक्षितकाले भजनीया इति, तल्लब्धिशून्याश्चोभयविकला इति १४ । 'परीत्त इति द्वारं', तत्र परीत्ताः प्रत्येकशरीरिणः, ते पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, प्रतिपद्यमानास्तु विवक्षितकाले भाज्या इति, साधारणास्तु उभयविकला इति १५ । 'पर्याप्तक इति द्वारं', तत्र षड्भिराहारादिपर्याप्तिभिर्ये[1] पर्याप्तास्ते पर्याप्तकाः, ते पूर्वप्रतिपन्ना नियमतो विद्यन्ते[2], विवक्षितकाले प्रतिपद्यमानास्तु भजनीया इति, अपर्याप्तकास्तु षट्पर्याप्त्यपेक्षया पूर्वप्रतिपन्नाः संभवन्ति, न त्वितरे[2] १६ । 'सूक्ष्म इति द्वारं', तत्र सूक्ष्माः खलूभयविकलाः, बादरास्तु पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, इतरे तु विवक्षितकाले भाज्या इति १७ । तथा 'संज्ञिद्वारं' तत्रेह दीर्घकालिक्युपदेशेन संज्ञिनः प्रतिगृह्यन्ते, ते च बादरवद्वक्तव्याः, असंज्ञिनस्तु पूर्वप्रतिपन्नाः संभवन्ति, न त्वितर इति १८ । 'भव इति द्वारं', तत्र भवसिद्धिकाः[3] संज्ञिवद्वक्तव्याः, अभवसिद्धिकास्तूभयशून्या इति १९ । 'चरम इति द्वारं', चरमो भवो भविष्यति यस्यासौ अभेदोपचाराच्चरम[4] इति, तत्र इत्थंभूताः चरमाः पूर्वप्रतिपन्ना नियमतः सन्ति, इतरे तु भाज्याः, अचरमास्तूभयविकलाः, उत्तरार्धं[5] तु व्याख्या-

१ संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां षण्णां पर्याप्तीनां संभवात् , तत्र चावश्यंभावात्तस्य. २ प्रतिपद्यमानकाः ३ भव्या इत्यर्थः ४ जातिभव्यव्यवच्छेदः फलं द्वारपार्थक्यस्य. ५ 'आभिणिबोहियनाणं मग्गिज्जइ एसु ठाणेसु' त्ति तृतीयगाथोत्तरार्धलक्षणं. * तेषां २.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक- ॥ २१ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

तमेव । कृता सत्पदप्ररूपणेति, साम्प्रतं आभिनिबोधिकजीवद्रव्यप्रमाणमुच्यते—तत्र प्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य विवक्षितकाले कदाचिद् भवन्ति कदाचिन्नेति, यदि भवन्ति जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा, उत्कृष्टतस्तु क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागप्रदेशराशितुल्या इति, पूर्वप्रतिपन्नास्तु जघन्यतः क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागप्रदेशराशिपरिमाणा एव, उत्कृष्टतस्तु एभ्यो विशेषाधिका इति । उक्तं द्रव्यप्रमाणं, इदानीं 'क्षेत्रद्वारं', तत्र नानाजीवान् एकजीवं चाङ्गीकृत्य क्षेत्रमुच्यते, तत्र सर्व एवाभिनिबोधिकज्ञानिनो लोकस्य असंख्येयभागे वर्त्तन्ते, एकजीवस्तु ईलिकागत्या गच्छन्नूर्ध्वं अनुत्तरसुरेषु सप्तसु चतुर्दशभागेषु वर्त्तते, तेभ्यो वाऽऽगच्छन्निति, अधस्तु षष्ठीं पृथ्वीं गच्छँस्ततो वा प्रत्यागच्छन् पञ्चसु सप्तभागेषु इति, नातः परमधः क्षेत्रमस्ति, यस्मात् सम्यग्दृष्टेः अधः सप्तमनरकगमनं प्रतिषिद्धमिति, आह—अधः सप्तमनरकपृथिव्यामपि सम्यग्दर्शनलाभस्य प्रतिपादितत्वात् आगच्छतः पञ्चसप्तभागाधिकक्षेत्रसंभव इति, अत्रोच्यते, एतदप्ययुक्तं, सप्तमनरकात् सम्यग्दृष्टेरागमनस्याप्यभावात्, कथम् ?, यस्मात् तत उद्वृत्तास्तिर्यक्ष्वेवागच्छन्तीति प्रतिपादितं, अमरनारकाश्च सम्यग्दृष्टयो मनुष्येष्वेव, इत्यलं प्रसङ्गेन प्रकृतं प्रस्तुमः । 'स्पर्शनाद्वारं' इदानीं, इह यत्रावगाहस्तत् क्षेत्रमुच्यते, स्पर्शना तु

॥ २१ ॥

१ यद्यपि द्वादशयोजनान्यलोकमुशन्ति तथापि न्यूनता तावती न विवक्षिताऽत्राल्पेति. २ अधोलोकस्य सप्त भागान् कृत्वेदमुक्तं, पूर्वं चतुर्दश लोकभागा अत्र त्वधोलोकभागा इत्यत्र विवक्षैव मानं, भाष्यकारादिभिस्त्वत्रापि पञ्च चतुर्दशभागाः प्रत्यपादिषत. ३ सिद्धान्तकर्मग्रन्थोभयमतेनापि वान्तसम्यक्त्वानामेव सप्तमनरकगमनाभ्युपगमात्. ४ गमनविषयशङ्काया अयुक्तता अपिना, यद्वा तत्क्षेत्रसंभवायोग्यता सम्यग्दृष्टेरागमनायोग्यता चेति ध्वनयितुं. ५ अधिकक्षेत्रस्य परिग्रहोऽपिना. * स्वेतेभ्यो २–४ स्तु तेभ्यो १.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

ततोऽतिरिक्ता अवगन्तव्या, यथेह परमाणोरेकप्रदेशं क्षेत्रं सप्तप्रदेशा च स्पर्शनेति । तथा 'कालद्वारं', तत्रोपयोगमङ्गीकृत्य एकस्यानेकेषां चान्तर्मुहूर्त्तमात्र एव कालो भवति जघन्यत उत्कृष्टतश्च, तथा तल्लब्धिमङ्गीकृत्य एकस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमेव, उत्कृष्टतस्तु षट्षष्टिसागरोपमाण्यधिकानीति, वारद्वयं विजयादिषु गतस्य अच्युते वा वारत्रयमिति, नरभवकालाभ्यधिक इति, तत ऊर्ध्वमप्रच्युतेनापवर्गप्राप्तिरेव भवतीति भावार्थः, नानाजीवापेक्षया तु सर्वकाल एवेति, न यस्मादाभिनिबोधिकलब्धिमच्छून्यो लोक इति । इदानीं 'अन्तरद्वारं', तत्रैकजीवमङ्गीकृत्य आभिनिबोधिकस्यान्तरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कथम् ?, इह कस्यचित् सम्यक्त्वं प्रतिपन्नस्य पुनस्तत्परित्यागे सति पुनस्तदावरणकर्मक्षयोपशमाद् अन्तर्मुहूर्त्तमात्रेणैव प्रतिपद्यमानस्येति, उत्कृष्टतस्तु आशातनाप्रचुरस्य परित्यागे सति अपार्धपुद्गलपरावर्त्त इति, उक्तं च—"तित्थगरपवयणसुयं, आयरियं गणहरं महिड्ढीयं। आसादिंतो बहुसो, अणंतसंसारिओ होई ॥१॥" तथा नानाजीवानपेक्ष्य अन्तराऽभाव इति । 'भाग इति द्वारं' तत्र मतिज्ञानिनः शेषज्ञानिनामज्ञानिनां चानन्तभागे वर्त्तन्ते इति । 'भावद्वारं' इदानीं, तत्र मतिज्ञानिनः क्षायोपशमिके भावे वर्त्तन्ते, मत्यादिज्ञानचतुष्टयस्य क्षायोपशमिकत्वात् । तथा 'अल्पबहुत्वद्वारं', तत्राभिनिबोधिकज्ञानिनां प्रतिपद्यमानपूर्वप्रतिपन्नापेक्षया अल्पबहुत्वविभागोऽयमिति, तत्र सद्भावे सति सर्वस्तोकाः प्रतिपद्यमा-

१ अधिकेति. २ चत्वारो दिक्स्थका द्वावूर्ध्वाधोदिक्कौ एकश्चावगाहस्थानमिति सप्तप्रदेशा स्पर्शना. ३ 'अनेकाभिनिबोधिकजीवानामपीदमेवोपयोगकालमानं, केवलमिदमन्तर्मुहूर्त्तमपि बृहत्तरमवसेयं' इति विशेषावश्यकवृत्तौ. ४ तीर्थकरं प्रवचनं श्रुतं आचार्यं गणधरं महर्द्धिकम् (आमर्शौषध्यादिलब्धिमन्तं)। आशातयन् बहुशः अनन्तसंसारिको भवति ॥ १ ॥ ५ भागद्वारापार्थक्यज्ञापनाय. * धारा० १-२-३-४-६. + आसादेंतो. २-४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ २२ ॥ नकाः, पूर्वप्रतिपन्नास्तु जघन्यपदिनस्तेभ्योऽसंख्येयगुणाः, तथोत्कृष्टपदिनस्तु एतेभ्योऽपि विशेषाधिका इति गाथावयवार्थः ॥ १५ ॥ साम्प्रतं यथाव्यावर्णितमतिभेदसंख्याप्रदर्शनद्वारेणोपसंहारमाह— हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

आभिणिबोहियनाणे, अट्ठावीसइ हवन्ति पयडीओ ।

अस्य गमनिका—‘आभिनिबोधिकज्ञाने अष्टाविंशतिः भवन्ति प्रकृतयः’ प्रकृतयो भेदा इत्यनर्थान्तरं, कथम् ?, इह व्यञ्जनावग्रहः चतुर्विधः, तस्य मनोनयनवर्जेन्द्रियसंभवात्, अर्थावग्रहस्तु षोढा, तस्य सर्वेन्द्रियेषु संभवात्, एवं ईहावायधारणा अपि प्रत्येकं षड्भेदा एव मन्तव्या इति, एवं संकलिता अष्टाविंशतिर्भेदा भवन्ति । आह—प्रागू अवग्रहादिनिरूपणायां ‘अत्थाणं उग्गहणं’ इत्यादावेताः प्रकृतयः प्रदर्शिता एव, किमिति पुनः प्रदर्श्यन्ते ?, उच्यते, तत्र सूत्रे संख्यानियमेन नोक्ताः, इह तु संख्यानियमेन प्रतिपादनादविरोध इति । इदं च मतिज्ञानं चतुर्विधं—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतः सामान्यादेशेन मतिज्ञानी सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानीते, न विशेषादे-

१ गाथार्धस्य उपसंहारवाक्यस्य वा. २ संक्षिप्ता विवृतिः. ३ प्रागवत् मनस इन्द्रियता. ४ गाथा (३). ५ तृतीयगाथारूपे. ६ अवग्रहादीनां संख्याभेदं प्रत्येकं विधाय न प्रतिपादिताः, व्यञ्जनार्थाभ्यामवग्रहस्य अर्थावग्रहेहावायधारणानां च यथावदिन्द्रियादिभेदेन सूत्रे प्रतिपादनाभावात्. ७ ‘आदेसोत्ति पगारो ओघादेसेण सव्वदव्वाइं’ति (४०३) विशेषावश्यकवचनात् द्रव्यसामान्येन. ८ न सर्वैर्विशेषैरित्यर्थः, कियतां पुनः पर्यायाणामधिगमात्. ॥ २२ ॥

* नयनमनो १-२-४-५.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक ज्ञानस्य २८ कर्मप्रकृतय:

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

शत इति, एवं क्षेत्रतो लोकालोकं, कालतः सर्वकालं, भावतस्तु औदयिकादीन् पञ्च भावानिति, सर्वभावानां चानन्तभागमिति । उक्तं मतिज्ञानं, इदानीं अवसरप्राप्तं श्रुतज्ञानं प्रतिपिपादयिषुराह—

सुयणाणे पयडीओ, वित्थरओ आवि वोच्छामि ॥ १६ ॥

व्याख्या—श्रुतज्ञानं पूर्वं* व्युत्पादितं तस्मिन्, प्रकृतयो भेदा अंशा इति पर्यायाः, ताः, 'विस्तरतः' प्रपञ्चेन, चशब्दात् संक्षेपतश्च, अपिशब्दः संभावने, अवधिप्रकृतीश्च 'वक्ष्ये' अभिधास्ये ॥ १६ ॥ इदानीं ता एव श्रुतप्रकृतीः प्रदर्शयन्नाह—

पत्तेयमक्खराइं, अक्खरसंजोग जत्तिआ लोए । एवइया पयडीओ, सुयनाणे हुंति णायव्वा ॥ १७ ॥

व्याख्या—एकमेकं प्रति प्रत्येकं, अक्षराण्यकारादीनि अनेकभेदानि, यथा अकारः सानुनासिको निरनुनासिकश्च, पुनरेकैकस्त्रिधा–ह्रस्वः दीर्घः प्लुतश्च, पुनरेकैकस्त्रिधैव–उदात्तः अनुदात्तः स्वरितश्च, इत्येवमकारः अष्टादशभेदः, इत्येवमन्येष्वपि इकारादिषु यथासंभवं भेदजालं वक्तव्यमिति । तथा अक्षराणां संयोगा‡ अक्षरसंयोगाः संयोगाश्च द्व्यादयः यावन्तो लोके

१ धर्मास्तिकायादीनामाधार आद्योऽन्य इतरथा. २ अतीतानागतवर्त्तमानरूपम्. ३ क्षेत्रादिष्वपि सामान्यादेशेनेत्यनुवर्त्तनीयं, 'भावओ णं आभिणिबोहिअनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ'त्ति श्रीनन्दीसूत्रगतं वाक्यमालम्ब्येदम्. ४ सर्वभावबोधेन सर्वज्ञत्वापत्तिर्या तद्वारणाय, 'मतिश्रुतयोर्निबन्धः सर्वद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु' इति तत्त्वार्थे अ० १ सूत्रम् २७ आलम्ब्येदं, सर्वपर्यायाणामनन्तभागं बुध्यते मतिज्ञानी, ज्ञानज्ञानिनोः कथञ्चिदभेदादेवं ज्ञानिद्वारा ज्ञानभेदानां कथनं. ५ लृवर्णे दीर्घाभावं सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वाभावं व्यञ्जनानां ह्रस्वाद्यभावं चावेक्ष्य. * पूर्वंव्युत्पादितं १-२-४-५. + नेदम् २-४. ‡ अक्षरसंयोगा अ० १.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ श्रुतज्ञानस्य प्रतिपादनम् क्रियते

यथा घटपट' इति 'व्याघ्रहस्ती' इत्येवमादयः एते चानन्ता इति,तत्रापि एकैकः अनन्तपर्यायः, स्वपरपर्यायापेक्षया इति। आह—संख्येयानां अकारादीनां कथं पुनरनन्ताः संयोगा इति, अत्रोच्यते, अभिधेयस्य पुद्गलास्तिकायादेरनन्तत्वात् भिन्नत्वाच्च, अभिधेयभेदे च अभिधानभेदसिद्ध्या अनन्तसंयोगसिद्धिरिति, अभिधेयभेदानन्त्यं च यथा—परमाणुः, द्विप्रदेशिको, यावद् अनन्तप्रदेशिक इत्यादि, तथैकत्रापि च अनेकाभिधानप्रवृत्तेः अभिधेयधर्मभेदा यथा—परमाणुः, निरंशो, निष्प्रदेशः, निर्भेदः, निरवयव इत्यादि, न चैते सर्वथैकाभिधेयवाचका ध्वनय इति, सर्वशब्दानां भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्, इत्येवं सर्वद्रव्यपर्यायेषु आयोजनीयमिति, तथा च सूत्रेऽप्युक्तं—"अणंता गमा अणंता पज्जवा" अमुमेवार्थं चेतस्यारोप्याह—'एतावत्यः' इयत्परिमाणाः प्रवृत्तिनिमित्तत्वात् इत्येवं सर्वप्रकृतयः श्रुतज्ञाने भवन्ति ज्ञातव्या

---

१ मलयगिरीयायां वृत्तौ 'वटः पट इत्यादि व्याघ्रः स्त्रीत्येवमादि' इति । अत्राद्य उदाहरणे स्वरान्तरित संयोगः द्वितीयस्मिंस्तु स्वरानन्तरित इति दृष्टान्तद्वयं. २ संयोगाः. ३ संयोगः ४ 'जे लभइ केवलो से सवण्णसहिओ व पज्जवेऽयारो । ते तस्स सपज्जाया, सेसा परपज्जवा सव्वे ॥ ४७८ ॥ चायसपज्जायविसेसणाइणा तस्स जमुवउज्जंति । सधणमिवासंबद्धं, भवन्ति तो पज्जवा तस्स ॥ ४८० ॥ इति (विशेषावश्यकवचनात्). ५ द्विपञ्चाशतः. ६ पदार्थशब्देन जगत्त्रयाभिधानवदभिन्नत्वे संयोगबहुत्वाभावादाह. ७ अन्यथा अभिधेयस्वरूपाख्यानानुपपत्तेः, अनेकार्थस्थले सांकेतिकस्थलेऽपिच न न भिन्नान्यभिधानानि. ८ विशिष्टैकशब्देनानेकाभिधेयाभिधानविचारमाश्रित्य, एकस्मिन्नपि वा वाच्येऽनन्ताभिधानाभ्युपगमनायैकत्रेत्यादि. ९ सूक्ष्मत्वसूक्ष्मायोगित्वापरपरमाणुसंयोगहीनत्वाविनाशित्वावयवानारब्धत्वादिना प्रवृत्तिः शब्दानामेषामत्र. १० इह गमा अर्थगमा गृह्यन्ते, अर्थगमा नामार्थपरिच्छेदास्ते चानन्ताः इति नन्दीवृत्तौ. + घटः पटः १-२-४-५. † इत्यादि २-४. ‡ व्याघ्रो १. § व्याघ्र स्त्री ४. ¶ विभिन्नत्वात् २-४-५. $ धर्मभेदो १-२-३-४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

इति गाथार्थः ॥ १७ ॥ इदानीं सामान्यतयोपदर्शितानां अनन्तानां श्रुतज्ञानप्रकृतीनां यथावद्भेदेन प्रतिपादनसामर्थ्यं आत्मनः खलु अपश्यन्नाह—

कत्तो मे वण्णेउं, सत्ती सुयणाणसव्वपयडीओ ?। चउदसविहनिक्खेवं, सुयनाणे आवि वोच्छामि ॥ १८ ॥

व्याख्या—कुतो ?, नैव प्रतिपादयितुं, 'मे' मम 'वर्णयितुं' प्रतिपादयितुं 'शक्तिः' सामर्थ्यं, काः ?—प्रकृतीः, तत्र प्रकृतयो भेदाः, सर्वाश्च ताः प्रकृतयश्च सर्वप्रकृतयः, श्रुतज्ञानस्य सर्वप्रकृतयः श्रुतज्ञानसर्वप्रकृतय इति समासः, ताः कुतो मे वर्णयितुं शक्तिः ?, कथं न शक्तिः ?, इह ये श्रुतग्रन्थानुसारिणो मतिविशेषास्तेऽपि श्रुतमिति प्रतिपादिताः, उक्तं च—"तेऽविय मईविसेसे, सुयणाणब्भंतरे जाण" ताँश्चोत्कृष्टतः श्रुतधरोऽपि अभिलाप्यानपि सर्वान् न भाषते, तेषामनन्तत्वात् आयुषः परिमितत्वात् वाचः क्रमवृत्तित्वाच्चेति, अतोऽशक्तिः, ततः 'चतुर्दशविधनिक्षेपं' निक्षेपणं निक्षेपो—नामादिविन्यासः, चतुर्दशविधश्चासौ निक्षेपश्चेति विग्रहस्तं 'श्रुतज्ञाने' श्रुतज्ञानविषयं, चशब्दात् श्रुताज्ञानविषयं च, अपिशब्दात् उभयविषयं च, तत्र श्रुतज्ञाने सम्यक्श्रुते, श्रुताज्ञाने असंज्ञिमिथ्याश्रुते, उभयश्रुते दर्शनविशेषपरिग्रहात् अक्षरानक्षरश्रुते इति, 'वक्ष्ये' अभिधास्ये इति गाथार्थः ॥ १८ ॥ साम्प्रतं चतुर्दशविधश्रुतनिक्षेपस्वरूपोपदर्शनायाह—

१ (विशेषावश्यके १४३) तानपि च मतिविशेषान् श्रुतज्ञानाभ्यन्तरे जानीहि. २ असंज्ञिनां वक्ष्यमाणत्वेऽपि नियमाभावात्संज्ञिनां सम्यक्श्रुतस्य न तद्ग्रहणं. ३ एकस्य परस्परविरुद्धधर्माश्रयत्वाभावादाह–दर्शनेत्यादि, दर्शनशब्दश्चात्र श्रद्धानार्थः. ४ नामस्थापनाद्रव्याणामनादरः अप्रधानत्वादिनाऽग्रे वक्ष्यमाणत्वाद्वा, श्रुतस्कन्धे भावश्रुते ये भेदाश्चतुर्दश तदपेक्षया चात्र चतुर्दशविधनिक्षेपेति, अधिकारावतरणिकैषेति च स्वरूपेति, अक्षरसंज्ञ्यादिद्वाराणां च नात एव पृथक् सूत्राणि. + नास्तीदं १–२–४–५. * चतुर्दशनिक्षेप० २.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

अक्खर सण्णी सम्मं, साईयं खलु सपज्जवसिअं च। गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ १९ ॥

व्याख्या—तत्र 'अक्षरश्रुतद्वारं' इह 'सूचनात्सूत्रं' इतिकृत्वा सर्वद्वारेषु श्रुतशब्दो द्रष्टव्य इति। तत्र अक्षरमिति, किमुक्तं भवति ?–'क्षर संचलने' न क्षरतीत्यक्षरं, तच्च ज्ञानं चेतनेत्यर्थः, न यस्मादिदमनुपयोगेऽपि प्रच्यवत+ इति भावार्थः, इत्थंभू†तभावाक्षर‡कारणत्वाद् अकारादिकमप्यक्षरमभिधीयते, अथवा अर्थान् क्षरति न च क्षीयते इत्यक्षरं, तच्च समासतस्त्रिविधं, तद्यथा–संज्ञाक्षरं व्यञ्जनाक्षरं लब्ध्यक्षरं चेति, संज्ञाक्षरं तत्र अक्षराकारविशेषः, यथा घटिकासंस्थानो धकारः, कुरु§ण्टिकासंस्थानश्चकार इत्यादि, तच्च ब्राह्मयादिलिपीविधानादनेकविधं। तथा व्यञ्जनाक्षरं, व्यज्यतेऽनेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं, व्यञ्जनं च तदक्षरं चेति व्यञ्जनाक्षरं, तच्चेह सर्वमेव भाष्यमाणं अकारादि हकारान्तं, अर्थाभिव्यञ्जकत्वाच्छब्दस्य[1], तथा योऽक्षरोपलम्भः तत् लब्ध्यक्षरं, तच्च ज्ञानं इन्द्रियमनोनिमित्तं श्रुतग्रन्थानुसारि तदाव¶रणक्षयोपशमो वा। अत्र च संज्ञाक्षरं व्यञ्जनाक्षरं च द्रव्याक्षरमुक्तं, श्रुतज्ञानाख्यभावाक्षरकारणत्वात्, लब्ध्यक्षरं तु भावाक्षरं, विज्ञानात्मकत्वादिति। तत्र अक्षरश्रुतमिति अक्षरा[2]त्मकं श्रुतं अक्षरश्रुतं, द्रव्याक्षराण्यधिकृत्य, अथवा अक्ष[3]रं च तत् श्रुतं च अक्षरश्रुतं, भावाक्षरमङ्गीकृत्य ॥ १९ ॥ उक्तमक्षरश्रुतं, इदानीमनक्षरश्रुतस्वरूपाभिधित्सयाह—

१ भाष्यमाणशब्दस्यैव व्यञ्जनाक्षरत्वादाह–अर्थाभीत्यादि, प्रत्येकं विभिन्नाक्षराणामर्थाभिव्यञ्जकत्वाभावात्. २ रूप्यक्षराणि संज्ञाव्यञ्जनोभयरूपाण्याश्रित्य. ३ न क्षरतीत्यादिव्युत्पत्त्या चेतनामाश्रित्य. + प्रच्यवतीति. २–४. † इत्थंभूतो. ३. ‡ भावा॰ २–४. § कुरण्टिसं॰ १–२–४ कुरण्टिकासं॰ २ ¶ वरणकर्म॰ १–२–३–४.

॥ २४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

ऊससिअं नीससिअं, निच्छूढं खासिअं च छीअं च। णीसिंघियमणुसारं, अणक्खरं छेलियाईअं ॥ २० ॥

व्याख्या—उच्छ्वसनं उच्छ्वसितं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, तथा निःश्वसनं निःश्वसितं, निष्ठीवनं निष्ठ्यूतं, काशनं काशितं, चशब्दः समुच्चयार्थः, क्षवणं क्षुतं, चशब्दः समुच्चयार्थ एव, अस्य च व्यवहितः संबन्धः, कथम् ! सेण्टितं चानक्षरश्रुतमिति वक्ष्यामः, निःसिङ्घनं निःसिङ्घितं, अनुस्वारवदनुस्वारं, [1]अनक्षरमपि यदनुस्वारवदुच्चार्यते हुङ्कारकरणादिवत् तत् 'अनक्षरमिति' एतदुच्छ्वसितादि अनक्षरश्रुतमिति, सेण्टनं सेण्टितं तत्सेण्टितं च अनक्षरश्रुतमिति। इह चोच्छ्वसितादि द्रव्यश्रुतमात्रं, ध्वनिमात्रत्वात्, अथवा श्रुतविज्ञानोपयुक्तस्य जन्तोः सर्व एव व्यापारः श्रुतं,तस्य तद्भावेन परिणतत्वात्। आह—यद्येवं किमित्युपयुक्तस्य चेष्टापि श्रुतं नोच्यते, ?येनोच्छ्वसिताद्येवोच्यते इति, अत्रोच्यते, रूढ्यां, अथवा श्रूयत इति श्रुतं, अन्वर्थसंज्ञामधिकृत्य उच्छ्वसिताद्येव श्रुतमुच्यते, न चेष्टा, तदभावादिति, अनुस्वारादयस्तु अर्थगमकत्वादेव श्रुतमिति गाथार्थः ॥२०॥

उक्तमनक्षरश्रुतद्वारं, इदानीं 'संज्ञिद्वारं' तत्र संज्ञीति कः शब्दार्थः !, संज्ञानं संज्ञा, संज्ञाऽस्यास्तीति संज्ञी, स च त्रिविधः—दीर्घकालिकहेतुवाददृष्टिवादोपदेशाद्, यथा नन्द्यध्ययने तथैव द्रष्टव्यः, ततश्च संज्ञिनः श्रुतं संज्ञिश्रुतं,

१ आदिना सीत्कारपूत्काराद्याः. २ घटपटादिवद्वाच्यवाचकभावतया न परिणामीति मात्रग्रहणं. ३ सूचकत्वात्. ४ करचरणादिक्रियाया अपि विवक्षितार्थसूचकत्वादाह. ५ श्रुतोपयुक्तस्य. ६ श्रवणव्यवहाररूपया शास्त्रज्ञलोकप्रसिद्ध्या. ७ रूढौ विशेषाग्रहे आह—अथवेत्यादि. ८ निरर्थकार्थशून्यनिरासेन ९ श्रवणलक्षणान्वर्थस्याभावात् १० आदिना सेण्टितसीत्काराद्याः, उच्छ्वसितादीनामव्यक्तत्वाद् अनक्षरत्वमनुस्वारादीनां वर्णावयवत्वाद्विशेषदर्शनाय चेदम् ११ यथोत्तरविशुद्धक्रमोल्लङ्घनेन ज्ञापितमाह 'सण्णित्ति असण्णित्ति य, सव्वसुए कालिओवएसेणं' (वि० ५२६) १२ (नन्दीवृत्तिः ३८१ प०) १३ दीर्घकालिकीसंज्ञया. * णीसंघिय० + २-३-४ निःसङ्घनं २-४ † अक्षरमपि श्रुतज्ञानो०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ २५ ॥ | हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

तथा असंज्ञिनः श्रुतं असंज्ञिश्रुतमिति । तथा 'सम्यक्श्रुतं' अङ्गानङ्गप्रविष्टं आचारावश्यकादि । तथा 'मिथ्याश्रुतं' पुराणरामायणभारतादि, सर्वमेव वा दर्शनपरिग्रहविशेषात् सम्यक्श्रुतमितरद्वा इति । तथा 'साद्यमनाद्यं सपर्यवसितमपर्यवसितं च' नयानुसारतोऽवसेयं, तत्र द्रव्यास्तिकनयादेशाद् अनाद्यपर्यवसितं च, नित्यत्वात्, अस्तिकायवत् । पर्यायास्तिकनयादेशात् सादि सपर्यवसितं च, अनित्यत्वात्, नारकादिपर्यायवत् । अथवा द्रव्यादिचतुष्टयात् साद्यनाद्यादि अवगन्तव्यं, यथा नन्द्यध्ययने इति, खलुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, तस्य च व्यवहितः संबन्धः, सप्तैव 'एते' श्रुतपक्षाः सप्रतिपक्षाः, न पक्षान्तरमस्ति, सतोऽत्रैवान्तर्भावात् । तथा गमा अस्य विद्यन्ते इति गमिकं, तच्च प्रायोवृत्त्या दृष्टिवादः । तथा गाथाद्यसमानग्रन्थं अगमिकं, तच्च प्रायः कालिकं । तथा अङ्गप्रविष्टं गणधरकृतं आचारादि, अनङ्गप्रविष्टं तु स्थविरकृतं आवश्यकादि, गाथाशेषमवधारणप्रयोगं दर्शयता व्याख्यातमेवेति गाथार्थः ॥ २० ॥ सत्पदप्ररूप-

---

१ स्वाभाविकसम्यक्त्वेतरत्वासंभवादाह, अन्त्यपूर्वचतुष्कं दशमस्य चरमभागश्च त्याज्य एव 'चउद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुयं' तिनन्दीवचनात्. २ सम्यग्मिथ्यादर्शनवज्जीवस्वीकारेण भेदात्. ३ सम्यग्दर्शनिनाम्. ४ श्रुतवतो जीवद्रव्यस्य नित्यत्वात्, द्रव्यमेव चासौ मनुते. ५ पर्यायाणां प्रतिक्षणं क्षयभावात्, पर्यायमात्रापेक्षी चासौ. ६ (नन्दीवृत्तिः ३९४ प०) एकपुरुषभरतादिक्षेत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिणीजिनभाषितभावप्ररूपणा आश्रित्य सादिसपर्यवसितं नानापुरुषमहाविदेहनोउत्सर्पिण्यवसर्पिणीक्षायोपशमिकानाश्रित्य त्वन्यथा. ७ पर्यायादेः ८ किञ्चिद्विशेषतो भूयो भूयस्तस्यैव सूत्रस्योच्चारणं गमः ९ 'स्थविरास्तु भद्रबाहुस्वाम्यादयस्तत्कृतमावश्यकनिर्युक्त्यादिकमनङ्गप्रविष्टं' (विशेषा० ५५० वृत्तौ) १० 'सत्तवि एए सपडिवक्खा' इत्येकान्नविंशगाथासत्कं. ११ खलुशब्दव्याख्याने, अपितु सप्तानामपि प्रतिपक्षग्रहार्थः स्फुट एव. * मिथ्यात्वश्रुतं २ + तु ३ † ०नुसारितो० ३-४ ‡ साद्यं २-३-४-५

॥ २५ ॥

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

णादि मतिज्ञानवदायोज्यं । प्रतिपादितं श्रुतज्ञानमर्थतः, साम्प्रतं विषयद्वारेण निरूप्यते, तच्चतुर्विधं—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतः श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्याणि जानीते न तु पश्यति, एवं क्षेत्रादिष्वपि द्रष्टव्यं । इदं पुनः श्रुतज्ञानं सर्वातिशयरत्नसमुद्रकल्पं, तथा प्रायो गुर्वायत्तत्वात् पराधीनं यतः अतः विनेयानुग्रहार्थं यो यथा चास्य लाभः तं तथा दर्शयन्नाह—

आगमसत्थग्गहणं, जं बुद्धिगुणेहि अट्ठहिं †दिट्ठं । बिंति सुयनाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥ २१ ॥

व्याख्या—आगमनं आगमः, आङः अभिविधिमर्यादार्थत्वाद् अभिविधिना मर्यादया वा गमः-परिच्छेद आगमः, स च केवलमत्यवधिमनःपर्यायलक्षणोऽपि भवति अतस्तद्व्यवच्छित्त्यर्थमाह—शिष्यतेऽनेनेति शास्त्रं–श्रुतं, आगमग्रहणं तु षष्टितन्त्रादिकुशास्त्रव्यवच्छेदार्थं, तेषामनागमत्वात्, सम्यक्परिच्छेदात्मकत्वाभावादित्यर्थः, शास्त्रतया च रूढत्वात्, ततश्च आगमश्चासौ शास्त्रं च आगमशास्त्रं तस्य ग्रहणमिति समासः, गृहीतिर्ग्रहणं, यद्बुद्धिगुणैः वक्ष्यमाणलक्षणैः करणभूतैः अष्टभिः, दृष्टं, ब्रुवते, श्रुतज्ञानस्य लाभः श्रुतज्ञानलाभस्तं, तदेव ग्रहणं, ब्रुवते, के ?, पूर्वेषु विशारदाः पूर्वविशारदाः, विशारदा विपश्चितः, ‡धीरा व्रतानुपालने स्थिरा इत्ययं गाथार्थः ॥ २१ ॥ बुद्धिगुणैरष्टभिरित्युक्तं, ते चामी—

सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गिण्हइ य ईहए ¶यावि । तत्तो अपोहए §या, धारेइ करेइ वा सम्मं ॥ २२ ॥

व्याख्या—विनययुक्तो गुरुमुखात् श्रोतुमिच्छति §शुश्रूषति, ‖पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति तच्छ्रुतमशङ्कितं करोतीति भा-

१ तत्स्वरूपतश्चेदस्वरूपसत्प्ररूपणादिद्वारातिदेशव्याख्यानेन. * प्ररूप्यते २-३ + वास्य २ † ०हि विदिट्ठं १-२-४-५ ‡ चीरा ३ ¶ आवि ३ § वा १-२-४-५ § शुश्रूषते ५ ‖ पुनः पुनः ३-४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धेः अष्टगुणाः तथा श्रवण एवं व्याख्यान-विधिः प्रतिपाद्येते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ २६ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

वार्थः, पुनः कथितं तच्छृणोति, श्रुत्वा गृह्णाति, गृहीत्वा चेहते पर्यालोचयति किमिदमित्थं उत अन्यथेति, चशब्दः समुच्चयार्थः, अपिशब्दात् पर्यालोचयन् किञ्चित् स्वबुद्ध्याऽपि उत्प्रेक्षते, 'ततः' तदनन्तरं 'अपोहते च' एवमेतत् यदादिष्टमाचार्येणेति, पुनस्तमर्थमागृहीतं धारयति, करोति च सम्यक् तदुक्तमनुष्ठानमिति, तदुक्तानुष्ठानमपि च श्रुतप्राप्तिहेतुर्भवत्येव, तदावरणकर्मक्षयोपशमादिनिमित्तत्वात्तस्येति । अथवा यद्यदाज्ञापयति गुरुः तँत् सम्यगनुग्रहं मन्यमानः श्रोतुमिच्छति शुश्रूँषति, पूर्वसंदिष्टश्च सर्वकार्याणि कुर्वन् पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति, पुनरादिष्टः तत् सम्यक् शृणोति, शेषं पूर्ववदिति गाथार्थः ॥ २२ ॥ बुद्धिगुणा व्याख्याताः, तत्र †शुश्रूषतीत्युक्तं, इदानीं श्रवणविधिप्रतिपादनायाह—

मूअं हुंकारं वा, †बाढकारपडिपुच्छवीमंसा । तत्तो पसंगपारायणं च परिणिट्ठ सत्तमए ॥ २३ ॥

व्याख्या—'मूकमिति' मूकं शृणुयात्, एतदुक्तं भवति—प्रथमश्रवणे संयतगात्रः तूष्णीं खल्वासीत, तथा द्वितीये हुङ्कारं च दद्यात्, वन्दनं कुर्यादित्यर्थः, तृतीये‡ ¶बाढत्कारं कुर्यात्, √बाढमेवमेतत् नान्यथेति, चतुर्थश्रवणे तु गृहीतपूर्वापरसूत्राभिप्रायो मनाक् प्रतिपृच्छां कुर्यात् कथमेतदिति, पञ्चमे तु मीमांसां कुर्यात्, मातुमिच्छा मीमांसा प्रमाणजिज्ञासेतियावत्, ततः षष्ठे श्रवणे तदुत्तरोत्तरगुणप्रसङ्गः =पारगमनं चास्य भवति, परिनिष्ठा सप्तमे श्रवणे भवति, एतदुक्तं भवति–गुरुवदनुभाषत एव सप्तमश्रवण इत्ययं गाथार्थः॥२३॥एवं तावच्छ्रवणविधिरुक्तः,इदानीं व्याख्यानविधिमभिधित्सुराह—

सुत्तत्थो खलु पढमो,बीओ ×निज्जुत्तिमीसओ भणिओ । तइओ य निरवसेसो,एस विही भणिअ अणुओगे॥२४॥

॥ २६ ॥

* तत्तत् २-३-५ + शुश्रूषते ५ शुश्रूषत इत्युक्तं ५ † बाढकार० १-२-४ ‡ बाढकारं १-२ ¶ बाढकरं ४ √ ०मेवैतत् ५ = प्रसङ्गपारगमनं × मीसीओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

व्याख्या—सूत्रस्यार्थः सूत्रार्थः सूत्रार्थ एव केवलः प्रतिपाद्यते यस्मिन्ननुयोगे असौ सूत्रार्थ इत्युच्यते, सूत्रार्थमात्रप्रतिपादनप्रधानो वा सूत्रार्थः, खलुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, एतदुक्तं भवति—गुरुणा सूत्रार्थमात्राभिधानलक्षण एव प्रथमोऽनुयोगः *कार्यः, मा भूत् प्राथमिकविनेयानां मतिसंमोहः, 'द्वितीयः' अनुयोगः सूत्रस्पर्शिक+निर्युक्तिमिश्रकः कार्य इत्येवंभूतो भणितो जिनैश्चतुर्दशपूर्वधरैश्च 'तृतीयश्च निरवशेषः' प्रसक्तानुप्रसक्तमप्युच्यते यस्मिन् स एवंलक्षणो निरवशेषः, कार्य इति, स 'एष' उक्तलक्षणो विधानं विधिः प्रकार इत्यर्थः, भणितः प्रतिपादितः जिनादिभिः, क ?, सूत्रस्य निजेन अभिधेयेन सार्धं अनुकूलो योगः अनुयोगः †सूत्रव्याख्यानमित्यर्थः, तस्मिन्ननुयोगेऽनुयोगविषय इति, अयं गाथार्थः ॥ २४ ॥ समाप्तं श्रुतज्ञानम् ॥ उक्तप्रकारेण श्रुतज्ञानस्वरूपमभिहितं, साम्प्रतं प्रागभिहितप्रस्तावमवधिज्ञानमुपदर्शयन्नाह—

संखाईआओ खलु, ओहीनाणस्स सव्वपयडीओ। काओ भवपच्चइया, खओवसमिआओ काओऽवि ॥२५॥

व्याख्या—संख्यानं संख्या तामतीताः संख्यातीता असंख्येया इत्यर्थः, तथा संख्यातीतमनन्तमपि भवति, ततश्चानन्ता अपि, तथा च खलुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ?—क्षेत्रकालाख्यप्रमेयापेक्षयैव संख्यातीताः, द्रव्यभावाख्य-

१ उपोद्घातनिक्षेपनिर्युक्त्योः कथञ्चित्क्वचित्प्रतिपादनसंभवात्. २ नूतनशिष्याणां प्रपञ्चितज्ञानां बालानां. ३ टीकाचूर्ण्यादिरूपः, प्रथमे संहितापदलक्षणः मध्ये पदार्थपदविग्रहचालनाप्रत्यवस्थानादिरूपः तृतीयस्मिंस्तु अर्थापत्तिप्रभृतिगम्य इत्यर्थः ४ सर्वश्रुतप्रतिव्याख्यानाशक्यत्वेन चतुर्दशविधनिक्षेपवर्णनप्रतिज्ञातरूपेण. ५ स्थित्यादिसाधर्म्यरूपं. ६ संख्यानमपेक्ष्य सामान्ये वा नपुंसकं. ७ सतोरप्यनन्तयोरनयोरवधिज्ञानविषयापेक्षयाऽदः * कर्तव्यः + ०स्पर्शक० २-४-५ † सूत्रार्थव्या० १ सूत्रान्वा० २-४-५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ अवधिज्ञानस्य स्वरुपम् दर्शयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

ज्ञेयापेक्षया चानन्ता इति, 'अवधिज्ञानस्य' प्राग्निरूपितशब्दार्थस्य, सर्वाश्च ताः प्रकृतयश्च सर्वप्रकृतयः, प्रकृतयो भेदा अंशा इति पर्यायाः, एतदुक्तं भवति—यस्मादवधेः लोकक्षेत्रासंख्येयभागादारभ्य प्रदेशवृद्ध्या असंख्येयलोकपरिमाणं उत्कृष्टं आलम्बनतया क्षेत्रमुक्तं, कालश्चावलिकाऽसंख्येयभागादारभ्य समयवृद्ध्या खल्वसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीप्रमाण उक्तः, ज्ञेयभेदाच्च ज्ञानभेद इत्यतः संख्यातीताः तत्प्रकृतयः इति, तथा तैजसवाग्द्रव्यापान्तरालवर्त्त्यनन्तप्रदेशकाद् द्रव्यादारभ्य विचित्रवृद्ध्या सर्वमूर्त्तद्रव्याणि उत्कृष्टं विषयपरिमाणमुक्तं, प्रतिवस्तुगतासंख्येयपर्यायविषयमानं च इति, अतः †पुद्गलास्तिकायं तत्पर्यायाँश्चाङ्गीकृत्य ज्ञेयभेदेन ‡ज्ञानभेदादनन्ताः प्रकृतय इति, आसां च मध्ये 'काश्चन' अन्यतमाः 'भवप्रत्यया' भवन्ति अस्मिन् कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिन इति भवः, स च नारकादिलक्षणः, स एव प्रत्ययः—कारणं यासां ताः भवप्रत्ययाः, पक्षिणां गगनगमनवत्, ताश्च नारकामराणामेव, तथा गुणपरिणामप्रत्ययाः क्षयोपशमनिर्वृत्ताः क्षायोपशमिकाः काश्चन, ताश्च तिर्यङ्नराणामिति। आह—क्षायोपशमिके भावेऽवधिज्ञानं प्रतिपादितं, नारकादिभवश्च औदयिकः, स कथं तासां प्रत्ययो भवतीति, अत्रोच्यते, ता अपि क्षयोपशमनिबन्धना एव, किं तु असावेव क्षयोपशमः तस्मि-

---

१ लोकशब्देन पञ्चास्तिकायस्य क्षेत्रशब्देन चानन्ताकाशस्य बोधसंभवादुक्तं लोकक्षेत्रेति. लोक एवारम्भाद्वा २ एतावतो लोकक्षेत्रस्यासंभवादुक्तं क्षेत्रेति सामान्येन, सामर्थ्यापेक्षं चेदं, न तु तावति क्षेत्रे दृश्यं, विहाय लोकं जीवपुद्गलयोरनवस्थानात्, फलं तु लोके सूक्ष्मसूक्ष्मतरार्थज्ञानं. ३ उत्कर्षतः प्रतिद्रव्यमसंख्येयान् , न तु कदाचनाप्यनन्तान् 'नाणन्ते पेच्छइ कयाइ' त्ति भाष्योक्तेः, जघन्यतस्तु संख्येयानसंख्येयांश्च प्रतिद्रव्यं जानाति, परं वक्ष्यमाणत्वादिना नोक्तं ४ भवप्रत्ययावधिप्रकृतयः * ०वर्तिनोऽनन्त० ५ + प्रदेशिकाद् १-३-५ † कायांस्तत्र० ‡ ०भेदे च १-२-४-५.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

न्नारकामरभवे सति अवश्यं भवतीतिकृत्वा भवप्रत्ययास्ता इति गाथार्थः ॥ २५ ॥ साम्प्रतं सामान्यरूपतया उद्दिष्टानां अवधिप्रकृतीनां वाचः क्रमवर्त्तित्वाद् आयुषश्चाल्पत्वात् यथावद्भेदेन प्रतिपादनसामर्थ्यमात्मनोऽपश्यन्नाह सूत्रकारः—

कत्तो मे वण्णेउं, सत्ती ओहिस्स सव्वपयडीओ ? । चउदसविहनिक्खेवं, इड्ढीपत्ते य वोच्छामि ॥ २६ ॥

व्याख्या—कुतो ? 'मे' मम, वर्णयितुं शक्तिः अवधेः सर्वप्रकृतीः?, आयुषः परिमितत्वाद् वाचः क्रमवृत्तित्वाच्च, तथापि विनेयगणानुग्रहार्थं, चतुर्दशविधश्चासौ निक्षेपश्चेति समासः, तं अवधेः संबन्धिनं, आमर्षौषध्यादिलक्षणा प्राप्ता ऋद्धियैस्ते प्राप्तर्धयः तांश्च, इह गाथाभङ्गभयाद्व्यत्ययः, अन्यथा निष्ठान्तस्य पूर्वनिपात एव भवति बहुव्रीहाविति, चशब्दः समुच्चयार्थः, 'वक्ष्ये' अभिधास्य इति गाथार्थः ॥ २६ ॥ यदुक्तं 'चतुर्दशविधनिक्षेपं वक्ष्ये' इति, तं प्रतिपादयंस्तावद्द्वारगाथाद्वयमाह—

ओही १ खित्तपरिमाणे, २ संठाणे ३ आणुगामिए ४ । अवट्ठिए ५ चले ६ तिव्वमन्द ७ पडिवाउत्पयाइ ८ अ ॥२७॥
नाण ९ दंसण १० विब्भंगे ११, देसे १२ खित्ते १३ गई १४ इअ । इड्ढीपत्ताणुओगे य, एमेआ पडिवत्तिओ ॥२८॥

व्याख्या—तत्र अवध्यादीनि गतिपर्यन्तानि चतुर्दश द्वाराणि, ऋद्धिस्तु चसमुच्चितत्वात् पञ्चदशं । अन्ये त्वाचार्या अवधिरित्येतत्पदं परित्यज्य आनुगामुकमनानुगामुकसहितं अर्थतोऽभिगृह्य चतुर्दश द्वाराणि व्याचक्षते, यस्मात् नावधिः प्रकृतिः, किं तर्हि !, अवधेरेव प्रकृतयः चिन्त्यन्ते, यतश्च प्रकृतीनामेव चतुर्दशधा निक्षेप उक्त इति । पक्षद्वयेऽपि अवि-

१ कारणकारणे कारणत्वोपचारात् , प्रयोजनं तु तदुदयनान्तरीयकताज्ञापनं, अन्यथासिद्धत्वं त्ववश्यक्लृप्तत्वान्नात्र. २ संखाईआओ खलु ओहीनाणस्स सव्वपयडीओ' त्ति पूर्वार्धेन. ३ षड्विंशतितमगाथायां 'चउद्दसविहनिक्खेवं इड्ढीपत्ते य' इत्यत्र चस्योक्तसमुच्चयार्थत्वाच्चशब्दसमुच्चयनं. * गए ४ + इआ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानस्य चतुर्दश-निक्षेपा: वर्णयते

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

रोध इति । तत्र 'अवधिरिति' अवधेर्नामादिभेदभिन्नस्य स्वरूपमभिधातव्यं, तथा अवधिशब्दो द्विरावर्त्यते इति व्याख्यातमिति । तथा 'क्षेत्रपरिमाण' इति क्षेत्रपरिमाणविषयोऽवधिर्वक्तव्यः, एवं संस्थानविषय इति । अथवा 'अर्थाद्विभक्तिपरिणाम' इति द्वितीयैवेयं, ततश्च अवधेर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नं क्षेत्रप्रमाणं वक्तव्यं । तथा संस्थानमवधेर्वक्तव्यम् । 'आनुगामुक इति द्वारं' अनुगमनशील आनुगामुकः, सविपक्षोऽवधिर्वक्तव्यः,एकारान्तः शब्दः प्रथमान्त इतिकृत्वा, यथा 'कयरे आगच्छइ' (उत्तरा० अ० १२ गा० ६) इत्यादि । तथा अवस्थितोऽवधिर्वक्तव्यः, द्रव्यादिषु कियन्तं कालं अप्रतिपतितः सन्नुपयोगतो लब्धितश्चावस्थितो भवति । तथा चलोऽवधिर्वक्तव्यः, चलोऽनवस्थितः, स च वर्धमानः क्षीयमाणो वा भवति । तथा 'तीव्रमन्दाविति द्वारं' तीव्रो मन्दो मध्यमश्चावधिर्वक्तव्यः, तत्र तीव्रो विशुद्धः, मन्दश्चाविशुद्धः, तीव्रमन्दस्तूभयप्रकृतिरिति । 'प्रतिपातोत्पादाविति द्वारं' एककाले द्रव्याद्यपेक्षया प्रतिपातोत्पादाववधेर्वक्तव्यौ ॥ २७ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—तथा 'ज्ञानदर्शनविभङ्गा' वक्तव्याः, किमत्र ज्ञानं ? किं वा दर्शनं ? को वा विभङ्गः ? परस्परतश्चामीषां अल्पबहुत्वं चिन्त्यमिति । तथा 'देशद्वारं' कस्य देशविषयः सर्वविषयो वाऽवधिर्भवतीति वक्तव्यम् । 'क्षेत्रद्वारं' क्षेत्रविषयोऽवधिर्वक्तव्यः, संबद्धासंबद्धसंख्येयासंख्येयापान्तराललक्षणक्षेत्रावधिद्वारेणेत्यर्थः । 'गतिरिति च' अत्र इतिशब्द आद्यर्थे द्रष्टव्यः, ततश्च गत्यादि च द्वारजालमवधौ वक्तव्यमिति । तथा प्राप्तर्द्ध्यनुयोगश्च कर्त्तव्यः, अनु- ॥ २८ ॥

१ तत्रावध्यादीनीत्यत्र व्याख्यातमर्थतः, ततश्चाप्रेतनेषु अवधिपदयोजना, टिप्पनके अन्ये त्वाचार्या इत्यत्रेतिव्याख्यातं, अत्र वाऽऽवृत्तिस्तथा च प्रथमान्तता प्रकृतित्वे क्षेत्रपरिमाणादौ योज्यतयेति च. २ प्रतिपत्तिरित्यर्थः, अन्यमतापेक्षयाऽदः, व्याख्यानं चातः तन्मतसत्कं. * अर्थवशात् ५–६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

योगोऽन्वाख्यानं, एवमनेन प्रकारेण 'एता' अनन्तरोक्ताः 'प्रतिपत्तयः' प्रतिपादनानि, प्रतिपत्तयः परिच्छित्तय इत्यर्थः, ततश्चावधिप्रकृतय एव प्रतिपत्तिहेतुत्वात् प्रतिपत्तय इत्युच्यन्त इति गाथाद्वयसमुदायार्थः ॥ २८ ॥ साम्प्रतमनन्तरोक्तद्वारगाथाद्वयाद्यद्वारव्याचिख्यासयेदमाह—

नामं ठवणादविए, खित्ते काले भवे य भावे य। एसो खलु निक्खेवो ओहिस्सा होइ सत्तविहो ॥ २९ ॥

व्याख्या—तत्र नाम पूर्वं निरूपितं, नाम च तदवधिश्च नामावधिः, यस्यावधिरिति नाम क्रियते, यथा मर्यादायाः। तथा स्थापना चासाववधिश्च स्थापनावधिः, अक्षादिविन्यासः। अथवा *अवधिरेव च यदभिधानं वचनपर्यायः स नामावधिः, स्थापनावधिर्यः खलु आकारविशेषः +तत्तद्द्रव्यक्षेत्रस्वामिनामिति । तथा द्रव्येऽवधिर्द्रव्यावधिः, द्रव्यालम्बन इत्यर्थः। अथवाऽयं एकारान्तः शब्दः प्रथमान्त इतिकृत्वा द्रव्यमेवावधिर्द्रव्यावधिः, †भावावधिकारणं द्रव्यमित्यर्थः, यद्वोत्पद्यमानस्योपकारकं शरीरादि तदवधिकारणत्वाद् द्रव्यावधिः। तथा क्षेत्रेऽवधिः क्षेत्रावधिः, अथवा यत्र क्षेत्रेऽवधिरुत्पद्यते तदेवावधेः ‡कारणत्वात् क्षेत्रावधिः, प्रतिपाद्यते [1]वा। §तथा कालेऽवधिः, कालावधिः अथवा यस्मिन् काले अवधिरुत्पद्यते कथ्यते वा स कालावधिः, भवनं भवः, स च नारकादिलक्षणः, तस्मिन् भवेऽवधिर्भवावधिः। भावः क्षायोपशमिकादिः द्रव्यपर्यायो वा, तस्मिन्नवधिः भावावधिः, चशब्दौ समुच्चयार्थौ, 'एषः' अनन्तरव्यावर्णितः, खलुशब्दः एवका-

१ अवधिर्यत्र क्षेत्रे व्याख्यायते स क्षेत्रावधिरित्यर्थः * अवधेरेव १–५ + तद्द्र० १–२–३ † भावावधेः का० ५ ‡ ०वध्यधिकरणत्वात् § एवं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानस्य सप्तविध-निक्षेपाः वर्णयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ २९ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

रार्थः, स चावधारणे, एष एव, नान्यः, निक्षेपणं निक्षेपः, अवधेर्भवति 'सप्तविधः' सप्तप्रकार इति गाथार्थः ॥ २९ ॥
इदानीं *क्षेत्रपरिमाणाख्यद्वितीयद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

जावइया तिसमयाहारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स । ओगाहणा जहण्णा, ओहीखित्तं जहण्णं तु ॥ ३० ॥

व्याख्या—तत्र क्षेत्रपरिमाणं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नं भवति, यतश्च प्रायो जघन्यमादौ अतस्तदेव तावत्प्रतिपाद्यते—'यावती' यत्परिमाणा, त्रीन्समयान् आहारयतीति त्रिसमयाहारकस्तस्य, सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्मः तस्य, पनकश्चासौ जीवश्च पनकजीवः वनस्पतिविशेष इत्यर्थः, तस्य, अवगाहन्ति यस्यां प्राणिनः सा अवगाहना तनुरित्यर्थः, 'जघन्या' सर्वस्तोका, अवधेः क्षेत्रं अवधिक्षेत्रं, 'जघन्यं' सर्वस्तोकं, तुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, तस्य चैवं प्रयोगः— अवधेः क्षेत्रं जघन्यमेतावदेवेति गाथाक्षरार्थः । अत्र च संप्रदायसमधिगम्योऽयमर्थः—

योजनसहस्रमानो मत्स्यो मृत्वा स्वकायदेशे यः । उत्पद्यते हि सूक्ष्मः, पनकत्वेनेह स ग्राह्यः ॥ १ ॥
संहृत्य चाद्यसमये, स ह्या[१]यामं करोति च प्रतरम् । संख्यातीताख्याङ्गुलविभागबाहु[†]ल्यमानं तु ॥ २ ॥
स्वकतनुपृथुत्वमात्रं, दीर्घत्वे[२]नापि जीवसामर्थ्यात् । तमपि द्वितीयसमये, संहृत्य करोत्यसौ सूचिम् ॥ ३ ॥
संख्यातीताख्याङ्गुलविभागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् । निजतनुपृथु[३]त्वदै[‡]र्घ्यां, तृतीयसमये तु संहृत्य ॥ ४ ॥

॥ २९ ॥

१ आयामस्तु प्रमाणं स्यादित्युक्तेर्बाहल्यरूपप्रमाणसंकोचकृतिस्तथाचाङ्गुलासंख्यभागबाहल्योक्तिर्न विरोधावहा. २ तिर्यक्. ३ ऊर्ध्वाधः ४ दैर्घ्यंरूपा विस्तृतिः पृथुत्वं. * ०भिधित्सुराह २–४ + यावत्परि० † ०बाहल्य० ‡ दीर्घा ४–५–६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

उत्पद्यते च पनकः, स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिणामः। समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥
तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम्। इदमित्थमेव मुनिगणसुसंप्रदायात् समवसेयम्दिपञ्चभिः कुलकम्

अत्र कश्चिदाह—किमिति महामत्स्यः ? किं वा तस्य तृतीयसमये निजदेहदेशे समुत्पादः ? त्रिसमयाहारकत्वं वा कल्प्यत इति ?, अत्रोच्यते, स एव हि महामत्स्यः त्रिभिः समयैरात्मानं संक्षिपन् प्रयत्नविशेषात् सूक्ष्मावगाहनो भवति, नान्यः, प्रथमद्वितीयसमययोश्च अतिसूक्ष्मः चतुर्थादिषु चातिस्थूरः त्रिसमयाहारक एव च तद्योग्य इत्यतस्तद्ग्रहणमिति। अन्ये तु व्याचक्षते—त्रिसमयाहारक इति, आयामविष्कम्भसंहारसमयद्वयं सूचिसंहरणोत्पादसमयश्चेत्येते त्रयः समयाः, विग्रहाभावाच्चाहारक एतेषु, इत्यत उत्पादसमय एव त्रिसमयाहारकः सूक्ष्मः पनकजीवो जघन्यावगाहनश्च, अतस्तत्प्रमाणं जघन्यमवधिक्षेत्रमिति, एतच्चायुक्तं, त्रिसमयाहारकत्वस्य पनकजीवविशेषणत्वात्, मत्स्यायामविष्कम्भसंहरणसमयद्वयस्य च पनकसमयायोगात्, त्रिसमयाहारकत्वाख्यविशेषणानुपपत्तिप्रसङ्गात् इति, अलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ ३० ॥ एवं तावत् जघन्यमवधिक्षेत्रमुक्तं, इदानीं उत्कृष्टमभिधातुकाम आह—

सव्वबहुअगणिजीवा, निरन्तरं जत्तियं भरिज्जंसु*। खित्तं सव्वदिसागं, परमोही खित्त निद्दिट्ठो ॥ ३१ ॥

व्याख्या—सर्वेभ्यो विवक्षितकालावस्थायिभ्योऽनलजीवेभ्य एव बहवः सर्वबहवः, न भूतभविष्यद्भ्यः, नापि शेषजीवेभ्यः, कुतः ?, असंभवात्, अग्नयश्च ते जीवाश्च अग्निजीवाः, सर्वबहवश्च तेऽग्निजीवाश्च सर्वबह्वग्निजीवाः, 'निरन्तरं' इति क्रिया-

* भरिज्जंसु १–४–५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

विशेषणं 'यावत्' यावत्परिमाणं 'भृतवन्तो' व्याप्तवन्तः 'क्षेत्रं' आकाशं, एतदुक्तं भवति—नैरन्तर्येण विशिष्टसूचीरचनया यावत् भृतवन्त इति । भूतकालनिर्देशश्च अजितस्वामिकाल एव प्रायः सर्वबहवोऽनलजीवा भवन्ति अस्यामवसर्पिण्यां इत्यस्यार्थस्य ख्यापनार्थः, इदं चानन्तरोदितविशेषणं क्षेत्रमेकदिक्कमपि भवति, अत आह—'सर्वदिक्कं' अनेन सूचीपरिभ्रमणप्रमितमेवाह, परमश्चासाववधिश्च परमावधिः, 'क्षेत्रं' अनन्तरव्यावर्णितं प्रभूतानलजीवमितमङ्गीकृत्य निर्दिष्टः क्षेत्रनिर्दिष्टः,प्रतिपादितो गणधरादिभिरिति, ततश्च पर्यायेण परमावधेरेतावत्क्षेत्रमित्युक्तं भवति। अथवा सर्वबह्वग्निजीवा निरन्तरं यावद् भृतवन्तः क्षेत्रं सर्वदिक्कं एतावति क्षेत्रे यान्यवस्थितानि द्रव्याणि तत्परिच्छेदसामर्थ्ययुक्तः परमावधिः क्षेत्रमङ्गीकृत्य निर्दिष्टो, भावार्थस्तु पूर्ववदेव, अयमक्षरार्थः । इदानीं साम्प्रदायिकः प्रतिपाद्यते–तत्र सर्वबह्वग्निजीवा बादराः प्रायोऽजितस्वामितीर्थकरकाले भवन्ति, तदारम्भकपुरुषबाहुल्यात्, सूक्ष्माश्चोत्कृष्टपदिनस्तत्रैवावरुध्यन्ते, ततश्च सर्वबहवो भवन्ति । तेषां च स्वबुद्ध्या षोढाऽवस्थानं कल्प्यते—एकैकक्षेत्रप्रदेश एकैकजीवावगाहनया सर्वतश्चतुरस्रो घनः प्रथमं, स एव जीवः स्वावगाहनया द्वितीयं, एवं प्रतरोऽपि द्विभेदः, श्रेण्यपि द्विभेदा, तत्र आद्याः पञ्च प्रकारा अनादेशाः, क्षेत्रस्याल्पत्वात् क्वचित्समयविरोधाच्च, षष्ठः प्रकारस्तु सूत्रादेश इति, ततश्चासौ श्रेणी अवधिज्ञानिनः सर्वासु दिक्षु शरीर-

१ अग्निशरीरावगाहनारचनया. २ रूपान्तरेण. ३ अत्र पक्षे अनलजीवमितक्षेत्रस्थितद्रव्यपरिच्छेदशक्तिः ४ मनुष्यार्थपरं पुरुषपदं. ५ अनन्तानन्तास्ववसर्पिणीषु कस्मिंश्चिदेव द्वितीयतीर्थकरकाले एते, तदानींतना एवोत्कृष्टा बादरा आद्याः, ६ बादरजीवमाने क्षिप्यन्त इति. ७ एकैकस्मिन्प्रदेशे एकैकजीवस्थापनेनेत्यर्थः, ८ शरीरद्वारेत्यर्थः ९ असंख्याकाशप्रदेशानन्तरेणावगाहनाऽभावात् इतिमलधारिहेमचन्द्रपादाः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

पर्यन्तेन भ्राम्यते, सा च असंख्येयान् अलोके लोकमात्रान् क्षेत्रविभागान् व्याप्नोति, एतावदवधिक्षेत्रं उत्कृष्टमिति, सामर्थ्यमङ्गीकृत्यैवं प्ररूप्यते, एतावति क्षेत्रे यदि द्रष्टव्यं भवति तदा पश्यति न त्वलोके द्रष्टव्यमस्ति इति गाथार्थः ॥३१॥ एवं तावज्जघन्यमुत्कृष्टं चावधिक्षेत्रमभिहितं, इदानीं विमध्यमप्रतिपिपादयिषया एतावत्क्षेत्रोपलम्भे चैतावत्कालोपलम्भः, तथा एतावत्कालोपलम्भे चैतावत्क्षेत्रोपलम्भ इत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनाय चेदं गाथाचतुष्टयं जगाद शास्त्रकारः—

अंगुलमावलियाणं, भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा । अंगुलमावलिअंतो, आवलिआ अंगुलपुहुत्तं ॥ ३२ ॥
हत्थंमि मुहुत्तन्तो, दिवसंतो गाउयंमि बोद्धव्वो । जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खन्तो पण्णवीसाओ ॥ ३३ ॥
भरहंमि अद्धमासो, जंबूदीवंमि साहिओ मासो । वासं च मणुअलोए, वासपुहुत्तं च रुयगंमि ॥ ३४ ॥
संखिज्जंमि उ काले, दीवसमुद्दावि हुंति संखिज्जा । कालंमि असंखिज्जे, दीवसमुद्दा उ भइयव्वा ॥ ३५ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—'अङ्गुलं' क्षेत्राधिकारात् प्रमाणाङ्गुलं गृह्यते, अवध्यधिकाराच्च उच्छ्रयाङ्गुलमित्येके, 'आवलिका' असंख्येयसमयसंघातोपलक्षितः कालः, उक्तं च—"असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा आवलियत्ति वुच्चति" अङ्गुलं चावलिका च अङ्गुलावलिके तयोरङ्गुलावलिकयोः, 'भागं' अंशं असंख्येयं पश्यति अवधिज्ञानी, एतदुक्तं भवति-क्षेत्रमङ्गुलासंख्येयभागमात्रं पश्यन् कालतः आवलिकाया असंख्येयमेव भागं पश्यत्यतीतमनागतं चेति, क्षेत्रकालदर्शनं

१ रूपिविषयत्वादवधेरलोके च तादृशद्रव्याभावादसंभवाभिधानतादोषनिराकरणायाह. २ लोके तु सूक्ष्मसूक्ष्मतरादिवस्तुदर्शनेन सामर्थ्यवृद्धिः (विशेषावश्यके गाथा ६०६) ३ स्वापेक्षितजघन्यमध्यमोत्कृष्टत्वात्. ४ असंख्येयानां समयानां समुदयसमितिसमागमेन सैकाऽऽवलिकेत्युच्यते (अनुयोगद्वारवृत्तिः ४३० प०) ५ क्षेत्रकालयोररूपित्वादवधेश्च रूपिविषयत्वादाह.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

चोपचारेणोच्यते, अन्यथा हि क्षेत्रेव्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि द्रव्याणि तैत्पर्यायांश्च विवक्षितकालान्तरवर्त्तिनः पश्यति, न तु क्षेत्रकालौ, मूर्त्तद्रव्यालम्बनत्वात्तस्येति । एवं सर्वत्र भावना द्रष्टव्या, क्रिया च गाथाचतुष्टयेऽप्यध्याहार्या, तथा 'द्वयोः' अङ्गुलावलिकयोः संख्येयौ भागौ पश्यति, अङ्गुलसंख्येयभागमात्रं क्षेत्रं पश्यन्नावलिकायाः संख्येयमेव भागं पश्यतीत्यर्थः, तथा अङ्गुलं पश्यन् क्षेत्रतः आवलिकान्तः पश्यति, भिन्नामावलिकामित्यर्थः, तथा कालतः आवलिकां पश्यन् क्षेत्रतोऽङ्गुलपृथक्त्वं पश्यति, पृथक्त्वं हि द्विप्रभृतिरा नवभ्यः इति प्रथमगाथार्थः ॥ ३२ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—'हस्ते' इति हस्तविषयः क्षेत्रतोऽवधिः कालतो मुहूर्त्तान्तः पश्यति, भिन्नं मुहूर्त्तमित्यर्थः, अवध्यवधिमतोरभेदोपचाराद् अवधिः पश्यतीत्युच्यते, तथा कालतो 'दिवसान्तो' भिन्नं दिवसं पश्यन् क्षेत्रतो'गव्यूतं'इति गव्यूतविषयो बोद्धव्यः, तथा योजनविषयः क्षेत्रतोऽवधिः कालतो दिवसपृथक्त्वं पश्यति, तथा,'*पक्षान्तो'भिन्नं पक्षं पश्यन् कालतः क्षेत्रतः पञ्चविंशति योजनानि पश्यतीति द्वितीयगाथार्थः ॥३३॥ तृतीयगाथा व्याख्यायते–'भरते' इति भरतक्षेत्रविषये अवधौ कालतो ऽर्धमास उक्तः, एवं जम्बूद्वीपविषये चावधौ साधिको मासः, वर्षं च मनुष्यलोकविषयेऽवधौ इति,मनुष्यलोकः खल्वर्धतृतीयद्वीपसमुद्रपरिमाणः, वर्षपृथक्त्वं च

१ उपचाराभावेऽनिष्टतां दर्शयति इतः तस्येतीत्यन्तेन. २ विवक्षितेति. ३ विवक्षितक्षेत्रस्थितद्रव्यपर्यायान्, कालज्ञानव्याख्यानायेदम्. ४ अवधेः प्रत्यक्षत्वात् न साक्षात्पश्यतीति. ५ न्यूनां समयादिना. ६ अन्यत्र द्वितीयान्तं पदमिति कर्मतोपपत्तिः, अत्र तु सप्तम्यन्तत्वाद्धस्तप्रमाणक्षेत्रस्थितद्रव्यदर्शनसमर्थोऽवधिर्ग्राह्य इत्युपचारहेतुः, अग्रेऽपीदृशे स्थले. ७ अर्धमासशब्दस्य प्रथमान्तत्वात् नात्रोपचारेण व्याख्यानं हस्त इत्यत्रेव, किन्तु सतिसप्तम्यन्ततया. ८ आ मानुषोत्तरात्, मनुष्याणां गमागमेऽपि रुचकादिषु न ते तज्जन्मादिस्थानं. * पक्षान्तः १-२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

रुचकाख्यबाह्यद्वीपविषयेऽवधाववगन्तव्यमिति तृतीयगाथार्थः॥३४॥चतुर्थगाथा व्याख्यायते–संख्यायत इति संख्येयः,स च संवत्सरलक्षणोऽपि भवति, तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि?–संख्येयो वर्षसहस्रात्परतोऽभिगृह्यते इति, तस्मिन् संख्येये, 'काले' कलनं कालः तस्मिन् काले अवधिगोचरे सति क्षेत्रतस्तस्यैवावधेर्गोचरतया,द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः, अपिशब्दान्महानेकोऽपि तदेकदेशोऽपीति, तथा काले असंख्येये पल्योपमादिलक्षणेऽवधिविषये सति, तस्यैव असंख्येयकालपरिच्छेदकस्यावधेः क्षेत्रतः परिच्छेद्यतया द्वीपसमुद्राश्च 'भक्तव्या' विकल्पयितव्याः, कदाचिदसंख्येया एव, यदा इह कस्यचिन्मनुष्यस्य असंख्येयद्वीपसमुद्रविषयोऽवधिरुत्पद्यते इति, कदाचिन्महान्तः संख्येयाः कदाचिद् एकः, कदाचिदेकदेशः स्वयम्भूरमणतिरश्चोऽवधेः विज्ञेयः स्वयम्भूरमणविषयमनुष्यबाह्यावधेर्वा, योजनापेक्षया च सर्वपक्षेषु असंख्येयमेव क्षेत्रमिति गाथार्थः ॥३५॥ एवं तावत् परिस्थूरन्यायमङ्गीकृत्य क्षेत्रवृद्ध्या कालवृद्धिरनियता कालवृद्ध्या च क्षेत्रवृद्धिः प्रतिपादिता, साम्प्रतं द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया यद्वृद्धौ यस्य वृद्धिर्भवति यस्य वा न भवति अमुमर्थमभिधित्सुराह–

काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइयव्वु खित्तवुड्ढीए। वुड्ढीइ दव्वपज्जव, भइयव्वा खित्तकाला उ ॥ ३६ ॥

१ अनुयोगद्वारसूत्राभिप्रायेणैकादशे तच्चूर्ण्यभिप्रायेण तु त्रयोदशे. २ यावत् शीर्षप्रहेलिकेति ज्ञेयं, अत एव संख्यायत इति संख्येय इति व्युत्पत्तिः, संव्यवहार्या च तावत्येव संख्या. ३ अभ्यन्तरावध्यपेक्षया ४ तिर्यग्लोकमध्यभागगताः ५ असंख्येययोजनविस्तृतः ६ स्वयम्भूरमणादेः ७ अतिविस्तृतत्वात्तस्य. ८ आत्मन्यसंबद्धत्वात्. ९ न द्वीपसमुद्रापेक्षयेति. १० नियतेति शेषः, क्षेत्रस्य प्रदेशानुसारेण वृद्धौ कालस्य न समयानुसारेण वृद्धिः,अङ्गुलमात्रे नभःखण्डेऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभावात् , अत्र तु न विरोध इति नियता वृद्धिः, अत एव परिस्थूरेति प्राग्विमध्यमेति च भणने संगतिः, यथावत्तया क्षेत्रकालवृद्धिव्याहयभावात् चतुर्णां समप्रमाणमाश्रित्येति वा. * तमर्थं० ५-६ + भइयव्व ४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ३२ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

व्याख्या—'काले' अवधिज्ञानगोचरे, वर्धमान इति गम्यते, 'चतुर्णां' द्रव्यादीनां वृद्धिर्भवति, सामान्याभिधानात्, कालस्तु 'भक्तव्यः' विकल्पयितव्यः, क्षेत्रस्य वृद्धिः क्षेत्रवृद्धिः तस्यां क्षेत्रवृद्धौ सत्यां, कदाचिद्वर्धते कदाचिन्नेति, कुतः ?- क्षेत्रस्य सूक्ष्मत्वात् कालस्य च परिस्थूरत्वादिति, द्रव्यपर्यायौ तु वर्धेते, सप्तम्यन्तता चास्य "एं होति अयारन्ते, पयंमि बिइयाए बहुसु पुंलिङ्गे । तइयाइसु छट्ठीसत्तमीण एगंमि महिलत्थे ॥ १ ॥" अस्माल्लक्षणात् सिध्यति, एवमन्यत्रापि प्राकृतशैल्या इष्टविभक्त्यन्तता पदानामवगन्तव्येति, तथा वृद्धौ च द्रव्यं च पर्यायश्च द्रव्यपर्यायौ तयोः वृद्धौ सत्यां 'भक्तव्यौ' विकल्पनीयौ क्षेत्रकालावेव, तुशब्दस्य एवकारार्थत्वात्, कदाचिदनयोर्वृद्धिर्भवति कदाचिन्नेति, द्रव्यपर्याययोः सकाशात् परिस्थूरत्वात् क्षेत्रकालयोरिति भावार्थः, द्रव्यवृद्धौ तु पर्याया वर्द्धन्त एव, पर्यायवृद्धौ च द्रव्यं भाज्यं, द्रव्यात् पर्यायाणां सूक्ष्मतरत्वात् अक्रमवर्त्तिनामपि च वृद्धिसंभवात् कालवृद्ध्यभावो भावनीय इति गाथार्थः ॥ ३६ ॥ अत्र कश्चिदाह—जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नयोः अवधिज्ञानसंबन्धिनोः क्षेत्रकालयोः अङ्गुलावलिकाऽसंख्येयभागोप-

१ देवदत्ते भुक्ते सर्वं कुटुम्बं भुक्तमितिवत्, अन्यथा त्रयाणामित्यभिधेयं स्यात्, कालवृद्ध्यनुसारेण द्रव्यादिवृद्धिदर्शनाय चैवमभिधानं स्यात्. २ भजधातुर्हि सिद्धान्ते विकल्पार्थेऽपि भजनेत्यादिवत्. ३ अवधिगोचरस्य. ४ तृतीयैकवचनादिव्यवच्छेदार्थम्. ५ एत् भवति अकारान्ते पदे द्वितीयायां बहुषु पुंलिङ्गे। तृतीयादिषु षष्ठीसप्तम्योरेकस्मिन् महिलार्थे (पुंलिङ्गे द्वितीयाबहुवचनान्ते पदे अकारान्तस्यैत् भवति, स्त्रीलिङ्गे च तृतीयादिषु षष्ठीसप्तम्योश्चैकवचने एकारो भवति सर्वत्र) ६ गाथारूपात् सूत्रात्. ७ रीत्या. ८ लुप्तविभक्त्यन्तता मूले. ९ द्रव्यपर्याययोः संवेधाय. १० स्पर्शरसादीनां तत्पर्यायाणां चैकगुणादीनां, गुणानां पर्यायत्वान्नायुक्तमक्रमवर्त्तिपर्यायत्वं, नयौ चात एव द्रव्यपर्यायार्थिकावेव. ११ पर्यायवृद्धौ न कालवृद्धिरिति समर्थनाय. १२ अंगुलमावलियाणमित्यादिना दीवसमुद्दा उ भइयव्वा इत्यन्तेन विमध्यमत्वेन प्रतिपादितयोः * सिद्धेत्येव०

॥ ३२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

लक्षितयोः परस्परतः प्रदेशसमयसंख्यया परिस्थूरसूक्ष्मत्वे सति कियता भागेन हीनाधिकत्वमिति, अत्रोच्यते, सर्वत्र प्रतियोगिनः खल्वावलिकाऽसंख्येयभागादेः कालाद् असंख्येयगुणं क्षेत्रं, कुत एतत्?, अत आह—

सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खित्तं। अङ्गुलसेढीमित्ते, ओसप्पिणीओ असंखेज्जा ॥ ३७ ॥

व्याख्या—'सूक्ष्मः' श्लक्ष्णश्च[2], भवति कालः, यस्माद् उत्पलपत्रशतभेदे समयाः प्रतिपत्रमसंख्येयाः प्रतिपादिताः, तथापि 'ततः' कालात्, सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रं, कुतः?, यस्मात् अङ्गुलश्रेणिमात्रे क्षेत्रे प्रदेशपरिमाणं[3] प्रतिप्रदेशं समयगणनया अवसर्पिण्यः असंख्येयाः, तीर्थकृद्भिः प्रतिपादिताः, एतदुक्तं भवति—अङ्गुलश्रेणिमात्रे[4] क्षेत्रे प्रदेशाग्रं[5] असंख्येयावसर्पिणीसमयराशिपरिमाणमिति गाथार्थः ॥ ३७ ॥ उक्तमवधेर्जघन्यादिभेदभिन्नं क्षेत्रपरिमाणं, क्षेत्रं चावधिगोचरद्रव्याधारद्वारेणैवावधेरिति[6] व्यपदिश्यते, अतः क्षेत्रस्य द्रव्याधिकत्वात्[7] तदभिधानानन्तरमेव अवधिपरिच्छेदयोग्यद्रव्याभिधित्सयाऽऽह—

तेआभासादव्वाण, अन्तरा[*] इत्थ लहइ पट्ठवओ। गुरुलहुअअगुरुलहुअं, तंपि अ तेणेव निट्ठाइ ॥ ३८ ॥

व्याख्या—अवधिश्च जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नः, तत्र तावज्जघन्यावधिपरिच्छेदयोग्यमेवादावभिधीयते[8]—तैजसं च भाषा च तैजसभाषे तयोर्द्रव्याणि तैजसभाषाद्रव्याणि तेषामिति समासः, 'अन्तरात्' इति 'अर्थाद्विभक्तिपरिणामः'

१ विधेयस्य. २ चकारो वाक्यभेदक्रमोपदर्शनार्थः (इति मलयगिरिपादाः) ३ वक्ष्यमाणमसंख्येयावसर्पिणीमानम्. ४ एकप्रमाणाङ्गुलमात्रे श्रेणिरूपे नभःखण्डे (नन्दीवृत्तिः १६६ प०) ५ प्रदेशसंख्यानं. ६ साक्षाद्दर्शनाभावादुपचारेणेत्यर्थः ७ मर्यादार्थोऽवधिः ८ द्रव्यमिति. * अन्तरे ५–६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक- ॥ ३३ ॥

हारिभद्री यवृत्तिः विभागः

अन्तरे, अथवा 'अन्तरे' इति पाठान्तरमेव, एतदुक्तं भवति—तैजसवाग्द्रव्याणामन्तर [1]इत्यन्तराले अत्रे [2]तदयोग्यमन्य-
देव द्रव्यं 'लभते' पश्यति, कोऽसावित्यत आह—'प्रस्थापकः' प्रस्थापको नाम अवधिज्ञानप्रारम्भकः, किंविशिष्टं तदिति,
अत आह—'गुरुलघ्वगुरुलघु' गुरु च लघु च गुरुलघु [3]तथा न गुरुलघु अगुरुलघु, एतदुक्तं भवति—गुरुलघुपर्यायोपेतं
गुरुलघु अगुरुलघुपर्यायोपेतं चागुरुलघु इति। तत्र यत्तैजसद्रव्यासन्नं तद्गुरुलघु, यत्पुनर्भाषाद्रव्यासन्नं तदगुरुलघु,
'तदपि च' अवधिज्ञानं प्रच्यवमानं सत्पुनः तेनैव द्रव्येणोपलब्धेन सता निष्ठां याति, [*]प्रच्यवतीत्यर्थः । तत्र अपिशब्दात्
यत्प्रति[5]पाति तत्रायं क्रमो, न पुनरवधिज्ञानं प्रतिपात्येव भवतीत्यर्थः, चशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, तस्य चैवं
प्रयोगः–[6]तदेवावधिज्ञानमेवं प्रच्यवते, न शे[8]षज्ञानानीति गाथार्थः ॥ ३८ ॥ आह—कियत्प्रदेशं तद् द्रव्यं, यत् तैजस-
भाषाद्रव्याणामपान्तरालवर्त्ति जघन्यावधिप्रमेयमित्याशङ्क्य तद्धि परमाण्वादिक्रमोपचयाद् औदारिकादिवर्गणानुक्रमतः
प्रतिपाद्यमिति, अतस्तत्स्वरूपाभिधित्सया गाथाद्वयमाह—

ओरालविउव्वाहारतेअभासाणपाणमणकम्मे । अह दव्ववग्गणाणं, कमो विवज्जासओ खित्ते ॥ ३९ ॥
कम्मोवरिं धुवेयरसुण्णेयरवग्गणा अणंताओ । चउधुवणंतरतणुवग्गणा य मीसो तहाऽचित्तो ॥ ४० ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—आह–औदारिकादिशरीरप्रायोग्यद्रव्यवर्गणाः किमर्थं प्ररूप्यन्ते इति,उच्यते, विनेयानामव्यामोहार्थं, ॥ ३३ ॥

---

१ मध्यार्थोऽत्रान्तरः २ मध्यभागे तैजसभाषयोः. ३ तजसभाषयोः ४ समुच्चयाय. ५ हीयमानम्. ६ अवधिः ७ तैजसभाषाऽयोग्यद्रव्यान्तदर्शनानन्त-रप्रच्युतिरूपेण. ८ मत्यादीनि. * प्रच्यवत इत्यर्थः २–५ + ०णुपाण०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तथा चोदाहरणमत्र—इह भरतक्षेत्रे मगधाजनपदे प्रभूतगोमण्डलस्वामी कुचिकर्णो नाम धनपतिरभूत्, स च तासां गवमतिबाहुल्यात् सहस्रादिसंख्यामितानां पृथक् पृथगनुपालनार्थं प्रभूतान् गोपांश्चक्रे, तेऽपि च परस्परसंमिलितासु तासु गोष्वात्मीयाः सम्यगजानानाः सन्तोऽकलहयन्, तांश्च परस्परतो विवदमानानुपलभ्य असौ तेषामव्यामोहार्थं अधिकरेणव्यवच्छित्तये च रक्तशुक्लकृष्णकर्बुरादिभेदभिन्नानां गवां प्रतिगोपं विभिन्ना वर्गणाः खल्वव्यवस्थापितवान् इत्येष दृष्टान्तः, अयमर्थोपनयः—इह गोपपतिकल्पस्तीर्थकृत् गोपकल्पेभ्यः शिष्येभ्यो गोरूपसदृशं पुद्गलास्तिकायं परमाण्वादिवर्गणाविभागेन निरूपितवानिति अलं प्रसङ्गेन, पदार्थः प्रतिपाद्यते—तत्र औदारिकग्रहणाद् औदारिकशरीरग्रहणयोग्या वर्गणाः परिगृहीताः, ताश्चैवमवगन्तव्याः—इह वर्गणाः सामान्यतश्चतुर्विधा भवन्ति, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतः भावतश्च, तत्र द्रव्यत एकप्रदेशिकानां यावदनन्तप्रदेशिकानां, क्षेत्रत एकप्रदेशावगाढानां यावदसंख्येयप्रदेशावगाढानां, कालत एकसमयस्थितीनां यावदसंख्येयसमयस्थितीनां, भावतस्तावत् परिस्थूरन्यायमङ्गीकृत्य कृष्णानां यावत् शुक्लानां ५ सुरभिगन्धानां दुरभिगन्धानां च२, तिक्तरसानां यावन्मधुररसानां ५, मृदूनां यावद्रूक्षाणां ८ गुरुलघूनामगुरुलघूनां च, एवमेता द्रव्यवर्गणाद्या वर्गणाश्चतुर्विधा भवन्ति, प्रकृतोपयोगः प्रदर्श्यते—तत्र परमाणूनामेका वर्गणा, एवं द्विप्रदेशिकानामप्येका, एवमेकैकपरमाणुवृद्ध्या संख्येयप्रदेशिकानां संख्येया वर्गणा असंख्येयप्रदेशिकानां चासंख्येयाः ततोऽनन्त-

१ गाः २ कलहः ३ समुदायान्. ४ कुचिकर्णधनपतिः ५ गोरूपाणि धेनवः ६ अवयवे समुदायोपचारात् प्रकरणाद्वा. ७ परमाणूनामपि प्रकृष्टदेशत्वात्. ८ लोकाकाशेऽवगाहनात् तस्य चैतावत्प्रमाणत्वात्. ९ अनन्तसमयान् यावदवस्थानाभावात्. ११ स्वस्वस्थान एकगुणादिनाऽनन्तभेदवत्त्वात् प्रत्येकं. * द्वित्रि०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ३४ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

प्रदेशिकानां अनन्ताः खल्वग्रहणयोग्या विलङ्घ्य ततश्च विशिष्टपरिणामयुक्ता औदारिकशरीरग्रहणयोग्याः खल्वनन्ता एवेति, ता अपि चोल्लङ्घ्य प्रदेशवृद्ध्या प्रवर्धमानास्ततस्तस्यैवाग्रहणयोग्या अनन्ता इति, ताश्च प्रभूतद्रव्यनिर्वृत्तत्वात् सूक्ष्मपरिणामोपेतत्वाच्च औदारिकस्याग्रहणयोग्या इति, वैक्रियस्यापि चाल्पपरमाणुनिर्वृत्तत्वाद् बादरपरिणामयुक्तत्वाच्चाग्रहणयोग्या एव ता इति, पुनः प्रदेशवृद्ध्या प्रवर्धमानाः खल्वनन्ता एवोल्लङ्घ्य तथापरिणामयुक्ता वैक्रियग्रहणयोग्या भवन्ति, ता अपिच प्रदेशवृद्ध्या प्रवर्धमाना अनन्ता एवेति तावद् यावद् +एकादिप्रचुरपरमाणुनिर्वृत्तत्वात् सूक्ष्मपरिणाम†युक्तत्वाच्च वैक्रियस्याग्रहणयोग्या भवन्ति, एवं प्रदेशवृद्ध्या प्रवर्धमानाः खल्वग्रहणयोग्या अप्यनन्ता एवेति, ताश्चाहारकस्य अल्पपरमाणुनिर्वृत्तत्वाद् बादरपरिणामोपेतत्वाच्च अग्रहणयोग्या एवेति, एवमाहारकस्य तैजसस्य भाषायाः ‡आनापानयोर्मनसः कर्मणश्च अयोग्ययोग्यायोग्यानां वर्गणानां प्रदेशवृद्ध्युपेतानामनन्तानां त्रयं त्रयमायोजनीयं । आह– कथं पुनरिदं एकैकस्यौदारिकादेस्त्रयं त्रयं गम्यत इति, उच्यते, तैजसभाषाद्रव्यान्तरवर्त्युभयायोग्यद्रव्यावधिगोचराभिधानात् । 'अथ' अयं द्रव्यवर्गणानां क्रमः, तत्र वर्गणा वर्गो राशिरिति पर्यायाः, तथा 'विपर्यासतो' विपर्यासेन 'क्षेत्रे' इति क्षेत्रविषयो वर्गणाक्रमो वेदितव्यः, एतदुक्तं भवति—एकप्रदेशावगाहिनां परमाणूनां स्कन्धानां चैका वर्गणा, तथा द्विप्रदेशावगाहिनां स्कन्धानामेव द्वितीया वर्गणा, एवमेकैकप्रदेशवृद्ध्या संख्येयप्रदेशावगाहिनां $संख्येया असंख्येयप्रदे- ॥ ३४ ॥

१ द्वितीयाबहुवचनं, एताश्चौदारिकस्यैवायोग्या इति. २ औदारिकपरिणमनयोग्यतारूपेति. ३ औदारिकशरीरतया परिणमनीयाः * वर्धमानाः २–४ + अतिप्रचुर० † ०युक्तत्वात् ‡ आनपानयोः ५ $ तथा सं० ४–५–६.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

शावगाहिनां चासंख्येयाः, ताश्च प्रदेशप्रदेशोत्तराः खल्वसंख्येया विलङ्घ्य कर्मणो योग्यानामसंख्येया वर्गणा भवन्ति, पुनः प्रदेशवृद्ध्या तस्यैवायोग्यानां असंख्येया इति, अयोग्यत्वं चाल्पपरमाणुनिर्वृत्तत्वात् प्रभूतप्रदेशावगाहित्वाच्च, मनोद्रव्यादीनामप्येवमेवायोग्ययोग्यायोग्यलक्षणं त्रयं त्रयमायोजनीयमिति। एवं सर्वत्र भावना कार्या, 'परं परं सूक्ष्मं' 'प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं' (प्राक्तैजसात्) इति (तत्त्वार्थे अ० २ सूत्रे ३८–३९) वचनात्, कालतो भावतश्च वर्गणा दिग्मात्रतो दर्शिता एवेति गाथार्थः ॥ ३९ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—तत्रानन्तरगाथायां कर्मद्रव्यवर्गणाः[1] प्रतिपादिताः, साम्प्रतं प्रदेशोत्तरवृद्ध्या तदग्रहणप्रायोग्याः प्रदर्श्यन्ते—क्रियत इति कर्म, कर्मण उपरि कर्मोपरि, ध्रुवेति—ध्रुववर्गणा अनन्ता भवन्ति, ध्रुववर्गणा इति ध्रुवा नित्याः सर्वकालावस्थायिन्य इति भावार्थः, 'इतरा' इति प्रदेशवृद्ध्या ततोऽनन्ता एवाध्रुववर्गणा अनन्ता भवन्ति, 'अध्रुवा' इति अशाश्वत्यः, कदाचिन्न सन्त्यपीत्यर्थः, ततः 'शून्या' इति सूचनात्[3]सूत्रमितिकृत्वा शून्यान्तरवर्गणाः परिगृह्यन्ते, शून्यान्यन्तराणि यासां ताः शून्यान्तराः शून्यान्तराश्च ता वर्गणाश्चेति समासः, एतदुक्तं भवति—एकोत्तरवृद्ध्या व्यवहितान्तरा इति, ता अपि चानन्ता एव, तथा 'इतरेति' इतरग्रहणादशून्यान्तराः परिगृह्यन्ते, न शून्यानि अन्तराणि यासां ता अशून्यान्तराः, अशून्यान्तराश्च ता वर्गणाश्चेति विग्रहः, अशून्यान्तरवर्गणा अव्यवहितान्तरा इत्यर्थः, ता अपि च प्रदेशोत्तरवृद्ध्या खल्वनन्ता एव भवन्ति, ततः 'चतुरिति' चैतस्रः ध्रुवाश्च

१ द्वयोरभिधानं प्रसङ्गात्. २ अष्टानां वर्गणानामन्त्ये तद्भावात्. ३ सूत्रं सूचनकृदिति सूत्रलक्षणात्. ४ तस्याश्रुटिसंभवे सत्येव भिन्नवर्गणारम्भः, अन्यद्वा किञ्चिद्वर्णादिपरिणामवैचित्र्यं तदारम्भे कारणम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ ३५ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

ता अनन्तराश्च ध्रुवानन्तराः प्रदेशोत्तरा एव वर्गणा भवन्ति,ततः 'तनुवर्गणाश्च' तनुवर्गणा इति, किमुक्तं भवति ?–भेदाभेदपरिणामाभ्यामौदारिकादियोग्यताऽभिमुखा इति, अथवा मिश्राचित्तस्कन्धद्वययोग्यास्ताश्चतस्र एव भवन्ति, ततो 'मिश्र' इति मिश्रस्कन्धो भवति, सूक्ष्म एवेषद्बादरपरिणामाभिमुखो मिश्रः, 'तथा' इति आनन्तर्ये 'अचित्त' इति अचित्तमहास्कन्धः, स च विश्रसापरिणामविशेषात् केवलिसमुद्घातगत्या लोकमापूरयन्नुपसंहरंश्च भवतीति । आह—अचित्तत्वाव्यभिचारात्तस्याचित्तविशेषणानर्थक्यमिति, न, केवलिसमुद्घातसचित्तकर्मपुद्गललोकव्यापिमहास्कन्धव्यवच्छेदपरत्वात् विशेषणस्येति, अयमेव सर्वोत्कृष्टप्रदेश इति केचिद् व्याचक्षते, न चैतदुपपत्तिक्षमं, यस्मादुत्कृष्टप्रदेशोऽवगाहनास्थितिभ्यां असंख्येयभागहीनादिभेदाद् चतुःस्थानपतित उक्तः, तथा चोक्तं–"उक्कोसपएसिआणं भंते ! केवइआ पज्जवा पण्णत्ता ?, गोयमा ! अणन्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! उक्कोसपएसिए उक्कोसपएसिअस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए-वि तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीएवि ४, वण्णरसगन्ध अट्ठहि अ फासेहि छट्ठाणवडिए" । अयं पुनस्तुल्य एव, अष्टस्पर्शश्चासौ पठ्यते, चतुःस्पर्शश्च अयमिति, अतोऽन्येऽपि सन्तीति प्रतिपत्तव्यं, इत्यलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥४०॥

---

१ केवलिसमुद्घातावसरे प्रतिप्रदेशं आत्मगृहीतत्वात् सचित्तता कर्मपुद्गलानां, चतुर्थसमयापेक्षया लोकव्यापकता, निस्संबद्धत्वाभावान्महास्कन्धता. २ अचित्तमहास्कन्धः ३ संख्येयभागासंख्येयगुणसंख्येयगुणग्रहः ४ उत्कृष्टप्रदेशिकानां भदन्त ! कियन्तः पर्यवाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! अनन्ताः, तत्केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते ?, गौतम ! उत्कृष्टप्रदेशिक उत्कृष्टप्रदेशिकस्य द्रव्यार्थतया तुल्यः प्रदेशार्थतयापि तुल्यः अवगाहनया चतुःस्थानपतितः स्थित्याऽपि, वर्णरसगन्धैरष्टभिः स्पर्शैश्च षट्स्थानपतितः ५ वर्गणात्वात् परैस्तथाविधैरचित्तमहास्कन्धैः अवगाहनास्थितिभ्यां. ६ उत्कृष्टप्रदेशिकः ७ अचित्तमहास्कन्धः ८ महान्तः स्कन्धाः.

॥ ३५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

प्राक् 'तैजसभाषाद्रव्याणामन्तराले गुरुलघ्वगुरुलघु च जघन्यावधिप्रमेयं द्रव्यं' इत्युक्तं, नौदारिकादिद्रव्याणि, साम्प्रतमौदारिकादीनां द्रव्याणां यानि गुरुलघूनि यानि चागुरुलघूनि तानि दर्शयन्नाह—

ओरालिअवेउव्विअआहारगतेअ गुरुलहू दव्वा। कम्मगमणभासाई, एआइ अगुरुलहुआइं ॥ ४१ ॥

व्याख्या—पदार्थस्तु औदारिकवैक्रियाहारकतैजसद्रव्याणि गुरुलघूनि, तथा कार्मणमनोभाषादिद्रव्याणि च अगुरुलघूनि निश्चयनयापेक्षयेति गाथार्थः ॥ ४१ ॥ वक्ष्यमाणगाथाद्वयसंबन्धः—पूर्वं क्षेत्रकालयोरवधिज्ञानसंबन्धिनोः केवलयोः अङ्गुलावलिकाऽसंख्येयादिविभागकल्पनया परस्परोपनिर्बन्ध उक्तः, साम्प्रतं तयोरेवोक्तलक्षणेन द्रव्येण सह परस्परोपनिबन्धमुपदर्शयन्नाह—

संखिज्ज मणोदव्वे, भागो लोगपलियस्स बोद्धव्वो। संखिज्ज कम्मदव्वे, लोए थोवूणगं पलियं ॥ ४२ ॥

तेयाकम्मसरीरे, तेआदव्वे अ भासदव्वे अ। बोद्धव्वमसंखिज्जा, दीवसमुद्दा य कालो अ ॥ ४३ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—संख्यायत इति संख्येयः, मनसः संबन्धि योग्यं वा द्रव्यं मनोद्रव्यं तस्मिन् मनोद्रव्ये इति मनोद्रव्यपरिच्छेदके अवधौ, क्षेत्रतः संख्येयो लोकभागः, कालतोऽपि संख्येय एव, 'पलियस्स' पल्योपमस्य

१ तानि गुरुलघूनि अगुरुलघूनि चेति नोक्तमित्यर्थः। २ ग्रहणयोग्यतैजसेभ्यश्चतुःस्पर्शा इति कर्मप्रकृत्यादिषु, अग्रहणान्तरिता ग्रहणयोग्या वर्गणा इति च मतं तेषां, प्राग्ग्रहणयोग्याः पश्चात्पराः। अत्र तूभयाग्रहणयोग्या मध्ये तत एव तैजसासन्नानि गुरुलघूनि इतराणीतरथेत्युक्तिः ३ एतन्मते एकान्तगुरुलघुद्रव्याभावात्, व्यवहारनयापेक्षमेव गुरु लेष्टुः लघु दीप उभयं वायुरनुभयं व्योमेत्यादि. ४ परस्परोपलम्भदर्शनेन वृद्धिद्वारा. ५ परिणतं तथात्वेन. ६ आकाशस्थितं. * नास्तीदम् ३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'बोद्धव्यो' विज्ञेयः, प्रमेयत्वेनेति, एतदुक्तं भवति—अवधिज्ञानी मनोद्रव्यं पश्यन् क्षेत्रतो लोकस्य संख्येयभागं कालतश्च पल्योपमस्य जानीते इति, तथा संख्येया लोकपल्योपमभागाः 'कर्मद्रव्ये' इति कर्मद्रव्यपरिच्छेदकेऽवधौ प्रमेयत्वेन बोद्धव्या इति वर्त्तते, अयं भावार्थः—कर्मद्रव्यं पश्यन् लोकपल्योपमयोः पृथक् पृथक् संख्येयान् भागान् जानीते, 'लोके' इति चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकविषयेऽवधौ क्षेत्रतः कालतः स्तोकैं*न्यूनं पल्योपमं प्रमेयत्वेन बोद्धव्यं इति वर्त्तते, इदमत्र हृदयं—समस्तं लोकं पश्यन् क्षेत्रतः कालतः देशोनं पल्योपमं पश्यति, द्रव्योपनिबन्धनक्षेत्रकालाधिकारे प्रक्रान्ते केवलयोर्लोकपल्योपमक्षेत्रकालयोर्ग्रहणं अनर्थकमिति चेत्, न, इहापि सामर्थ्यप्रापितत्वाद् द्रव्योपनिबन्धनस्यै, अत एव च तदुपर्यपि ध्रुववर्गणादि द्रव्यं पश्यतः क्षेत्रकालवृद्धिरनुमेयेति गाथार्थः ॥ ४२ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—तेजोमयं तैजसं, शरीरशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, 'तैजसशरीरे' तैजसशरीरविषयेऽवधौ क्षेत्रतोऽसंख्येया द्वीपसमुद्राः प्रमेयत्वेन बोद्धव्या इति, कालश्च असंख्येय एव, मिथ्यादर्शनादिभिः क्रियत इति कर्म—ज्ञानावरणीयादि तेन निर्वृत्तं तन्मयं वा कार्मणं, शीर्यते इति शरीरं, कार्मणं च तच्छरीरं चेति विग्रहः तस्मिन्नपि तैजसवद्वक्तव्यं, एवं तैजसद्रव्यविषये चावधौ भाषाद्रव्यविषये च क्षेत्रतो 'बोद्धव्या' विज्ञेयाः, संख्यायन्त इति संख्येया न संख्येया असंख्येयाः, द्वीपाश्च समुद्राश्च

॥ ३६ ॥

---

१ पूर्वं क्षेत्रकालयोर्वृद्धिव्याप्तिर्दर्शिता परं द्रव्येण तां दर्शनाय प्रक्रान्तं प्रकरणं. २ द्रव्यव्याप्तेः, क्षेत्रकालवृद्धौ द्रव्याणां अवश्यं वृद्धेः सामर्थ्यप्रापणं, काले चउण्ह वुड्ढीत्यनेन निर्णीता च सा प्राक्, ३ सामर्थ्यप्रापितत्वात्, द्रव्यपरिच्छेदवृद्धेः क्षेत्रकालवृद्धिनियमः, सफलं च त्रयोपनिबन्धप्रकरणमेवं. ४ वक्ष्यति विशेषोऽसंख्येयगतोऽग्रे अत्र चासंख्येयेत्यादिना. * स्तोकान्यूनं १-५-६ + ०पनिबन्धेन ५-६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

द्वीपसमुद्राः, प्रमेयत्वेनेति, कालश्चासंख्येय एव, स च पल्योपमा*संख्येयभागसमुदायमानो विज्ञेय इति, (ग्रन्थाग्रम् १०००)। अत्र चासंख्येयत्वे सत्यपि यथायोगं द्वीपाद्यल्पबहुत्वं सूक्ष्मेतरद्रव्यद्वारेण विज्ञेयमिति। आह–एवं सति 'तेयाभासादव्वाण अन्तरा एत्थ लहइ पट्ठवओ' (गाथा ३८) इत्याद्युक्तं तस्य च तैजसभाषान्तरालद्रव्यदर्शिनोऽप्यङ्गुलावलिकाऽसंख्येयभागादि क्षेत्रकालप्रमाणमुक्तं तद्विरुध्यते, तैजसभाषाद्रव्ययोरसंख्येयक्षेत्रकालाभिधानात्, न, प्रारम्भकस्योभयायोग्यद्रव्यग्रहणात्, द्रव्याणां च विचित्रपरिणामत्वाद् यथोक्तं क्षेत्रकालप्रमाणमविरुद्धमेव, अल्पद्रव्याणि वाऽधिकृत्य तदुक्तं, प्रचुरतैजसभाषाद्रव्याणि पुनरङ्गीकृत्येदं, अलं विस्तरेणेति गाथार्थः ॥ ४३ ॥ आह—जघन्यावधिप्रमेयं प्रतिपादयता गुरुलघु अगुरुलघु वा द्रव्यं पश्यतीत्युक्तं, न सर्वमेवं, विमध्यमावधिप्रमेयमपि चाङ्गुलावलिकासंख्येयभागाद्यभिधानात् न सर्वद्रव्यरूपं, तत्रस्थानामेव दर्शनात्, अत उत्कृष्टावधेरपि किमसर्वद्रव्यरूपमेवालम्बनं आहोस्विन्नेति, इत्यत्रोच्यते+—

एगपएसोगाढं परमोही लहइ कम्मगसरीरं। लहइ य अगुरुयलघु†अं, तेयसरीरे भवपुहुत्तं ॥ ४४ ॥

व्याख्या—प्रकृष्टो देशः प्रदेशः एकश्चासौ प्रदेशश्चैकप्रदेशः तस्मिन् अवगाढं, अवगाढमिति व्यवस्थितं, एकप्रदेशाव-

---

१ तैजसद्रव्येभ्यः कार्मणानि सूक्ष्माणि, अबद्धेभ्यस्तैजसकार्मणेभ्यो बद्धानि स्थूलानि ततः पृथग् वचनं. २ तथा च नासंख्यक्षेत्रकालपरिच्छेदप्रसङ्गः. ३ सूक्ष्मेतरद्वारेण प्रसङ्गापादने आह—द्रव्येत्यादि, उभयायोग्यद्रव्येभ्यः तैजसभाषाद्रव्याणां यथायथं सूक्ष्मस्थूलत्वात् वैचित्र्यपर्यन्तानुधावनम्. ४ परिस्थूरन्यायात्काले चतुर्णां वृद्धिरित्युक्तेश्च व्याघातापत्तावाह-अल्पेत्यादि, तथा च स्तोकन्यूनतेजोभाषाद्रव्यग्रहणशक्तावेतावत्कालपरिज्ञानमिति तत्त्वं. ५ रूपिद्रव्यं. ६ प्रमेयं. ७ असंख्यातद्वीपोदधिसकललोकेऽप्यवधौ तत्रस्थितानां रूपिणां दर्शनात्. ८ सामस्त्येन, अन्यथाधिकप्रदेशावगाढानामप्येकावगाहनाऽस्त्येव. * पल्योपमसं० ४. + अत्रोच्यते २-४. † अगुरुलहुअं १-३.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ ३७ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः

गाढं परमाणुद्व्यणुकादि द्रव्यं, परमश्चासाववधिश्च परमावधिः उत्कृष्टावधिरित्यर्थः, 'लभते' पश्यति, अवध्यवधिमतोरभेदोपचारादवधिः पश्यतीत्युक्तं, तथा कार्मणशरीरं च लभते, आह–परमाणुद्व्यणुकादि द्रव्यमनुक्तं कथं गम्यते तदालम्बनत्वेनेति, ततश्चोपात्तमेव कार्मणमिदं भविष्यति, न, तस्यैकप्रदेशावगाहित्वानुपपत्तेः, 'लभते चागुरुलघु' चशब्दात् गुरुलघु, जात्यपेक्षं चैकवचनं, अन्यथा हि सर्वाणि सर्वप्रदेशावगाढानि द्रव्याणि पश्यतीत्युक्तं भवति, तथा तैजसशरीरद्रव्यविषये अवधौ कालतो भवपृथक्त्वं परिच्छेद्यतयाऽवगन्तव्यमिति, एतदुक्तं भवति—यस्तैजसशरीरं पश्यति स कालतो भवपृथक्त्वं पश्यति इति, इह च य एव हि प्राक् तैजसं पश्यतः असंख्येयः काल उक्तः, स एव भवपृथक्त्वेन विशेष्यत इति । आह–नन्वेकप्रदेशावगाढस्यातिसूक्ष्मत्वात् तस्य च परिच्छेद्यतयाऽभिहितत्वात् कार्मणशरीरादीनामपि दर्शनं गम्यत एवेत्यतः तदुपन्यासवैयर्थ्यं, तथैकप्रदेशावगाढमित्यपि न वक्तव्यं, 'रूवगयं लभइ सव्वं' इत्यस्य वक्ष्यमाणत्वादिति, अत्रोच्यते, न सूक्ष्मं पश्यतीति नियमतो बादरमपि द्रष्टव्यं, बादरं वा पश्यता सूक्ष्ममिति, यस्मादुत्पत्तौ अगुरु-

१ आकाशप्रदेशेषु हि स्वभाव एष यद् यावदनन्ताणुकोऽपि स्कन्धोऽन्ये च तत्र मान्ति स्कन्धाः,. २ आपेक्षिकपरमत्वव्यवच्छेदाय, जघन्यस्यापि लब्ध्यपेक्षया परमत्वाद्क्षेत्रापेक्षया परमत्वदर्शनाय. ३ एकप्रदेशावगाढद्रव्यदर्शनसमुच्चयाय. ४ विशेष्यतया. ५ विशिष्य परमाणुद्व्यणुकादेरनिर्देशात्. ६ एकप्रदेशादि. ७ जीवेन परिणामिताः कर्मवर्गणापुद्गलाः नासंख्येयानन्तरेण प्रदेशान्,जीवावगाहाभावात्,इत्येकप्रदेशावगाढाः. ८ अगुरुलघुदर्शनेऽपि गुरुलघुदर्शननियमाभावात् चशब्देनाक्षेपः. ९ 'जातिश्च पुद्गललक्षणा, कार्मणान्तानामभिहितत्वात्' ध्रुववर्गणादिकागुरुलघुद्रव्यापेक्षयेत्यर्थः. १० धर्माधर्माकाशजीवानामपि अगुरुलघुत्वात्. ११ पल्योपमासंख्येयभागरूपः. १२ स्थूलत्वात्. १३ अग्रेतनगाथायां.

॥ ३७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

लघु पश्यन्न[1]पि न गुरुलघु उपलभ[2]ते, घटादि वा अतिस्थू[3]रमपि, तथा मनोद्रव्ये[4]विद[5]स्तेष्वेवं द[6]र्शनं नान्येष्व[7]तिस्थूरेष्वपि, एवं विज्ञानविषयवैचित्र्यसंभवे सति संशयापनोदार्थमेकप्रदेशावगाहिग्रहणे सत्यपि शेषविशेषोपदर्शनमदोषायैवेति । अथवा[8] एकप्रदेशावगाहिग्रहणात् परमाण्वादिग्रहणं कार्मणं[9] यावत्, तदुत्तरेषां चागुरुलघ्वभिधानात्[10], चशब्दात् गुरुलघूनां चौदारिकादीना[11]मित्येवं सर्वपुद्गलविशेष[12]विषयत्वमाविष्कृतं भवति[13], तथा चा[14]स्यैव नियमा[15]र्थं ‘रूपगतं लभते सर्वं’ इत्येतद् वक्ष्यमाणलक्षणमदुष्टमेवेति, ए[16]तदेव हि सर्वं रूपगतं, नान्यद् इति, अलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ ४४ ॥ एवं परमावधेर्द्रव्यमङ्गीकृत्य विषय उक्तः, साम्प्रतं क्षेत्रकालावधिकृत्योपदर्शयन्नाह—

परमोहि असंखिज्जा, लोगमित्ता समा असंखिज्जा । रूवगयं लहइ सव्वं, खित्तोवमिअं अगणिजीवा ॥ ४५ ॥

व्याख्या—परमश्चासाववधिश्च परमावधिः, अवध्यवधिमतोरभेदोपचाराद् असौ परमावधिः क्षेत्रतः ‘असंख्येयानि लोकमात्राणि, खण्डानीति गम्यते, लभत इति संबन्धः, कालतस्तु ‘समाः’ उत्सर्पिण्यवसर्पिणीरसंख्येया एव लभते, तथा द्रव्यतो ‘रूपगतं’ मूर्त्तद्रव्यजातमित्यर्थः, ‘लभते’ पश्यति ‘सर्वं’ परमाण्वादिभेदभिन्नं पुद्गलास्तिकायमेवेति, भावतस्तु वक्ष्यमाणाँस्तत्पर्यायान् इति । यदुक्तं ‘असंख्येयानि लोकमात्राणि खण्डानि परमावधिः पश्यतीति’ तत्क्षेत्रनियमना-

---

१ अवधिः. २ अगुरुलघ्वारम्भकापेक्षया. ३ घटादीनां गुरुलघुत्वादपि. ४ मनःपर्यायज्ञानिनः. ५ मनोद्रव्येषु. ६ ज्ञानं. ७ घटादिषु. ८ द्वितीयप्रश्नसमाधानाय. ९ ध्रुववर्गणादीनामचित्तमहास्कन्धान्तानां. १० ग्रहणं. ११ आदिना वैक्रियाहारकतैजसंग्रहः. १२ विशेषा भेदाः प्रकाराः. १३ परमावधेः. १४ विषयस्य. १५ पूर्वेण सिद्धत्वात्. १६ पूर्वगाथादर्शितमेकप्रदेशावगाढादि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

याह–उपमानं उपमितं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, क्षेत्रस्योपमितं क्षेत्रोपमितं, एतदुक्तं भवति—उत्कृष्टावधिक्षेत्रोपमानं, 'अग्निजीवाः' प्रागभिहिता एवेति, आह—'रूपगतं लभते सर्वं' इत्येतदनन्तरगाथायामर्थतोऽभिहितत्वात् किमर्थं पुनरुक्तमिति, अत्रोच्यते, उक्तः परिहारः, अथवा अनन्तरगाथायां 'एकप्रदेशावगाढं' इत्यादि परमावधेर्द्रव्यपरिमाणमुक्तं, इह तु 'रूपगतं लभते सर्वं' इति क्षेत्रकालद्वयविशेषणं, एतदुक्तं भवति–रूपिद्रव्यानुगतं लोकमात्रासंख्येयखण्डोत्सर्पिण्यवसर्पिणीलक्षणं क्षेत्रकालद्वयं लभते, न केवलं, अरूपित्वात्तस्य, रूपिद्रव्यनिबन्धनत्वाच्चावधिज्ञानस्येति गाथार्थः ॥ ४५ ॥ एवं तावत् पुरुषानधिकृत्य क्षायोपशमिकः खलु अनेकप्रकारोऽवधिरुक्तः, साम्प्रतं तिरश्चोऽधिकृत्य प्रतिपिपादयिषुराह—

आहारतेयलंभो, उक्कोसेणं तिरिक्खजोणीसु । गाउय जहण्णमोही, नरएसु उ जोयणुक्कोसो ॥ ४६ ॥

व्याख्या—तत्राहारतेजोग्रहणाद् औदारिकवैक्रियाहारकतेजोद्रव्याणि गृह्यन्ते, ततश्चाहारश्च तेजश्च आहारतेजसी तयोर्लाभ इति समासः, लाभः प्राप्तिः परिच्छित्तिरित्यनर्थान्तरं, इदमत्र हृदयं—तिर्यग्योनिषु योनियोनिमतामभेदोपचारात् तिर्यग्योनिकसत्त्वविषयो योऽवधिः तस्य द्रव्यतः खलु आहारतेजोद्रव्यपरिच्छेद उत्कृष्टत उक्तः, इत्थं द्रव्यानुसारेणैव क्षेत्रकालभावाः परिच्छेद्यतया विज्ञेया इति । इदानीं भवप्रत्ययावधिस्वरूपमुच्यते, स च सुरनारकाणामेव भवति,

१ उत्तरः. २ नास्मादन्यत् रूपगतमिति नियमनायेत्येवंरूपः. ३ विधिनियमयोर्विधिरेव ज्यायान् इति न्यायमपेक्ष्य विधेर्बलीयस्त्वाख्यानायाह–अथवेत्यादि. ४ अरूपित्वात् रूपिविषयश्चावधिरिति च निर्णीतमनेकशः. ५ क्षेत्रकालद्वयस्य. ६ मनुष्यान्, इत्यर्थः, परमोहिनाणविओ, केवलमंतोमुहुत्तमित्तेणेति (वि० ६८९) वचनात् परमावधेरा अन्तर्मुहूर्त्तात्केवलोत्पत्तिः, केवलं च नरगताचेव ७ चारित्रतपआदिगुणहेतुत्वात्. * य २–४–५.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

तत्र प्रथममल्प इतिकृत्वा नारकाणां प्रतिपाद्यत इति, अत आह—क्षेत्रतो 'गव्यूतं' परिच्छिनत्ति जघन्येनावधिः, क ?- नरान् कायन्तीति नरकाः, कै गै रै शब्दे इतिधातुपाठात् नरान् शब्दयन्तीत्यर्थः, इह च नरका आश्रयाः, आश्रयाश्रयिणोरभेदोपचारात्, नरकेषु तु योजनमुत्कृष्ट इत्याह, एतदुक्तं भवति—नारकाधारो योऽवधिः असौ उत्कृष्टो योजनं परिच्छिनत्ति क्षेत्रतः, इत्थं क्षेत्रानुसारेण द्रव्यादयस्तु अवसेया इति गाथार्थः ॥ ४६ ॥ एवं नारकजातिमधिकृत्य जघन्येतरभेदोऽवधिः प्रतिपादितः, साम्प्रतं रत्नप्रभादिपृथिव्यपेक्षया उत्कृष्टेतरभेदमभिधित्सुराह—

चत्तारि गाउयाइं, अद्धुट्ठाइं तिगाँउया चेव । अड्ढाइज्जा दुण्णि य, दिवड्ढमेगं च निरंएसु† ॥ ४७ ॥

व्याख्या—तत्र नरका इति नारकालयाः, ते च सप्तपृथिव्याधारत्वेन सप्तधा भिद्यन्ते, तत्र रत्नप्रभाद्याधारनरकेषु यथासंख्यमुत्कृष्टेतरभेदभिन्नावधेः क्षेत्रपरिमाणमिदं—'नरकेषु' इति सामर्थ्यात् तन्निवासिनो नारकाः परिगृह्यन्ते, तत्र रत्नप्रभाधारनरके उत्कृष्टावधिक्षेत्रं चत्वारि गव्यूतानि, जघन्यावधेरर्धचतुर्थानि, अर्धं चतुर्थस्य येषु तान्यर्धचतुर्थानि, एवं शर्कराप्रभाधारनरके परमावधिक्षेत्रमानं अर्धचतुर्थानि, इतरावधिक्षेत्रमानं तु त्रिगव्यूतं, त्रीणि गव्यूतानि त्रिगव्यूतं, एवं

१ आधारभेदादाधेयभेदात् सप्त पृथिव्य आधारो येषां ते तथा तत्त्वेनेति समासः. २ तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इतिन्यायात्. ३ व्यधिकरणबहुव्रीहेरपि दर्शनात् अन्यथाऽर्धचत्वारीतिभावात् ४ उत्कृष्टेति. ५ जघन्येति. * तिगाउयं. + नरएसु. † अद्धुट्ठाईयाइ जहण्णयं अद्धगाउयंताइं । जं गाउअंति भणिअं तंपिअ उक्कोसगजहण्णं ॥ १ ॥ [भाष्यगाथाऽव्याख्याता च].

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारक-देवादिनाम् अवधि-क्षेत्र दर्शयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ३९ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

सर्वत्र योऽयं यावन्महातमःप्रभाधारनरके उत्कृ*ष्टावधिक्षेत्रं गव्यूतं, जघन्यावधिक्षेत्रं चार्धगव्यूतमिति, रत्नप्रभाधारनरक इत्यादौ[1] जात्यपेक्षमेकवचनं, अ+निर्दिष्टस्यापि नवरं पदार्थगमनिका, अर्धं तृतीयस्य अर्धतृतीयानि, द्वे च, अधिकमर्धं यस्मिन् तद् अध्यर्धम् । आह—कुतः पुनरिदं ?, सामान्येन प्रतिपृथिव्याधारन†रकं उ[3]त्कृष्टमवधिक्षेत्रमुक्तं 'चत्वारि गव्यूतानि' इत्यादि, अर्धगव्यूतोनं[4] जघन्यमित्यवसीयते ?, उच्यते, सूत्रात्, तथा चोक्तं—"रयणप्पभापुढविनेरइयाणं[5] भंते ! केवइयं खित्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?, गोयमा ! जहण्णेणं अद्धुट्ठाइं गाउयाइं उक्कोसेणं चत्तारि, एवं जाव महातमपुढविनेरइया‡णं ? गोयमा ! जहण्णेणं अद्धगाउयं उक्कोसेणं गाउ§यं", आह—यद्येवं 'गा¶ऊ जहण्णमोही णरएसु तु' (४६) इत्येतद्व्याहन्य[6]ते, अत्रोच्यते, उत्कृष्टजघन्यापेक्षया तदभिधानाददोषः, इदमत्र हृदयम्—उत्कृष्टानामेव सप्तानामपि रत्नप्रभाद्यवधीनां ‖गव्यूतक्षेत्रपरिच्छित्तिकृत् अवधिर्जघन्य इत्यलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ ४७ ॥ एवं नारकसंबन्धिनो[8] भवप्रत्ययावधेः स्वरूपमभिधायेदानीं विबुधसंबन्धिनः[7] प्रतिपिपादयिषुरिदं गाथा$त्रयं जगाद—

सक्कीसाणा पढमं, दुच्चं च सणंकुमारमाहिंदा । तच्चं च बंभलंतग, सुक्कसहस्सारय चउत्थीं ॥ ४८ ॥

---

१ नरकेष्वितिपदव्याख्याने स्वनिरूपितपदे. २ तद्वृत्तिधर्मवत्तामपेक्ष्येति. ३ आश्रित्येति शेषः. ४ स्वस्वोत्कृष्टापेक्षया. ५ रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिका भदन्त ! कियत् क्षेत्रमवधिना जानन्ति पश्यन्ति ?, गौतम ! जघन्येनार्धतृतीयानि गव्यूतानि उत्कृष्टेन चत्वारि, एवं यावन्महातमःप्रभापृथ्वीनैरयिकाणां ? गौतम ! जघन्येनार्धगव्यूतं उत्कृष्टेन गव्यूतं. ६ विरुध्यते इति. ७ विशेषणं भवेत्यादेः, तच्च देवसंबन्धिव्यवच्छेदाय. ८ भवप्रत्ययावधेः स्वरूपमिति. * परमावधेः. + अतिदिष्ट०. † नारकं. ‡ णं पुच्छा. § गाउयंतं. ¶ गाउय०. ‖ स गव्यू०. $ त्रितयं.

॥ ३९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आणयपाणयकप्पे, देवा पासंति पंचमिं पुढ*वीं । तं चेव आरणच्चुय ओहीनाणेण पासंति ॥ ४९ ॥

छट्ठिं हिट्ठिममज्झिमगेविज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला । संभिण्णलोगनालिं, पासंति अणुत्तरा देवा ॥ ५० ॥

तत्र प्रथमगाथाव्याख्या–शक्रश्चेशानश्च शक्रेशानौ तत्र 'शक्रेशानाविति' शक्रेशानोपलक्षिताः सौधर्मेशानकल्पनिवासिनो देवाः सामा¹निकादयः परिगृह्यन्ते, ते ह्यवधिना प्रथमां रत्नप्रभाभिधानां पृथिवीं 'पश्यन्ति' इति क्रियां द्वितीयगाथायां वक्ष्यति, तथा 'द्वितीयां च' पृथिवीमित्यनुवर्त्तते, 'सनत्कुमारमाहेन्द्राविति' सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवाधिपोपलक्षिताः तत्कल्पनिवासिनस्त्रिदशा एव सामानिकादयो गृह्यन्ते, ते हि द्वितीयां पृथिवीमवधिना पश्यन्ति, तथा तृतीयां च पृथिवीं ब्रह्मलोकलान्तकदेवेशोपलक्षिताः तत्कल्पनिवासिनो विबुधाः सामानिकादयः पश्यन्ति, तथा शुक्रसहस्रारसुरनाथोपलक्षिताः खल्वन्येऽपि तत्कल्पनिवासिनो देवाश्चतुर्थीं पृथिवीं पश्यन्तीति गाथार्थः ॥ ४८ ॥ द्वितीयगाथा व्याख्यायते–आनतप्राणतयोः कल्पयोः संबन्धिनो देवाः पश्यन्ति पञ्चमीं पृथ्वीं, तामेव आरणाच्युतयोः सम्बन्धिनो देवा अवधिज्ञानेन पश्यन्ति, स्वरूपके²थनमेवेदं, विमलत³रां बहुतरां चेति गाथार्थः ॥४९॥ तृतीयगाथा व्याख्यायते—लोकपुरुषग्रीवास्थाने भवानि ग्रैवेयकानि(णि) विमानानि,तत्र †अधस्त्यमध्यमग्रैवेयकनिवासिनो देवा अधस्त्यमध्यमग्रैवेयकाः,ते हि षष्ठीं पृथिवीं तमोऽभिधानामवधिना पश्यन्तीति योगः, तथा सप्तमीं च पृथिवीमुपरितनग्रैवेयकनिवासिन इति, तथा 'संभिन्नलोकनाडीं' चतुर्दशरज्ज्वात्मिकां कन्यकाचोलकसंस्थानामवधिना पश्यन्ति, अनुत्तरविमानवासिनोऽनुत्तराः, तत्र एके-

१ इन्द्राणां कल्पेनोक्तेः. २ व्यवच्छेद्याभावात् पूर्वयोरेतां यावद्दर्शनोक्तेश्च. ३ प्रतिपादनं यन्नेदेन तत्फलं. * पुढविं. + आध०. † आध०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

न्द्रियादयोऽपि भवन्ति तद्व्यवच्छेदार्थमाह—'देवाः'। एवं क्षेत्रानुसारतो द्रव्यादयोऽप्यवसेयाः इति गाथार्थः ॥ ५० ॥ एवमधो वैमानिकावधिक्षेत्रप्रमाणं प्रतिपाद्य साम्प्रतं तिर्यगूर्ध्वं च तदेवं दर्शयन्नाह—

एएसिमसंखिज्जा, तिरियं दीवा य सागरा चेव। बहुअअरं उवरिमगा, उड्ढं* सगकप्पथूभाई ॥ ५१ ॥

व्याख्या—'एतेषां' शक्रादीनां, संख्यायन्त इति संख्येयाः न संख्येया असंख्येयाः, तिर्यग्, द्वीपाश्च—जम्बूद्वीपादयः, सागराश्च लवणसागरादयः क्षेत्रतोऽवधिपरिच्छेद्यतया अवसेयाः इति वाक्यशेषः, तथा उक्तलक्षणात्—असंख्येयद्वीपोदधिमानात् क्षेत्रात् बहुतरं, उपरिमा एव उपरिमका उपर्युपरिवासिनो देवाः, खल्ववधिना क्षेत्रं पश्यन्तीति वाक्यशेषः, तथा ऊर्ध्वं स्वकल्पस्तूपाद्येव यावत् क्षेत्रं पश्यन्ति, आदिशब्दाद् ध्वजादिपरिग्रहः इति गाथार्थः ॥ ५१ ॥ इत्थं वैमानिकानां अवधिक्षेत्रमानमभिधाय इदानीं सामान्यतो देवानां प्रतिपादयन्नाह—

संखेज्जजोयणा खलु, देवाणं अद्धसागरे ऊणे। तेण परमसंखेज्जा, जहण्णयं पंचवीसं+ तु ॥ ५२ ॥

व्याख्या—संख्येयानि च तानि योजनानि चेति विग्रहः, खलुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, अस्य चोभयथा संबन्धमुपदर्शयिष्यामः 'देवानां' 'अर्धसागरे' इति अर्धसागरोपमे न्यूने आयुषि सति संख्येययोजनान्येव अवधिक्षेत्रमिति। अर्धसागरोपमन्यून एव आयुषि सति, 'ततः परं' अर्धसागरोपमादावायुषि सति असंख्येयानि योजनानि अवधिक्षेत्रं

१ प्रमाणमवधेः. २ शक्राद्युपलक्षितानां तत्तत्कल्पवासिसामानिकादीनामित्युक्तमेव प्राक्. * उड्ढं च सकप्प०. + पणवीसं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वैमानिकवर्जदेवानां सामान्यत इति । विशेषतस्तु ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च संस्थानविशेषादवसेयमिति । तथा जघन्यकमवधिक्षेत्रं देवानामिति[3] वर्त्तते, 'पञ्चविंशतिः' तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् पञ्चविंशतिरेव योजनानि, एतच्च दशवर्षसहस्रस्थितीनामवसेयं, भवनपतिव्यन्तराणामिति, ज्योतिष्काणां त्वसंख्येयस्थितित्वात् संख्येययोजनान्येव जघन्येतरभेदमवधिक्षेत्रमवसेयमिति, वैमानिकानां तु जघन्यमङ्गुलासंख्येयभागमात्रमवधिक्षेत्रं, तच्चोपपातकाले परभवसंबन्धिनमेवावधिमधिकृत्येति, उत्कृष्टमुक्तमेव 'संभिण्णलोगनालिं, पासंति अणुत्तरा देवा' (५१) इत्यलमतिविस्तरेणेति गाथार्थः ॥ ५२ ॥ साम्प्रतमयमेवावधिः येषां सर्वोत्कृष्टादिभेदभिन्नो भवति, तान्प्रदर्शयन्नाह—

उक्कोसो मणुएसुं, मणुस्सतिरिएसु† य जहण्णो य । उक्कोस लोगमित्तो, पडिवाइ‡ परं अपडिवाई ॥ ५३ ॥

व्याख्या—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्चोत्कृष्टोऽवधिः मनुष्येषु एव, नामरादिषु, तथा मनुष्याश्च तिर्यञ्चश्च मनुष्यतिर्यञ्चः तेषु मनुष्यतिर्यक्षु च जघन्य¶ः, चशब्द एवकारार्थः, तस्य चैवं प्रयोगः—मनुष्यतिर्यक्ष्वेव जघन्यो, न नारकसुरेषु, तत्र उत्कृष्टो लोकमात्र एव अवधिः, प्रतिपतितुं शीलमस्येति प्रतिपाती, ततः परमप्रतिपात्येव, लोकमात्रादावधि-

१ प्राक् प्रतिपादितत्वाद्वैमानिकानामवधेर्नात्र तदधिकारः. २ तत्र चतुर्णामपि निकायानां, तत्र वैमानिकानां, पृथगभिधानाभावात्. ३ द्वितीयपादात्. ४ तेषां जघन्येतरस्थित्योरर्धसागरोपमात् न्यूनत्वात्.५ तथा च देवानां सर्वजघन्यावधिनिषेधेऽपि न क्षतिः, भवप्रत्ययावधेः पश्चाद्भावात्, तस्य चोक्तमानत्वात्. ६ वैमानिकावधिषु अनुत्तरोपपातिकावधेरेवोत्कृष्टत्वात् केवलमेतन्निर्दिष्टं. ७ भवगुणप्रत्ययसाधारणोऽवधिरिति. ८ संभिण्णलोगनाडिं पासंति अणुत्तरा देव इति सूत्रेण सव्वबहुअगणिजीआ इत्यनेन च. * कृत्य. + तान्दर्श०. † तेरिच्छिएसु य जहण्णो. ‡ पडिवाई. ¶ जघन्यतः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ४१ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

माने प्रतिपादिते प्रसङ्गतः प्रतिपात्यप्रतिपातिस्वरूपाभिधानमदोषायैवेति गाथार्थः ॥ ५३ ॥ उक्तं क्षेत्रपरिमाणद्वारं, साम्प्रतं संस्थानद्वारं व्याचिख्यासयेदमाह—

थिबुयायार जहण्णो, वट्टो उक्कोसमायओ किंची। अजहण्णमणुक्कोसो य खित्तओ णेगसंठाणो ॥ ५४ ॥

व्याख्या—'स्तिबुक' उदकबिन्दुः तस्येवाकारो यस्यासौ स्तिबुकाकारः, जघन्योऽवधिः। तमेव स्पष्टयन्नाह—'वृत्तः' सर्वतो वृत्त इत्यर्थः, पनकक्षेत्रस्य वर्त्तुलत्वात्। तथा उत्कृष्ट आयतः प्रदीर्घः 'किञ्चित्' मनाक् वह्निजीवश्रेणिपरिक्षेपस्य स्वदेहानुवृत्तित्वात्, तथा 'अजघन्योत्कृष्टश्च' न जघन्यो नाप्युत्कृष्टः अजघन्योत्कृष्ट इति। चशब्दोऽवधारणे, अजघन्योत्कृष्ट एव, 'क्षेत्रतोऽनेकसंस्थानः' अनेकानि संस्थानानि यस्यासावनेकसंस्थान इति गाथार्थः ॥ ५४ ॥ एवं तावज्जघन्येतरावधिसंस्थानमभिहितं, साम्प्रतं विमध्यमावधिसंस्थानाभिधित्सयाऽऽह—

***तप्पागारे १ पल्लग २ पडहग ३ झल्लरि ४ मुइंग ५ पुप्फ ६ जवे ७।**
तिरियमणुएसु ओही, नाणाविहसंठिओ भणिओ ॥ ५५ ॥

व्याख्या—'तप्रः' उडुपकः तस्येवाकारो यस्यासौ तप्राकारः, तथा पल्लको नाम लाटदेशे धान्यालयः, आकारग्रहणम-

१ स्मृतस्योपेक्षानर्हत्वं हि प्रसङ्गत्वं. २ विनेयानां बोधविशेषोत्पादनात् प्रस्तुतेऽवधिमाने. ३ पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् जीवदेहेति, अन्यथा पञ्चमस्यानादेशस्याभ्युपगमापत्तेः, न चैवं स्वदेहेत्यनेन विरोधोऽपि. * नेरइय १ भवण २ वणयर ३ जोइस ४ कप्पालयाण ५ सोहिस्स। गेविज्ज ६ णुत्तराण ७ य, हुंतागिइओ जहासंखं ॥ १ ॥ भवणवइवणयराणं उड्ढं बहुओ अहोऽवसेसाणं। नारयजोइसिआणं, तिरिअं ओरालिओ चित्तो ॥ २॥ (भाष्यकृत्कृते अव्याख्याते).

॥ ४१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ अवधे: संस्थानं कथयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नुवर्त्तते, तस्येवाकारो यस्यासौ पल्लकाकारः, एवमाकारशब्दः प्रत्येकमभिसंबन्धनीयः इति, पटह एव पटहकः—आतोद्यविशेषः, तथा चर्मावनद्धा विस्तीर्णवलयाकारा झल्लरी आतोद्यविशेषः एव, तथा ऊर्ध्वायतोऽधो विस्तीर्ण उपरि च तनुः, मृदङ्गः आतोद्यविशेष एव । 'पुप्फेति' 'सूचनात्सूत्रं' इतिकृत्वा पुष्पशिखावलिरचिता चङ्गेरी पुष्पचङ्गेरी परिगृह्यते, 'यव' इति यवनालकः, स च कन्याचोलकोऽभिधीयते, अयं भावार्थः—तप्राकारादिरवधिर्यवनालकाकारपर्यन्तो यथासंख्यं नारकभवनपतिव्यन्तरज्योतिष्ककल्पोपपन्नकल्पातीतग्रैवेयकानुत्तरसुराणां सर्वकालनियतोऽवसेयः, तिर्यङ्नराणां भेदेन नानाविधाभिधानाद्, आह च—तिर्यञ्चश्च मनुष्याश्च तिर्यग्मनुष्याः तेषामवधिः नानाविधसंस्थानसंस्थितो–नानाविधसंस्थितः, संस्थानशब्दलोपात्, स्वयंभूरमणजलधिनिवासिमत्स्यगणवत्, अपितु तत्रापि वलयं निषिद्धं मत्स्यसंस्थानतया, अवधिस्तु तदाकारोऽपीति 'भणितः' उक्तः अर्थतस्तीर्थकरैः सूत्रतो गणधरैरिति, अयं च भवनव्यन्तराणां ऊर्ध्वं बहुर्भवति, अवशेषाणां तु सुराणामधो, ज्योतिष्कनारकाणां तु तिर्यक्, विचित्रस्तु नरतिरश्चामिति गाथार्थः ॥ ५५ ॥

उक्तं संस्थानद्वारं, साम्प्रतमानुगामुकद्वारार्थप्रचिकटयिषयेदमाह—

*अणुगामिओ उ+ ओही, नेरइयाणं तहेव देवाणं । अणुगामी† अणणुगामी, मीसो य मणुस्सतेरिच्छे ॥ ५६ ॥

व्याख्या—अनुगमनशील ‡आनुगामुकः, लोचनवद्, तुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, आनुगामुक एव अवधिः, केषामित्यत आह—नरान् कायन्तीति नरकाः—नारकाश्रयाः तेषु भवा नारका इति, तेषां नारकाणां, 'तथैव' आनुगामुक

* आ०. + अ. † अणुगामि. ‡ अनु.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

एव, दीव्यन्तीति देवास्तेषामिति । तथा आनुगामुकः, अननुगमनशीलोऽनैनुगामुकः स्थितप्रदीपवत्, तथा एकदेशानुगमनशीलो मिश्रः, देशान्तरगतपुरुषैकलोचनोपघातवत्, चशब्दः समुच्चयार्थः, मिश्रश्च, मनुष्याश्च तिर्यञ्चश्च मनुष्यतिर्यञ्चस्तेषु मनुष्यतिर्यक्षु योऽवधिः स एवंविधस्त्रिविध इति गाथार्थः ॥ ५६ ॥ व्याख्यातमानुगामुकद्वारं, इदानीमवस्थितद्वारावयवार्थप्रतिपादनाय गाथाद्वयमाह—

खित्तस्स अवट्ठाणं, तित्तीसं सागरा उ कालेणं । दव्वे भिण्णमुहुत्तो, पज्जवलंभे य सत्तट्ठ ॥ ५७ ॥

अद्धाइ अवट्ठाणं, छावट्ठी सागरा उ कालेणं । †उक्कोसगं तु एयं, इक्को समओ जहण्णेणं ॥ ५८ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—अवस्थितिरवस्थानं तदू अवधेराधारोपयोगलब्धितश्चिन्त्यते, तत्र क्षेत्रमस्याधार इतिकृत्वा क्षेत्रस्य संबन्धि तावदवस्थानमुच्यते—तत्राविचलितः सन् 'त्रयस्त्रिंशत्सागराः' इति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यवतिष्ठते अनुत्तरसुराणां, तुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, त्रयस्त्रिंशदेव, 'कालेनेति' कालतः कालमधिकृत्य 'अर्थाद्विभक्तिपरिणामः' । तथा 'दव्वे' इति द्रवति गच्छति ताँस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं तस्मिन् द्रव्ये–द्रव्यविषयं उपयोगावस्थानमवधेः, भिन्नश्चासौ मुहूर्त्तश्चेति समासः, अवनं अवः परि अवः पर्यवः तस्य लाभः पर्यवलाभः तस्मिंश्च पर्यवलाभे च–पर्यवप्राप्तौ चावधेरुपयोगावस्थानं सप्ताष्टौ वा समया इति । अन्ये तु व्याचक्षते—पर्यायेषु सप्त, गुणेषु अष्टेति, सहवर्त्तिनो गुणाः शुक्लत्वादयः, क्रमवर्त्तिनः पर्याया नवपुराणादयः, यथोत्तरं च द्रव्यगुणपर्यायाणां सूक्ष्मत्वात् स्तोकोपयोगता इति गाथार्थः ॥५७॥ ॥ ४२ ॥

१ उक्तमानुगामुकद्वारमधुनाऽवस्थितद्वारमाह * नानु०. + स एवावधि०. † उक्कोसओ उ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

द्वितीयगाथाव्याख्या—इह लब्धितोऽवस्थानं चिन्त्यते–अद्धा–अवधिलब्धिकालः, अत्र[*] अद्धायाः–कालतोऽवस्थानं अवधेर्लब्धिमङ्गीकृत्य तत्र चान्यत्र[+] क्षेत्रादौ[1] 'षट्षष्टिसागरा' इति षट्षष्टिसागरोपमाणि, तुशब्दस्य विशेषणार्थत्वात् मनागधिकानि 'कालेनेति' कालतः उत्कृष्टमेवेदं कालतोऽवस्थानमिति । जघन्यमवस्थानमाह–तत्र द्रव्यादावप्येकः समयो जघन्येनावस्थानमिति, तत्र मनुष्यतिरश्चोऽधिकृत्य सप्रतिपातोपयोग[†]तो[2]ऽविरुद्धमेव, देवनारकाणामपि चरमसमयसम्यक्त्वप्रतिपत्तौ सत्यां विभङ्गस्यैवावधिरूपापत्तेः, तदनन्तरं[3] च्यवनाच्चाविरोध इति गाथार्थः ॥ ५८ ॥ एवं तावदवस्थितद्वारमभिधाय इदानीं चलद्वाराभिधित्सयाऽऽह—

वुड्ढी वा हाणी वा, चउव्विहा होइ खित्तकालाणं । दव्वेसु होइ दुविहा, छव्विह पुण पज्जवे होइ ॥ ५९ ॥

व्याख्या—तत्र चलो ह्यवधिः वर्धमानः क्षीयमाणो वा भवति, सा च वृद्धिर्हानिर्वा चतुर्विधा भवति क्षेत्रकालयोः, तथा चाभ्यधायि परमगुरुणा–"असंखेज्जभागवुड्ढी वा संखेज्जभागवुड्ढी वा संखेज्जगुणवुड्ढी वा असंखेज्जगुणवुड्ढी वा,"[4] एवं हानिरपि, न तु अनन्तभागवृद्धिरनन्तगुणवृद्धिर्वा, एवं हानिरपि, क्षेत्रकालयोरनन्तयोरदर्शनात्, तथा द्रव्येषु भवति द्विधा[‡] वृद्धिर्हानिर्वा, कथम् ?—अनन्तभागवृद्धिर्वा अनन्तगुणवृद्धिर्वा, एवं हानिरपि, द्रव्यानन्त्यादिति भावार्थः । तथा षड्विधा 'पर्याये' इति जात्यपेक्षमेकवचनं पर्यायेषु भवति, वृद्धिर्वा हानिर्वेति वर्त्तते, पर्यायानन्त्यात्, कथम् ?—अनन्त-

---

१ न केवलं काल इत्यपिशब्दार्थः, आदिना आधारादिग्रहः गुणपर्यायग्रहो वा. २ गुणत उत्पन्नेऽपि जघन्येन समयान्तरे प्रतिपातात् मरणेन. ३ अनन्तरसमय इत्यर्थः. ४ असंख्येयभागवृद्धिर्वा संख्येयभागवृद्धिर्वा संख्येयगुणवृद्धिर्वा असंख्येयगुणवृद्धिर्वा (प्रज्ञापनायां) * तत्र. + अन्यत्र च † ०तोपयोगत्वे. ‡ द्विविधा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ ४३ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

भागवृद्धिः असंख्येयभागवृद्धिः संख्येयभागवृद्धिः संख्येयगुणवृद्धिः असंख्येयगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिरिति, एवं हानिरपि। आह–क्षेत्रस्यासंख्येयभागादिवृद्धौ तदाधेयद्रव्याणामपि तन्निबन्धनत्वादसंख्येयभागादिवृद्धिरेवास्तु, तथा द्रव्यस्यानन्तभागादिवृद्धौ सत्यां तत्पर्यायाणामपि अनन्तभागादिवृद्धिरिति षट्स्थानकमनुपपन्नमिति, अत्रोच्यते, सामान्यन्यायमङ्गीकृत्य इदमित्थमेव, यदा क्षेत्रानुवृत्त्या पुद्गलाः परिसंख्यायन्ते, पुद्गलानुवृत्त्या च तत्पर्यायाः, न चात्रैवं, कथम्? —यस्मात्स्वक्षेत्रादनन्तगुणाः पुद्गलाः, तेभ्योऽपि पर्याया इति, अतो यस्य यथैवोक्ता वृद्धिर्हानिर्वा तस्य तथैवाविरुद्धेति, प्रतिनियतविषयत्वात्, विचित्रावधिनिबन्धनाच्चेति गाथार्थः॥५९॥ एवं तावच्चलद्वारं व्याख्यातम्, इदानीं तीव्रमन्दद्वारावयवार्थं व्याचिख्यासुरिदमाह—

°फड्डा य असंखिज्जा, संखेज्जा यावि एगजीवस्स। एकप्फड्डुवओगे, नियमा सव्वत्थ उवउत्तो॥ ६०॥

फड्डा य आणुगामी, अणाणुगामी य मीसगा चेव। पडिवाइ अपडिवाई, मीसो य मणुस्सतेरिच्छे॥ ६१॥

प्रथमगाथाव्याख्या—इह फड्डकानि अवधिज्ञाननिर्गमद्वाराणि अथवा गवाक्षजालादिव्यवहितप्रदीपप्रभाफड्डकानीव फड्डकानि, तानि चासंख्येयानि संख्येयानि चैकजीवस्य, तत्रैकफड्डकोपयोगे सति नियमात् 'सर्वत्र' सर्वैः फड्डकैरुपयुक्ता †भवन्ति, एकोपयोगत्वाज्जीवस्य, लोचनद्वयोपयोगवद्, प्रकाशमयत्वाद्वा प्रदीपोपयोगवदिति। आह–तीव्रमन्दद्वारं प्रक्रान्तं ॥ ४३ ॥

१ अनन्तभागगुणवृद्धिहानी द्रव्ये, पर्यायेषु षट्स्थानगा वृद्धिर्हानिर्वा २ द्वाभ्यां नेत्राभ्यां निरीक्षते नरो युगपत्, न चानेकोपयोगता, तद्वदत्राप्यनेकस्पर्धकैरुपयोगेऽप्येकदा नानेकोपयोगता, एकनेत्रोपयोगे च उपयोगो द्वयोरेव, युगपदुपयुज्यमानत्वात्. ३ उपयोगः कार्यं, न च दीप एकया दिशा प्रकाशयति केवलं, किं तु सर्वाभिः * स्वपर्याया. + फड्डाइ † °युक्तो भवति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

विहाय फड्डुकावधिस्वरूपं प्रतिपादयतः प्रक्रमविरोध इति, अत्रोच्यते, प्रायोऽनुगामुकाप्रतिपातिलक्षणौ फड्डुकौ तीव्रौ, तथेतरौ मन्दौ, उभयस्वभावता च मिश्रस्येति गाथार्थः ॥ ६० ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—फड्डुकानि–पूर्वोक्तानि, तानि च अनुगमनशीलानि आनुगामुकानि, एतद्विपरीतानि* अनानुगामुकानि, उभयस्वरूपाणि मिश्रकाणि च, एवकारः अवधारणे, तान्येकैकशः प्रतिपतनशीलानि प्रतिपातीनि, एवमप्रतिपातीनि मिश्रकाणि च भवन्ति, तानि च मनुष्यतिर्यक्षु योऽवधिस्तस्मिन्नेव भवन्तीति । आह—आनुगामुकाप्रतिपातिफड्डुकयोः कः प्रतिविशेषः ?, अनानुगामुकप्रतिपातिफड्डुकयोर्वेति, अत्रोच्यते, अप्रतिपात्यानुगामुकमेव, आनुगामुकं तु प्रतिपात्यप्रतिपाति च भवतीति शेषः । तथा प्रतिपतत्येव प्रतिपाति, प्रतिपतितमपि च सत् पुनर्देशान्तरे जायत एवं, नेत्थमनानुगामुकमिति गाथार्थः ॥ ६१ ॥ व्याख्यातं तीव्रमन्दद्वारं, इदानीं प्रतिपातोत्पादद्वारं विवृण्वन् गाथाद्वयमाह—

बाहिरलंभे भज्जो, दव्वे खित्ते य कालभावे य । उप्पा पडिवाओऽविय, तं †उभयं एगसमएणं ॥ ६२ ॥
अब्भिंतरलद्धीए, उ तदुभयं नत्थि एगसमएणं । उप्पा पडिवाओऽविय, एगयरो एगसमएणं ॥ ६३ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—तत्र द्रष्टुर्बहिर्योऽवधिस्तस्यैव एकस्यां दिशि अनेकासु वाँ विच्छिन्नः स बाह्यः तस्य लाभो

१ विशेषस्पर्धकसद्भावे तीव्रत्वमवधेरितरथा चेतरत् मध्यमे च मिश्रतेति कारणं तीव्रादेः स्पर्धकान्येवेति तद्दर्शने न प्रक्रमविरोध इत्यर्थः २ असंख्येयानां संख्येयानां वोत्पन्नानां स्पर्धकानामवस्थानात् क्षेत्रान्तरेऽपि. ३ आनुगामुकादीनि. ४ आ कैवल्याप्तेः भवक्षयात् स्थानापेक्षया भवान्तरेऽवस्थानमाश्रित्य च ५ प्रतिपातिनोऽप्यानुगामुकत्वदर्शनायेदम्. ६ स्पर्धकरूपकारणाभिधानद्वारेण. ७ अनुक्तसमुच्चयार्थत्वात् परिमण्डलाकारोऽपि. * तद्विपरीतानि च + विशेषः † तदुभयं चेग०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ४४ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

बाह्यलाभः, अवधिः प्रक्रमात् गम्यते, अस्मिन् बाह्यलाभे सति–बाह्यावधिप्राप्तौ सत्यां 'भाज्यो' विकल्पनीयः, कोऽसौ? —उत्पादः प्रतिपात †तदुभयगुणश्च एकसमयेनेति सम्बन्धः, किंविषय इति ?, आह—'द्रव्य' इति द्रव्यविषयः, एवं क्षेत्रकालभावविषय इति, अपिचशब्दाः पूरणसमुच्चयार्थाः । अयं भावार्थः—एकस्मिन् समये द्रव्यादौ विषये बाह्यावधेः कदाचिदुत्पादो भवति कदाचिद्व्ययः कदाचिदुभयं, दावानलदृष्टान्तेन, यथा हि दावानलः खल्वेककाल एवैकतो दीप्यतेऽन्यतश्च ध्वंसत इति, तथा अवधिरपि एकदेशे जायते अन्यत्र प्रच्यवत इति गाथार्थः ॥ ६२ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—इह द्रष्टुः सर्वतः संबद्धः ‡प्रदीपप्रभानिकरवदवधिरभ्यन्तरोऽभिधीयते तस्य लब्धिरभ्यन्तरलब्धिः तस्यामभ्यन्तरलब्धौ तु सत्यां अभ्यन्तरावधिप्राप्तावित्यर्थः । तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ?—तच्च तदुभयं च तदुभयं, उत्पातप्रतिपातोभयं नास्त्येकसमयेन, 'द्रव्यादौ विषये' इत्यनुवर्त्तते, किं तर्हि ?—उत्पादः प्रतिपातो वा एकतर एव एकसमयेन, अपिशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । अयं भावार्थः—§प्रदीपस्येवोत्पाद एव प्रतिपातो वा ¶ एकसमयेन भवति अभ्यन्तरावधेर्न तूभयं, अप्रदेशावधित्वादेव, न ह्येकस्य एकपर्यायेणोत्पादव्ययौ युगपत्स्यातां अङ्गुल्याकुञ्चनप्रसारणवदिति गाथार्थः ॥ ६३ ॥ प्रतिपादितं प्रतिपातोत्पादद्वारं, इदानीं यदुक्तं 'संखेज्ज मणोदव्वे, भागो लोगपलियस्स' (४२) इत्यादि, तत्र द्रव्यादित्रयस्य परस्परोपनिबन्ध उक्तः, इदानीं द्रव्यपर्याययोः प्रसङ्गत एवोत्पादप्रतिपाताधिकारे प्रतिपादयन्नाह—

॥ ४४ ॥

१ संख्येयो मनोद्रव्यविषयेऽवधौ भागो लोकपल्योपमयोः * अवधेः + तस्मिन् † गुणश्च ‡ ० विभा० § ०त्पादः प्रति० ¶ समयेनैवं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दव्वाओ असंखिज्जे, संखेज्जे आवि पज्जवे लहइ। दो पज्जवे दुगुणिए, लहइ य एगाउ दव्वाउ ॥ ६४ ॥

व्याख्या—परमाण्वादिद्रव्यमेकं पश्यन् द्रव्यात्सकाशात् तत्पर्यायान् उत्कृष्टतोऽसंख्येयान् संख्येयाँश्चापि मध्यमतो लभते प्राप्नोति पश्यतीत्यनर्थान्तरं, तथा जघन्यतस्तु द्वौ पर्यायौ द्विगुणितौ 'लभते च' पश्यति च एकस्माद् द्रव्यात्, एतदुक्तं भवति—वर्णगन्धरसस्पर्शानेव प्रतिद्रव्यं पश्यति, न त्वनन्तान्, सामान्यतस्तु द्रव्यानन्तत्वादेव अनन्तान् पश्यतीति गाथार्थः ॥ ६४ ॥ साम्प्रतं युगपज्ज्ञानदर्शनविभङ्गद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

सागारमणागारा, ओहिविभंगा जहण्णगा तुल्ला। उवरिमगेवेज्जेसु उ, परेण ओही †असंखिज्जो ॥ ६५ ॥

व्याख्या—तत्र यो विशेषग्राहकः स साकारः, स च ज्ञानमित्युच्यते, यः पुनः सामान्यग्राहकोऽवधिर्विभङ्गो वा सोऽनाकारः, स च दर्शनं गीयते, तत्र साकारानाकाराववधिविभङ्गौ जघन्य‡कौ तुल्यावेव भवतः, सम्यग्दृष्टेरवधिः, मिथ्यादृष्टेस्तु स एव विभङ्गः, लोकपुरुषग्रीवासंस्थानीयानि ग्रैवेयकाणि विमानानि, उपरिमाणि च तानि ग्रैवेयकाणि चेति समासः, तुशब्दोऽपिशब्दस्यार्थे द्रष्टव्यः, भवनपतिदेवेभ्यः खल्वारभ्य उपरिमग्रैवेयकेष्वपि अयमेव न्यायो यदुत—साकारानाकारौ अवधिविभङ्गौ ‡जघन्यादारभ्य तुल्यौविति, न तूत्कृष्टौ, ततः 'परेण' इति परतः अवधिरेव भवति, मिथ्या-

१ प्रतिद्रव्यं एकस्मिन्वा नानन्तानित्यर्थः २ क्षेत्रकालरूपौ विषयावधिकृत्य परस्परतस्तुल्ये न तु द्रव्यभावविषयौ (इति मलयगिरिपादाः आवश्यकवृत्तौ) * संखिज्जा + असंखिज्जा † असंखिज्जा ‡ जघन्यकौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधि एवं विभंग-ज्ञानस्य कथनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दृष्टीनां तत्रोपपाताभावात्, स च क्षेत्रतः असंख्येयो भवति, योजनापेक्षयेति गाथार्थः ॥ ६५ ॥ इदानीं देशद्वारावयवार्थं प्रचिकटयिषुरिदमाह—

णेरइयदेवतित्थंकरा य ओहिस्सऽबाहिरा हुंति । पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥ ६६ ॥

व्याख्या—'नारकाः' प्राग्निरूपितशब्दार्थाः देवा अपि तीर्थकरणशीलास्तीर्थकराः, नारकाश्च देवाश्च तीर्थकराश्चेति विग्रहः, चशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, अस्य च व्यवहितः सम्बन्ध इति दर्शयिष्यामः, एते नारकादयः 'अवधेः' अवधिज्ञानस्य न बाह्या अबाह्या भवन्ति, इदमत्र हृदयं—अवध्युपलब्धस्य क्षेत्रस्यान्तर्वर्तन्ते, सर्वतोऽवभासकत्वात्, प्रदीपवत्, ततश्चार्थादबाह्यावधय एव भवन्ति, नैषां बाह्यावधिर्भवतीत्यर्थः । तथा पश्यन्ति 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च, खलुशब्दोऽप्येवकारार्थः, स चावधारण एव, सर्वास्वेव दिग्विदिक्ष्विति, सर्वत एवेत्यर्थः । आह—अवधेरबाह्या भवन्तीत्यस्मादेव पश्यन्ति सर्वत इत्यस्य सिद्धत्वात् 'पश्यन्ति सर्वतः' इत्येतदतिरिच्यते इति, अत्रोच्यते, नैतदेवं, अवधेरबाह्यत्वे सत्यपि अभ्यन्तरावधित्वे सत्यपीतिभावः, न सर्वे सर्वतः पश्यन्ति, दिगन्तरालादर्शनात्, अवधेर्विचित्रत्वाद्, अतो नातिरिच्यत इति, 'शेषाः' तिर्यङ्नरा 'देशेन' इत्येकदेशेन पश्यन्ति, अत्रे*ष्टतोऽवधारणविधिः शेषा एव देशतः पश्यन्ति, न तु शेषा देशत एवेति गाथार्थः ॥ अथवा अन्यथा व्याख्यायते—नारकदेव+तीर्थकरा अवधेरबाह्या भवन्तीति, किमुक्तं भवति ?—नियतावधय एव भवन्ति, नियमेनैषामवधिर्भवतीत्यर्थः, अतः संशयः–किं ते तेन

*अत्रेष्टितो० + ०तीर्थंकरा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वतः पश्यन्ति आहोस्विद्देशत इति, अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह–पश्यन्ति सर्वत एव । आह—यद्येवं 'पश्यन्ति सर्वतः' इत्येतावदेवास्तु, अवधेरबाह्या भवन्तीति नियतावधित्वख्यापनार्थमनर्थकं, न, नियतावधित्वस्यैव विशेषणार्थत्वादस्य, अवधेरबाह्या भवन्तीति सदाऽवधिज्ञानवन्तो भवन्तीति*ज्ञापनार्थत्वाददुष्टं । आह—ननु नारकदेवानां भवप्रत्ययावधिग्रहणात् तीर्थकृतामपि प्रसिद्धतरपारभविकावधिसमन्वागमादेव नियतावधित्वं सिद्धमिति, अत्रोच्यते, नियतावधित्वे सिद्धेऽपि न सर्वकालावस्थायित्वसिद्धिरित्यतस्तत्प्रदर्शनार्थमवधेरबाह्या भवन्तीति सदाऽवधिज्ञानवन्तो भवन्तीति ज्ञापनार्थत्वाददुष्टं । आह—यद्येवं तीर्थकृतां सर्वकालावस्थायित्वं विरुध्यत इति, न, तेषां केवलोत्पत्तावपि वस्तुतस्तत्परिच्छेदस्य +निष्ठत्वात्, केवलेन सुतरां संपूर्णानन्तधर्मकवस्तुपरिच्छित्तेः, छद्मस्थकालस्य वा विवक्षितत्वाददोष इति, अलं विस्तरेण, शेषं पूर्ववदिति गाथार्थः ॥ ६६ ॥ एवं देशद्वारावयवार्थमभिधायेदानीं क्षेत्रद्वारं †विवुवूर्षुराह—

संखिज्जमसंखिज्जो, पुरिसमबाहाइ खित्तओ ओही । संबद्धमसंबद्धो, लोगमलोगे य संबद्धो ॥ ६७ ॥

व्याख्या—तत्र संबद्धश्चासंबद्धश्च अवधिर्भवति, किमुक्तं भवति ?—कश्चिद् द्रष्टरि संबद्धो भवति, प्रदीपप्रभावत्, ‡कश्चिच्च असंबद्धो भवति, ¶ विप्रकृष्टतमोव्याकुलदेशप्रदीपदर्शनवत् । तत्र यस्तावदसंबद्धः असौ संख्येयः असंख्येयो वा । पूर्णः सुखदुःखानामिति पुरुषः, पुरि शयनाद्वा पुरुष इति । पुरुषादबाधा, अबाधनमबाधा अन्तरालमित्यर्थः,

---

* ०ति, किमुक्तं भवति ?–सदाऽवधेरबाह्या भवन्ति. नियतावधय इत्यर्थः । आह. + ०स्याप्यनष्टत्वात्. † विवरीषु० ‡ कश्चिरवसं० ¶ अतिविप्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

पुरुषस्याँबाधा पुरुषाबाधा तया पुरुषाबाधया हेतुभूतया सह वा क्षेत्रतः अवधिर्भवति, अयं भावार्थः—असंबद्धोऽवधिः क्षेत्रतः संख्येयो भवति असंख्येयो वा, योजनापेक्षयेति, एवं संबद्धोऽपि । एवमवधिः स्वतन्त्रः पर्यालोचितः, इदानीमबाधया चिन्त्यते—अत्र चतुर्भङ्गिका, तत्र संख्येयमन्तरं संख्येयोऽवधिः, संख्येयमन्तरं असंख्येयोऽवधिः, असंख्येयमन्तरं संख्येयोऽवधिः, असंख्येयमन्तरमसंख्येयोऽवधिरिति चत्वारोऽपि विकल्पाः संभवन्ति, संबद्धे तु विकल्पाभावः । तथा 'लोके' चतुर्दशरज्ज्वात्मके पञ्चास्तिकायवति, 'अलोके च' केवलाकाशास्तिकाये, चशब्दः समुच्चयार्थः, लोके अलोके च संबद्धः, कथम् ?–पुरुषे संबद्धो लोके च—लोकप्रमाणावधिः, पुरुषे न लोके–देशतोऽभ्यन्तरावधिः, न पुरुषे लोके–शून्यो भङ्गः, न लोके न पुरुषे–बाह्यावधिः, इयं भावना—लोकाभ्यन्तरः पुरुषे संबद्धोऽसंबद्धो वा भवति, यस्तु लोके संबद्धः स नियमात्पुरुषे संबद्ध इति, अतो भङ्गचतुष्टयं तृतीयभङ्गशून्यमिति, अलोकसंबद्धस्त्वात्मसंबद्ध एव भवतीति गाथार्थः ॥ ६७ ॥ इदानीं गतिद्वारावयवार्थप्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

गइनेरइयाईया, हिट्ठा जह वण्णिया तहेव इहं । इड्ढी एसा वण्णिज्जइत्ति तो सेसियाओऽवि ॥ ६८ ॥

व्याख्या—तत्र गत्युपलक्षिताः सर्व एवेन्द्रियादयो द्वारविशेषाः परिगृह्यन्ते, ततश्च ये गत्यादयः सत्पदप्ररूपणाविधयः द्रव्यप्रमाणादयश्च, ते यथा अधस्तान्मतिश्रुतयोः 'वर्णिताः' उपदिष्टाः तथैवेहापि द्रष्टव्या इति, विशेषस्त्वयम्–इह ये मतिं प्रतिपद्यन्ते तेऽवधिमपि, किन्त्ववेदकास्तथा अकषायिणोऽप्यवधेः प्रतिपद्यमानका भवन्ति क्षपकश्रेण्य- ॥ ४६ ॥

* नेदं प्रत्यन्तरे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

न्तर्गताः सन्त इति, तथा मनःपर्यायज्ञानिनश्च तथा अनाहारका अपर्याप्तकाश्च पूर्वसम्यग्दृष्टयः सुरनारका अप्यपान्तरालगत्यादाविति, शक्तिमधिकृत्येति भावार्थः । पूर्वप्रतिपन्नास्तु त एव ये मतेः विकलेन्द्रियासंज्ञिशून्या इति, उक्तमवधिज्ञानमिति । तत्र अवधिज्ञानी उत्कृष्टतो द्रव्यतः सर्वमूर्त्तद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतस्त्वोदेशेनासंख्येयं क्षेत्रं, एवं कालमपि, भावतस्त्वनन्तान् भावानिति । तत्र ऋद्धिविशेष ‘ एषः ’ अवधिः ‘ व्यावर्ण्यते ’ गीयते अतः तत्सामान्यात् शेषर्द्धयोऽपि वर्ण्यन्त इति गाथार्थः ॥ ६८ ॥ तत्र शेषर्द्धिविशेषस्वरूपप्रतिपादनायाह—

आमोसहि विप्पोसहि खेलोसहि जल्लमोसही चेव । संभिन्नसो उज्जुमइ, सव्वोसहि चेव ‡ बोद्धव्वो ॥ ६९ ॥

चारणआसीविस केवली य मणनाणिणो य पुव्वधरा । अरहंत चक्कवट्टी, बलदेवा वासुदेवा य ॥ ७० ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—आमर्शनमामर्शः संस्पर्शनमित्यर्थः, स एवौषधिर्यस्यासावामर्शौषधिः—साधुरेव संस्पर्शनमात्रादेव व्याध्यपनयनसमर्थ इत्यर्थः, लब्धिलब्धिमतोरभेदात् स एवामर्शलब्धिरिति, एवं विट्खेलजल्लेष्वपि योजना कर्त्त-

१ अवध्युत्पादमन्तरेणैतदुत्पादान्मनःपर्यायज्ञानिनोऽवधेः प्रतिपद्यमानकाः २ प्राच्यनरतिर्यग्भवान्त्यसमयादनन्तरं सुरनारकायुरुदयादेवं व्यपदेशः ‘ ये अप्रतिपतितसम्यक्त्वास्तिर्यग्मनुष्येभ्यो देवनारका जायन्ते ते ’ इतिहेमचन्द्रपादाः ३ विकलेन्द्रियाणां असंज्ञिनां च सास्वादनसम्यक्त्वान्मतिश्रुतयोः पूर्वप्रतिपन्नता स्यात् , परमवधेस्तु न. ४ उपचारेण. ५ रोगापनयनवुद्धेतिम० श्रीहेमचन्द्रपादाः ६ मूत्रपुरीषयोरवयवो विप्रुडुच्यते, अन्ये त्वाहुः–विड् उच्चारः प्रेति प्रश्रवणमिति, म० श्रीहेमचन्द्रपादाः (विप्रुडौषधिः) * विकल्पे वि० + ०ओसही † सो य उजु० सोउ उज्जु. ‡ बोद्धव्वा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आमर्शौषधि आदि ऋद्धेः स्वरुपम् प्रतिपाद्यते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आवश्यक- ॥ ४७ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

व्येति, तत्र ‘ विड्डु ’ उच्चारः ‘ खेलः ’ श्लेष्मा ‘ जल्लो ’ मल इति, भावार्थः पूर्ववत्, सुगन्धाश्चैते[2] भवन्ति । तथा यः सर्वतः[3] शृणोति स संभिन्नश्रोता, अथवा श्रोतांसि इन्द्रियाणि संभिन्नान्येकैकशः सर्वविषयैरस्य[4] परस्परतो[5] वेति संभिन्नश्रोताः, संभिन्नान् वा परस्परतो लक्षणतोऽभिधानतश्च सुबहूनपि[6] शब्दान् शृणोति संभिन्नश्रोता, एवं संभिन्नश्रोतृत्वमपि लब्धिरेव । तथा ऋज्वी मतिः ऋजुमतिः सामान्यग्राहिकेत्यर्थः, मनःपर्यायज्ञानविशेषः, अयमपि च लब्धिविशेष एव, लब्धिलब्धिमतोश्चाभेदात् ऋजुमतिः साधुरेव । तथा सर्व एव विण्मूत्रकेशनखादयो विशेषाः खल्वौषधयो यस्य, व्याध्युपशमहेतव इत्यर्थः, असौ सर्वौषधिश्च, एवमेते ऋद्धिविशेषा बोद्धव्या इति गाथार्थः ॥ ६९ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—अतिशयचरणाच्चारणाः, अतिशयगमनादित्यर्थः, ते च द्विभेदाः—विद्याचारणा जङ्घाचारणाश्च, तत्र जङ्घा[7]चारणः शक्तितः किल रुचकवरद्वीपगमनशक्तिमान् भवति, स च किलैकोत्पातेनैव रुचकवरद्वीपं गच्छति, आगच्छँश्चोत्पातद्वयेनागच्छति, प्रथमेन नन्दीश्वरं द्वितीयेन यतो गतः, एवमूर्ध्वमपि एकोत्पातेनैवाचँलेन्द्रमूर्ध्नि* स्थितं पाण्डुकवनं+ गच्छति, आगच्छँश्चोत्पातद्वयेनागच्छति, प्रथमेन नन्दनवनं द्वितीयेन यतो गतः । विद्याचारणस्तु नन्दीश्वरद्वीपगमनशक्तिमान् भवति, स † त्वेकोत्पातेन मानुषोत्तरं गच्छति, द्वितीयेन नन्दीश्वरं, तृतीयेन त्वेकेनैवाऽऽगच्छति

१ चकाराद्विडादीनां व्याध्यपनयनसाहचर्यं. २ विडादयः. ३ सर्वैरेव शरीरदेशैरिति म० श्रीहेमचन्द्रपादाः. ४ सर्वाणीन्द्रियाणि सर्वविषयान् प्रत्येकं विदन्ति. ५ परस्परं श्रोत्रचक्षुषी रूपशब्दविषयौ वित्तो यथैवमन्येष्वपि परस्परविषयज्ञानं. ६ द्वादशयोजनचक्रवर्त्तिकटकस्य युगपद् ब्रुवाणस्य तत्तूर्यसंघातस्य वा युगपदास्फाल्यमानस्य. ७ जङ्घाभ्याम्. ८ सूत्रानुसारेणैकादशः चूर्ण्यनुसारेण तु त्रयोदशः, तत्र अरुणावासशङ्खवरयोरधिकयोर्दर्शनात्. * ०चलाद्रि० + पाण्डक० † तत्रैको०

॥ ४७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

यतो गतः, एवमूर्ध्वमपि व्यत्ययो वक्तव्य इति । अन्ये तु शक्तित एव रुचकवरादिद्वीपमनयोर्गोचरतया व्याचक्षत इति । तथा आस्यो–दंष्ट्राः तासु विषमेषाम्*स्तीति आसीविषाः, ते च द्विप्रकारा भवन्ति–जातितः कर्मतश्च, तत्र जातितो वृश्चिकमण्डूकोरगमनुष्यजातयः, कर्मतस्तु तिर्यग्योनयः मनुष्या देवाश्चा+सहस्रारादिति, एते हि तपश्चरणानुष्ठानतो †ऽन्यतो वा गुणतः खल्वासीविषा भवन्ति, देवा ‡ अपि तच्छक्तियुक्ता भवन्ति, शापप्रदानेनैव व्यापादयन्तीत्यर्थः । तथा केवलिनश्च प्रसिद्धा एव । तथा मनोज्ञानिनो विपुलमनःपर्यायज्ञानिनः परिगृह्यन्ते । पूर्वाणि धारयन्तीति पूर्वधराः, दशचतुर्दशपूर्वविदः । अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः तीर्थकरा इत्यर्थः । ‘चक्रवर्त्तिनः’ चतुर्दशरत्नाधिपाः षट्खण्डभरतेश्वराः । ‘ बलदेवाः ’ प्रसिद्धा एव । ‘ वासुदेवाः ’ सप्तरत्नाधिपा अर्धभरतप्रभव इत्यर्थः । एते हि सर्व एव चारणादयो लब्धिविशेषा वर्त्तन्ते इति गाथार्थः ॥ ७० ॥ इह वासुदेवत्वं चक्रवर्त्तित्वं तीर्थकरत्वं च ऋद्धयः प्रतिपादिताः, तत्र तदतिशयप्रतिपादनायेदं गाथापञ्चकं जगाद निर्युक्तिकारः—

सोलस रायसहस्सा सव्वबलेणं तु संकलनिबद्धं । अंछंति वासुदेवं § अगडतडंमी ठियं संतं ॥ ७१ ॥
घित्तूण संकलं सो वामगहत्थेण अंछमाणाणं । भुंजिज्ज व लिंपिज्ज व महुमहणं ते न चायंति ॥ ७२ ॥
दोसोला बत्तीसा, सव्वबलेणं तु संकलनिबद्धं । अंछंति चक्कवट्टिं, अगडतडंमी ¶ ठियं संतं ॥ ७३ ॥

१ लब्धितो ये आसीविषलब्धिमन्तः पञ्चेन्द्रियतिर्यगादयस्ते, देवाः पर्याप्तावस्थायां शापादिना व्यापादने समर्था अपि देवभवप्रत्ययिकत्वात्र तद्विवक्षितमिति अपर्याप्तावस्थायामेवैतद्व्यपदेशो देवानाम्. * मेषामिति. + ०श्च सह० † ०ष्ठानतो वा० ‡ अपि च § ०तलंमि ¶ तलंमि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरिहंत-चक्रवर्ती-वासुदेव-बलदेव आदिनाम् अतिशयः दर्शयते

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

घित्तूण संकलं सो, वामगहत्थेण अंछमाणाणं । भुंजिज्ज व लिंपिज्ज व, चक्कहरं ते न चायंति ॥ ७४ ॥
जं केसवस्स उ बलं, तं दुगुणं होइ चक्कवट्टिस्स । तत्तो बला बलवगा, अपरिमियबला जिणवरिंदा ॥७५॥

*आसां गमनिका—इह वीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमविशेषाद्बलातिशयो वासुदेवस्य संप्रदर्श्यते–षोडश राजसहस्राणि 'सर्वबलेन' हस्त्यश्वरथपदातिसंकुलेन सह शृङ्खलानिबद्धं 'अंछंति' देशीवचनात् आकर्षन्ति वासुदेवं 'अगडतटे' कूपतटे स्थितं सन्तं, ततश्च गृहीत्वा शृङ्खलामसौ वामहस्तेन 'अंछमाणाणं' ति आकर्षतां भुञ्जीत विलिम्पेत वा अवज्ञया हृष्टः सन्, मधुमथनं ते न शक्नुवन्ति, आक्रष्टुमिति वाक्यशेषः । चक्रवर्त्तिनस्त्विदं बलं–द्वौ षोडशकौ, द्वात्रिंशदित्येतावति वाच्ये द्वौ षोडशकावित्यभिधानं चक्रवर्त्तिनो वासुदेवाद् द्विगुणर्द्धिख्यापनार्थं, राजसहस्राणीति गम्यते, सर्वबलेन सह शृङ्खलानिबद्धं आकर्षन्ति चक्रवर्त्तिनं अगडतटे स्थितं सन्तं गृहीत्वा शृङ्खलामसौ वामहस्तेन +आकर्षतां भुञ्जीत विलिम्पेत वा, चक्रधरं ते न शक्नुवन्ति आक्रष्टुमिति वाक्†यशेषः । यत् केशवस्य तु बलं तद्द्विगुणं भवति चक्रवर्त्तिनः, 'ततः' शेषलोकबलाद् 'बला' बलदेवा बलवन्तः, तथा निरवशेषवीर्यान्तरायक्षयाद् अपरिमितं बलं येषां तेऽपरिमितबलाः, क एते ?—जिनवरेन्द्राः, अथवा ततः—चक्रवर्त्तिबलाद् बलवन्तो जिनवरेन्द्राः, कियता बलेनेति, आह–अपरिमितबला[1] इति । एता हि कर्मोदयक्षयक्षयोपशमसव्यपेक्षाः प्राणिनां लब्धयोऽवसेया इति । ७१–७२–७३–७४–७५

१ अपरिमितेन बलेन बलवन्त इतिभावः (इतिमलयगिरिपादाः) * वाच्य० + अंछमाणाणंति आ० † वाच्य०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

इदानीं मनःपर्यायज्ञानं, लब्धिनिरूपणायां तत् सामान्यतो व्यपदिष्टमपि विषयस्वाम्यादिविशेषोपदर्शनाय ज्ञानपञ्चकक्रमायातमभिधित्सुराह—

मणपज्जवनाणं पुण जणमणपरिचिन्तियत्थपायडणं* । माणुसखित्तनिबद्धं गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥ ७६ ॥

व्याख्या—'मनःपर्यायज्ञानं' प्राक्निरूपितशब्दार्थं, पुनःशब्दो विशेषणार्थः, इदं हि रूपिनिबन्धनक्षायोपशमिकप्रत्यक्षादि[1]साम्येऽपि सति अवधिज्ञानात् स्वाम्यादिभेदेन विशि[2]ष्टमिति स्वरूपतः प्रतिपादयन्नाह—जायन्त इति ज[3]नाः, तेषां मनांसि जनमनांसि, जनमनोभिः परिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितश्चासावर्थश्चेति समासः, तं प्रकटयति प्रकाशयति जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनं, मानुषक्षेत्रं—अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रपरिमाणं तन्निबद्धं, न तद्बहिर्व्यवस्थितप्राणिमनःपरिचिन्तितार्थविषयं प्रवर्त्तत इत्यर्थः । गुणाः—क्षान्त्यादयः त एव प्रत्ययाः—कारणानि यस्य तद्गुणप्रत्ययं, चारित्रमस्यास्तीति चारित्रवान् तस्य चारित्रवत एवेदं भवति, एतदुक्तं भवति—अप्रमत्तसंयतस्य आमर्शौषध्यादिऋद्धिप्राप्तस्यैवेति गाथार्थः ॥७६॥ इदं द्रव्यादिभिर्निरूप्यते—तत्र द्रव्यतो मनःपर्यायज्ञानी अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्गतप्राणिमनोभावपरिणतद्रव्याणि जानाति पश्यति च, अवधिज्ञानसंपन्नमनःपर्यायज्ञानिनमधिकृत्यैवं, अन्यथा जानात्येव न पश्यति, अथवा यतः साकारं तदतो ज्ञानं यतश्च पश्यति तेन अतो दर्शनमिति, एवं सूत्रे संभवमधिकृत्योक्तमिति, अन्यथा चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनं तत्रोक्तं चतुर्धा विरुध्यते, क्षेत्रतः अर्धतृतीयेष्वेव द्वीपसमुद्रेषु, कालतस्तु पल्योपमासंख्येयभागं

१ आदिना छद्मस्थस्वामिसाधर्म्यम् . २ भेदवदित्यर्थः ३ योगरूढतया नरा एव स्युः, परं संज्ञिपञ्चेन्द्रियग्रहणायैवं व्युत्पादनं. * ०पागडणं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ मनःपर्यवज्ञानस्य वक्तव्यता

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

आवश्यक- ॥ ४९ ॥

एष्यमतीतं वा कालं जानाति, भावतस्तु मनोद्रव्यपर्यायान् अनन्तानिति, तत्र साक्षान्मनोद्रव्यपर्यायानेव पश्यति, बाह्याँस्तु तद्विषयभावापन्नाननुमानतो विजानाति, कुतः ?, मनसो मूर्त्तामूर्त्तद्रव्यालम्बनत्वात्, छद्मस्थस्य चामूर्त्तदर्शनविरोधादिति । सत्पदप्ररूपणादयस्तु अवधिज्ञानवदवगन्तव्याः । नानात्वं चानाहारकापर्याप्तकौ प्रतिपद्यमानौ न भवतः, नापीतरौ ॥ उक्तं मनःपर्यायज्ञानं, इदानीमवसरप्राप्तं केवलज्ञानं प्रतिपादयन्नाह—

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

अह सव्वदव्वपरिणामभावविण्णत्तिकारणमणंतं । सासयमप्पडिवाइ एगविहं केवलं*णाणं ॥ ७७ ॥

व्याख्या—इह मनःपर्यायज्ञानानन्तरं सूत्रक्रमोद्देशतः शुद्धितो लाभतश्च प्राक् केवलज्ञानमुपन्यस्तं, अतस्तदर्थोपदर्शनार्थमथशब्द[1] इति, उक्तं च–" अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेषु " । सर्वाणि च तानि द्रव्याणि च सर्वद्रव्याणि–जीवादिलक्षणानि तेषां परिणामाः–प्रयोगविस्रसोभयजन्या उत्पादादयः सर्वद्रव्यपरिणामाः तेषां भावः सत्ता स्वलक्षणमित्यनर्थान्तरं तस्य विशेषेण +ज्ञपनं विज्ञप्तिः, विज्ञानं वा विज्ञप्तिः—परिच्छित्तिः, तत्र भेदोपचारात्, तस्या विज्ञप्तेः कारणं विज्ञप्तिकारणं, अत एव सर्वद्रव्यक्षेत्रकालभावविषयं तत्, क्षेत्रादीनामपि द्रव्यत्वात्, तच्च ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं, शश्वद्भवतीति शाश्वतं, तच्च व्यवहारनयादेशादुपचारतः प्रतिपात्यपि भवति, अत आह—प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति न प्रतिपाति अप्रतिपाति, सदाऽवस्थितमित्यर्थः । आह—अप्रतिपात्येतावदेवास्तु, शाश्वतमित्येतदयुक्तं, न, ॥ ४९ ॥

१ अतस्तदर्थोऽयमथशब्दः * केवलं नाणं. + ज्ञापनं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ केवलज्ञान प्रतिपादयते

अप्रतिपातिनोऽप्यवधिज्ञानस्य शाश्वतत्वानुपपत्तेः, तस्मादुभयमपि युक्तमिति । 'एकविधं' एकप्रकारं, आवरणाभावात् भयस्यैकरूपत्वात्, 'केवलं' मत्यादिनिरपेक्षं 'ज्ञानं' संवेदनं, केवलं च तत् ज्ञानं चेति समास इति गाथार्थः ॥ ७७ ॥

इह तीर्थकृत् समुपजातकेवलः सत्त्वानुग्रहार्थं देशनां करोति, तीर्थकरनामकर्मोदयात्, ततश्च ध्वनेः श्रुतरूपत्वात् तस्य च भावश्रुतपूर्वकत्वात् श्रुतज्ञानसंभवादनिष्टापत्तिरिति मा भून्मतिमोहोऽव्युत्पन्नबुद्धीनामित्यतस्तद्विनिवृत्त्यर्थमाह—

केवलणाणेणत्थे णाउं जे तत्थ पण्णवणजोगे । ते भासइ तित्थयरो वयजोग सुयं हवइ सेसं ॥ ७८ ॥

व्याख्या—इह तीर्थकरः केवलज्ञानेन 'अर्थान्' धर्मास्तिकायादीन् मूर्त्तामूर्त्तान् अभिलाप्यानभिलाप्यान् 'ज्ञात्वा' विनिश्चित्य, केवलज्ञानेनैव ज्ञात्वा न तु श्रुतज्ञानेन, तस्य क्षायोपशमिकत्वात्, केवलिनश्च तदभावात्, सर्वशुद्धौ देशशुद्ध्यभावादित्यर्थः । ये 'तत्र' तेषामर्थानां मध्ये, प्रज्ञापनं प्रज्ञापना तस्या योग्याः प्रज्ञापनायोग्याः 'तान् भाषते' तानेव वक्ति नेतरानिति, प्रज्ञापनीयानपि न सर्वानेव भाषते, अनन्तत्वात्, आयुषः परिमितत्वात्, वाचः क्रमवर्त्तित्वाच्च, किं तर्हि?, योग्यानेव गृहीतृशक्त्यपेक्षया यो हि यावतां योग्य इति । तत्र केवलज्ञानोपलब्धार्थाभिधायकः शब्दराशिः प्रोच्यमानस्तस्य भगवतो वाग्योग एव भवति, न श्रुतं, नामकर्मोदयनिबन्धनत्वात्, श्रुतस्य च क्षायोपशमिकत्वात्, स च श्रुतं भवति शेषं, शेषमित्यप्रधानं, एतदुक्तं भवति–श्रोतृणां श्रुतग्रन्थानुसारिभावश्रुतज्ञाननिबन्धनत्वाच्छेषमप्रधानं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः । अन्ये त्वेवं पठन्ति—'वयजोगसुयं हवइ तेसिं' स वाग्योगः श्रुतं भवति 'तेषां' श्रोतृणां, भावश्रुतकारणत्वादित्यभिप्रायः । अथवा 'वाग्योगश्रुतं' द्रव्यश्रुतमेवेति गाथार्थः ॥ ७८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]
दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक- ॥ ५० ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

सत्पदप्ररूपणायां च गतिमङ्गीकृत्य सिद्धगतौ मनुष्यगतौ च, इन्द्रियद्वारमधिकृत्य नोइन्द्रियातीन्द्रियेषु, एवं त्रसकायाकाययोः सयोगायोगयोः अवेदकेषु अकषायिषु शुक्ललेश्यालेश्ययोः सम्यग्दृष्टिषु केवलज्ञानिषु केवलदर्शिषु[*] संयतनोसंयतयोः[1] साकारानाकारोपयोगयोः आहारकानाहारकयोः भाषकाभाषकयोः परीत्तनोपरीत्तयोः पर्याप्तनोपर्याप्तयोः बादरनोबादरयोः, संज्ञिषु नोसंज्ञिषु, भव्यनोभव्ययोः, मोक्षप्राप्तिं प्रति भवस्थकेवलिनो भव्यता, चरमाचरमयोः, चरमः–केवली अचरमः–सिद्धः भवान्तरप्राप्त्यभावात्, केवलं द्रष्टव्यमिति। पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानयोजना च स्वबुद्ध्या कर्त्तव्येति। 'द्रव्यप्रमाणं' तु प्रतिपद्यमानानधिकृत्य उत्कृष्टतोऽष्टशतं, पूर्वप्रतिपन्नाः केवलिनस्तु अनन्ताः, 'क्षेत्रं' जघन्यतो लोकस्यासंख्येयभागः, उत्कृष्टतो लोक एव, केवलिसमुद्घातमधिकृत्य, एवं स्पर्शनाऽपि, 'कालतः' साद्यमपर्यन्तं, 'अन्तरं' नास्त्येव, प्रतिपाताभावात्, 'भागद्वारं' मतिज्ञानवद् द्रष्टव्यं, 'भाव' इति क्षायिके भावे 'अल्पबहुत्वं' मतिज्ञानवदेव। उक्तं केवलज्ञानं, तदभिधानाच्च नन्दी, तदभिधानान्मङ्गलमिति। एवं तावन्मङ्गलस्वरूपाभिधानद्वारेण ज्ञानपञ्चकमुक्तं, इह तु प्रकृते श्रुतज्ञानेनाधिकारः, तथा च निर्युक्तिकारेणाभ्यधायि—

इत्थं पुण अहिगारो सुयनाणेणं जओ सुएणं तु। सेसाणमप्पणोऽविअ अणुओगु पईवदिट्ठन्तो ॥ ७९ ॥

गमनिका—अत्र पुनः प्रकृते अधिकारः श्रुतज्ञानेन, यतः श्रुतेनैव 'शेषाणां' मत्यादिज्ञानानां आत्मनोऽपि च 'अनुयोगः' अन्वाख्यानं, क्रियत इति वाक्यशेषः, स्वपरप्रकाशकत्वात्तस्य, प्रदीपदृष्टान्तश्चात्र द्रष्टव्य इति गाथार्थः ॥ ७९ ॥

इति [†] पीठिकाविवरणं समाप्तम्.

॥ ५० ॥

१ संयतानां नोसंयतासंयतानां चेति (वि०) * दर्शनिषु. + प्रथं. † आवश्यके पी०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र आवश्यकसूत्रस्य वृत्तिकार-रचिता पीठिकाविवरणं समाप्तं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

साम्प्रतं मङ्गलसाध्यः प्रकृतोऽनुयोगः प्रदर्श्यत इति, स च स्वपरप्रकाशकत्वात् गुर्वायत्तत्वाच्च श्रुतज्ञानस्येति, तथा चोक्तं—'अत्र पुनरधिकारः श्रुतज्ञानेनेत्यादि'। आह—नन्वावश्यकस्या*नुयोगः प्रकृत एव, पुनः श्रुतज्ञानस्येत्ययुक्तमिति, अत्रोच्यते, आवश्यकस्य श्रुतान्तर्गतत्वप्रदर्शनार्थत्वाददोषः। आह—यद्यावश्यकस्यानुयोगः, तदावश्यकं किमङ्गमङ्गानि? श्रुतस्कन्धः श्रुतस्कन्धाः? अध्ययनमध्ययनानि? उद्देशक उद्देशकाः इति, अत्रोच्यते, आवश्यकं श्रुतस्कन्धस्तथाऽध्ययनानि च, शेषास्त्वनादेशा विकल्पा इति। आह—ननु नन्दीव्याख्याने अङ्गानङ्गप्रविष्टश्रुतनिरूपणायामनङ्गताऽस्याभिहितैव, ततश्च किमङ्गमङ्गानीत्याद्याशङ्कानुपपत्तिरिति, अत्रोच्यते, तद्व्याख्याऽनियमप्रदर्शनार्थत्वाददोषः, नावश्यं शास्त्रादौ नन्द्यध्ययनार्थकथनं कर्त्तव्यं, अकृते चाशङ्का †संभवति। आह—मङ्गलार्थं शास्त्रादाववश्यमेव नन्द्यभिधानात् ‡कथमनियम इति, अत्रोच्यते, ज्ञानाभिधानमात्रस्यैव मङ्गलत्वात् नावश्यमवयवार्थाभिधानं कर्त्तव्यमिति, तदकरणे चाशङ्का § भवति। किं च—आवश्यकव्याख्यानारम्भे शास्त्रान्तरव्याख्यानारम्भोऽयुक्त एव, शास्त्रान्तरं च नन्दी, पृथक् श्रुतस्कन्धत्वात्। आह—यद्येवमिह आवश्यकश्रुतस्कन्धानुयोगारम्भे किमिति तदनुयोग इति, उच्यते, शिष्यानुग्रहार्थं

१ एकोनविंशतिगाथाव्याख्याने. २ ज्ञानपञ्चकनिरूपकप्रकरणतया नन्द्यध्ययनत्वात्. ३ अङ्गमङ्गानि किमित्याद्यास्मीया. ४ नोआगमतो भावमङ्गलं हि नन्दी यतः ५ मूलसूत्रापेक्षया नन्दीव्याख्यानाऽनियमप्रदर्शनाय पक्षान्तरं–किञ्चेत्यादि. ६ तस्य ज्ञानपञ्चकनिरूपणनिपुणप्रकरणस्यानुयोगः * आवश्यका० + ०व्यानानि० † भवति. ‡ ० मप्रदर्शनार्थत्वाददोष इति, § ०शङ्कासंभव इति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र उपोद्घात् निर्युक्ति: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ५१ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

न त्वयं नियम इत्यपवादप्रदर्शनार्थं वा, एतदुक्तं भवति— कदाचित्पुरुषाद्यपेक्षया उत्क्रमेणापि अन्यारम्भेऽपि[3] चान्यद् व्याख्यायत इति, अलं प्रसङ्गेन, तत्र शास्त्राभिधानं 'आवश्यकश्रुतस्कन्धः', तद्भेदाश्च अध्ययनानि यतः तस्माद् आवश्यकं निक्षेप्तव्यं श्रुतं स्कन्धश्चेति। किं च–किमिदं शास्त्राभिधानं प्रदीपाभिधानवद् यथार्थं आहोश्वित् पलाशाभिधानवद् अयथार्थं उत डित्थाद्यभिधानवद् अनर्थकमेवेति परीक्ष्यं, यदि च यथार्थं ततस्तदुपादेयं, तत्रैव समुदायार्थपरिसमाप्तेरित्यतः शास्त्राभिधानमेव तावदालोच्यत इति । तत्र ' आवश्यकं ' इति कः शब्दार्थः ?, अवश्यं कर्त्तव्यमावश्यकं, अथवा गुणानामावश्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकं, यथा अन्तं करोतीत्यन्तकः, अथवा 'वस निवासे' इति गुणशून्यमात्मानमावासयति गुणैरित्यावासकं, गुणसान्निध्यमात्मनः करोतीति भावार्थः । इदं च मङ्गलवन्नामादिचतुर्भेदभिन्नं, इदं च प्रपञ्चतः सूत्रादवसेयमिति, उद्देशस्तु तदनुसारेणैव शिष्यानुग्रहायाभिधीयते इति, तत्र नामस्थापने सुज्ञाने एव, द्रव्यावश्कं द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो ज्ञाताऽनुपयुक्तः ' अनुपयोगो द्रव्य ' मितिकृत्वा, नोआगमतो द्रव्यावश्यकं त्रिविधं—ज्ञशरीरं भव्यशरीरं ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं च, तदपि त्रिविधं—लौकिकलोकोत्तरकुप्रावच-

१ आवश्यकव्याख्यानारम्भे शास्त्रान्तरव्याख्यानारम्भोऽयुक्त इत्यस्योपदर्शितस्य नियमस्यापवाद इति. २ प्राक् नन्दी पश्चादावश्यकमित्यादिकं क्रमं परित्यज्य, अपिना क्रमोऽपि पुरुषाद्यपेक्षया एव. ३ आरब्धस्यापि पुरुषाद्यपेक्षयैव व्याख्येति दर्शनायापि चेति. ४ समग्रशास्त्रवाच्यार्थपरिज्ञानेति. ५ अनुयोगद्वाररूपात् तत्रावश्यकनिक्षेपाणां सुविस्तृततयाऽभिहितत्वात्. ६ संक्षेपेण स्वरूपाभिधानरूपोऽत्रोद्देशः ७ ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं परामर्शनीयं तच्छब्देन, प्रत्यासत्त्या. * ०पुरुषाद्यपे० + आहोस्वित्.

॥ ५१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक-शब्दस्य अर्थ:, तस्य नामादि निक्षेपा:

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

निकभेदभिन्नं यथाऽनुयोगद्वारेषु, नवरं लोकोत्तरेणात्राधिकारः, तच्च ज्ञानादिश्रमणगुणमुक्तयोगस्य प्रतिक्रमणं भावशून्यत्वाद् अभिप्रेतफलाभावाच्च, एत्थं[1] उदाहरणं—वसंतपुरं नगरं, तत्थ गच्छो अगीतत्थसंविग्गो विहरति, तत्थ य एगो संविग्गो समणगुणमुक्कजोगी, सो दिवसदेवसियं उदउल्लादिअणेसणाओ पडिगाहेत्ता महया संवेगेणं आलोएइ, तस्स पुण गणी अगीयत्थत्तणओ पायच्छित्तं देंतो भणति 'अहो इमो धम्मसद्धिओ साहू !, सुहं पडिसेविउं, दुक्खं आलोएउं, एवं* णाम एस आलोएइ अगूहंतो, अतो असढत्तणओ सुद्धोत्ति ' एयं+ च दट्ठूण अण्णे अगीयत्थसमणा पसंसंति, चिंतेंति य-णत्वरं आलोएयव्वं णत्थित्थ किंची पडिसेविएणं ति । अण्णदा कदाई गीयत्थे संविग्गो विहरमाणो आगओ, सो †तं दिवसदेवसियं अविहिं दट्ठूण उदाहरणं दाएति—गिरिणगरे णगरे रयणवाणियओ रत्तरयणाणं घरं भरेऊणं पलीवेइ, तं

---

१ अत्रोदाहरणं-वसन्तपुरं नगरं, तत्र गच्छोऽगीतार्थसंविग्नो विहरति, तत्र चैकः संविग्नः मुक्तश्रमणगुणयोगः, स दिवसदैवसिकं उदकार्द्राद्यनेषणाः प्रतिगृह्य महता संवेगेनालोचयति, तस्य पुनराचार्यः अगीतार्थत्वात् प्रायश्चित्तं ददत् भणति ' अहो अयं धर्मश्रद्धिकः (तः) साधुः ' सुखं प्रतिसेवितुं दुष्करमालोचितुं. एवं नामैष आलोचयति. अगूहयन् , अतः अशाठत्वाद् शुद्ध इति, एतद् दृष्ट्वाऽन्येऽगीतार्थश्रमणाः प्रशंसन्ति, चिन्तयन्ति च परं-आलोचयितव्यं नास्त्यत्र किञ्चित्प्रतिसेवितेनेति । तत्र अन्यदा कदाचित् गीतार्थः संविग्नः विहरन् आगतः, स तं दिवसदैवसिकमविधिं दृष्ट्वोदाहरणं दर्शयति–गिरिणगरे नगरे रत्नवणिग् रक्तरत्नैः गृहं भृत्वा प्रदीपयति, तद्दृष्ट्वा सर्वलोकः प्रशंसति––अहो अयं धन्यो भगवन्तमग्निं तर्पयति, अन्यदा कदाचित् तेन प्रदीपितं, वातश्च प्रबलो जातः, सर्वं नगरं दग्धं, पश्चाद्राज्ञा प्रतिहतो निर्विषयश्च कृतः । अन्यत्रापि नगरे * एयं एवं. + एवं च. † णं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यावश्यके अगीतार्थ-संविग्नस्य उदाहरणं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पासित्ता सबलोगो पसंसति—अहो इमो धण्णो भगवन्तं अग्गिं तप्पेति, अण्णया कयाई तेण पलीवितं, वाओ य पबलो जाओ, सबं णगरं दड्ढं, पच्छा रण्णा पडिहणिओ ‡णिविसओ य कओ । अण्णहिंपि णगरे एंगो एवं चेव करेइ, सो राइणा सुओ जहा एवं करेइत्ति, सो सबस्सहरणो काऊण विसज्जिओ, अडवीए कीस ण पलीवेसि ? । जहा तेण वाणिअगेण अवसेसावि दड्ढा, एवं तुमंपि एँतं पसंसित्ता एते साहुणो सबे परिच्चयसि, जाहे न ठाति ताहे साहुणो भणिआ—एस महाणिद्धम्मो अगीयत्थो अलं एयस्स आणाए, जदि एयस्स णिग्गहो न कीरइ, तो अण्णेवि विणस्संति । इदानीं भावावश्यकं, तदपि द्विविधमेव—आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो भावावश्यकं ज्ञाता उपयुक्तः, तदुपयोगानन्यत्वात्, अथवाऽऽवश्यकार्थोपयोगपरिणाम एवेति । नोआगमतस्तु ज्ञानक्रियोभयपरिणामो भावावश्यकं, उपयुक्तस्य क्रियेति भावार्थः, मिश्रवचनश्च नोशब्दः, इदमपि च लौकिकादित्रिविधं सूत्रादवसेयं, इह तु लोकोत्तरेणाधिकार इति । उक्तमावश्यकं, अस्य चामूनि अव्यामोहार्थमेकार्थिकानि द्रष्टव्यानि—

१ एक एवमेव करोति, स राज्ञा श्रुतो यथा एवं करोतीति, स हृतसर्वस्वः (सर्वस्वहरणं) कृत्वा विसृष्टः. अटव्यां कथं (कुतः) न प्रदीपयसि ? । यथा तेन वणिजा अवशेषा अपि दग्धाः एवं त्वमपि एतं प्रशस्य एतान् सर्वान् साधून् परित्यजसि, यदा न तिष्ठति (विरमति) तदा साधवो भणिताः—एष महानिर्धर्मा अगीतार्थः, अलमेतस्याज्ञया, यदि एतस्य निग्रहो न क्रियतेऽतोऽन्येऽपि विनङ्क्ष्यन्ति. २ आवश्यकपदार्थज्ञस्तज्जनितसंवेगविशुद्धिमान् परिणामस्तत्र चोपयुक्तः (अनु० ७३) ‡ निण्णयरो. * एवं पसंसंतो. + परिचयसि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवस्सयं १ अवस्सकरणिज्जं २ धुव ३ णिग्गहो ४ विसोही ५ य। अज्झयणछक्क ६ वग्गो ७णाओ ८ आराहणा ९ मग्गो १०॥१॥
समणेण सावएण य अवस्सकायव्वयं हवइ जम्हा। अहोणिसिस्स य तम्हा आवस्सयं नाम ॥ २ ॥

एवं श्रुतस्कन्धयोरपि निक्षेपश्चतुर्विध एव द्रष्टव्यः, यथाऽनुयोगद्वारेषु, स्थानाशून्यार्थं तु किञ्चिदुच्यते—इह नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतं पुस्तकपत्रकन्यस्तं, अथवा सूत्रमण्डजादि, भावश्रुतं †त्वागमतो ज्ञाता उपयुक्तः, नोआगमतस्त्विदमेवावश्यकं, नोशब्दस्य देशवचनत्वात् । ‡एवं नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यस्कन्धः सचेतनादिः, तत्र सचित्तो द्विपदादिः अचित्तो द्विप्रदेशिकादिः मिश्रः $ सेनादिदेशादिरिति, तथा भावस्कन्धस्त्वागमतस्तदर्थोपयोगपरिणाम एव, नोआगमतस्त्वावश्यकश्रुतस्कन्ध एवेति, नोशब्दस्य देशवचनत्वात्, अथवा ज्ञानक्रियागुणसमूहात्मकः सामायिकादीनामध्ययनानां समावेशात्, ज्ञानदर्शनक्रियोपयोग इत्यर्थः, नोशब्दस्तु मिश्र-

---

१ आवश्यकमवश्यकरणीयं ध्रुवं निग्रहो विशोधिश्च । अध्ययनषट्कं वर्गो न्याय आराधना मार्गः ॥१॥ श्रमणेन श्रावकेण चावश्यकर्त्तव्यं भवति यस्मात् । अन्ते (न्तः) अहर्निशस्य (अह्नो निशः) च, तस्मादावश्यकं नाम ॥ २ ॥ २ श्रुतपर्यायत्वात्सूत्रनिर्देशोऽत्र प्राकृतत्वात्, सुयशब्देन सूत्रमपि सूत्रकृतोऽङ्गस्य सुयगडेतिवत्. ३ आदिना बोण्डजकीटजवालजवल्कजग्रहः ४ प्रस्तुतत्वादन्यथा सर्वमपि श्रुतमेवं, आगमे तु पदमात्रज्ञानोपयोगाद्देशता. ५ सेणाइदेसाई ८९६– सेनायाः हस्त्यश्वरथपदातिखड्गकुन्ताद्यात्मकः पाश्चात्यमध्यमाग्रदेशरूपो मिश्रस्कन्धः (विशे० ८९६ गाथावृत्तौ) सेणाए अग्गिमे खंधे सेणाए मज्झिमे खंधे सेणाए पच्छिमे खंधे (अनु० १०२) प्रथमादिपदाद्ग्रामनगरादिग्रहः द्वितीयादिना देशद्वयादिग्रहः * अवस्सं करणं. + अहोणिसिस्स. † आगमतो. ‡ नास्तीदम्. $ सेनादिदेशादि०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकस्य पर्याय-शब्दा:, श्रुतस्कन्धस्य निक्षेपा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ५३ ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

वचनः। सर्वपदैकवाँच्यता सामायिकादिश्रुतविशेषाणां षण्णां स्कन्धः श्रुतस्कन्धः,आवश्यकं च तत् श्रुतस्कन्धश्चेति समासः। आह—किमिदं आवश्यकं षडध्ययनात्मकमिति,अत्रोच्यते,षडर्थाधिंकारात्मकत्वात् ,ते चामी सामायिकादीनां यथायोगमवसेया इति—सावज्जजोगविरई १ उक्कित्तण २ गुणवओ य पडिवत्ती ३। खलियस्स निंदण ४ वणतिगिच्छा† ५ गुणधारणा ६ चेव ॥१॥ अस्या व्याख्या—अवद्यं पापं, युज्यन्त इति योगाः व्यापाराः, सहावद्येन वर्त्तन्त इति सावद्याः, सावद्याश्च ते योगाश्चेति समासः, तेषां विरमणं विरतिः सामायिकार्थाधिकार इति १ उत्कीर्त्तनमुत्कीर्त्तना, तत्र गुणोत्कीर्त्तना अर्हतां चतुर्विंशतिस्तवस्य २। गुणा ज्ञानादयः मूलोत्तराख्या वा, तेऽस्य विद्यन्त इति गुणवान् तस्य गुणवतः प्रतिपत्तिर्वन्दनाध्ययनस्य ३। चशब्दः समुच्चये, 'स्खलितस्येति' श्रुतशीलस्खलितस्य निन्दना प्रतिक्रमणस्य ४। तथा चारित्रात्मनो व्रणचिकित्सा—अपराधव्रणसंरोहणं कायोत्सर्गस्य ५। अपगतव्रतातिचारेतरोपचितकर्मविशरणार्थमनशनादिगुणसंधारणा प्रत्याख्यानस्य ६ इत्यर्थाधिकाराः। एषां च प्रत्यध्ययनमर्थाधिकारद्वारे एवावसरः प्रत्येतव्यः, इह तु प्रसङ्गतः स्कन्धो-

१ संबन्धषष्ठी, तेन परिभाषिता ज्ञात्वाऽभ्युपेत्याकरणरूपा विरतिरत्र, न तु केवलाभावरूपा निवृत्तिरूपा वा. २ अर्थाधिकार इति वर्त्तते. ३ व्यवहारगुर्वपेक्षया. ४ वन्दनकदानादिपूजाविशेषरूपा. ५ पुष्टालम्बनेऽगुणवतोऽपि प्रतिपत्तिः कर्त्तव्येति द्रष्टव्यं (मलयगिरिपादाः, अनु० वृत्तौ च ११) इति वचनादनुक्तसमुच्चयार्थ इत्यर्थः ६ पञ्चविधावश्यकैरपगता येऽतिचारास्तदितरैरतिचारैः ७ आनुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवताररूपशास्त्रीयोपक्रमान्तर्गते पञ्चमद्वारे. * वाक्यता. + षण्णामधिकारा० † चिगिच्छ०

॥ ५३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकस्य षड् अध्ययनानि एवं तस्य अध्ययनंस्य नाम्नः अर्थाः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पदर्शनद्वारेणोक्ता इति । इदानीं अध्ययनन्यासप्रस्तावः, तं चानुयोगद्वारक्रमायातं प्रत्यध्ययनं ओघनिष्पन्ननिक्षेपे लाघवार्थं वक्ष्यामः । एष आवश्यकस्य समुदायार्थः, इदानीमवयवार्थप्रदर्शनाय एकैकमध्ययनं वक्ष्यामः, तत्र प्रथममध्ययनं सामायिकं-समभावलक्षणत्वात्, चतुर्विंशतिस्तवादीनां च तद्भेदत्वात् प्राथम्यमस्येति । अस्य च महापुरस्येव चत्वार्यनुयोगद्वाराणि भवन्ति । अनुयोगद्वाराणीति कः शब्दार्थः ?, अनुयोगोऽध्ययनार्थः, द्वाराणि तत्प्रवेशमुखानीति, यथा हि अकृतद्वारं नगरमनगरमेव भवति, कृतैकद्वारमपि च दुरधिगमं कार्यातिपत्तये च, कृतचतुर्मूलद्वारं प्रतिद्वारानुगतं सुखाधिगमं कार्यानतिपत्तये च, एवं सामायिकपुरमपि अर्थाधिगमोपायद्वारशून्यमशक्याधिगमं भवति, एकद्वारानुगतमपि च दुरधिगमं भवति, सप्रभेदचतुर्द्वारानुगतं तु सुखाधिगमं इत्यतः फलवान् द्वारोपन्यासः । तानि च अमूनि—उपक्रमो १ निक्षेपो २-ऽनुगमो ३ नय ४ इति । तत्र शास्त्रस्य उपक्रमणं उपक्रम्यतेऽनेनास्मादस्मिन्निति वा उपक्रमः, शास्त्रस्य न्यासदेशानयनमित्यर्थः । तथा निक्षेपणं निक्षिप्यतेऽनेनास्मादस्मिन्निति वा निक्षेपः न्यासः स्थापनेति पर्यायाः । एवमनुगमनं † अनुगमः

---

१ नामनिष्पन्ननिक्षेपे चेति (मलयगिरिपादाः) २ प्रत्यध्ययनं कार्यः, लाघवार्थमिह सामायिकाध्ययने इति मलधारिपादानामभिप्रायः ३ सावज्जजोगविरईत्यादिना प्रतिपादितः, षण्णामपि अर्थाधिकाराणां प्रतिपादनात्. ४ विना समभावमितरगुणानवस्थानात् तत्सद्भाव एव परगुणोत्पत्तेः प्राथम्यमस्येत्यर्थः ५ सामायिकस्य ज्ञानदर्शनचारित्रभेदभिन्नतया चतुर्विंशत्यादेश्च सम्यक्त्वादिसामायिकरूपत्वात् सामायिकभेदव्याख्यानं. ६ सामायिकाध्ययनस्य. ७ प्रतिपादनप्रकाराः ८ गुरुवाग्योगः ९ विनीतविनेयविनयः १० शुश्रूषा. ११ गुरुवाग्योगादीनां सर्वकारकवाच्यत्वेऽप्यविरोधः * ०प्रतिपादनाय. + तद्द्वारो० † नास्तीदम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

अनुगम्यते वाऽनेनास्मादस्मिन्निति वाऽनुगमः, सूत्रस्यानुकूलः परिच्छेद इत्यर्थः । एवं नयनं नीयते वाऽनेनास्मादस्मिन्निति वा नयः, वस्तुनः पर्यायाणां संभवतोऽधिगम इत्यर्थः । आह—एषामुपक्रमादिद्वाराणां किमित्येवं क्रम इति, अत्रोच्यते, न ह्यनुपक्रान्तं सद् असमीपीभूतं निक्षिप्यते, न चानिक्षिप्तं नामादिभिरर्थतोऽनुगम्यते, न चार्थतोऽननुगतं नयैर्विचार्यते इत्यतोऽयमेव क्रम इति । तत्रोपक्रमो द्विविधः–शास्त्रीय इतरश्च, तत्र इतरः षट्प्रकारः, नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदभिन्न इति,तत्र नामस्थापने सुज्ञाने,द्रव्योपक्रमो द्विविधः—आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाताऽनुपयुक्तः, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तश्च, स च त्रिविधः—सचित्ताचित्तमिश्रद्रव्योपक्रम इति, तत्र सचित्तद्रव्योपक्रमः द्विपदचतुष्पदापदोपाधिभेदभिन्नः, पुनरेकैको द्विविधः–परिकर्मणि वस्तुविनाशे च,तत्र परिकर्म–द्रव्यस्य गुणविशेषपरिणामकरणं तस्मिन्सति, तद्यथा–घृताद्युपभोगेन पुरुषस्य वर्णादिकरणमिति, अथवा कर्णस्कन्धवर्धनादिक्रियेति, अन्ये तु शास्त्रगन्धर्वनृत्यादिकलासंपादनमपि द्रव्योपक्रमं व्याचक्षते, इदं पुनरसाधु, विज्ञानविशेषात्मकत्वात् शास्त्रादिपरिज्ञानस्य, तस्य च भावत्वादिति, किन्तु आत्मद्रव्यसंस्कारविवक्षापेक्षया शरीरवर्णादिकरणवत् स्यादपीति । एवं शुकसारिकादीनां शिक्षागुणविशेषकरणं, तथा चतुष्पदानां हस्त्यादीनां, अपदानां च वृक्षादीनां वृक्षायुर्वेदोपदेशाद् वार्धक्यादि-

१ संभवद्भिः पर्यायैर्वस्तु नयति, यदिवा बहुधा वस्तुनः पर्यायाणां संभवात् विवक्षितपर्यायेण नयनं, आद्ये पर्यायाणां सत्ताया ज्ञानं यथायथं, द्वितीयस्मिन् पर्यायाणां मध्ये संभवतः पर्यायानाश्रित्येति ज्ञेयं, तथा चाद्ये संबन्धे षष्ठी पञ्चम्याः तसुश्च, द्वितीये सप्तमी चाविभाग इति षष्ठी, गम्ययप इति पञ्चम्यास्तसुश्च. * शास्त्रस्य.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अथ 'उपक्रम' द्वारम् उच्यते

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गुणापादनमिति, आह–यस्स्वयं कालान्तरभाव्युपक्रम्यते यथा तरोर्वार्धक्यादि तत्र परिकर्मणि द्रव्योपक्रमता युक्ता, वर्णकरणकलादिसंपादनस्य तु कालान्तरेऽपि विवक्षितहेतुजालमन्तरेणानुपपत्तेः कथं परिकर्मणि द्रव्योपक्रमतेति, अत्रोच्यते, विवक्षितहेतुजालमन्तरेणानुपपत्तेरित्यसिद्धं, कथं ?, वर्णस्य तावन्नामकर्मविपाकित्वात् स्वयमपि भावात्, कलादीनां च क्षायोपशमिकत्वात्, तस्य च कालान्तरेऽपि स्वयमपि संभवात्, विभ्रमविलासादीनां च युवावस्थायां दर्शनात् (ग्रन्थाग्रम् १५००) । तथा वस्तुविनाशे च पुरुषादीनां खङ्गादिभिर्विनाश एवोपक्रम्यते इति, आह—परिकर्मवस्तुविनाशोपक्रमयोरभेद एव, उभयत्रापि पूर्वरूपपरित्यागेनोत्तरावस्थापत्तेरिति, अत्रोच्यते, परिकर्मोपक्रमजनितोत्तररूपापत्तावपि अविशेषेण प्राणिनां प्रत्यभिज्ञानादिदर्शनात् वस्तुविनाशोपक्रमसंपादितोत्तरधर्मरूपे तु वस्तुन्यदर्शनात् विशेषसिद्धिरिति, अथवैकत्र विनाशस्यैव विवक्षितत्वाददोषः । एवमचित्तद्रव्योपक्रमः पद्मरागमणेः क्षारमृत्पुटपाकादिना वैमल्यापादनविनाशादीति । मिश्रद्रव्योपक्रमस्तु कटकादिविभूषितपुरुषादिद्रव्यस्यैवेति । विवक्षातश्च कारकयोजना द्रष्टव्या—द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यात् द्रव्ये वोपक्रमो द्रव्योपक्रम इति । तथा क्षेत्रस्योपक्रमः क्षेत्रोपक्रमः, आह–क्षेत्रममूर्त्तं नित्यं च, अतस्तस्य कथं करणविनाशाविति, उच्यते, तद्व्यवस्थितद्रव्यकरणविनाशभावादुपचारतः खल्वदोषः, तथा च तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशो युक्त एव, मञ्चाः क्रोशन्तीति यथा । तथा कालस्य वर्त्तनादिरूपत्वात् द्रव्यपर्यायरूपत्वात् द्रव्योपक्रम एवोपचारात् कालोपक्रम इति, चन्द्रोपरागादिपरिज्ञानलक्षणो वा । भावोपक्रमो द्विधा—आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाता उपयुक्तः, नोआगमतस्तु प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति, तत्राप्रशस्तो डोण्डिणिगणिकाऽमात्यादीनां,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एत्थोदाहरणाणि—एगे नगरे एगा मरुगिणी, सा चिंतेति—*कहं धूयाओ सुहियाओ होज्जत्ति, ताए जेट्ठिया धूआ सिक्खाविआ जहा वरं इंतं मत्थए पण्हियाए आहणिज्जसि, † ताए आहतो, सो तुट्ठो, पादं मद्दिउमारद्धो, णहु दुक्खाविअत्ति, तीए मायाए कहियं, ताए भण्णति–जं करेहि तं करेहि, ण ‡ एस तुज्झ किंची अवरज्झइत्ति । बीया सिक्खविआ, तीएवि आहतो, सो झिंखित्ता उवसंतो, सा भणति–तुमंपि वीसत्था विहराहि, णवरं झिंखणओ एसुत्ति । $ तईया सिक्खविआ, तीएवि आहतो, सो रुट्ठो, तेण दढं पिट्टिता धाडिया य, ¶ तं अकुलपुत्ती जा एवं करेसि, तीए मायाए कथितं, पच्छा कहवि अणुगमिओ, एस अम्ह कुलधम्मोत्ति, धूआ य भणिआ जहा देवतस्स √ तस्स तहा वट्टिज्जासि, मा छड्डेहित्ति ॥ एगम्मि नगरे चउसट्ठिकलाकुसला गणिया, तीए परभावोवक्कमणनिमित्तं रतिघरंमि सव्वाओ पगईओ णियणियवावारं करेमाणीओ आलिहावियाओ, तत्थ य जो जो ‖वड्ढइमाई, सो सो निययसिप्पं पसंसति, णाय-

१ अत्रोदाहरणानि–एकस्मिन्नगरे एका ब्राह्मणी सा चिन्तयति–कथं दुहितरः सुखिताः भवेयुरिति, तया ज्येष्ठा दुहिता शिक्षिता यथा वरमायान्तं मस्तके पार्ष्णिना आहन्याः, तयाऽऽहतः, स तुष्टः, पादं मर्दयितुमारब्धः नैव दुःखितेति, तया मात्रे कथितं, तया भण्यते–यत्कुरु (चिकीर्षसि) तत्कुरु नैष तव (त्वयि) किञ्चिदपराध्यति इति । द्वितीया शिक्षिता, तयाऽप्याहतः स खिङ्खित्वा (प्रभाष्य) उपशान्तः, सा भणति—त्वमपि विश्वस्ता विहर, परं खिङ्खणकः (प्रभाषकः) एष इति । तृतीया शिक्षिता, तयाऽप्याहतः, स रुष्टः, तेन दढं पिट्टिता निर्धाटिता च, त्वमकुलपुत्री यैवं करोषि, तया मात्रे कथितं, पश्चात् कथमपि अनुनीतः, एषः अस्माकं कुलधर्म इति, दुहिता च भणिता यथा दैवतस्य तथा तस्य वर्तेथाः, मा त्याक्षीत् इति ॥ एकस्मिन्नगरे चतुष्षष्टिकलाकुशला गणिका, तया परभावोपक्रमणनिमित्तं रतिगृहे सर्वाः प्रकृतयो निजनिजव्यापारं कुर्वत्य आलेखिताः, तत्र च यो यो वर्धक्यादिः, स स निजकं शिल्पं प्रशंसति, ॥ ५५ ॥

* बम्भिणी. + किहं. † तयाहतो. ‡ एयस्स. $ तत्तिआ. ¶ ०पुत्तिया √ तहा एयस्स. ‖ एइ व०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

अप्रशस्त उपक्रमे ब्राहमण्या: एवं गणिकाया: द्रष्टांता:,

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	

भावो य सुअणुयत्तो भवइ, अणुयत्तिओ य उवयारं गाहिओ खद्धं खद्धं दव्वजातं वियरेइत्ति ऍसविअ अपसत्थो भावोवक्कमो ॥ एगंमि णगरे † कोई राया अस्सवाहणियाए सहामच्चेणं निग्गओ, तत्थ ‡ से आसेण वच्चन्तेण खलिणे काईया वोसिरिआ, खिल्लरं बद्धं, तं च पुढवीए थिरत्तणओ तहट्ठियं चेव रण्णा पडिनियत्तमाणेण सुइरं निज्झाइयं, चिंतियं च णेण–इह तलागं सोहणं हवइत्ति, न उण वुत्तं, अमच्चेण इंगियागारकुसलेण रायाणमणापुच्छिय महासरं खणाविअं चेव, पालीए आरामा से पवरा कया, तेणं कालेणं ¶ रण्णा पुणरवि अस्सवाहणिआए गच्छंतेण दिट्ठं, भणियं च णेण—केण √इमं खणाविअं? अमच्चेण भणिअं–राय! तुब्भेहिं चेव, कहिं चिअ?, अवलोयणाए, × अहियपरितुट्ठेणं =संवड्ढणा कया। एसविअ $ अप्पसत्थभावोवक्कमोत्ति ॥ उक्तः अप्रशस्तः, इदानीं प्रशस्त उच्यते–तत्र श्रुतादिनिमित्तं आचार्यभावोपक्रमः प्रशस्त इति, आह—व्याख्याङ्गप्रतिपादनाधिकारे गुरुभावोपक्रमाभिधानमनर्थकमिति, न, तस्यापि व्याख्याङ्ग-

१ ज्ञातभावश्च स्वनुवर्त्तनीयो भवति, अनुवृत्तश्च उपचारं ग्राहितः प्रचुरं प्रचुरं द्रव्यजातं वितरतीति एषोऽपि चाप्रशस्तो भावोपक्रमः ॥ एकस्मिन्नगरे कश्चिद्राजाऽश्ववाहनिकया सहामात्येन निर्गतः, तत्र तस्याश्वेन व्रजता विषमभूमौ कायिकी (प्रश्रवणं) व्युत्सृष्टा, पल्वलं बद्धं (जातं), तच्च पृथ्व्याः स्थिरत्वात् तथास्थितमेव राज्ञा प्रतिनिवर्त्तमानेन सुचिरं निध्यातं, चिन्तितं चानेन, इह तटाकः शोभनो भवति इति, न पुनरुक्तं, अमात्येन इङ्गिताकारकुशलेन राजानमनापृच्छ्य महत्सरः खानितमेव, पाल्यां आरामास्तस्य प्रवराः कृताः, तस्मिन्काले पुनरप्यश्ववाहनिकया गच्छता दृष्टं, भणितं चानेन केनेदं खानितं, अमात्येन भणितं, राजन्! युष्माभिः, कथमेव, अवलोकनया, अधिकपरितुष्टेन संवर्धना कृता, एषोऽपि चाप्रशस्तभावोपक्रम इति । + एसोवि. † कोवि. ‡ य. ¶ तेणं समएणं √ एयं. × कहिए. = संवट्टणा. $ ०अप्पसत्थो भा०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भावउपक्रमे एक राज्ञः दृष्टांतः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

त्वात्, उक्तं च—" गुर्वायत्ता यस्माच्छास्त्रारम्भा भवन्ति सर्वेऽपि । तस्माद्गुर्वाराधनपरेण हितकाङ्क्षिणा भाव्यम् ॥ १ ॥" तथा च भाष्यकारेणाप्यभ्यधायि—" गुरुचित्तायत्ताइं वक्खाणंगाइं जेण सव्वाइं । जेण पुण सुप्पसण्णं होइ तयं तं तहा कज्जं ॥ १ ॥ आगारिंगियकुसलं जदि सेयं वायसं वए पुज्जा । तहविय सिं नवि कूडे विरहंमि अ कारणं पुच्छे ॥ २ ॥ णिवपुच्छिएण भणिओ गुरुणा गंगा कओमुही वहइ ? । संपाइयवं सीसो जह तह सवत्थ कायवं ॥ ३ ॥[1] " इत्यादि । आह—यद्येवं गुरुभावोपक्रम एवाभिधातव्यो न शेषाः, निष्प्रयोजनत्वात्, न, गुरुचित्तप्रसादनार्थमेव तेषामुपयोगित्वात्, तथा च देशकालावपेक्ष्य परिकर्मनाशौ द्रव्याणां उदकौदनादीनां आहारादिकार्येषु कुर्वन् विनेयो गुरोर्हरति चेत इति । अथवोपक्रमस्य साम्यात् प्रकृते निरुपयोगिनोऽपि अन्यत्र उपयोक्ष्यन्त इत्युपन्यस्तत्वाददोष इत्यलं विस्तरेण । उक्त इतरः, इदानीं शास्त्रीय उच्यते—असावपि षड्विध एव, तद्यथा—आनुपूर्वी १ नाम २ प्रमाणं ३ वक्तव्यता ४ अर्थाधिकारः ५ समवतार ६ इति । तत्रानुपूर्वी नाम(१)स्थापना(२)द्रव्य(३)क्षेत्र(४)काल(५)गणनो(६)त्कीर्त्तन(७)संस्थान(८)सामाचारी(९)भाव(१०)भेदभिन्ना दशप्रकारा, तस्यां †यथासंभवतः समवतारणीयमिदं, विशेषतस्तूत्कीर्त्तनगणनानुपूर्वीद्वय इति, उत्कीर्त्तना—संशब्दना यथा—सामायिकं

१ गुरुचित्तायत्तानि, व्याख्यानाङ्गानि येन सर्वाणि । येन पुनः सुप्रसन्नं भवति तत् तत्तथा कार्यम् । १ । आकारेङ्गितकुशलं यदि श्वेतं वायसं वदेयुः पूज्याः । तथापि च तस्य (वचनं) नैव कूटयेत्, विरहे च कारणं पृच्छेत् । २ । नृपपृष्टेन भणितो गुरुणा गङ्गा कुतोमुखी वहति ? । संपादितवान् शिष्यो यथा तथा सर्वत्र कार्यम् । ३ । विशेषावश्यके गाथाः ९३१–९३३–९३४) २ द्रव्याद्युपक्रमाः सचित्ताचित्ताद्युपक्रमा वा (क्षेत्रस्योपाश्रयादेरुपलेपनादिना कालस्य मुहूर्त्तादेः शिष्यदीक्षादौ घटिकादिना विशे०) * ०कुसला + समाचारी. † यथासंभवं.

उपक्रमस्य आनुपुर्वी आदि षड्भेदानाम् वर्णनं

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

चतुर्विंशतिस्तव इत्यादि, गणनं परिसंख्यानं—एकं द्वे त्रीणि चत्वारीत्यादि, सा च गणनानुपूर्वी त्रिप्रकारा पूर्वपश्चादनानुपूर्वीभेदभिन्ना, तत्र सामायिकं पूर्वानुपूर्व्या प्रथमं, पश्चानुपूर्व्या षष्ठं, अनानुपूर्व्या त्वनियतं क्वचित्प्रथमं क्वचिद्द्वितीयं इत्यादि। तत्रानानुपूर्वीणाम*यं करणोपायः—एकाद्येकोत्तरा विवक्षितपदानां स्थापना क्रियते, तत्र पदत्रयस्थापनैव तावत्संक्षेपतः प्रदर्श्यते—सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवः वन्दनाध्ययनमिति। अत्र 'पुवाणुपुवि हेट्ठा, समयाभेएण

१२३ १३२ २१३ २३१ ३१२ ३२१

कुण जहाजेट्ठं। उवरिमतुलं पुरओ नसेज्ज पुवक्कमो से+से ॥१॥ जहितंमि उनिक्खित्ते पुरओ सो चेव अंकविण्णासो। सो होइ समयभेदो वज्जेयव्वो पयत्तेणं ॥ २ ॥ भावना क्षुण्णत्वान्न प्रतन्यते, नवरमागतं त्रयाणामेतेषां षड् भङ्गा भवन्ति, अतश्चतस्रः खल्वनानुपूर्व्य इति। षण्णां तु पदानां सप्तविंशत्युत्तराणि †भङ्गकशतानि, अत्रापि सप्ताष्टादशोत्तराणि अनानुपूर्व्य इति। इदानीं नाम—प्रतिवस्तु नमनान्नाम, तच्चैकादि दशान्तं यथाऽनुयोगद्वारेषु तथा च वक्तव्यं, षड्नाम्नि त्ववतारः, तत्र षड् भावा औदयिकादयो निरूप्यन्ते, तत्र क्षायोपशमिक एव सर्वश्रुतावतारः, तस्य क्षायोपशमिकत्वादिति। तथा प्रमाणं—द्रव्यादि प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं, तच्च प्रमेयभेदादेव चतूरूपं, तद्यथा—द्रव्यप्रमाणं १ क्षेत्रप्रमाणं २ कालप्रमाणं ३ भावप्रमाणं च ४, तत्र सामायिकं भावात्मकत्वाद् भावप्रमाणविषयं, तच्च भावप्रमाणं त्रिधा—गुणनय-

१ पूर्वानुपूर्वी (आदौ) अधः समया (संकेता) भेदेन कुरु यथाज्येष्ठम्। उपरितुल्यं पुरतः न्यसेत् पूर्वे (पूर्वानुपूर्वी) क्रमः शेषे (पश्चात्)। १। यस्मिन्निक्षिप्ते पुरतः स एव अङ्कविन्यासः। स भवति समयभेदः वर्जयितव्यः प्रयत्नेन। २। (अनुयोगद्वारेषु) * ०णामानयनाय कर० + सेसो.
† षट्पदानामभ्योऽन्याभ्यासेन.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संख्याभेदभिन्नं, तत्र गुणप्रमाणमपि द्विधा—जीवगुणप्रमाणमजीवगुणप्रमाणं च, तत्र जीवादपृथग्भूतत्वात् सामायिकस्य जीवगुणप्रमाणे समवतारः, तदपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदभिन्नं, तत्र बोधात्मकत्वात्सामायिकस्य ज्ञानगुणप्रमाणे समवतारः, तदपि प्रत्यक्षानुमानोपमानागमभेदभिन्नं, तत्र सामायिकस्य प्रायः परोपदेशसव्यपेक्षत्वादागमे समवतारः, स च लौकिकलोकोत्तरसूत्रार्थोभयात्मानन्तरपरम्परा*भेदभिन्न इति, तत्र सामायिकस्य परमर्षिप्रणीतगणिपिटकान्तर्गतत्वात् लोकोत्तरे समवतारः, सूत्रार्थरूपत्वाच्च तदुभय इति, तथेदं गौतमादीनां सूत्रत आत्मागमः, तच्छिष्याणां जम्बूस्वामिप्रभृतीनां अनन्तरागमः, प्रशिष्याणां तु प्रभवादीनां परम्परागम इति, एवमर्थतोऽर्हतामात्मागमः गणधराणामनन्तरागमः तच्छिष्याणां तु परम्परागम इति । नयप्रमाणे तु मूढनयत्वात्तस्य नाधुनाऽवतार इति, वक्ष्यति च—" मूढणइयं सुयं कालियं तु' इत्यादि संख्या [१]नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालौपम्यपरिमाणभावभेदभिन्ना, यथाऽनुयोगद्वारेषु तथा वक्तव्या, तत्रोत्कालिकादिश्रुतपरिमाणसंख्यायां समवतारः, तत्र सूत्रतः सामायिकं परिमितपरिमाणं, अर्थतोऽनन्तपर्यायत्वादपरिमितपरिमाणमिति । इदानीं वक्तव्यता–सा च त्रिविधा–स्वसमयवक्तव्यता १ परसमयवक्तव्यता २ उभयसमयवक्तव्यता ३ चेति । स्वसमयः–स्वसिद्धान्तः, वक्तव्यता—पदार्थविचारः, तत्र स्वसमयवक्तव्यताया-

१ नामस्थापनाद्रव्यौपम्यपरिमाणज्ञानगणनभावभेदाद् अनुयोगेषु यत्सूत्रम्—से किं तं संखप्पमाणे ? संख० अट्ठविहे पण्णत्ते, तंजहा–नामसंखा ठवणासंखा दव्वसंखा ओवम्मसंखा परिमाणसंखा जाणणासंखा गणणासंखा भावसंखा– इह संख्याशब्देन संख्याशङ्खयोर्ग्रहणं द्रष्टव्यं प्राकृतमधिकृत्य (अनु० ५४९)

* ०म्पर० + ०लिकश्रु०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मस्य समवतारः, एवं परोभयसमयप्रतिपादकाध्ययनानामपि, यतः सर्वमेव सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतं परसमयसंबन्ध्यपि सम्यक् श्रुतमेव, तस्य स्वसमयोपकारकत्वादिति । इदानीमर्थाधिकारः, स चाध्ययनसमुदायार्थः, स्वसमयवक्तव्यतैकदेशः, स च सर्वसावद्ययोगविरतिरूपः । इदानीं समवतारः, स च लाघवार्थं प्रतिद्वारं समवतारणाद्वारेण प्रदर्शित एव । उक्त उपक्रमः, इदानीं निक्षेपः, स च त्रिधा–ओघनिष्पन्नो १ नामनिष्पन्नः २ सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति ३ । तत्र ओघो नाम यत् सामान्यं शास्त्राभिधानं, तच्चेह चतुर्विधमध्ययनादि, पुनः प्रत्येकं नामादिचतुर्भेदमनुयोगद्वारानुसारतः प्रपञ्चेनाभिधाय भावाध्ययनाक्षीणादिषु सामायिकमायोज्यं । नामनिष्पन्ने निक्षेपे सामायिकं, तच्च नामादिचतुर्विधं, इदं च निरुक्तिद्वारे सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तौ च प्रपञ्चेन वक्ष्यामः, आह—यदि तदिह नाम अवसरप्राप्तं किमिति निरुक्त्यादावस्य स्वरूपप्रतिपादनं, तत्र चेत्स्वरूपाभिधानमस्य हन्त इहोपन्यासः किमिति, अत्रोच्यते, इह निक्षेपद्वारे निक्षेपमात्रस्यैवावसरः, निरुक्तौ तु तदन्वाख्यानस्येति, आह—इत्थमपि निरुक्तिद्वार एव सामायिकव्याख्यानतः किं पुनः सूत्रेऽभिधीयते इति, उच्यते, तत्र हि सूत्रालापकव्याख्यानं, न तु नाम्नः, निरुक्तौ तु निक्षेपद्वारन्यस्तं सामायिकमित्यध्ययनाभिधानं निरूप्यते, अलं † प्रपञ्चेन, उक्तो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, इदानीं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः, स च प्राप्तलक्षणोऽपि न निक्षिप्यते, कस्मात् ?, सूत्राभावात्, असति च सूत्रे कस्यालापकनिक्षेप इति, अतोऽस्ति इतः तृतीय-

१ आदिनाऽक्षीणायक्षपणाग्रहणं 'अज्झयणं अक्खीणं आओ झवणा य पत्तेयं' ति वचनात्. २ उपोद्घातनिर्युक्तौ. ३ इतः परं. *०कारित्वात्.+ सावद्य० † प्रसङ्गेन.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अथ निक्षेपस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मनुयोगद्वारमनुगमाख्यं, तत्रैव निक्षेप्स्यामः । आह—यदि प्राप्तावसरोऽप्यसांविह न निक्षिप्यते किमित्युपन्यस्यते इति, उच्यते, निक्षेपसामान्यात् इह प्रदर्श्यत एव, न तु प्रतन्यते इति । इदानीमनुगमावसरः, स च द्विधा–निर्युक्त्यनुगमः सूत्रानुगमश्च, निर्युक्त्यनुगमस्त्रिप्रकारः, तद्यथा—निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्चेति, तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनुगत एव, यदधो नामादिन्यासान्वाख्यानमुक्तमिति । इदानीमुपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमप्रस्तावः, स च उद्देशादिद्वारलक्षण इति, अस्य च महार्थत्वान्मा भूद्विघ्न इति आरम्भे मङ्गलमुच्यते । आह—ननु मङ्गलं प्रागेवोक्तं, भूयः किं तेन ?, अथ कृतमङ्गलैरपि पुनरभिधीयते, इत्थं तर्हि प्रतिद्वारं प्रत्यध्ययनं प्रतिसूत्रं च वक्तव्यमिति । अत्राह कश्चित्—मङ्गलं हि शास्त्रस्यादौ मध्येऽवसाने चेति प्रतिपादितं, तत्रादिमङ्गलमुक्तं, इदानीं मध्यमङ्गलमुच्यते, तन्न, अनारब्ध एव शास्त्रे कुतो मध्यावकाश इति, स्यादेतत्, चतुरनुयोगद्वारात्मकं यतः शास्त्रं, अतोऽनुयोगद्वारद्वये ह्यतिक्रान्ते मध्यमङ्गलं, अत एव चानुयोगद्वाराणां शास्त्राङ्गतेति, नन्वेवमपि इदं शास्त्रमध्यं न भवति, अध्ययनमध्यत्वात्, शास्त्रमध्ये च मध्यमङ्गलावसर इति, तस्माद् यत्किञ्चिदेतत्, ततश्चायं स्थितपक्षः—इह यदादौ मङ्गलं प्रतिपादितं तदावश्यकादिमङ्गलं, इदं तु नावश्यकमात्रस्य, सर्वानुयोगोपोद्घातनिर्युक्तित्वात् प्रक्रान्तोपोद्घातस्य, वक्ष्यति च—“ आवस्सगस्स दसकालियस्स तह उत्तरज्झमायारे । † सूयगडे निज्जुत्ती, वोच्छामि तहा दसाणं ॥ ५८ ॥

१ आवश्यकसामायिकादीनां न्यासाख्यानात् निक्षेपस्थाने नाम्ना कीर्त्तनमत्र तु व्याख्यानमिति. २ आवश्यकस्य दशवैकालिकस्य तथा उत्तराध्याय आचारे । सूत्रकृते निर्युक्तिं वक्ष्यामि तथा दशाश्रुतस्कन्धस्य च । १ * नन्वित्थमपि. + स्थितिपक्षः स्थितः पक्षः † सुत्तगडे ‡ निज्जुत्तिं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

च ॥ १ ॥” इत्यादि, तथा “ सेसेसुवि अज्झयणेसु, होइ एसेव निज्जुत्ती ” चतुर्विंशतिस्तवादिष्विँति वक्ष्यति, अतो महार्थत्वात् कथञ्चित् शास्त्रान्तरत्वाच्चाँस्यारम्भे मङ्गलोपन्यासो युक्त एवेति, आह—सामायिकान्वाख्यानेऽधिकृते को हि दशवैकालिकादीनां प्रस्ताव इति, अत्रोच्यते, उपोद्घातसामान्यात्, यतस्तेशामपि प्रायः खल्वयमेवोपोद्घात इति, अलं †प्रपञ्चेन । तच्चेदं मङ्गलम्—

तित्थयरे भगवंते, अणुत्तरपरक्कमे अमियनाणी । तिण्णे सुगइगइगए, सिद्धिपहपदेसए वंदे ॥ ८० ॥

गमनिका—तीर्थकरणशीलास्तीर्थकराः तान् वन्द इति योगः, तत्र ‘ तॄ प्लवनतरणयोः ’ इत्यस्य ‘पातॄतुदिवचिसिचिरिचिभ्यस्थग् (उणादौ पा० २–१७२) इति ‡थक्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे च कृते ‘ ऋत इद्धा धातोः (पा० ७-१-१००) इति इत्त्वे रपरत्वे हलि चेति दीर्घत्वे परगमे च तीर्थ इति स्थिते ‘ डुकृञ् करणे ’ इत्यस्य ‘ चरेष्टः’ (पा० ३–२–१६) इत्यस्मात् सूत्रात् टप्रत्ययाधिकारेऽनुवर्त्तमाने ‘ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ’ (पा० ३–२–२०) इतिटप्रत्ययेऽनुबन्धलोपे च कृते गुणे रपरत्वे परगमने च तीर्थकर इति भवति । तत्र तीर्यतेऽनेनेति तीर्थं, तच्च नामादिचतुर्भेदभिन्नं, तत्र नोआगमतो द्रव्यतीर्थं नद्यादीनां समो भूभागोऽनपायश्च, तत्सिद्धौ तरिता तरणं तरणीयं च सिद्धं पुरुषबाहूडुपनद्यादि, द्रव्यता चास्येत्थं तीर्णस्यापि पुनस्तरणीयभावात्, अनेकान्तिकत्वात्, स्नानविवक्षायां च बाह्यमलापनयनात् आन्तरस्य

१ शेषेष्वपि अध्ययनेषु भवत्येषैव निर्युक्तिः (निर्युक्तौ) २ अनात्यन्तिकत्वात्. * ०ष्वपि. + ०रत्वाच्चास्या० † प्रसङ्गेन. ‡ ०प्रत्ययोऽनु०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

मङ्गलार्थे तिर्थंकर-आदीनाम् वन्दनं एवं तिर्थंकरादि शब्दानाम् व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

प्राणातिपातादिकारणपूर्वकत्वात्, तस्य[1] च तद्विनिवृत्तिमन्तरेणोत्पत्तिनिरोधाभावात्, प्रागुपात्त[3]स्य च विशिष्टक्रियासव्यपेक्षाध्यवसायजन्यस्य तत्प्रत्यनीकक्रियासहगताध्यवसायतः क्षयोपपत्तेः, तत्क्षया[6]भावे च भाव[7]तो भवतरणानुपपत्तेरिति । भावतीर्थं तु नोआगमतः संघः, सम्यग्दर्शनादिपरिणामानन्यत्वात्, यत उक्तं—"तित्थं भंते ! तित्थं ? तित्थकरे तित्थं?, गोयमा ! अरिहा ताव नियमा तित्थयरे, तित्थं पुण चाउवण्णो समणसंघो, पढमगणहरो वा" । तरिता तु तद्विशेष एव साधुः, तथा सम्यग्दर्शनादित्रयं करणभावापन्नं तरणं, तरणीयो भवोदधिरिति । अथवा—पङ्कदाहपिपासानामपहारं करोति यत् । तद्धर्मसाधनं तथ्यं, तीर्थमित्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥ पङ्कस्तावत् पापं, दाहः कषायाः, पिपासा विषयेच्छा, एतेषामपहरणसमर्थं यदित्यर्थः, अथवा सुखावतारं सुखोत्तारं १ सुखावतारं दुरुत्तारं २ दुःखावतारं सुखोत्तारं ३ दुःखावतारं दुरुत्तार ४ मिति[†] द्रव्यभावतीर्थं द्रष्टव्यं, तच्च स[10]रजस्कशाक्यबोटि[11]कसाधु[12]संबन्धि विज्ञेयं, अलं प्रसङ्गेन । तथा भगः—समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, उक्तं च—"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना[13] ॥ १ ॥" ततश्च समग्रैश्वर्यादिभगयोगाद्भगवन्तोऽर्हन्त इति तान् भगवतः । आह—तीर्थकरा-

१ आन्तरस्य. २ अभ्यन्तरमलस्य. ३ प्राणातिपातादिकात्. ४ मिथ्यात्वादिलक्षण० ५ सम्यग्दर्शनानुसारिणी. ६ आन्तरकर्ममलक्षयाभावे. ७ तत्त्वतः भवतारणा० ८ तत्थाइमयं सरक्खाणं ॥ १०४० ॥ तच्चणियाणं बीयं विसयसुहकुसत्थभावणाघणिअं । तइयं च बोडियाणं चरिमं जइणं सिवफलं तु ॥१०४१॥ (विशे०) ९ तीर्थं भदन्त ! तीर्थं तीर्थकरस्तीर्थम् ?, गौतम ! अर्हन् तावन्नियमात्तीर्थकरः तीर्थं पुनः चतुर्वर्णः श्रमणसङ्घः प्रथमगणधरो वा । १० शैवाः ११ दिगम्बराः १२ जैनसाधवः १३ अभिख्या.* तत्क्षयाभावतो० + भवता. † ०मितीरथं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

नित्यनेनैव 'भगवत' इत्यस्य गतार्थत्वात् तीर्थकृतामुक्तलक्षणभगाव्यभिचारात् नार्थोऽनेनेति, न, नयमतान्तरावलम्बि-परिकल्पिततीर्थकरतिरस्कारपरत्वादस्येति, तथा च न तेऽविकलभगवन्तः, तान् भगवतो, वन्द इति क्रिया सर्वत्र योज्या। तथा परे–शत्रवः, ते च क्रोधाद्याः, आक्रमणमाक्रमः–पराजयः तदुच्छेद इतियावत्, परेषामाक्रमः पराक्रमः, सोऽनुत्तरः–अनन्यसदृशो येषां ते तथाविधाः। आह—ये खलु ऐश्वर्यादिभगवन्तः तेऽनुत्तरपराक्रमा एव, तमन्तरेण विवक्षितभगयोगाभावात्, ततश्च 'अनुत्तरपराक्रमान्' इत्येतदतिरिच्यते इति, अत्रोच्यते, अनादिशुद्धैश्वर्यादिसमन्वितपरमपुरुषप्रतिपादनपरनयवादनिराकरणार्थत्वाद् न दोषः, तथा चानुत्तरपराक्रमत्वमन्तरेणैव कैश्चित् हिरण्यगर्भादीनामनादिविवक्षितभगयोगोऽभ्युपगम्यत इति, उक्तं च—"ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥ १ ॥" इत्यादि, अकर्त्रात्मवादव्यवच्छेदार्थं वा। अमितं—अपरिमितं ज्ञेयानन्तत्वात् केवलं, अमितं ज्ञानं एषामित्यमितज्ञानिनः। आह—येऽनुत्तरपराक्रमास्तेऽमितज्ञानिन एव नियमेन, क्रोधादिपरिक्षयोत्तरकालभावित्वाद् अमितज्ञानस्येति, उच्यते, सत्यमेतत्, किं तु क्लेशक्षयेऽप्यमितज्ञानानभ्युपगमप्रधाननयवादनिरासार्थत्वाद् उपन्यास इति, तथा चाहुरेके—" सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु। कीटसङ्ख्यापरिज्ञानं, तस्य नः क्वोपयुज्यते? ॥ १ ॥ इत्यादि", स्वसिद्धान्तप्रसिद्धच्छद्मस्थवीतरागव्यवच्छेदार्थं वा। तथा तरन्ति स्म भवार्णवमिति तीर्णास्तान् तीर्णान्, तीर्त्वा च भवौघं 'सुगतिगतिगतान्' तत्र सर्वज्ञत्वात्सर्वदर्शित्वाच्च निरुपमसुखभागिनः सुगतयः—सिद्धाः, तेषां

१ अविकलभगवत इति. * °सिद्धैश्व° + दिक्षयो°

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गतिः सुगतिगतिः, अनेन तिर्यङ्नरनारकामरगतिव्यवच्छेदेन पञ्चमीमोक्षगतिमाह, तां गताः—प्राप्ताः तान्, अनेन चावाप्ताणिमाद्यष्टविधैश्वर्यस्वेच्छाविलसनशीलपुरुषतीर्णत्वप्रतिपादनपरनयवादव्यवच्छेदमाह, तथा च केचिदाहुः— “अणिमाद्यष्टविधं प्राप्यैश्वर्यं कृतिनः सदा। मोदन्ते सर्वभावज्ञास्तीर्णाः परमदुस्तरम् ॥ १ ॥ इत्यादि” तथा सिद्धेः तस्या एव सुगतेः पन्थाः सिद्धिपथः तस्य प्रधाना देशकाः तद्बीजभूतसामायिकादिप्रतिपादकत्वात् प्रदेशकाः, अनेन त्वनवद्यानेकसत्त्वोपकारकतीर्थकरनामकर्मविपाकपरिणामवत् तत्स्वरूपमेवाह, तान् 'वन्दे' अभिवादये इति गाथार्थः ॥८०॥ एवं तावदविशेषेण ऋषभादीनां मङ्गलार्थं वन्दनमुक्तं, इदानीं आसन्नोपकारित्वात् वर्त्तमानतीर्थाधिपतेः अखिलश्रुतज्ञानार्थप्रदर्शकस्य वर्धमानस्वामिनो वन्दनमाह—

वंदामि महाभागं, महामुणिं महायसं महावीरं। अमरनररायमहिअं, तित्थयरमिमस्स तित्थस्स ॥८१॥

व्याख्या—तत्र वन्दामीत्यादि दीपकं अशेषोत्तरपदानुयायि द्रष्टव्यं। तत्र भागः-अचिन्त्या शक्तिः, महान् भागोऽस्येति महाभागः तं, तथा मनुते मन्यते वा जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः सर्वज्ञत्वात्, महाँश्चासौ मुनिश्च महामुनिः तं, त्रैलोक्यव्यापित्वात् महद्यशोऽस्येति महायशाः तं, 'महावीरं' इत्यभिधानं, अथवा 'शूर वीर विक्रान्तौ' इति कषायादिशत्रुजयान्महाविक्रान्तो महावीरः, अत्यन्तानुरक्तकेवलामलश्रिया विराजत इति वा वीरः, उक्तं च—“विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते। तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद्वीर इति स्मृतः ॥ १ ॥” अमराश्च नराश्च अमरनरास्तेषां राजानः

१ मङ्गल्यं महोपकारकं च वन्दे (विशे० वृत्तौ) * कर. + अनन्यानुरक्त०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेषणपूर्वक भगवत् महावीरस्य वंदना

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

इन्द्रचक्रवर्त्तिप्रभृतयः तैर्महितः–पूजितः तं, तीर्थकरं 'अस्य' वर्त्तमानकालावस्थायिनः तीर्थस्य इति गाथार्थः ॥ ८१ ॥
एवं तावदर्थवक्तुर्मङ्गलार्थं वन्दनमभिहितं, इदानीं सूत्रकर्तृप्रभृतीनामपि पूज्यत्वात् वन्दनमाह—

इक्कारसवि गणहरे पवायए पवयणस्स वंदामि। सव्वं गणहरवंसं वायगवंसं पवयणं च ॥ ८२ ॥

व्याख्या—'एकादश' इति संख्यावाचकः शब्दः, 'अपिः' समुच्चये, अनुत्तरज्ञानदर्शनादिधर्मगणं धारयन्तीति गणधरास्तान्, प्रकर्षेण प्रधाना आदौ वा वाचकाः प्रवाचकाः तान्, कस्य ?–'प्रवचनस्य' आगमस्येत्यर्थः, किं ?–वंदामि*, एवं तावन्मूलगणधरवन्दनं, तथा 'सर्वं' निरवशेषं, गणधराः–आचार्यास्तेषां वंशः–प्रवाहस्तं, तथा वाचका–उपाध्यायास्तेषां वंशस्तं, तथा 'प्रवचनं च' आगमं च, वन्द इति योगः। आह—इह वंशद्वयस्य प्रवचनस्य च कथं वन्द्यतेति, उच्यते, यथा अर्थवक्ता अर्हन् वन्द्यः, सूत्रवक्तारश्च गणधराः, एवं यैरिदमर्थसूत्ररूपं प्रवचनं आचार्योपाध्यायैरानीतं, तद्वंशोऽप्यानयनद्वारेणोपकारित्वात् वन्द्य एवेति, प्रवचनं तु साक्षाद्वृत्त्यैवोपकारित्वादेव वन्द्यमिति गाथार्थः ॥ ८२ ॥
इदानीं प्रकृतमुपदर्शयन्नाह—

ते वंदिऊण सिरसा अत्थपुहुत्तस्स तेहि कहियस्स। सुयनाणस्स भगवओ निज्जुत्तिं कित्तइस्सामि ॥ ८३ ॥

व्याख्या—'तान्' अनन्तरोक्तान् तीर्थकरादीन् 'वन्दित्वा' प्रणम्य 'शिरसा' उत्तमाङ्गेन, किम् ?–निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये, कस्य ?–'अर्थपृथक्त्वस्य' तत्र श्रुताभिधेयोऽर्थः तस्मात् सूत्रं पृथक् तद्भावः पृथक्त्वं च अर्थश्च पृथक्त्वं चेति एकव-

१ चान्द्रे णिज उभयपदभावात्. २ तदेव पृथक्त्वमिति विशे० मलयगिरीयायां च. * वन्दे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

गणधर-वंदना एवं निर्युक्तिरचना-प्रतिज्ञा

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ६१ ॥ | हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

द्भावः, अर्थेन वा पृथु अर्थपृथु तद्भावः अर्थपृथुत्वं श्रुतविशेषणमेव तस्य, 'तैः' तीर्थकरगणधरादिभिः 'कथितस्य' प्रतिपादितस्य, कस्य ?–श्रुतज्ञानस्य भगवतः, स्वरूपाभिधानमेतत्, सूत्रार्थयोः परस्परं निर्योजनं निर्युक्तिः तां 'कीर्त्तयिष्ये' प्रतिपादयिष्ये इति गाथार्थः ॥ ८३ ॥ आह—किमशेषश्रुतज्ञानस्य ?, न, किं तर्हि ?, श्रुतविशेषाणामावश्यकादीनामिति, अत एवाह—

आवस्सगस्स दसकालिअस्स तह उत्तरज्झमायारे । सूयगडे निज्जुत्तिं वुच्छामि तहा दसाणं च ॥ ८४ ॥
कप्पस्स य निज्जुत्तिं ववहारस्सेव परमणिउणस्स । सूरिअपण्णत्तीए वुच्छं इसिभासिआणं च ॥ ८५ ॥
एतेसिं निज्जुत्तिं वुच्छामि अहं जिणोवएसेणं । आहरणहेउकारणपयनिवहमिणं समासेणं ॥ ८६ ॥

आसां गमनिका—आवश्यकस्य दशवैकालिकस्य तथोत्तराध्ययनाचारयोः समुदायशब्दानामवयवे वृत्तिदर्शनाद् यथा भीमसेनः सेन इति उत्तराध्य इति उत्तराध्ययनमवसेयं, अथवाऽध्ययनमध्यायः, उत्तराध्यायाचारयोः, सूत्रकृतविषयां निर्युक्तिं वक्ष्ये, तथा दशानां च संबन्धिनीमिति गाथार्थः ॥ ८४ ॥ तथा कल्पस्य च निर्युक्तिं व्यवहारस्य च परमनिपुणस्य, तत्र परमग्रहणं मोक्षाङ्गत्वात् निपुणग्रहणं त्वव्यंसकत्वात्, तथा च न मन्वादिप्रणीतव्यवहारवद्व्यंसकोऽयं, "सच्चपइण्णा खु ववहारा" इति वचनात्, तथा सूर्यप्रज्ञप्तेः वक्ष्ये, ऋषिभाषितानां च देवेन्द्रस्तवादीनां निर्युक्तिं, क्रियाभिधानं चानेकशः ग्रन्थान्तरविषयत्वात् समासव्यासरूपत्वाच्च शास्त्रारम्भस्य अदुष्टमेवेति गाथार्थः ॥ ८५ ॥ 'एतेषां' श्रुतविशे- ॥ ६१ ॥

१ संज्ञाऽप्येषा श्रुतस्येति वि०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

षाणां, निर्युक्तिं वक्ष्ये अहं जिनोपदेशेन, न तु स्वमनीषिकयैव, आहरणहेतुकारणपदनिवहां एतां समासेन, तत्र साध्यसाधनान्वयव्यतिरेकप्रदर्शनमाहरणं दृष्टान्त इतियावत्, साध्यधर्मान्वयव्यतिरेकलक्षणो हेतुः, हेतुमुल्लङ्घ्य प्रथमं दृष्टान्ताभिधानं न्यायप्रदर्शनार्थं–क्वचिद्धेतुमनभिधाय दृष्टान्त एवोच्यते इति, यथा गतिपरिणामपरिणतानां जीवपुद्गलानां गत्युपष्टम्भको धर्मास्तिकायः, मत्स्यादीनां सलिलवत्, तथा क्वचिद्धेतुरेव केवलोऽभिधीयते, न दृष्टान्तः, यथा मदीयोऽयमश्वः विशिष्टचिह्नोपलब्ध्यन्यथानुपपत्तेः, तथा चाभ्यधायि निर्युक्तिकारेण—"जिण*वयणं सिद्धं चेव भण्णई कत्थवी उदाहरणं। आसज्ज उ सोयारं हेऊवि कहंचिय भणेज्जा ॥ १ ॥ इत्यादि"। कारणमुपपत्तिमात्रं, यथा निरुपमसुखः सिद्धः, ज्ञानानाबाधप्रकर्षात्, नात्र आविद्वदङ्गनादिलोकप्रतीतः साध्यसाधनधर्मानुगतो दृष्टान्तोऽस्ति, त+त्राहरणार्थाभिधायकं पदमाहरणपदं, एवमन्यत्रापि भावनीयं। आहरणं च हेतुश्च कारणं च आहरणहेतुकारणानि तेषां पदानि आहरणहेतुकारणपदानि तेषां निवहः–संघातो यस्यां निर्युक्तौ सा तथाविधा तां 'एतां' वक्ष्यमाणलक्षणां अथवा प्रस्तुतां 'समासेन' संक्षेपेणेति व्याख्यातं गाथात्रयमिति ॥ ८६ ॥ तत्र 'यथोद्देशस्तथा निर्देश' इति न्यायात् आदावधिकृताऽऽवश्यकाद्या†ध्ययनसामायिकाख्योपोद्घातनिर्युक्तिमभिधित्सुराह—

सामाइयनिज्जुत्तिं वुच्छं उवएसियं गुरुजणेणं। आयरियपरंपरएण आगयं आणुपुव्वीए ॥ ८७ ॥

व्याख्या—सामायिकस्य निर्युक्तिः सामायिकनिर्युक्तिः तां 'वक्ष्ये' अभिधास्ये, उप–सामीप्येन देशिता उपदेशिता तां,

१ जिनवचनं सिद्धमेव भण्यते कुत्रापि उदाहरणम्। आसाद्य तु श्रोतारं हेतुमपि क्वचिद् भणेत् ॥ १ ॥ * कहिंवि. + तथा तत्रोदा०. † ध्ययन०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अथ सामायिकस्य निर्युक्तिः कथ्यते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ६२ ॥

केन ?–‘गुरुजनेन’ तीर्थकरगणधरलक्षणेन, पुनरुपदेशनकालादारभ्य आचार्यपारम्पर्येण आगतां, स च परम्परको द्विधा–द्रव्यतो भावतश्च, द्रव्यपरम्परक इष्टकानां पुरुषपारम्पर्येणानयनं, अत्र चासंमोहार्थं कथानकं गाथाविवरणसमासौ वक्ष्यामः, भावपरम्परकस्त्वियमेव उपोद्घातनिर्युक्तिरेवं* आचार्यपारम्पर्येणागतेति, कथम् ?, ‘आनुपूर्व्या’ परिपाट्या जम्बूस्वामिनः प्रभवेनानीता, ततोऽपि शय्यम्भवादिभिरिति, अथवा आचार्यपारम्पर्येण आगतां स्वगुरुभिरुपदेशितामिति। आह—द्रव्यस्य इष्टकालक्षणस्य युक्तं पारम्पर्येण आगमनं, भावस्य तु श्रुतपर्यायत्वात् वस्त्वन्तरसंक्रमणाभावात् पारम्पर्येणागमनानुपपत्तिरिति, न च तद्बीजभूतस्य अर्हद्गणधरशब्दस्यागमनमस्ति, तस्य श्रुत्यनन्तरमेवोपरमादिति, अत्रोच्यते, उपचारादं+दोषः, यथा कार्षापणाद् घृतमागतं घटादिभ्यो वा रूपादिविज्ञानमिति। एवमियमाचार्यपारम्पर्यहेतुत्वात् तत आगतेत्युच्यते, आगतेवागता, बोधवचनश्चायमागतशब्दो न गमि†क्रियावचन इति, अलं विस्तरेण। दव्वपरंपरए इमं उदाहरणं—[1]साकेयं णगरं, तस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसिभागे सुरप्पिए नाम जक्खायतणे, सो य सुरप्पिओ जक्खो सन्निहियपाडिहेरो, सो वरिसे वरिसे चित्तिज्जइ, महो य से परमो कीरइ, सो य चित्तिओ समाणो तं चेव चित्तकरं मारेइ,

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

॥ ६२ ॥

---

१ द्रव्यपरम्परके इदमुदाहरणम्—साकेतं नगरं, तस्य उत्तरपौरस्त्ये (ईशानकोणे) दिग्भागे सुरप्रियं नाम यक्षायतनं, स च सुरप्रियो यक्षः (प्रतिमारूपः) सन्निहितप्रातिहार्यः, स वर्षे वर्षे चित्र्यते, महश्च तस्य परमः क्रियते, स च चित्रितः सन् तमेव चित्रकरं मारयति, * नेदम् (क्वचित्) + ०श्च दोषः. † गति०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

द्रव्यपरम्पराए चित्रकारस्य दृष्टांतः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

अहं न चित्तिज्जइ तओ जणमारिं करेइ, ततो चित्तगरा सव्वे पलाइउमारद्धा, पच्छा रण्णा णायं, जदि सव्वे पलायंति, तो एस जक्खो अचित्तिज्जंतो अम्ह वहाए भविस्सइ, तेणं चित्तगरा एक्कसंकलितबद्धा पाडुहुएँहिं कया, तेसिं णामाइं पत्तए लिहिऊण घडए छूढाणि, ततो वरिसे वरिसे जस्स णामं उट्ठाति, तेण चित्तेयव्वो, एवं कालो वच्चति। अण्णया कयाइं कोसंबीओ चित्तगरदारओ घराओ पलाइओ तत्थागओ सिक्खगो, सो भमंतो साके|तस्स चित्तगरस्स घरं अल्लीणो, सोवि एगपुत्तगो थेरीपुत्तो, सो से तस्स| मित्तो जातो, एवं तस्स तत्थ अच्छंतस्स अह तंमि वरिसे तस्स थेरीपुत्तस्स वारओ जातो, पच्छा सा थेरी बहुप्पगारं रुवति, तं रुवमाणीं थेरीं दट्ठूण कोसंबको भणति–किं अम्मो ! रुदसि ?, ताए सिट्ठं, सो भणति–मा रुयह, अहं एयं जक्खं चित्तिस्सामि, ताहे सा भणति–तुमं मे पुत्तो किं न भवसि ?, तोवि अहं चित्तेमि, अच्छह तुब्भे असोगाओ, ततो छट्ठभत्तं काऊण अहतं वत्थजुअलं परिहित्ता अट्ठगुणाए पो|त्तीए मुहं बंधिऊण चोक्खेण य|पत्तेण सुइभूएण णवएहिं कलसएहिं ण्हाणेत्ता णवएहिं कुच्चएहिं णवएहिं मल्ल¶संपुडेहिं अल्ले§सेहिं वण्णेहिं च|| चित्तेऊण पायव-

१ अथ न चित्र्यते तदा जनमारिं करोति, ततश्चित्रकराः सर्वे पलायितुमारब्धाः, पश्चाद्राज्ञा ज्ञातं, यदि सर्वे पलायिष्यन्ते तर्हि एष यक्षोऽचित्र्यमाणः अस्माकं वधाय भविष्यति, तेन चित्रकरा एकशृङ्खलाबद्धा प्रतिभूकैः (पारितोषिकैः) कृताः, तेषां नामानि पत्रके लिखित्वा घटे क्षिप्तानि, ततो वर्षे वर्षे यस्य नाम उत्तिष्ठते, तेन चित्रयितव्यः, एवं कालो गच्छति। अन्यदा कदाचित् कौशाम्बीकः चित्रकरदारकः गृहात् पलायितः तत्रागतः शिक्षकः (शिक्षितुं), स भ्राम्यन् साकेतकस्य चित्रकरस्य गृहमालीनः, सोऽपि एकपुत्रकः स्थविरापुत्रः, सोऽथ तस्य मित्रं जातः, एवं तस्मिंस्तिष्ठति अथ तस्मिन्वर्षे तस्य स्थविरापुत्रस्य वारको जातः, पश्चात् सा स्थविरा बहुप्रकारं रोदिति, तां रुदतीं दृष्ट्वा स्थविरां कौशाम्बीको भणति—किमम्ब ! रोदिषि? तया शिष्टं (वृत्तान्तं), स भणति–मा रुदिहि अहमेतं यक्षं चित्रयिष्यामि, तदा सा भणति–त्वं मे पुत्रः किं नासि, तथापि अहं चित्रयामि, तिष्ठथ यूयमशोकाः, ततः षष्ठभक्तं कृत्वाऽहतं वस्त्रयुगलं परिधायाष्टगुणया वस्त्रिकया मुखं बद्ध्वा चोक्षेण प्रयत्नेन शुचीभूतेन नवैः कलशैः स्नपयित्वा नवैः कूर्चकैः नवैर्मलकसंपुटैः अश्लेषैर्वर्णैश्च चित्रयित्वा पादप

तितो भणति–* पाडुडएहिं प्र०. + ०सिं सव्वेसिं. † सागेयगस्स. ‡ नास्तीदम्. † मुहपोत्तीए. ‡ ०ण पएण णव०. ¶ मल्लयसं०. § अल्लेस्सेहिं. || चित्तिओ चित्ते०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

डिओ भणइ—खमह जं मए अवरद्धं ति ?, ततो तुट्ठो जक्खो भणति–वरेहि वरं, सो भणति—एयं चेव ममं वरं देहि, मा लोगं मारेह, भणति–एतं ताव ठितमेव, जं तुमं न मारिओ, एवं अण्णेवि न मारेमि, अण्णं भण, जस्स एगदेसमवि पासामि दुपयस्स वा चउप्पयस्स वा अपयस्स वा तस्स तदाणुरूवं रूवं णिव्वत्तेमि, एवं होउत्ति दिण्णो वरो, ततो सो लद्धवरो रण्णा सक्कारितो समाणो गओ कोसंबीं णयरिं, तत्थ य सयाणिओ नाम राया, सो अण्णया कयाई सुहासणगओ दूअं पुच्छइ—किं मम णत्थि ? जं अण्णराईण अत्थि, तेण भणिअं—चित्तसभा णत्थि, मणसा देवाणं वायाए पत्थिवाणं, तक्खणमेत्तमेव आणत्ता चित्तगरा, तेहिं सभाओवासा विभइत्ता पचित्तिता, तस्स वरदिण्णगस्स जो रण्णो अंतेपुरकिड्डापदेसो सो दिण्णो, तेणं तत्थ तदाणुरूवेसु णिम्मिएसु कदाइ मिगावतीए जालकिड्डंगंतरेण पादंगुट्ठओ दिट्ठो, उवमाणेण णायं जहा मिगावती एसत्ति, तेण पादंगुट्ठगाणुसारेण देवीए रूवं णिव्वत्तिअं, तीसे चक्खुंमि उम्मिल्लिज्जंते

१ क्षमस्व यन्मयाऽपराद्धमिति, ततस्तुष्टो यक्षो भणति-वृणुष्व वरं, स भणति–एतमेव मम वरं देहि, मा लोकं मारय (मीमरः) इति, भणति–एतत्तावत्स्थितमेव, यत्त्वं मारितः, एवमन्यानपि न मारयिष्यामि, अन्यद्वृण, (स भणति–)यस्य एकमपि देशं पश्यामि द्विपदस्य वा चतुष्पदस्य वा अपदस्य वा, तस्य तदनुरूपं रूपं निर्वर्त्तयामि, एवं भवत्विति दत्तो वरः, ततः स लब्धवरो राज्ञा सत्कृतः सन् गतः कौशाम्बीं नगरीं, तत्र च शतानीको नाम राजा, सोऽन्यदा कदाचित् सुखासनगतो दूतं पृच्छति–किं मम नास्ति यदन्येषां राज्ञामस्ति ?, तेन भणितं–चित्रसभा नास्ति, 'मनसा देवानां, वाचा पार्थिवानां' (कार्यसिद्धिः इति नियमात्) तत्क्षण एव आज्ञप्ताश्चित्रकृतः, तैः सभावकाशा विभज्य प्रचित्रिताः (चित्रितुमारब्धाः) तस्मै दत्तवराय यो राज्ञोऽन्तःपुरक्रीडाप्रदेशः स दत्तः, तेन तत्र (क्रीडाप्रदेशे) तदनुरूपेषु निर्मितेषु (रूपेषु) कदाचिन्मृगावत्या जालकटकान्तरे पादाङ्गुष्ठको दृष्टः, उपमानेन ज्ञातं-यथा मृगावती एषेति, तेन पादाङ्गुष्ठकानुसारेण देव्याः रूपं निर्वर्त्तितं, तस्याश्चक्षुष्युन्मील्यमाने $ एवं. ‡ मारेहि. ʃ मारेमो. ⁕ एगपदे०. ‡ पासामि. V नेदम्. * वाया. + सभा सा. † कडगं०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

(चित्रकारकथा मध्ये) शतानीक-मृगावति-कथानकं

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

एगो मसिबिन्दू ऊरुयंतरे पडिओ, तेण फुसिओ, पुणोऽवि जातो, एवं तिन्नि वारा, पच्छा तेण णायं, एतेन एवं होयव्वमेव, ततो चित्तसभा निम्मि‡ता, राया चित्तसभं पलोएंतो तं पदेसं पत्तो जत्थ सा देवी, तं णिव्वण्णंतेण सो बिन्दू दिट्ठो, विरु¶ट्ठो, एतेण मम पत्ती धरिसियत्तिकाऊण वज्झो आणत्तो, चित्तगरसेणी उवट्ठिता, सामि ! एस वरल‡द्धोत्ति, ततो से खुज्जाए मुहं दाइयं, तेण तदाणुरूवं णिव्वत्तितं, तथावि तेण संडासओ छिंदाविओ चेव, णिव्विसओ य आणत्तो, सो पुणो जक्खस्स उववासेण ठितो, भणिओ य-वामेण चित्तिहिसि, सयाणियस्स पदोसं गतो, तेण चिंतियं-पज्जोओ एयस्स अप्पीतिं वहेज्जा, ततो णेण मिगावईए चित्तफलए रूवं चित्तेऊण, पज्जोयस्स उवऽट्ठविअं, तेण दिट्ठं, पुच्छिओ, सिट्ठं, तेण दूओ पयट्टितो, जदि मिया‖वइं न पट्ठवेसि तो एमि, तेण असक्कारिओ णिद्धमणेण णिच्छूढो, तेण सिट्ठं, इमोवि तेण दूयवयणेण रुट्ठो, सव्वबलेण कोसंबिं एइ, तं आगच्छंतं सोउं सयाणिओ अप्पबलो अतिसारेण मओ, ताहे$

---

१ एको मषीबिन्दुः ऊर्वन्तरे पतितः, तेन स्पृष्टः (मृष्टः), पुनरपि जातः, एवं त्रीन् वारान्, पश्चात् तेन ज्ञातं, एतेनैवं भवितव्यमेव, ततश्चित्रसभा निर्मिता, ततो राजा चित्रसभां प्रलोकयन् तं प्रदेशं प्राप्तः, यत्र सा देवी (चित्रिता), तां निर्वर्णयता स बिन्दुर्दृष्टः, विरुष्टः, एतेन मम पत्नी धर्षितेतिकृत्वा वध्य आज्ञप्तः, चित्रकृच्छ्रेणिरुपस्थिता, स्वामिन्! एष लब्धवर इति, ततस्तस्मै कुब्जाया मुखं दर्शितं, तेन तदनुरूपं निर्वर्त्तितं, तथापि तेन संदंशकः (अङ्गुष्ठतर्जन्योरग्रं) छेदित एव, निर्विषयश्चाज्ञप्तः, स पुनर्यक्षाय (यक्षमाराद्धुं) उपवासेन स्थितः, भणितश्च-वामेन चित्रयिष्यसि, शतानीके प्रद्वेषं गतः, तेन चिन्तितं-प्रद्योत एतस्याप्रीतिं वहेत् (वोढुं शक्तः), ततोऽनेन मृगावत्याश्चित्रफलके रूपं चित्रयित्वा प्रद्योताय उपस्थापितं, तेन दृष्टं, पृष्टः, शिष्टं, तेन दूतः प्रवर्त्तितः, यदि मृगावतीं न प्रस्थापयसि तर्ह्येमि (योद्धुमिति शेषः) तेन असत्कृतः निर्धमनेन निष्काशितः, तेन शिष्टं, अयमपि तेन दूतवचनेन रुष्टः, सर्वबलेन कौशाम्बीमेति, तमागच्छन्तं श्रुत्वा शतानीकोऽल्पबलोऽतीसारेण मृतः, तदा ‡ निम्माता. ¶ तं दट्ठूण रुट्ठो. ‡ वरलद्धिओत्ति § उवट्ठितं. ‖ नेदम्. $ ततो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मिगावईए चिन्तिअं—मा इमो बालो मम पुत्तो विणस्सिहिति, एस खरेणं न सक्कति, पच्छा दूतो पट्ठविओ, भणिओ–एस कुमारो बालो, अम्हेहिं गएहिं मा सामंतराइणा केणइ अण्णेणं पेल्लिज्जिहिइ, सो भणति—को ममं धारे॥माणे पेल्लिहिति, सा भणति—ओसीसए सप्पो, जोयणसए विज्जो किं करेहिति ?, तो णगरिं दढं करेहि, सो भणति–आमं करेमि, ताए भण्णति–उज्जेणिगाओ इट्टगाओ बलिआओ, *ताहि कीरउ, आमंति, तस्स य चोद्दस राइणो वसवत्तिणो, तेणं तेसिं +बला ठविता, पुरिसपरंपरएण तेहिं आणिआओ इट्टगाओ, कयं णगरं †दढं, ताहे ताए भण्णति—इयाणिं धण†स्स भरेहि णगरिं, ता‡ णेण भरिया, जा¶हे णगरी रोहगअसज्झा जाया, ताहे सा विसंवइया, चिन्तियं च णाए—धण्णा'णं ते गामागरणगर जाव सण्णिवेसा, जत्थ सामी विहरति, पव्वएज्जामि जइ सामी एज्ज, ततो भगवं समोसढो, तत्थ सव्ववेरा पसमंति, मिगावती णिग्गता, धम्मे कहिज्जमाणे एगे पुरिसे एस सव्वण्णुत्ति काउं पच्छण्णं मणसा पुच्छति, ताहे

---

१ मृगावत्या चिन्तितं–मैष बालो मम पुत्रो विनेशत्, एष खरेण न शक्यते (साधयितुं), पश्चाद् दूतः प्रस्थापितः, भणितः–एष कुमारो बालः, अस्मासु गतेषु मा सामन्तराजेन केनचिदन्येन प्रैरि, स भणति–को मया ध्रियमाणान् प्रेरयेत्, सा भणति–उच्छीर्षके सर्पो योजनशते वैद्यः किं करिष्यति ? तत् नगरीं दृढां कुरु, स भणति–आममिति (ओमिति) करोमि, तया भण्यते–औज्जयिन्य इष्टका बलवत्यः, ताभिः करोतु, ओमिति, तस्य च चतुर्दश राजानो वशवर्त्तिनः, तेन तेषां बलानि स्थापितानि, पुरुषपरम्परकेण तैरानीता इष्टकाः, कृतं नगरं दृढं, तदा तया भण्यते–इदानीं धनेन बिभृहि नगरीं, तदा तेन भृता, यदा नगरी रोधासाध्या जाता तदा सा विसंवदिता, चिन्तितं च तया–धन्यास्ते ग्रामाकरनगराणि यावत् सन्निवेशाः, यत्र स्वामी विहरति, प्रव्रजेयं यदि स्वामी आयायात् (एयात्), ततो भगवान् समवसृतः तत्र सर्ववैराणि प्रशाम्यन्ति, मृगावती निर्गता, धर्मे कथ्यमाने एकः पुरुष एष सर्वज्ञ इतिकृत्वा प्रच्छन्नं मनसा पृच्छति, तदा ॥ धरमाणे. * ते सबला. + नेदम्. † धण्णस्स. ‡ ततो. ¶ जाव.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

सामिणा भणिओ–वायाए पुच्छ देवाणुपिआ !, §वरं बहवे सत्ता संबुज्झंतित्ति, एवम||वि भणिते तेण भण्णति–भगवं ! जा सा सा सा ?, तत्थ भगवता आमंति भणितं, गोयमसामिणा भणिअं–किं एतेण जा सा सा सा इति भणितं ?, एत्थ तीसे उद्धाणपरियावणिअं सव्वं भ§गवं परिकहेति—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानाम नयरी, तत्थेगो सुवण्णगारो ❦इत्थीलोलो, सो पंच पंच सुवण्णसयाणि दाऊण जा पहाणा कण्णा तं परिणेति, एवं तेणं पंचसया पिंडिता, एक्केक्काए तिलगचोद्दसगं अलंकारं करेइ, जद्दिवसं जाए समं भोगे भुंज⌡इ तद्दिवसं देति अलंकारं, सेसकालं न देति, सो ईसालुओ तं घरं न कयाई मुयइ, नवा अण्णस्स अल्लि*यंतुं देति, सो अण्णदा मित्तपगते वाहितो, अणिच्छंतो बला णीओ जेमेतुं, सो† तहिं गतोत्ति णाऊणं ताहिं चिंतिअं–किं एतेणं अम्ह सुवण्णएणंति ?, अज्ज पतिरिक्कं ण्हामो समालभामो आविद्धामो अ, ण्हाआओ पइरिक्क*ज्जितबयविहीए तिलयचोद्दसएणं अलंकारेण अलंकरेऊणं अद्दायं गहाय पेहमाणीओ चिट्ठंति, सो अ

१ स्वामिना भणितः–वाचा पृच्छ देवानुप्रिय ! वरं बहवः सत्त्वाः संबुध्यन्त इति, एवमपि भणिते तेन भण्यते–भगवन् ! या सा सा सा ?, तत्र भगवता आममिति (ओमिति) भणिते गौतमस्वामिना भणितं–किमेतेन या सा सा सेति भणितं ?, अत्र तस्या उत्थानपर्यापनिकं सर्वं भगवान् परिकथयति–तस्मिन्काले तस्मिन्समये चम्पानाम्नी नगरी, तत्रैकः सुवर्णकारः स्त्रीलोलुपः, स पञ्च पञ्च सु (सौ) वर्णशतानि दत्त्वा या प्रधाना कन्या तां परिणयति, एवं तेन पञ्चशती पिण्डिता, एकैकस्याः तिलकचतुर्दशकान् अलङ्कारान् कारयति, यद्दिवसे यया समं भोगान् भुङ्क्ते (इति) तद्दिवसे ददाति अलङ्कारान्, शेषकाले न ददाति, स ईर्ष्यालुस्तत् गृहं न कदाचित् मुञ्चति, नवाऽन्यस्य उपसर्तुं ददाति, सोऽन्यदा मित्रप्रकृते (जेमनादिप्रकरणे) व्याहृतः अनिच्छन् बलान्नीतो जेमितुं, स तत्र गत इति ज्ञात्वा ताभिश्चिन्तितं–किमेतेनास्माकं सुवर्णेनेति अद्य प्रतिरिक्तं (यथेच्छं) स्नामः समालभामः परिदध्मश्च, स्नाताः प्रतिरिक्तम. ज्यञ्जनविधिना तिलकचतुर्दशकैरलङ्कारैरलङ्कृत्य आदर्शं गृहीत्वा प्रेक्षमाणास्तिष्ठन्ति,. § णवरं. || मविभणितो. § भणितं. ❦ अत्थि लोलो. ⌡ भुंजहिति. * अल्लिएउं. † सो य. * ०मज्जण०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

चम्पानगर्यं सुवर्णकारस्य कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ६५ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

तंतो आगतो, तं दट्ठूण आसुरुत्तो, तेण एक्का गहिया, ताव पिट्टिया जाव मयत्ति, ता† अण्णाओ भणंति–एवं अम्ह‡वि एक्के-क्का उ एएण हंतव¶त्ति, तम्हा एयं एत्थेव अद्दागपुंजं करेमो, तत्थेगुणेहिं पंचहिं महिलासएहिं पंच एगूणाइं अद्दागसयाइं जमगसमगं पक्खित्ताइं, तत्थ सो अद्दागपुंजो जातो, पच्छा पुणोवि तासिं पच्छातावो जाओ–का गती अम्ह पतिमा-रियाणं भविस्सति ?, लोए§ अ उद्धंसणाओ सहेयव्वाओ, ताहे ताहिं घणकवाडनिरंतरं णिच्छिड्डाइं दाराइं ठवेऊण अग्गी दिण्णो सव्वओ समंतओ, तेण पच्छाणुतावेण साणुक्कोसयाए अ ताए अकामणिज्जराए मणूसेसूववण्णा पंचवि सया चोरा जाया, एगंमि पव्वए परिवसंति, सोवि कालगतो तिरिक्खेसूववण्णो, तत्थ जा सा पढमं मारिया, सा एक्कं भवं तिरिएसु पच्छा एगंमि बंभणकुले चेडो आयाओ, सो अ पंचवरिसो, सो अ सुवण्णकारो तिरिक्खेसु उववट्टिऊण तंमि कुले चेव

---

१ स च तत आगतः, तत् दृष्ट्वा क्रुद्धः, तेनैका गृहीता तावत्पिट्टिता यावन्मृतेति, तदाऽन्या भणन्ति–एवं वयमपि एकैका एतेन हन्तव्येति, तस्मात् एनं अत्रैव आदर्शपुञ्जं कुर्मः, तत्रैकोनैः पञ्चभिः महिलाशतैः एकोनानि पञ्चादर्शशतानि युगपत् प्रक्षिप्तानि, तत्र स आदर्शपुञ्जो जातः, पश्चात्पुनरपि तासां पश्चात्तापो जातः–का गतिरस्माकं पतिमारिकाणां भविष्यति ?, लोके चावहेलनाः सोढव्याः, तदा ताभिर्घनकपाटनिरन्तरं निश्छिद्राणि द्वाराणि स्थापयित्वा (स्थगयित्वा) अग्निर्दत्तः सर्वतः समन्ततः, तेन पश्चात्तापेन सानुक्रोशतया च तथाऽकामनिर्जरया मनुष्येषूत्पन्नाः पञ्चापि शतानि चौरा जाताः, एकस्मिन् पर्वते परिवसन्ति, सोऽपि कालगतः तिर्यक्षूत्पन्नः, तत्र या सा प्रथमं मारिता सा एकस्मिन् भवे तिर्यक्षु पश्चात् एकस्मिन् ब्राह्मणकुले चेट आयातः (उत्पन्नः), स च पञ्चवर्षः, स च सुवर्णकारः तिर्यग्भ्य उद्धृत्य तस्मिन् कुल एव. + मिसमिसमाणो. † तओ. ‡ अम्हेऽवि. ¶ ०ओ णिहं०. § लोएवि.

॥ ६५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दारिया जाया, सो चेडो तीसे बालग्गाहो, सा य णिच्चमेव रोयति, तेण उदरपोप्पयं करेंतेणं कहवि सा जोणिद्दारे हत्थेण आहता, तहा ||ववट्ठिता रोवितुं, तेण णायं–लद्धो मए उवाओत्ति, एवं सो णिच्चकालं करेति, सो तेहिं मायपितीहिं णाओ, ताहे हणिऊणं धाडिओ, साविय पडुप्पण्णा चेव विद्दाया, सो य चेडो पलायमाणो चिरं णगरविणट्ठ$दुट्ठसीलायारो जाओ, गतो एगं चोरपल्लीं, जत्थ ताणि एगूण‡गाणि पंच चोरसयाणि परिवसंति, सावि पइरिक्कं हिंडंती एगं गामं गता, सो गामो तेहिं चोरेहिं पेल्लितो, सा य णेहिं गहिया, सा तेहिं पंचहिवि चोरसएहिं परिभुत्ता, तेसिं चिंता जाया –अहो इमा वराई एत्तिआणं सहति, जइ अण्णा से बिइज्जिआ लभेज्जा तो से विस्सामो होज्जा, ततो तेहिं अण्णया कयाई तीसे बिइज्जिआ आणीआ, जद्दिवसं चेव आणीआ तद्दिवसं चेव सा तीसे छिड्डाइं मग्गइ, केण उवाएण मारेज्जा?,

१ दारिका जाता, स चेटस्तस्या बालग्राहः, सा च नित्यमेव रोदिति, तेन उदरामर्शनं कुर्वता कथमपि सा योनिद्वारे हस्तेनाहता तथा अवस्थिता रोदनात् (भावे तुम्) तेन ज्ञातं–लब्धो मयोपाय इति, एवं स नित्यकालं करोति, स ताभ्यां मातापितृभ्यां ज्ञातः तदा हत्वा निर्घाटितः, सापि च प्रत्युत्पन्ना एव (योग्यवयःस्थैव) विद्रुता, स च चेटः पलायमानः चिरं नगरविनष्टदुष्टशीलाचारो जातो, गत एकां चौरपल्लीं, यत्र च तानि एकोनानि पञ्चशतानि चौराः परिवसन्ति, सापि प्रतिरिक्तं हिण्डन्ती एकं ग्रामं गता, स ग्रामस्तैश्चौरैः प्रेरितः (लुण्टितः), सा चैभिर्गृहीता, सा तैः पञ्चभिरपि चौरशतैः परिभुक्ता, तेषां चिन्ता जाता–अहो इयं वराकी एतावतां सहते, यद्यन्याऽस्या द्वितीया लभ्येत तदाऽस्या विश्रामो भवेत्, ततस्तैरन्यदा कदाचित्तस्या द्वितीयाऽऽनीता, यद्दिवस एवानीता तद्दिवस एव तस्याश्छिद्राणि मार्गयति, केनोपायेन मार्येत, || तह चेव. $ ०दुट्ठविणट्ठ०. ‡ ०णाणि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तें अँण्णया कयाइ ओहाइया, ताए सा भणिआ, पेच्छं कूवे किंपि दीसइ, सा दट्ठुमारद्धा, ताए तत्थेव छूढा, ते आगता पुच्छंति, ताए भण्णति अप्पणो महिलं कीस न सारेह ?, तेहिं णायं जहा एयाए मारिया, तओ तस्स बंभणचेडगस्स हिदए ठिअं जहा एसा मम पावकम्मा भगिणित्ति, सुबइ य भगवं महावीरो सवण्णू सवदरिसी, ततो एस समोसरणा पुच्छति । ताहे सामी भणति—सा चेव सा तव भगिणी, एत्थ संवेगमावन्नो सो पवइओ, एवं सोऊण सवा सा परिसा पतणुरागसंजुत्ता जाया । ततो मिगावती देवी जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदित्ता एवं वयासी–जं णवरं पज्जोअं आपुच्छामि, ततो तुज्झ सगासे पवयामित्ति भणिऊण पज्जोअं आपुच्छति, ततो पज्जोओ तीसे महतीमहालियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए लज्जाए ण तरति वारेउं, ताहे विसज्जेइ,

---

१ तेऽन्यदा कदाचिदुद्धाविताः, तया सा भणिता, पश्य कूपे किमपि दृश्यते, सा द्रष्टुमारब्धा, तया तत्रैव क्षिप्ता, ते आगताः पृच्छन्ति, तया भण्यन्ते–आत्मनो महेलां किं न रक्षत (सारयत) ?, तैर्ज्ञातं–यथैतया मारिता, ततस्तस्य ब्राह्मणचेटकस्य हृदि स्थितं–यथैषा मम पापकर्मा भगिनीति, श्रूयते च भगवान्महावीरः सर्वज्ञः सर्वदर्शी, तत एष समवसरणात् पृच्छति । तदा स्वामी भणति–सैव सा तव भगिनी, अत्र संवेगमापन्नः स प्रव्रजितः, एवं श्रुत्वा सर्वा सा परिषत् प्रतनुरागसंयुक्ता जाता, ततो मृगावती देवी यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दित्वा एवमवादीत्–यत् परं प्रद्योतमापृच्छामि, ततस्त्वत्सकाशे प्रव्रजामीति भणित्वा प्रद्योतमापृच्छति, ततः प्रद्योतस्तस्यामतिमहत्यां सदेवमनुजासुरायां पर्षदि लज्जया न शक्नोति वारयितुं, तस्मात्, विसर्जयति (व्यसृक्षत्),. * ते य. + एत्थ. † सारवेह. ‡ समोसरणे. ¶ एतं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

तत्तो मिगावती पज्जोयस्स उदयणकुमारं णिक्खेवगणिक्खित्तं काऊण पव्वइआ, पज्जोअस्सवि अट्ठ अंगारवईपमुहाओ देवीओ पव्वइयाओ, ताणिवि पंच चोरसयाणि तेणं गंतूण संबोहियाणि, एतं पसंगेण भणिअं, एत्थ इट्टगपरंपरएण अहियारो, एस दव्वपरंपरओ ॥ ८७ ॥ साम्प्रतं निर्युक्तिशब्दस्वरूपाभिधानायेदमाह—

णिज्जुत्ता ते अत्था जं बद्धा तेण होइ णिज्जुत्ती । तहविय इच्छावेइ विभासिउं सुत्तपरिवाडी ॥ ८८ ॥

व्याख्या—निश्चयेन सर्वाधिक्येन* आदौ वा युक्ता निर्युक्ताः, अर्यन्त इत्यर्थाः जीवादयः श्रुतविषयाः, ते ह्यर्था निर्युक्ता एव सूत्रे, 'यद्' यस्मात्+ 'बद्धाः' सम्यग् अवस्थापिता योजिता इतियावत्, तेनेयं 'निर्युक्तिः' निर्युक्तानां युक्तिर्निर्युक्तयुक्तिरिति प्राप्ते युक्तशब्दस्य लोपः क्रियते, उष्ट्रमुखी कन्येति यथा, निर्युक्तार्थव्याख्या निर्युक्तिरितिहृदयं । आह—सूत्रे सम्यक् निर्युक्ता एवार्थाः पुनश्चेहैषां योजनं किमर्थं ?, उच्यते, सूत्रे† निर्युक्तानप्यर्थान् न सर्व एवाशेषान् अवबुध्यन्ते यतः, अतः । तथापि च सूत्रे‡ निर्युक्तानपि सतः एषयति—इषु इच्छायामित्यस्य ण्यन्तस्य लट् इति¶ तिप्–शप्–गुणायादेशेषु कृतेषु एषयति, विविधं भाषितुं विभाषितुं, का ?–'सूत्रपरिपाटी' सूत्रपद्धतिरिति, एतदुक्तं भवति—अप्रतिबुध्यमाने श्रोतरि गुरुं तदनुग्रहार्थं सूत्रपरिपाट्येव विभाषितुमेषयति—इच्छत इच्छत मां प्रतिपादयितुमित्थं प्रयोजयतीवेति, सूत्रपरिपाटीमिति पाठान्तरं§, शिष्य एव गुरुं सूत्रपद्धतिमनव॥बुध्यमानः प्रवर्तयति—इच्छत इच्छत मम

१ ततो मृगावती प्रद्योत उदयनकुमारस्य निक्षेपनिक्षिप्तं कृत्वा प्रव्रजिता, प्रद्योतस्याप्यष्टौ अङ्गारवतीप्रमुखाः देव्यः प्रव्रजिताः, तानि पञ्च चौरशतानि तेन गत्वा संबोधितानि । एतत् प्रसङ्गेन भणितं, अत्र इष्टकापरम्परकेणाधिकारः, एष द्रव्यपरम्परकः ॥ २ अहवा सुयपरिवाडी सुओवएसोऽयं (वि०) श्रुतस्य विधिरिति तद्वृत्तिः. *साध्वाधि०. + ०त् सूत्रे. † सूत्रनि० ‡ सूत्रेऽनि० ¶ नेदम्. § ०रं वा. ‖ ०मबुध्य०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

निर्युक्तिशब्दस्य स्वरुपम्

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

व्याख्यातुं सूत्रपरिपाटीमिति, व्याख्या च निर्युक्तिरिति, अतः पुनर्योजनमित्थमदोषायैवेति, अलं विस्तरेण, गमनिकामात्रमेवैतदिति गाथार्थः ॥ ८८ ॥ यदुक्तं 'अर्थपृथक्त्वस्य तैः कथितस्येति' तीर्थकरगणधरैः, इदानीं तेषामेव शीलादिसंपत्समन्वितत्वप्रतिपादनायाह—

तवनियमनाणरुक्खं आरूढो केवली अमियनाणी। तो मुयइ नाणवुट्ठिं भवियजणविबोहणट्ठाए ॥ ८९ ॥
तं बुद्धिमएण पडेण गणहरा गिण्हिउं निरवसेसं। तित्थयरभासियाइं गंथंति तओ पवयणट्ठा ॥ ९० ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—रूपकमिदं द्रष्टव्यं, तत्र वृक्षो द्विधा—द्रव्यतो भावतश्च, द्रव्यवृक्षः कल्पतरुः, यथा तमारुह्य कश्चित् तत्कुसुमानां गन्धादिगुणसमन्वितानां संचयं कृत्वा तदधोभागसेविनां पुरुषाणां तदारोहणासमर्थानां अनुकम्पया कुसुमानि विसृजति, तेऽपि च भूपातरजोगुण्डनभयात् विमलविस्तीर्णपटेषु प्रतीच्छन्ति, पुनर्यथोपयोगमुपभुञ्जानाः सुखमाप्नुवन्ति, एवं भाववृक्षेऽप्यायोज्यं। तपश्च नियमश्च ज्ञानं च तपोनियमज्ञानानि तान्येव वृक्षस्तं, तत्र अनशनादिबाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नं तपः, नियमस्तु इन्द्रियनोइन्द्रियभेदभिन्नः, तत्र श्रोत्रादीनां संयमनमिन्द्रियनियमः क्रोधादीनां तु नोइन्द्रियनियम इति, ज्ञानं—केवलं संपूर्णं गृह्यते, इत्थंरूपं* वृक्षं आरूढः, तत्र ज्ञानस्य संपूर्णासंपूर्णरूपत्वात् संपूर्णताख्यापनायाह—संपूर्णं केवलं अस्यास्तीति केवली, असावपि चतुर्विधः—श्रुतसम्यक्त्वचारित्रक्षायिकज्ञानभेदात्, अथवा श्रुतावधिमनःपर्यायकेवलज्ञानभेदात्, अतः श्रुतादिकेवलव्यवच्छित्तये सर्वज्ञावरोधार्थमाह+—अमितज्ञानी, 'ततो' वृक्षात्

* इत्थंभूतं. + ०बोधा०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मुञ्चति 'ज्ञानवृष्टिं' इति कारणे कार्योपचारात् शब्दवृष्टिं, किमर्थं ?–भव्याश्च ते जनाश्च भव्यजनाः तेषां विबोधनं तदर्थं तन्निमित्तमितियावत् । आह—कृतकृत्यस्य सतस्त†स्वकथनमनर्थकं, प्रयोजनविरहात्, सति च तस्मिन् कृतकृत्यत्वानुपपत्तेः, तथा सर्वज्ञत्वाद्वीतरागत्वाच्च भव्यानामेव विबोधनमनुपपन्नं, अभव्याविबोधने असर्वज्ञत्वावीतरागत्वप्रसङ्गादिति, अत्रोच्यते, प्रथमपक्षे तावत् सर्वथा कृतकृत्यत्वं नाभ्युपगम्यते, भगवतः तीर्थकरनामकर्मविपाकानुभा‡वात्, तस्य च धर्मदेशनादिप्रकारेणैवानुभूतेः, द्वितीयपक्षे तु त्रैलोक्यगुरोर्धर्मदेशनक्रिया विभिन्नस्वभावेषु प्राणिषु तत्स्वाभाव्यात् विबोधाविबोधकारिणी पुरुषोलूककमलकुमुदादिषु आदित्यप्रकाशनक्रियावत्, उक्तं च वादिमुख्येन—त्वद्वाक्यतोऽपि केषाञ्चिदबोध इति मेऽद्भुतम् । भानोर्मरीचयः कस्य, नाम नालोकहेतवः ? ॥ १ ॥ न चाद्भुतमुलूकस्य, प्रकृत्या क्लिष्टचेतसः । स्वच्छा अपि तमस्त्वेन, भासन्ते भास्वतः कराः ॥ २ ॥ इत्यादि" यथा वा सुवैद्यः साध्यमसाध्यं व्याधिं चिकित्समानः प्रत्याचक्षाणश्च नातज्ज्ञः न च रागद्वेषवान्, एवं साध्यमसाध्यं भव्याभव्यकर्मरोगमपनयन्ननपनयंश्च भगवान्नातज्ज्ञो न च रागद्वेषवानिति अलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ ८९ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—'तां' इति तां ज्ञानकुसुमवृष्टिं, बुद्धिमयेन–बुद्ध्यात्मकेन, बुद्धिरेवात्मा यस्यासौ बुद्ध्यात्मकस्तेन, केन ?–पटेन, 'गणधराः' प्रागुक्ताः 'ग्रहीतुं' आदातुं 'निरवशेषां' संपूर्णां ज्ञानकुसुमवृष्टिं, बीजादिबुद्धित्वाद्गणधराणां, ततः किं कुर्वन्ति ?–भाषणानि भाषितानि, भावे निष्ठाप्रत्ययः, तीर्थकरस्य भाषितानि तीर्थकरभाषितानि इति समासः, कुसुमकल्पानि, ग्रथ्नन्ति विचित्रकुसुममालावत्, किमर्थमित्याह—प्रगतं प्रशस्तं प्रधानमादौ वा वचनं प्रवचनं—द्वादशाङ्गं गणिपिटकं तदर्थं, कथमिदं भवेदितियावत्, प्रवक्तीति

१ श्रीमद्भिः सिद्धसेनदिवाकरपादैर्द्वात्रिंशिकायामिति प्रसिद्धिः. † ०स्तत्कथन०. ‡ ०भावकत्वात् ०भवात्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वा प्रवचनं सङ्घस्तदर्थमिति गाथार्थः ॥ ९० ॥ प्रयोजनान्तरप्रतिपिपादयिषयेदमाह—

घित्तुं च सुहं सुहगणणधारणा दाउं पुच्छिउं चेव । एएहिं कारणेहिं जीयंति कयं गणहरेहिं ॥ ९१ ॥

व्याख्या—'ग्रहीतुं च' आदातुं च ग्रथितं सत्सूत्रीकृतं सुखं भवति अर्हद्वचनवृन्दं, कुसुमसंघातवत्, 'चः' समुच्चये, एतदुक्तं भवति—पदवाक्यप्रकरणाध्यायप्राभृतादिनियतक्रमस्थापितं जिनवचनं अयत्नेनोपादातुं शक्*यते, तथा गणनं च धारणा च गणनधारणे ते अपि सुखं भवतः ग्रथिते सति, तत्र गणनं—एतावदधीतं एतावच्चाध्येतव्यमिति, धारणा अप्रच्युतिः अविस्मृतिरित्यर्थः, तथा दातुं प्रष्टुं च, 'सुखं' इत्यनुवर्त्तते, 'चः' समुच्चय एव, एवकारस्य तु व्यवहितः संटङ्कः, ग्रहीतुं सुखमेव भवतीत्थं योजनीयं, तत्र +दानं–शिष्येभ्यो निसर्गः, प्रश्नः–संशयापत्तौ असंशयार्थं विद्वत्सन्निधौ स्वविवक्षासूचकं वाक्यमिति, 'एभिः कारणैः' अनन्तरोक्तैर्हेतुभूतैः 'जीवितं' इति अव्यवच्छित्तिनयाभिप्रायतः सूत्रमेव 'जीयं'ति प्राकृतशैल्या 'कृतं' रचितं गणधरैः, अथवा जीतमिति अवश्यं गणधरैः कर्त्तव्यमेवेति, तन्नामकर्मोदयादिति गाथार्थः ॥ ९१ ॥ आह—तीर्थकरभाषितान्येव सूत्रं, गणधरसूत्रीकरणे तु को विशेष इति, उच्यते, स हि भगवान् विशिष्टमतिसंपन्नगणधरापेक्षया प्रभूतार्थमर्थमात्रं स्वल्पमेव अभिधत्ते, न त्वितरजनसाधारणं ग्रन्थराशिमिति, अत *आह—

अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं । सासणस्स हियट्ठाए तओ सु+त्तं पवत्तइ ॥ ९२ ॥ ॥ ६८ ॥

गाथेयं प्रायो निगदसिद्धैव, चालना†प्रत्यवस्थानमात्रं त्वभिधीयते—कश्चिदाह—अर्थोऽनभिलाप्यः, तस्य अशब्दरू-

* शक्यं. + दातुं. * अत एवाह । एतदेवाह. + तित्थं. † चालन०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

सूत्र-प्रवर्तनस्य कारण-दर्शनं

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

रूपत्वात्, अतस्तं कथमसौ भाषत इति, उच्यते, शब्द एव अर्थप्रत्यायनकार्यत्वाद् उपचारतः खलु अर्थ इति, यथा आचारवचनत्वाद् आचार इत्यादि, 'निपुणं' सूक्ष्मं बह्वर्थं च, नियतगुणं वा निगुणं, सन्निहिताशेषसूत्रगुणमितियावत्, पाठान्तरं वा 'गणहरा निपुणा निगुणा वा' ॥ ९२ ॥ आह—शब्दमर्थप्रत्यायकं अर्हन् भाषते, न तु साक्षादर्थं, गणभृतोऽपिच शब्दात्मकमेव श्रुतं ग्रश्नन्ति, कः खल्वत्र विशेष इति, उच्यते, गाथा‡संबन्धाभिधान एव विहितोत्तरत्वात् यत्किञ्चिदेतत् । आह—तत्पुनः सूत्रं किमादि किंपर्यन्तं कियत्परिमाणं को वाऽस्य सार इति, उच्यते—

सामाइयमाईयं सुयनाणं जाव बिन्दुसाराओ । तस्सवि सारो चरणं सारो चरणस्स निव्वाणं ॥ ९३ ॥

व्याख्या—सामायिकमादौ यस्य तत्सामायिकादि, श्रुतं च तज्ज्ञानं च श्रुतज्ञानं, 'यावद्बिन्दुसाराद्' इति बिन्दुसारं यावत् बिन्दुसारपर्यन्तमित्यर्थः, यावच्छब्दादेव तु ह्यनेकद्वादशभेदं, 'तस्यापि' श्रुतज्ञानस्य 'सारः' फलं प्रधानतरं वा, चारश्चरणं भावे ल्युट्प्रत्ययः, चर्यते वा अनेनेति चरणं, परमपदं गम्यत इत्यर्थः, सारशब्दः प्रधानफलपर्यायो वर्त्तते, अपिशब्दात् सम्यक्त्वस्यापि सारश्चरणमेव, अथवा व्यवहितो योगः, तस्य श्रुतज्ञानस्य सारश्चरणमपि, अपिशब्दात् निर्वाणमपि, अन्यथा ज्ञानस्य निर्वाणहेतुत्वं न स्यात्, चरणस्यैव ज्ञानरहितस्यापि स्याद्, अनिष्टं चैतत्, 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (तत्त्वार्थे अ० १ सू० १) इति वचनात्, इह त्वनन्तरफलत्वाच्चरणस्य तदुपलब्धिनिमित्तत्वाच्च श्रुतस्य निर्वाणहेतुत्वसामान्ये सत्यपि ज्ञानचरणयोर्गुणप्रधानभावादित्थमुपन्यास इति, अलं विस्तरेण, 'सारः' फलं 'चरणस्य'

१ अत्थप्पच्चायणफलंमित्ति (विशे० ११२०) इति कार्यशब्दोऽत्र फलार्थकः. २ शैलेश्यवस्थारूपचरणावाप्तेरनन्तरं मोक्षावाप्तेः, क्षायिकज्ञानप्राप्तेरनन्तरं तु न, देशोनपूर्वकोटीविहरणादुत्कृष्टतो दर्शनं तु चतुर्थेऽपि, न च तदनन्तरमपि तदाप्तिः. ३ ज्ञानस्य फलं विरतिरिति पढमं नाणं तओ दया इत्यादिवचनात्.
‡ गाथार्थसंबन्धा०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

संयमतपोरूपस्य, निर्वृतिर्निर्वाणं–अशेषकर्मरोगापगमेन जीवस्य स्वरूपेऽवस्थानं मुक्तिपदमितियावत्, इहापि नियमतः शैलेश्यवस्थानन्तरमेव निर्वाणभावात् क्षीणघनघातिकर्मचतुष्कस्यापि च निरतिशयज्ञानसमन्वितस्य तामन्तरेणाभावात्, अत उक्तं–सारश्चरणस्य निर्वाणं इति, अन्यथा हि तस्यामपि शैलेश्यवस्थायां क्षायिके ज्ञानदर्शने न न स्त इति, अतः सम्यग्दर्शनादित्रयस्यापि समुदितस्य सतो निर्वाणहेतुत्वं न व्यस्तस्येति गाथार्थः ॥ ९३ ॥ तथा चाह निर्युक्तिकारः—

*सुअनाणंमिवि जीवो वट्टंतो सो न पाउणइ मोक्खं । जो तवसंजममइए जोए न चएइ वोढुं जे ॥ ९४ ॥

गमनिका—'श्रुतज्ञाने अपि' इति अपिशब्दान्मत्यादिष्वपि जीवो वर्त्तमानः सन् न प्राप्नोति मोक्षमिति, अनेन प्रतिज्ञार्थः सूचितः, यः किंविशिष्ट इति, आह—यस्तपःसंयमात्मकान् योगान्न शक्नोति वोढुं इति, अनेन हेत्वर्थ इति, दृष्टान्तस्त्वभ्यूह्यो वक्ष्यति वा, प्रयोगश्च–'न ज्ञानमेव ईप्सितार्थप्रापकं, सत्क्रियाविरहात्, स्वदेशप्राप्त्यभिलाषिगमनक्रियाशून्यमार्गज्ञज्ञानवत्, सौत्रो वा दृष्टान्तः मार्गज्ञनिर्यामकाधिष्ठितेप्सितदिक्संप्रापकपवनक्रियाशून्यपोतवत्, 'जे+' इति पादपूरणे, 'इ†जेराः पादपूरणे' इति वचनात् ॥ ९४ ॥ तथा चाह—

अह छेयलद्धनिज्जामओवि वाणियगइच्छियं भूमिं । वाएण विणा पोओ न चएइ महण्णवं तरिउं ॥९५॥ ॥ ६९ ॥
तह नाणलद्धनिज्जामओवि सिद्धिवसहिं न पाउणइ । निउणोवि जीवपोओ तवसंजममारुअविहूणो ॥९६॥

* च. + नेतः परस्. † ए०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

व्याख्या—येन प्रकारेण यथा, 'छेको' दक्षः, लब्धः-प्राप्तो निर्यामको येन पोतेन स तथाविधः, अपिशब्दात् सुकर्णधाराधिष्ठितोऽपि, वणिज इष्टा वणिगिष्टा तां भूमिं, महार्णवं तरितुं वातेन विना पोतो न शक्नोति, प्राप्तुमिति वाक्यशेषः ॥ ९५ ॥ तथा श्रुतज्ञानमेव लब्धो निर्यामको येन-जीवपोतेनेति समासः, अपिशब्दात्सुनिपुणमतिज्ञानकर्णधाराधिष्ठितोऽपि, शेषं निगदसिद्धं, किन्तु 'निपुणोऽपि' पण्डितोऽपि, श्रुतज्ञानसामान्याभिधाने सत्यपि तदतिशयख्यापनार्थं निपुणग्रहणं, तस्मात् तपःसंयमानुष्ठाने खल्वप्रमादवता भवितव्यमिति गाथाद्वयार्थः ॥ ९६ ॥ तथा चेहौपदेशिकमेव गाथासूत्रमाह निर्युक्तिकारः—

संसारसागराओ उव्वुड्डो मा पुणो निबुड्डिज्जा । चरणगुणविप्पहीणो बुड्डइ सुबहुंपि जाणंतो ॥ ९७ ॥

पदार्थस्तु दृष्टान्ताभिधानद्वारेणोच्यते—यथा नाम कश्चित्कच्छपः प्रचुरतृणपत्रात्मकनिश्छिद्रपटलाच्छादितोदकान्धकारमहाह्रदान्तर्गतानेकजलचरक्षोभादिव्यसनव्यथितमानसः परिभ्रमन्कथञ्चिदेव पटलरन्ध्रमासाद्य विनिर्गत्य च ततः शरदि निशानाथकरस्पर्शसुखमनुभूय भूयोऽपि स्वबन्धुस्नेहाकृष्टचित्तः तेषामपि तपस्विनामदृष्टकल्याणानामहमिदं सुरलोककल्पं किमपि दर्शयामि इत्यवधार्य तत्रैव निमग्नः, अथ समासादितबन्धुः तद्रन्ध्रोपलब्ध्यर्थं पर्यटन् अपश्यंश्च कष्टतरं व्यसनमनुभवति स्म । एवमयमपि जीवकच्छपोऽनादिकर्मसन्तानपटलसमाच्छादितान्मिथ्यादर्शनादितमोऽनुगतात् विविधशारीरमानसाक्षिवेदनज्वरकुष्ठभगन्दरेष्टवियोगानिष्टसंप्रयोगादिदुःखजलचरानुगतात्, संसरणं संसारः, भावे घञ्प्रत्ययः, स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक- ॥ ७० ॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

एव सागरस्तस्मात्, परिभ्रमन् कथञ्चिदेव मनुष्यभवसंवर्त्तनीयकर्मरन्ध्रमासाद्य मानुषत्वप्राप्त्या उन्मग्नः सन् जिनचन्द्रवचनकिरणावबोधमासाद्य दुष्प्रापोऽयमिति जानानः स्वजनस्नेहविषयाँतुरचित्ततया मा पुनः कूर्मवत् तत्रैव† निमज्जेत्। आह– अज्ञानी कूर्मो निमज्जत्येव, इतरस्तु ज्ञानी हिताहितप्राप्तिपरिहारज्ञः कथं निमज्जति इति, उच्यते, चरणगुणैः विविधम्–अनेकधा प्रकर्षेण हीनः चरणगुणविप्रहीणः निमज्जति बह्वपि जानन्, अपिशब्दात् अल्पमपि, अथवा निश्चयनयदर्शनेन अज्ञ एवासौ, ज्ञानफलशून्यत्वात् इति, अलं विस्तरेणेति गाथार्थः ॥ ९७ ॥ प्रक्रान्तमेवार्थं समर्थयन्नाह––

सुबहुंपि सुय†महीयं किं काही? चरणविप्प†हीणस्स। अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥ ९८ ॥
अप्पंपि सुयमहीयं पयासयं होइ चरणजुत्तस्स। इक्कोवि जह पईवो सचक्खुअस्सा पयासेइ ॥ ९९ ॥

गाथाद्वयमपि निगदसिद्धमेव, नवरं दीपानां शतसहस्राणि दीपशतसहस्राणि लक्षा इत्यर्थः, तेषां को†टी, अपिशब्दा‡द्वे अपि ॥ ९८–९९ ॥ आह––इत्थं सति चरणरहितानां ज्ञानसंपत् सुगतिफलापेक्षया निरर्थिका प्राप्नोति, उच्यते, इष्यत एव, यत आह––

जहा खरो चंदणभारवाही, भारस्स भागी नहु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो, नाणस्स भागी नहु सो¶ग्गईए ॥ १०० ॥

॥ ७० ॥

गमनिका––यथा खरः चन्दनभारवाही भारस्य भागी न तु चन्दनस्य, एवमेव ज्ञानी चरणेन हीनः ज्ञानस्य भागी 'न तु'

* ०यातुरत्त०. + ०त्रैव न्य. † ०महियं. ‡ ०मुक्कस्स. † कोव्यपि. ‡ ०त्तद्वे अपि. ¶ सुग्गईए.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

चरणरहितं ज्ञानस्य निरर्थकता प्रतिपाद्यते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नैव 'सुगतेः' सिद्धिदयिताया इति गाथार्थः ॥ १०० ॥ इदानीं विनेयस्य मा भूदेकान्तेनैव ज्ञानेऽनादरः, क्रियायां च तच्छू-
न्यायामपि पक्षपात इति, अतो द्वयोरपि केवलयोरिष्टफलासाधकत्वमुपदर्शयन्नाह—

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया । पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो अ अंधओ ॥ १०१ ॥

इयं निगदसिद्धैव, णवरं उदाहरणं—एगंमि महाणगरे पलीवणं* संवुत्तं, तंमि य+ अणाहा दुवे जणा–पंगलो† य अंध‡लो य, ते णगरलोए जलणसंभमुब्भंतलोयणे पलाय¶माणे पासंतो पंगुलओ गमणकिरियाऽभावाओ जाण§ओऽवि पलायणमग्गं कमागएण अगणिणा दड्ढो, अंधोऽवि गमणकिरियाजुत्तो पलायणमग्गमजाणंतो तुरितं जलणंतेण गंतुं अगणिभरियाए खाणीए पडिऊण दड्ढो। एस दिट्ठंतो, अयमत्थोवणओ—एवं ना‖णीवि किरियारहि$तो न कम्मग्गिणो पलाइउं समत्थो, इतरोऽवि णाणरहियत्तणओ त्ति । अत्र प्रयोगौ भवतः—ज्ञानमेव विशिष्टफलसा∫धकं न भवति, सत्क्रियायोगशून्यत्वात्, नगरदाहे पङ्गुलोचनविज्ञानवद्, नापि क्रियैव विशिष्टफल⁎साधिका, संज्ञा⁑नसंटङ्करहितत्वात्, नगरदाह एव अन्धस्य पलायनक्रियावत् ॥ १०१ ॥ आह—एवं ज्ञानक्रिययोः समुदितयोरपि निर्वाणप्रसाधकसामर्थ्यानुपपत्तिः

१ परमुदाहरणं–एकस्मिन् महानगरे प्रदीपनं संवृत्तं, तस्मिंश्च अनाथौ द्वौ जनौ–अन्धः पङ्गुश्च, तौ नगरलोकान् ज्वलनसंभ्रमोद्भ्रान्तलोचनान् पलायमानान् पश्यन्तौ पङ्गुः गमनक्रियाऽभावात् जानन्नपि पलायनमार्गं क्रमागतेनाग्निना दग्धः अन्धोऽपि गमनक्रियायुक्तः पलायनमार्गमजानन् त्वरितं ज्वलनान्तिके (ज्वलनमार्गेण) गत्वाऽग्निभृतायां खनौ (०भृतेऽवटे) पतित्वा दग्धः । एष दृष्टान्तः, अयमत्रोपनयः (०मर्थोपनयः)–एवं ज्ञान्यपि क्रियारहितो न कर्माग्नेः पलायितुं समर्थः, इतरोऽपि ज्ञानरहितत्वात् इति. * ०वणगं. + तम्मिवि. † पंगुलओ अंधलओ य. ‡ अंधओ य. ¶ ०माणे संते पं०. § जाणंतोऽवि. ‖ नाणी. $ ०हितो उण असमत्थो. ∫ ०प्रसाधकं. ⁎ ०प्रसाधिका. ⁑ सज्ज्ञान०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

ज्ञान-क्रिया समन्वये अन्ध-पन्गुलस्य दृष्टांत:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

प्रसज्यते, प्रत्येकमभावात्, सिकतातैलवत्, अनिष्टं चैतदिति, अत्रोच्यते, समुदायसामर्थ्यं हि प्रत्यक्षसिद्धं, यतो ज्ञानक्रियाभ्यां कटादिकार्यसिद्धय उपलभ्यन्ते एव, न तु सिकतासु तैलं, न च दृष्टमपह्नोतुं शक्यते, एवमाभ्यामदृष्टकार्यसिद्धिरप्यविरुद्धैव, तस्माद्यत्किञ्चिदेतत्। तथा किञ्च—न सर्वथैवानयोः साधनत्वं नेष्यते, देशोपकारित्वात्, देशोपकारित्वमभ्युपगम्यत एव, यत आह—

संजोगसिद्धीइ फलं वयंति, नहु एगचक्केण रहो पयाइ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा ॥ १०२ ॥

व्याख्या—किंतु तदेव समुदायं समग्रत्वादिष्टफलसाधकं, केवलं तु विकलत्वात् इतरसापेक्षत्वादसाधकमिति, अतः केवलयोरसाधकत्वं प्रतिपादितमिति, अलं विस्तरेण, उक्तसंबन्धगाथाव्याख्यानं प्रकटार्थत्वान्न वितन्यते, नवरं 'समेत्ये'त्युक्तेऽपि 'तौ संप्रयुक्ता' विति पुनरभिधानमात्यन्तिकसंयोगोपदर्शनार्थमिति। [1]ए*त्थं उदाहरणं–एगंमि रण्णे रायभएण णगराओ उव्वसिय लोगो ठितो, पुणोवि धाडिभयेण +य वहणाणि उज्झिअ पलाओ, तत्थ दुवे अणाहप्पाओ, अंधो पंगू य, उज्झिया, गयाए धाडीए लोगग्गिणा वातेण वणदवो लग्गो, ते य भीया, अंधो छुट्ट†कच्छो अग्गितेण पलायइ, पंगुणा

१ अत्रोदाहरणं–एकस्मिन्नरण्ये राजभयेन नगरात् उद्वस्य (उदुष्य) लोकः स्थितः, पुनरपि धाटिभयेन च वाहनानि उज्झित्वा पलायितः, तत्र द्वावनाथात्मानौ (०थप्रायौ), अन्धः पङ्गुश्च उज्झितौ, गतायां धाट्यां लोकाग्निना वातेन वनदवो लग्नः, तौ च भीतौ, अन्धः छुट्टकच्छोऽग्निमार्गेण पलायते पङ्गुना. * एत्थ. + पवहणाणि. † छुट्टकत्थो.

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

भणितं–अंध ! मा इतो णास णं, इतो चेव अग्गी, तेण भणितं—कुतो पुण गच्छामि ?, पंगुणा भणितं—अहंपि पुरतो अतिदूरे मग्गदेसँणाऽसमत्थो पंगू, ता मं खंधे करेहि, जेण अहिकंटकजलणादि अवाए परिहरावेंतो सुहं ते नगरं पावेमि, तेणं तहत्ति पडिवज्जिय अणुट्ठितं पंगुवयणं, गया य खेमेण दोवि णगरं ति। एस दिट्ठंतो, अयमत्थोवणओ–णाणकिरियाहिं सिद्धिपुरं पाविज्जइत्ति। प्रयोगश्च—विशिष्टकारणसंयोगोऽभिलषितकार्यप्रसाधकः, सम्यक्क्रियोपलब्धिरूपत्वात्, अन्धपङ्ग्वोरिव नगरावाप्तिँरिति। यः पुनरभिलषितफलसाधको न भवति, स सम्यक्क्रियोपलब्धिरू†पोऽपि न भवति, इष्ट‡गमनक्रियाविकलविघटितैकचक्ररथवदिति व्यतिरेकः॥ १०२॥ आह—ज्ञानक्रिययोः सहकारित्वे सति किं केन स्वभावेनोपकुरुते ? किमविशेषेण शिबिकोद्वाहकवद्, उत भिन्नस्वभावतया गमनक्रियायां नयनचरणादिव्रातवद् इति, अत्रोच्यते, भिन्नस्वभावतया, यत आह—

णाणं पयासगं सोहओ तवो संजमो य गुत्तिकरो। तिण्हंपि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥ १०३॥

व्याख्या—तत्र कचवरसमन्वितमहागृहशोधनप्रदीपपुरुषादिव्यापारवद् इह जीवगृहकर्मकचवरभृतशोधनालम्बनो ज्ञानादीनां स्वभावभेदेन व्यापारोऽवसेय इति समुदायार्थः। तत्र ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं, तच्च प्रकाशयतीति प्रकाशकं, तच्च ज्ञानं प्रकाशकत्वेनैवोपकुरुते, तत्स्वभावत्वात्, गृहमलापनयने प्रदीपवत्, क्रिया तु तपःसंयमरूपत्वाद् इत्थमुपकुरुते–

१ भणितं–अन्ध ! मा इतो नेशः, इत एवाग्निः, तेन भणितं–कुतः पुनर्गच्छामि,? पङ्गुना भणितं–अहमपि पुरतोऽतिदूरे मार्गदेशनाऽसमर्थः पङ्गुः, तत् मां स्कन्धे कुरु, येनाहिकण्टकादीन् अपायान् परिहारयन् सुखं त्वां नगरं प्रापयामि, तेन तथेति प्रतिपद्यानुष्ठितं पङ्गुवचनं, गतौ च क्षेमेण द्वावपि नगरमिति, एष दृष्टान्तः, अयमत्रोपनयः–ज्ञानक्रियाभ्यां सिद्धिपुरं प्राप्यत इति. * दंसणा. + ०वासेरिति. † ०रूपो. ‡ इह ग०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

मोक्षस्य आवश्यक ३ कारणानि कथ्यते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

शोधयतीति शोधकं, किं तदिति, आह—तापयत्यनेकभवोपात्तमष्टविधं कर्मेति तपः, तच्च शोधकत्वेनैवोपकुरुते, तत्स्वभावत्वाद्, गृहकचवरोज्झनक्रियया तच्छोधने कर्मकरपुरुषवत्, तथा संयमनं संयमः, भावे अप्प्रत्ययः, आश्रवद्वारविरमणमितियावत्, चशब्दः पृथग् ज्ञानादीनां प्रक्रान्तफलसिद्धौ भिन्नोपकारकर्त्तृत्वावधारणार्थः, गोपनं गुप्तिः, स्त्रियां क्तिन् (पा० ३-३-९४) आगन्तुककर्मकचवरनिरोध इतिहृदयं, गुप्तिकरणशीलो गुप्तिकरः, ततश्च संयमोऽपि अपूर्वकर्मकचवरागमनिरोधतयैवोपकुरुते, तत्स्वभावत्वात्, गृहशोधने पवनप्रेरितकचवरागमनिरोधेन वातायनादिस्थगनवत्, एवं त्रयाणामेव, अपिशब्दोऽवधारणार्थः, अथवा संभावने, किं संभावयति ?–'त्रयाणामपि' ज्ञानादीनां, किंविशिष्टानां ?–निश्चयतः क्षायिकानां, न तु क्षायिकोपशमिकानामिति, '*समायोगे' संयोगे 'मोक्षः' सर्वथाऽष्टविधकर्ममलवियोगलक्षणः, जिनानां शासनं जिनशासनं तस्मिन्, 'भणितः' उक्तः । आह—'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' इत्यागमो विरुध्यते, सम्यग्दर्शनमन्तरेण उक्तलक्षणज्ञानादित्रयादेव मोक्षप्रतिपादनादिति, उच्यते, सम्यग्दर्शनस्य ज्ञानविशेषत्वा[1]द् रु+चिरूपत्वात् ज्ञानान्तर्भावाद् अदोष इति गाथार्थः ॥ १०३ ॥ इह यत् प्राक् निर्युक्तिकृताऽभ्यधायि 'श्रुतज्ञानेऽपि जीवो वर्त्तमानः सन्न प्राप्नोति मोक्षं' इत्यादि प्रतिज्ञागाथासूत्रं, तत्रैव सूत्रसूचितः खल्वे[2]यं हेतुरवगन्तव्यः, कुतः ?–तस्य[3] क्षायोपशमिकत्वात्, अवधिज्ञानवत् इति, क्षायिकज्ञानाद्यवाप्तौ[4] च मोक्षप्राप्तिरिति त[5]त्त्वं, अतः श्रुतस्यैव क्षायोपशमिकत्वमुपदर्शयन्नाह—

---

१ ज्ञानविशेषत्वसाधनाय. २ क्षायोपशमिकत्वरूपः. ३ श्रुतस्य अपिना गृहीतस्य मत्यादेश्च, अवधेस्तु दृष्टान्तत्वान्नात्र ग्रहः. ४ तथाच क्षायोपशमिके ज्ञानक्रिये क्षायिकज्ञानाद्यवाप्तिद्वारा मोक्षसाधनमिति. ५ श्रुतज्ञाने वर्त्तमानस्य मोक्षानवाप्तेः. * सम्यग् योगः समायोगः तस्मिन् मो०. + ०षरूपत्वात्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भावे खओवसमिए दुवालसंगंपि होइ सुयनाणं । केवलियनाणलंभो नन्नत्थ खए कसायाणं ॥ १०४ ॥

व्याख्या—भवनं भावः तस्मिन्, स चौदयिकाद्यनेकभेदः, अत आह—'क्षायोपशमिके' द्वादश अङ्गानि यस्मिंस्तत् द्वादशाङ्गं भवति श्रुतज्ञानं, अपिशब्दाद् अङ्गबाह्यमपि, तथा मत्यादिज्ञानत्रयमपि, तथा सामायिकचतुष्टयमपि, तथा केवलस्यैं भावः कैवल्यं घातिकर्मवियोग इत्यर्थः, तस्मिन् ज्ञानं कैवल्यज्ञानं, 'कैवल्ये सति' अनेन ज्ञानग्रहणेनाज्ञौनिप्रकृतिमुक्तपुरुषप्रतिपादनपरनयमतव्यवच्छेदमाह, (ग्रन्थाग्रं २०००) तत्र 'बुद्ध्यध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते' इति वचनात् प्रकृतिमुक्तस्य च बुद्ध्यभावात् ज्ञानाभाव इति, तस्य लाभः–प्राप्तिः, कथं ?–'कषायाणां' क्रोधादीनां क्षये सति 'नान्यत्र' नान्येन प्रकारेण, इह च छद्मस्थवीतरागावस्थायां कषायक्षये सत्यपि अक्षेपेण कैवल्यज्ञानाभावे ज्ञानावरणक्षयानन्तरे च भावेऽपि कषायक्षयग्रहणं वस्तुतो मोहनीयभेदकषायाणामत्र प्राधान्यख्यापनार्थमिति, कषायक्षय एव सति निर्वाणं भवति, तद्भावे त्रयाणामपि सम्यक्त्वादीनां क्षायिकत्वसिद्धेः । आह—एवं तर्हि यदादावुक्तं 'श्रुतज्ञानेऽपि जीवो वर्त्तमानः सन्न प्राप्नोति मोक्षं, 'यस्तपःसंयमात्मकयोगशून्यः' इति, तद्विशेषणमनर्थकं, श्रुते सति तपःसंयमात्मकयोगसहिष्णोरपि मोक्षाभावादिति, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, किंतु क्षायोपशमिकसम्यक्त्वश्रुतचारित्राणामपि समुदितानां क्षायिकसम्यक्त्वादि-

---

१ आदिनाऽवधिमनःपर्यवौ. २ सम्यक्त्वश्रुतादि. ३ वैशेषिकादीनां ज्ञानस्यात्मरूपत्वाभावात् तेऽत्र ग्राह्याः. ४ सर्वकषायक्षये केवलज्ञानदर्शनचारित्राणि, क्षायिकसम्यक्त्वं तु देशकषायक्षयेऽपि भवति, तेनात्र तदा कषायक्षयस्य सामान्यतः परामर्शः. * केवलभावः. + ०भावात्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

निबन्धनत्वेन पारम्पर्येण मोक्षहेतुत्वाददोषः ॥ १०५ ॥ आह—इष्टमस्माभिः मोक्षकारणकारणं श्रुतादि, तस्यैव कथमलाभो लाभो वेति, अत्रोच्यते,

अट्ठण्हं पयडीणं उक्कोसठिइइ वट्टमाणो उ। जीवो न लहइ सामाइयं चउण्हंपि एगयरं ॥ १०५ ॥

सत्तण्हं पयडीणं अब्भिंतरओ उ कोडिकोडीणं। काऊण सागराणं जइ लहइ चउण्हमण्णयरं ॥ १०६ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—'अष्टानां' इति संख्या, कासां ?–ज्ञानावरणीयादिकर्मप्रकृतीनां, उत्कृष्टा चासौ स्थितिश्चोत्कृष्टस्थितिः तस्यां 'वर्त्तमानो' भवन् 'जीवः' आत्मा 'न लभते' न प्राप्नोति, किं तत् ?–'सामायिकं' पूर्वव्याख्यातं, किंविशिष्टं ?–'चतुर्णामपि' सम्यक्त्वश्रुतदेशविरतिसर्वविरतिरूपाणां 'एकतरम्' अन्यतमत् इतियावत्, अपिशब्दात् मत्यादि च, न केवलं न लभते, पूर्वप्रतिपन्नोऽपि न भवति, यतोऽवाप्तसम्यक्त्वो हि न पुनस्तत्परित्यागेऽपि ग्रन्थिमुल्लङ्घ्य उत्कृष्टस्थितीः कर्मप्रकृतीः बध्नाति, आयुष्कोत्कृष्टस्थितौ पुनर्वर्त्तमानः पूर्वप्रतिपन्नको भवति, अनुत्तरविमानोपपातकाले देवो, न तु प्रतिपद्यमानक इति, तुशब्दाज्जघन्यस्थितौ च वर्त्तमानः पूर्वप्रतिपन्नत्वान्न लभते, आयुष्कजघन्यस्थितौ च वर्त्तमानो न पूर्वप्रतिपन्नो नापि प्रतिपद्यमानकः, जघन्यायुष्कस्य क्षुल्लकभवग्रहणाधारत्वात्, तस्य च वनस्पतिषु भावात्, तत्र च पूर्वप्रतिपन्नप्रतिपद्यमानकाभावात्, प्रकृतीनां च उत्कृष्टेतरभेदभिन्ना खल्वियं स्थितिः—आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च

१ मोक्षकारणस्य क्षायिकसम्यक्त्वादेः कारणमिति. २ आदिना तपःसंयमौ. ३ सत्तार्थत्वात्सप्तमीति. ४ आनुपूर्वीनामादिरूप उपक्रमे. ५ मत्यादिज्ञानापेक्षं. ६ सप्तानां. * ०डीए. + श्रुतदेशसर्व०. † एकतरत्. ‡ तत्प्रकृ०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः, सप्ततिर्मोहनीयस्य, नामगोत्रयोर्विंशतिः, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष्कस्य[1], इति, जघन्या तु द्वादश मुहूर्त्ता वेदनीयस्य, नामगोत्रयोरष्टौ, शेषाणामन्तर्मुहूर्त्तं (तत्त्वार्थे अ० ८ सूत्राणि १५-१६-१७-१८-१९-२०-२१) इति गाथार्थः ॥ १०५ ॥ आह—किमेता युगपदेव उत्कृष्टां स्थितिमासादयन्ति उत एकस्यां उत्कृष्टस्थितिरूपायां संजातायां अन्या अपि नियमतो भवन्ति आहोस्विदन्यथा वा वैचित्र्यमत्रे*ति, उच्यते अत्र+ विधि[2]रिति, मोहनीयस्य उत्कृष्टस्थितौ शेषाणामपि षण्णामुत्कृष्टैव, आयुष्कप्रकृतेस्तु उत्कृष्टा वा मध्यमा वा, न तु जघन्येति, मोहनीयरहितानां तु शेषप्रकृतीनां अन्यतमाया उत्कृष्टस्थितेः† सद्भावे मोहनीयस्य शेषाणां च उत्कृष्टा वा मध्यमा वा, न तु जघन्येति प्रासङ्गिकं[3]। द्वितीयगाथाव्याख्या–सप्तानामायुष्करहितानां कर्मप्रकृतीनां या पर्यन्तवर्तिनी[4] स्थितिस्तामङ्गीकृत्य सागरोपमाणां कोटीकोटी तस्याः कोटीकोट्या अभ्यन्त‡रत एव, तुशब्दोऽवधारणार्थः, कृत्वाऽऽत्मानमिति गम्यते 'यदि लभते' यदि प्राप्नोति, चतुर्णां श्रुतसामायिकादीनामन्यतरत्, तत एव लभते नान्यथेति, पाठान्तरं वा 'कृत्वा सागरोपमाणां स्थितिं लभते चतुर्णामन्यतरत्' इत्यक्षरगमनिका । अवयवार्थोऽभिधीयते–सप्तानां प्रकृतीनां यदा पर्यन्तवर्त्तिनी सागरोपमकोटीकोटी पल्योपमासंख्येयभागहीना भवति, तदा घनरागद्वेषपरिणामोऽत्यन्तदुर्भेद्यदारुग्रन्थिवत् कर्मग्रन्थि-

१ निषेकरूपेति. २ प्रतिविधानं. ३ आहेत्यादितः संवेधकथनरूपं, प्रसङ्गस्तु पूर्वमुत्कृष्टस्थितौ सामायिकप्रतिषेधात् मध्यमायां तु लाभकथनात्. ४ स्वस्वस्थितौ क्षीणायां या शेषा तिष्ठति सा. * ०मेवेति. + तत्र. † ०तिसद्भावे. ‡ ०न्तर एव.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

र्भत्रतीति, आह च भाष्यकारः–"गंठित्ति सुदुब्भेओ कक्खडघणरूढगूढगंठिव्व । जीवस्स कम्मजणिओ घणरागद्दोसपरिणामो ॥ १ ॥ इत्यादि" तस्मिन् भिन्ने सम्यक्त्वादिलाभ उपजायते, नान्यथेति, तद्भेदश्च मनोविघातपरिश्रमादिभिः दुस्साध्यो वर्त्तते, तथाहि–स जीवः कर्मरिपुमध्यंगतः तं प्राप्य अतीव परिश्राम्यति, प्रभूतकर्मारातिसैन्यान्तकृत्त्वेन संजातखेदत्वात्, संग्रामशिरसीव दुर्जयापाकृतानेकशत्रुनरनरेंद्रभटवत्। अपरस्त्वाह—किं तेन भिन्नेन ? किं वा सम्यक्त्वादिनाऽवाप्तेन !, यथाऽतिदीर्घा कर्मस्थितिः सम्यक्त्वादिगुणरहितेनैव क्षपिता, एवं कर्मशेषमपि गुणरहित एव क्षपयित्वा विवक्षितफलभाग् भवतु, अत्रोच्यते, स हि तस्यामवस्थायां वर्त्तमानोऽनासादितगुणान्तरो न शेषक्षपणया विशिष्टफलप्रसाधनायालं, चित्तविघातादिप्रचुरविघ्नत्वात् विशिष्टाप्राप्तपूर्वफलप्राप्त्यासन्नत्वात् प्रागभ्यस्तक्रियया तस्यावाप्तुमशक्यत्वाच्च, अनेकसंवत्सरानुपालिताचाम्लादिपुरश्चरणक्रियासादितगुणान्तरोत्तरसहायक्रियारहितविद्यासाधकवत्, तथा चाह भाष्यकारः–"पाएण पुव्वसेवा परिमउई साहणंमि गुरुतरिआ । होति महाविज्जाए किरिया पायं सविग्घा य ॥ १ ॥ तह कम्मठितीखवणे परिमउई मोक्खसाहणे गरुई । इह दंसणादिकिरिया दुलभा पायं सविग्घा य ॥ २ ॥" । अथवा

॥ ७४ ॥

---

१ ग्रन्थिरिति सुदुर्भेदः कर्कशघनरूढगूढग्रन्थिवत् । जीवस्य कर्मजनितो घनरागद्वेषपरिणामः ॥ १ ॥ (विशेषावश्यके गाथा ११९५). २ विद्यासाधकस्य विभीषिकादिनेव मनःक्षोभः. ३ प्रायेण पूर्वसेवा परिमृद्वी साधने गुरुतरा । भवति महाविद्यायाः क्रिया प्रायः सविघ्ना च ॥ १ ॥ तथा कर्मस्थितिक्षपणे परिमृद्वी मोक्षसाधने गुर्वी । इह दर्शनादिक्रिया दुर्लभा प्रायः सविघ्ना च ॥ २ ॥ (विशेषावश्यके गाथे ११९९–१२००) * मध्यं गतः. + तावती. † ०रान्तरसहा०. ‡ ०ट्ठित०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

यत एव बह्वी कर्मस्थितिरनेन उं*न्मूलिता, अत एवापचीयमानदोषस्य सम्यक्त्वादिगुणलाभः संजायते, निश्शेषकर्मपरिक्षये सिद्धत्ववत्, तत एव च मोक्ष इति, अतो न शेषमपि कर्म गुणरहित एवापाकृत्य मोक्षं प्रसाधयतीति स्थितम्। इदानीं सम्यक्त्वादिगुणप्राप्तिविधिरुच्यते—जीवा द्विधा भवन्ति-भव्याश्चाभव्याश्च, तत्र भव्यानां करणत्रयं भवति, करणमिति परिणामविशेषः, तद्यथा–यथाप्रवृत्तकरणं अपूर्वकरणं अनिवृत्तिकरणं च। तत्र यथैव प्रवृत्तं यथाप्रवृत्तं तच्चानादि, अप्राप्तपूर्वमपूर्वं, निवर्त्तनशीलं निवर्त्ति न निवर्त्ति अनिवर्ति, आ सम्यग्दर्शनलाभात् न निवर्त्तते, तत्राभव्यानां आद्यमेव भवति, तत्र यावद्ग्रन्थिस्थानं तावदाद्यं भवति, तमतिक्रामतो द्वितीयं, सम्यग्दर्शनलाभाभिमुखस्य तृतीयमिति ॥ १०६ ॥ इदानीं करणत्रयमङ्गीकृत्य सामायिकलाभदृष्टान्तानभिधित्सुराह—

पल्लय १ गिरिसरिउवला २ पिवीलिया ३ पुरिस ४ पह ५ जरग्गहिया ६।
कुद्दव ७ जल ८ वत्थाणि ९ य सामाइयलाभदिट्ठन्ता ॥ १०७ ॥

व्याख्या—तत्र पल्लकदृष्टान्तः–पल्लको लाटदेशे धान्यधा†म भवति, तत्र यथा ना‡म कश्चिन्महति पल्ये धान्यं प्रक्षिपति स्वा†ल्पं स्वल्पतरं, प्रचुरं प्रचुरतरं त्वादत्ते, तच्च कालान्तरेण क्षीयते, एवं कर्मधान्यपल्ये जीवोऽनाभोगतः यथाप्रवृत्तकरणेन स्वल्प¶तरमुपचिन्वन् बहुतरमपचिन्वंश्च ग्रन्थिमासादयति, पुनस्तमतिक्रामतोऽपूर्वकरणं भवति, सम्यग्दर्शनलाभाभिमु-

१ कर्मक्षपणनिबन्धनस्याध्यवसायमात्रस्य सर्वदैव भावात् (इति विशे० १२०३ गाथावृत्तौ). २ सम्यक्त्वादिरूप०. * उच्छेदिता. + नेदं. † ०न्याधारो. ‡ नेदं. † अल्पमल्पतरं. ¶ अल्पतर०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

सामायिकलाभे पल्लक-आदि ९ दृष्टन्तानि

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

खस्य तु अनिवर्त्तीति, एष पल्यँकदृष्टान्तः। ⁺आह—अयं दृष्टान्त एवानुपपन्नः, यतः संसारिणो योगवतः प्रतिसमयं कर्मणश्चयापचयावुक्तौ, तत्र च[२]संयतस्य बहुतरस्य चयः अल्पतरस्य चापचयः, यत आगमः—“[१]पल्ले महइमहल्ले कुंभं पक्खिवइ सोहए णालिं। असंजए अविरए बहु बंधइ निज्जरइ थोवं ॥ १ ॥ पल्ले महतिमहल्ले कुंभं सोहेइ पक्खिवे णालिं । जे संजए पमत्ते बहु निज्जरइ बंधई थोवं ॥ २ ॥ पल्ले महइमहल्ले कुंभं सोहेइ पक्खिवे न किंचि। जे संजए अपमत्ते बहु निज्जरे बंधइ न किंची ॥ ३ ॥” ततश्च एवं पूर्वमसंयतस्य मिथ्यादृष्टेः प्रभूततरबन्धकस्य कुतो ग्रन्थिदेशप्राप्तिरिति, अत्रोच्यते, ननु मुग्ध ! बाहुल्यमङ्गीकृत्य इदमुक्तं यद्–असंयतस्य बहुतरस्योपचयोऽल्पतरस्य चापचयः, अन्यथाऽनवरतप्रभूततरबन्धाङ्गीकरणे ख†ल्वपचयानवस्थानात् अशेषकर्मपुद्गलानामेव ग्रहणं प्राप्नोति, अनिष्टं चैतत्, सम्यग्दर्शनादिप्राप्तिश्च अनुभवसिद्धा विरुध्यते, तस्मात् प्रायोवृत्तिगोचरमिदं पल्येत्यादि द्रष्टव्यमिति १। कथं पुनरनाभोगतः प्रचुरतरकर्मक्षय इति आह—गिरेः सरिद् गिरिसरित् तस्यां उपलाः–पाषाणाः गिरिसरिदुपलाः तद्वत्, एतदुक्तं भवति—यथा गिरिसरिदुपलाः परस्परसन्निघर्षेण उपयोगशून्या अपि विचित्राकृतयो जायन्ते, एवं यथाप्रवृत्तिकरणतो जीवास्तथाविधकर्मस्थितिविचि‡त्ररूपाश्चित्रा इति २। पिपीलिकाः–कीटिकाः, यथा तासां क्षितौ स्वभावगमनं

---

१ पल्येऽतिमहति कुम्भं प्रक्षिपति शोधयति नालिकाम्। असंयतोऽविरतः बहु बध्नाति निर्जरयति स्तोकम् ॥ १ ॥ पल्येऽतिमहति कुम्भं शोधयति प्रक्षिपति नालिकाम्। यः संयतः प्रमत्तः बहु निर्जरयति बध्नाति स्तोकम् ॥ २ ॥ पल्येऽतिमहति कुम्भं शोधयति प्रक्षिपति न किञ्चित्। यः संयतोऽप्रमत्तः बहु निर्जरयति न बध्नाति किञ्चित् ॥ ३ ॥ २ अविरतिमिथ्यादृष्टिः. * पल्य०. + एवमुक्ते सत्याह. † खल्पचया०. ‡ ०तिचित्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवति १ तथा स्थाण्वारोहणं २ संजातपक्षाणां च तस्मादप्युत्पतनं ३ स्थाणुमूर्धनि चावस्थानं ४ कासाञ्चित् स्थाणुशिरसः प्रत्यवसर्पणं ५ एवमिहापि जीवानां कीटिकास्वभावगमनवत् यथाप्रवृत्तकरणं, स्थाण्वारोहणकल्पं त्वपूर्वकरणं, उत्पतनतुल्यं त्वनिवर्त्तिकरणमिति, स्थाणुपर्यन्तावस्थानसदृशं तु ग्रन्थ्यवस्थानमिति, स्थाणुशिरसः प्रत्यवसर्पणसमानं तु पुनः कर्मस्थितिवर्धनमिति ३। पुरुषदृष्टान्तो यथा–केचन त्रयः पुरुषा महानगरयियासया महाटवीं प्रपन्नाः, सुदीर्घमध्वानं अतिक्रामन्तः कालातिपातभीरवो भयस्थानमाढौकमानाः शीघ्रतरगतयो गच्छन्तः पुरस्तात् उभयतः समुत्खातकरवालपाणितस्करद्वयमालोक्य तत्रैकः प्रतीपमनुप्रयातः अपरस्तु ताभ्यामेव गृहीतः तथाऽपरस्तावतिक्रम्य इष्टं नगरमनुप्राप्त इति। एष दृष्टान्तोऽयमर्थोपनयः—एवमिह संसाराटव्यां पुरुषाः संसारिणस्त्रयः कल्प्यन्ते, पन्थाः कर्मस्थितिरतिदीर्घा, भयस्थानं तु ग्रन्थिदेशः, तस्करद्वयं पुना रागद्वेषौ, तत्र प्रतीपगामी यो यथाप्रवृत्तकरणेन ग्रन्थिदेशमासाद्य पुनरनिष्टपरिणामः सन् कर्मस्थितिमुत्कृष्टामासादयति, तस्करद्वयावरुद्धस्तु प्रबलरागद्वेषोदयो ग्रन्थिकसत्त्व इत्यर्थः, अभिलषितनगरमनुप्राप्तोऽपूर्वकरणतो रागद्वेषचौरौ अपाकृत्य अनिवर्त्तिकरणेनावाप्तसम्यग्दर्शन इति ४। आह—स हि सम्यग्दर्शनमुपदेशतो लभते उतानुपदेशत एवेति, अत्रोच्यते, उभयथापि लभते, कथम्?, पथः परिभ्रष्टपुरुषत्रयवत्, यथा हि कश्चित् पथि परिभ्रष्टः उपदेशमन्तरेणैव परिभ्रमन् स्वयमेव पन्थानमासादयति, कश्चित्तु परोपदेशेन, अपरस्तु नासादयत्येव, एवमिहा-

---

१ स्थाणुबुध्ने (इति वि० १२१० गाथावृत्तौ) मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः इत्यमरः. २ सर्वेऽप्येते बुद्ध्यर्थाः, अन्यथा अपूर्वकरणकालात्प्राक्तनत्वं विरुध्येत. ३ गंठित्ति सुदुब्भेओ कक्खडघणरूढगूढगंठिव्व। जीवस्स कम्मजणिओ घणरागद्दोसपरिणामोत्तिवचनात्. * पथपरि०(वाट: पथश्च मार्गश्चेति त्रिकाण्डशेषः). + पथप०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

ष्यत्यन्तार्पिनष्टसत्पथो जीवो यथाप्रवृत्तकरणतः संसाराटव्यां परिभ्रमन् कश्चिद्ग्रन्थिमासाद्य अपूर्वकरणेन च तमतिक्रम्य अनिवर्त्तिकरणमनुप्राप्य स्वयमेव सम्यग्दर्शनादि निर्वाणपुरस्य पन्थानं लभते, कश्चित्परोपदेशात्, अपरस्तु प्रतीपगामी ग्रन्थिकसत्त्वो वा नैव लभते इति ५। इदानीं ज्वरदृष्टान्तो–यथा हि ज्वरः कश्चित् स्वयमेवापैति कश्चिद्भेषजोपयोगेन कश्चित्तु नैवापैति, एवमिह मिथ्यादर्शनमहाज्वरोऽपि कश्चित्स्वयमेवापैति कश्चित् अर्हद्वचनभेषजोपयोगात् अपरस्तु तदोषधोपयोगेऽपि नापैति, करणत्रययोजना स्वयमेव कार्या ६। कोद्रवदृष्टान्तः–यथा इह केषाञ्चित् कोद्रवाणां मदनभावः स्वयमेव कालान्तरतोऽपैति तथा केषाञ्चित् गोमयादिपरिकर्मतः तथा परेषां नापैति, एवं मिथ्यादर्शनभावोऽपि कश्चित्स्वयमेवापैति कश्चिदुपदेशपरिकर्मणा अपरस्तु नापैति, इह च भावार्थः–स हि जीवोऽपूर्वकरणेन मदनार्धशुद्धशुद्धकोद्रवानिव दर्श[2]नं मिथ्यादर्शनसम्यग्मिथ्यादर्शनसम्यग्दर्शनभेदेन त्रिधा विभजति, ततोऽनिवर्त्तिकरणविशेषात्सम्यक्त्वं प्राप्नोति, एवं करणत्रययोगवतो भव्यस्य सम्यग्दर्शनप्राप्तिः, अभव्यस्यापि कस्यचिद् यथाप्रवृत्तकरणतो ग्रन्थिमासाद्य अर्हदा[3]दिविभूतिसं[+]दर्शनतः प्रयोजनान्त[4]रतो वा प्रवर्त्तमानस्य श्रुतसामायिकलाभो भवति, न शेषलाभ इति ७। इदानीं जलदृष्टान्तः—यथा हि जलं मलिनार्धशुद्धशुद्धभेदेन त्रिधा भवति, एवं दर्शनमपि मिथ्यादर्शनादिभेदेन अपूर्वकरणतस्त्रिधा करोतीति, भावार्थस्तु पूर्ववदेव ८। वस्त्रदृष्टान्तेऽप्यायोजनीयमिति गाथार्थः ९ ॥ १०७ ॥ प्रासङ्गिक-

१ अत्र पूर्वत्र च, परं न दृष्टान्तानुक्रमेण किंतु यथास्वरूपं. २ दर्शनमोहनीयपुद्गलरूपं, मिथ्यात्वस्य सर्वेऽपि भागत्रयम्, शुद्धस्वावस्थानत आश्रित्य मिथ्यात्वस्य. ३ आदिना गणभृदादिविभूत्यादिग्रहः, तत्त्वं तु सत्कारकारणमेतदिति बुद्धौ. ४ देवत्वनरेन्द्रत्वसौभाग्यरूपबलावाप्त्यादिग्रहः. *०न्तप्रनष्ट०. +०तिदर्शन०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मुच्यते—एवं सम्यग्दर्शनलाभोत्तरकालमवशेषकर्मणः पल्योपमपृथक्त्वमि*तिस्थितिपरिक्षयोत्तरकालं देशविरतिरवाप्यते, पुनः शेषायाः संख्येयेषु सागरोपमेषु स्थितेरपगतेषु सर्वविरतिरिति, पुनरवशेषस्थितेरपि संख्येयेष्वेव सागरोपमेषु क्षीणेषु उपशामकश्रेणी, अनेनैव न्यायेन क्षपकश्रेणीति, इयं च देशविरत्यादिप्राप्तिरेतावत्कालतो देवमनुष्येषु उत्पद्यमानस्य अप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य नियमेनोत्कृष्टतो द्रष्टव्येति, अन्यथा अन्यतरश्रेणिरहितसम्यक्त्वादिगुणप्राप्तिरेकभवेनाप्यविरुद्धेति, उक्तं च भाष्यकारेण–“सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होज्जा । चरणोवसमखयाणं सागर संखंतरा हुंति ॥ १ ॥ एवं अप्परिवडिए सम्मत्ते देवमणुयजम्मेसु । अण्णतरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं ॥ २ ॥” अभिहितं आनुषङ्गिकं, इदानीं यदुदयात् सम्यक्त्वसामायिकादिलाभो न भवति, संजातो वाऽपैति, तानिहावरणरूपान् कषायान् प्रतिपादयन्नाह—पढमिल्लु० । अथवा यदुक्तं ‘कैवल्यज्ञानलाभो नान्यत्र कषायक्षयात्’ इति, इ†दानीं ते कषायाः के ? कियन्तः ? को वा कस्य सम्यक्त्वादिसामायिकस्यावरणं ? को वा खलु उपशम‡नादिक्रमः कस्य इत्यमुमर्थमभिधित्सुराह—

पढमिल्लुयाण उदए नियमा संजोयणा कसायाणं । सम्मद्दंसणलंभं भवसिद्धीयावि न लहंति ॥ १०८ ॥

---

१ देवभवेऽधिकस्थितावपि तावत्याः स्थितेः सद्भावादुपचयेन न देशविरतिप्रसङ्गः इति प्रथमपञ्चाशकवृत्तौ. २ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेन श्रावको भवेत् । चरणोपशमक्षयेषु, सागराः संख्येया अन्तरं भवति ॥ १ ॥ एवमप्रतिपतिते सम्यक्त्वे देवमनुष्यजन्मसु । अन्यतरश्रेणिवर्जं एकभवेनापि सर्वाणि ॥ २ ॥ (विशे०१२२२–१२२३). ३ श्रुतसम्यक्त्वादिप्राप्तिहेतुतया प्रसङ्गः. * नेदम्. + उपशमश्रे०. † तदिदानीं क०. ‡ ०पशमादि०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

सम्यक्त्व-आदि सामायिके आवरणं (अनन्तानुबन्धि कषायानां कारणे सम्यक्त्व आदीनाम् अलाभः)

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

उत्तरगाथा अपि प्रायः कियत्योऽपि उक्तसंबन्धा एवेति, तत्र व्याख्या—प्रथमा एव प्रथमिल्लुकाः, देशीवचनतो जहा 'पढमिल्ला एत्थ घरा' इत्यादि, तेषां प्रथमिल्लुकानां—अनन्तानुबन्धिनां क्रोधादीनामित्युक्तं भवति, प्राथम्यं चैषां सम्यक्त्वाख्यप्रथमगुणविघातित्वात् क्षपणक्रमाद्वेति, उदयः—उदीरणावलिकागततत्पुद्गलोद्भूतसामर्थ्यता तस्मिन् उदये, किम् ?—'नियमात्' नियमेनेति, अस्य व्यवहितपदेन सार्धं संबन्धः, तं च दर्शयिष्यामः, इदानीं पुनः प्रथमिल्लुका एव विशिष्यन्ते—किंविशिष्टानां प्रथमिल्लुकानां ?—कर्मणा तत्फलभूतेन संसारेण वा संयोजयन्तीति संयोजनाः, संयोजनाश्च ते कषायाश्चेति विग्रहः तेषामुदये, किम् ?—नियमेन सम्यक्—अविपरीतं दर्शनं सम्यग्दर्शनं तस्य लाभः—प्राप्तिः सम्यग्दर्शनलाभः तं, भवे सिद्धिर्येषां ते भवसिद्धिकाः। आह—सर्वेषामेव भवे सति सिद्धिर्भवति ?, उच्यते, एवमेतत्, किंतु इह प्रकरणात् तद्भवो गृह्यते, तद्भवसिद्धिका अपि 'न लभन्ते' न प्राप्नुवन्ति, अपिशब्दाद् अभव्यास्तु नैव, अथवा परीतसंसारिणोऽपि नैवेति गाथार्थः ॥ १०८ ॥

बिइयकसायाणुदए अपच्चक्खाणनामधेज्जाणं। सम्मद्दंसणलंभं विरयाविरइं न उ लहंति ॥ १०९ ॥

व्याख्या—'द्वितीया' इति देशविरतिलक्षणद्वितीयगुणघातित्वात् क्षपणक्रमाद्वा, 'कषाया' इति 'कष गतौ' इति कषशब्देन कर्माभिधीयते, भवो वा, कषस्य आया लाभाः प्राप्तयः कषायाः क्रोधादयः, द्वितीयाश्च ते कषायाश्चेति समासः, तेषां, 'उदयः' इति अस्य पूर्ववदर्थः, किंविशिष्टानां ?—'अप्रत्याख्याननामधेयानां' न विद्यते देशविरतिसर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानं येषु उदयप्राप्तेषु सत्सु ते अप्रत्याख्यानाः, सर्वनिषेधवचनोऽयं नञ् द्रष्टव्यः, अप्रत्याख्याना एव नामधेयं येषां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ते तथाविधाः तेषामुदये सति, किम् ?–सम्यग्दर्शनलाभं, भव्या लभन्ते इति शेषः, अयं च वाक्यशेषो विरताविरतिविशेषणे तुशब्दसंसूचितो द्रष्टव्यः, तथा चाह–विरमणं विरतं तथा न विरतिः अविरतिः विरतं चाविरतिश्च यस्यां निवृत्तौ सा तथोच्यते, देशविरतिरित्यर्थः, तां विरताविरतिं न तु लभन्ते, तुशब्दात् सम्यग्दर्शनं तु लभन्ते इति गाथार्थः ॥ १०९ ॥

तइयकसायाणुदए पच्चक्खाणावरणनामधिज्जाणं । देसिक्कदेसविरइं चरित्तलंभं न उ लहंति ॥ ११० ॥

व्याख्या—सर्वविरतिलक्षणतृतीयगुणघातित्वात् क्षपणक्रमाद्वा तृतीयाः, 'कषायाः' पूर्ववत्, तृतीयाश्च ते कषायाश्चेति समासः, कषायाः क्रोधादय एव चत्वारस्तेषां 'उदय' इति पूर्ववत्, किंविशिष्टानां ?–आवृण्वन्तीत्यावरणाः, प्रत्याख्यानं सर्वविरतिलक्षणं तस्यावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणा एव नामधेयं येषां ते तथाविधास्तेषां । आह—नन्वप्रत्याख्याननामधेयानामुदये न प्रत्याख्यानमस्तीत्युक्तं, नञा प्रतिषिद्धत्वात्, इहापिच आवरणशब्देन प्रत्याख्यानप्रतिषेधात् क एषां प्रतिविशेष इति, उच्यते, तत्र नञ् सर्वनिषेधवचनो वर्त्तते, इह पुनः आङो मर्यादेषदर्थवचनत्वात् ईषन्मर्यादया वाऽऽवृण्वन्तीत्यावरणाः, ततश्च सर्वविरतिनिषेधार्थ एवायं वर्त्तते न देशविरतिनिषेधे खल्वावरणशब्द इति, तथा चाह–देशश्चैकदेशश्च देशैकदेशौ, तत्र देशः–स्थूरप्राणातिपातः, एकदेशः तस्यैव यथाऽस्यवनस्पतिकायातिपातः, तयोः विरतिः–निवृत्तिः तां, लभन्ते इति वाक्यशेषः, अत्रापि वाक्यशेषः चारित्रविशेषणे तुशब्दाक्षिप्त एव द्रष्टव्यः, यत आह–'चारित्रं' इति 'चर गतिभक्षणयो' रिति, अस्य 'अर्त्तिलूधूसूखनिसहिचर इत्रः' (पा.३-२-१८४) इतीत्रप्रत्ययान्तस्य चरित्रमिति भवति, चरन्त्यनिन्दितमनेन इति चरित्रं क्षयोपशमरूपं तस्य भावश्चारित्रं, एतदुक्तं भवति–इहान्यजन्मोपात्ता-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ष्टविधंकर्मसंचयापचयाय चरणं चारित्रं, सर्वसावद्ययोगनिवृत्तिरूपा क्रियेत्यर्थः, तस्य लाभश्चारित्रलाभस्तं न तु लभन्ते, तुशब्दाद्देशैकदेशविरतिं तु लभन्त एवेति गाथार्थः ॥ ११० ॥ इदानीममुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

मूलगुणाणं लंभं न लहइ मूलगुणघाइणं उदए। उदए संजलणाणं न लहइ चरणं अहक्खायं ॥ १११ ॥

व्याख्या—मूलभूता गुणा मूलगुणा उत्तरगुणाधारा इत्यर्थः, ते च सम्यक्त्वमहाव्रताणुव्रतरूपाः तेषां मूलगुणानां लाभं 'न लभते' न प्राप्नोति, कदेति आह—मूलगुणान् घातयितुं शीलं येषां ते मूलगुणघातिनः तेषां मूलगुणघातिनां—अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणानां द्वादशानां कषायाणामुदये, तथा ईषद् ज्वलनात् संज्वलनाः सपदि परीषहादिसंघातज्वलनाद्वा संज्वलनाः क्रोधादय एव चत्वारः कषायाः तेषां संज्वलनानामुदये न लभते चारश्चरणं, भावे ल्युट्प्रत्ययः, लब्धं वा त्यजति, किं सर्वम्?—नेत्याह—यथैवाख्यातं यथाख्यातं इति अकषायं, सकषायं तु लभते एवेति ॥ १११ ॥ न च यथाख्यातचारित्रमात्रोपघातिन एव संज्वलनाः, किंतु शेषचारित्रदेशोपघातिनोऽपि, तदुदये शेषचारित्रदेशातिचारसिद्धेः, तथा चाह—

सव्वेविअ अइयारा संजलणाणं तु उदयओ हुंति। मूलच्छिज्जं पुण होइ बारसण्हं कसायाणं ॥ ११२ ॥

व्याख्या—'सर्वे' आलोचनादिच्छेदपर्यन्तप्रायश्चित्तशोध्याः, अपिशब्दात् कियन्तोऽपिच, अतिचरणान्यतिचाराः चारित्रस्खलनाविशेषाः, संज्वलनानामेवोदयतो भवन्ति, तुशब्दस्य एवकारार्थत्वात् द्वादशानां पुनः कषायाणां उदयतः, किम्?—मूलच्छेद्यं भवति, एवं पदयोगः कर्त्तव्यः, 'मूलेन' अष्टमप्रायश्चित्तेन 'छिद्यते' विदार्यते यद्दोषजातं तन्मूलच्छेद्यं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अशेषचारित्रच्छेदकारीति भावार्थः, पुनःशब्दस्तु प्रक्रान्तार्थविशेषणार्थ एवेति, 'भवति' संजायते 'द्वादशानां' अनन्तानुबन्धिप्रभृतीनां कषायाणां, उदयेनेति संबध्यते, अथवा मूलच्छेद्यं यथासंभवतः खल्वायोजनीयं, प्रत्याख्यानावरणकषायोदयतस्तावत् मूलच्छेद्यं-सर्वचारित्रविनाशः, एवमप्रत्याख्यानकषायानन्तानुबन्ध्युदयतस्तु देशविरतिसम्यक्त्वं मूलच्छेद्यं यथायोगमिति गाथार्थः ॥ ११२ ॥ यतश्चैवमतः—

बारसविहे कसाए खइए उवसामिए व जोगेहिं । लब्भइ चरित्तलंभो तस्स विसेसा इमे पंच ॥ ११३ ॥

व्याख्या—'द्वादशविधे' द्वादशप्रकारे अनन्तानुबन्ध्यादिभेदभिन्ने 'कषाये' क्रोधादिलक्षणे, 'क्षपिते सति' प्रशस्तयोगैः-निर्वाणहुतभुक्तुल्यतां नीते 'उपशमिते' भस्मच्छन्नाग्निकल्पतां प्रापिते, वाशब्दात् क्षयोपशमं वा-अर्धविध्यातानलोद्धट्टनसमतां नीते 'योगैः' मनोवाक्कायलक्षणैः प्रशस्तैर्हेतुभूतैरिति, किम् ? लभ्यते चारित्रलाभः 'तस्य' चारित्रलाभस्य सामान्यस्य न तु द्वादशविधकषायक्षयादिजन्यस्यैवेति, 'विशेषा' भेदा 'एते' वक्ष्यमाणलक्षणाः 'पञ्च' पञ्चेति संख्या, (इति) गाथाक्षरार्थः ॥ ११३ ॥ अनन्तरगाथासूचितपञ्चचारित्रभेदप्रदर्शनायाह—

सामाइयं च पढमं छेओवट्ठावणं भवे बीयं । परिहारविसुद्धीयं सुहुमं तह संपरायं च ॥ ११४ ॥
तत्तो य अहक्खायं खायं सव्वंमि जीवलोगंमि । जं चरिऊण सुविहिआ वच्चंतयरामरं ठाणं ॥ ११५ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—'सामायिकं' इति समानां-ज्ञानदर्शनचारित्राणां आयः-समायः, समाय एव सामायिकं, विनयादिपाठात् स्वार्थे ठक्, आह-समयशब्दस्तत्र पठ्यते, तत्कथं समाये प्रत्ययः ?, उच्यते, 'एकदेशविकृतमनन्यवद्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

चारित्रस्य सामायिक-आदि पञ्च-भेदाः एवं तेषाम् व्याख्याः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ७९ ॥

हारिभद्री यवृत्तिः- विभागः १

वत्ती' तिन्यायात्, तच्च सावद्ययोगविरतिरूपं, ततश्च सर्वमप्येतच्चारित्रं अविशेषतः सामायिकं, छेदादिविशेषैस्तु विशेष्यमाणं अर्थतः शब्दान्तरतश्च नानात्वं भजते, तत्र प्रथमं विशेषणाभावात् सामान्यशब्द एवावतिष्ठते सामायिकमिति, तच्च द्विधा–इत्वरं यावत्कथिकं च, तत्र स्वल्पकालमित्वरं, तच्च भरतैरवतेषु प्रथमपश्चिमतीर्थकरतीर्थेषु अनारोपितव्रतस्य शिक्षकस्य विज्ञेयमिति, यावत्कथिकं तु यावत्कथा आत्मनः तावत्कालं यावत्कथं यावत्कथमेव यावत्कथिकं आभववर्त्तीतियावत्, तच्च मध्यमविदेहतीर्थकरतीर्थान्तर्गतसाधूनामवसेयमिति, तेषामुपस्थापनाऽभावात्, अत्र प्रसङ्गतो मध्यमविदेहपुरिमपश्चिमतीर्थकरतीर्थवर्त्तिसाधुस्थितास्थितकल्पः प्रदर्श्यते—तत्र ग्रथान्तरे विवक्षितार्थप्रतिपादिकेयं गाथा— "आचेलक्कु १ देसिय २ सेज्जायर ३ रायपिंड ४ किइकम्मे ५ । वय ६ जिट्ठ ७ पडिक्कमणे ८ मासं ९ पज्जोसवणकप्पो १० ॥ १ ॥" अस्या गमनिका—चउसु ठिआ छसु अट्ठिआ, केषु चतुर्षु इति, आह—सिज्जायरपिंडे या चाउज्जामे य पुरिसजिट्ठे य । किइकम्मस्स य करणे चत्तारि अवट्ठिआ कप्पा ॥ १ ॥ नास्य चेलं विद्यते इत्यचेलकः तद्भावः अचेलकत्वं अचेलकत्वे स्थिताः, एतदुक्तं भवति–न वैदेहमध्यमतीर्थकरतीर्थसाधवः पुरिमपश्चिमतीर्थवर्त्तिसाधुवत् अचेलत्वे स्थिताः, कुतः ?–तेषां ऋजुप्रज्ञत्वात् महाधनमूल्यविचित्रादिवस्त्राणामपि परिभोगात्, पुरिमपश्चिमतीर्थकरतीर्थवर्त्तिसाधूनां तु ऋजुवक्रजडत्वात् महाधनमूल्यादिवस्त्रापरिभोगाज्जीर्णादिपरिभोगाच्च अचेलकत्वमिति। आह–जीर्णादिवस्त्रसद्भावे, कथमचेलकत्वम् ?, उच्यते, तेषां जीर्णत्वात् असारत्वात् अल्पत्वात् विशिष्टार्थक्रियाऽप्रसाधकत्वात् असत्त्वाविशेषात् इति, तथा चेत्थंभूतवस्त्रसद्भावेऽपि लोकेऽचेलकत्वव्यपदेशप्रवृत्तिर्दृश्यते, यथा–काचिदङ्गना जीर्णवस्त्रपरिधाना अन्याभावे सति

॥ ७९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

आचेलक आदि दश कल्पा:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

तद्भावेऽपि च समर्पितसाटकं कुविन्दं तन्निष्पादनमन्थरं प्रति आह–'त्वर कोलिक ! नग्निकाऽहमिति' १ । तथा औद्देशिकेऽप्यस्थिता एव, कथम् ?–इह पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधुं उद्दिश्य कृतमशनादि सर्वेषामकल्पनीयं, तेषां तु यमुद्दिश्य कृतं तस्यैवाकल्पनीयं न शेषाणामिति २ । तथा शय्यातरराजपिण्डद्वारम्,–पिण्डग्रहणमुभयत्र संबध्यते, तत्र शय्यातरपिण्डे स्थिता एव, शय्यातरपिण्डोहि यथा पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधूनां अकल्पनीयः, एवं मध्यमतीर्थकरसाधूनामपि ३ । राजपिण्डे चास्थिताः, कथम् !–स हि पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधूनामग्राह्य एव, मध्यमानां तु दोषाभावात् गृह्यते ४ । तथा कृतिकर्म वन्दनमाख्यायते, तत्रापि स्थिताः, कथम् ? यथा पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधूनां प्रभूतकालप्रव्रजिता अपि संयत्यः पूर्वं वन्दनं कुर्वन्ति, एवं तेषामपि, यथा वा क्षुल्लका ज्येष्ठार्याणां कुर्वन्ति, एवं तेषामपि ५ । व्रतानि प्राणातिपातादिनिवृत्तिलक्षणानि तेष्वपि स्थिता एव, यथा पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधवः व्रतानुपालनं कुर्वन्ति, एवं तेऽपीति, आह–तेषां हि मैथुनविरतिवर्ज्यानि चत्वारि व्रतानि, ततश्च कथं स्थिता इति, उच्यते, तस्यापि परिग्रहेऽन्तर्भावात् स्थिता एव, तथाच नापरिगृहीता योषित् उपभोक्तुं पार्यते ६ । तथा ज्येष्ठेति–ज्येष्ठपदे स्थिता एव, किन्तु पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधूनां उपस्थापनया ज्येष्ठः, तेषां तु सामायिकारोपणेनेति ७ । तथा प्रतिक्रमणे अस्थिताः, पुरिमपश्चिमसाधूनां नियमेनोभयकालं प्रतिक्रमणं, तेषां तु अनियमः, दोषाभावे सर्वकालमप्यप्रतिक्रमणमिति ८ । तथा मासपर्युषणाकल्पद्वारं,–तत्र मासकल्पेऽप्यस्थिताः, कथम् ?–पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधूनां नियमतो मासकल्पविहारः, मध्यमतीर्थकरसाधूनां तु दोषाभावे न विद्यते, एवं पर्युषणाकल्पोऽपि वक्तव्यः, एतदुक्तं भवति—तस्मिन्नपि अस्थिता एव ९–१०–इति समुदायार्थः, विस्तरार्थस्तु कल्पादवग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

न्तव्यः । अभिहितमानुषङ्गिकं, इदानीं प्रकृतमुच्यते—आह–पुरिमपश्चिमतीर्थकरसाधूनामपि यदित्वरं सामायिकं तत्रापि 'करोमि भदन्त ! सामायिकं यावज्जीवं' इतीत्वरस्याप्याभवग्रहणात् तस्यैव उपस्थापनायां परित्यागात् कथं न प्रतिज्ञा-लोप इति, अत्रोच्यते,–अतिचाराभावात्, तस्यैव सामान्यतः सावद्ययोगविनिवृत्तिरूपेणावस्थितस्य शुद्ध्यन्तरापादनेन संज्ञामात्रविशेषात् इति । चशब्दो वाक्यालङ्कारे, 'प्रथमं' आद्यं चारित्रमिति, इदानीं 'छेदोपस्थापनं' छेदश्चोपस्थापनं च यस्मिंस्तच्छेदोपस्थापनं, एतदुक्तं भवति—पूर्वपर्यायस्य छेदो महाव्रतेषु चोपस्थापनमात्मनो यत्र तच्छेदोपस्थापनं, तच्च सातिचारमनतिचारं च, तत्रानतिचारं यदित्वरसामायिकस्य शिक्षकस्य आरोप्यत इति, तीर्थान्तरसंक्रान्तौ वा, यथा पार्श्वनाथतीर्थात् वर्धमानस्वामितीर्थं संक्रामतः पञ्चयामधर्मप्रतिपत्ताविति, सातिचारं तु मूलगुणघातिनो यत् पुनर्व्रतो-च्चारणमिति, उक्तं छेदोपस्थापनं, इदानीं परिहारविशुद्धिकं–तत्र परिहरणं परिहारः–तपोविशेषः तेन विशुद्धिर्यस्मिंस्तत्प-रिहारविशुद्धिकं, तच्च द्विभेदं—निर्विशमानकं निर्विष्टकायिकं च, तत्र निर्विशमानकास्तदासेवकाः तदव्यतिरेकात् तदपि चारित्रं निर्विशमानकमिति, आसेवितविवक्षितचारित्रकायास्तु निर्विष्टकायाः त एव स्वार्थिकप्रत्ययोपादानात् निर्विष्टका-यिकाः तदव्यतिरेकाच्चारित्रमपि निर्विष्टकायिकमिति, इह च नवको गणो भवति, तत्र चत्वारः परिहारिका भवन्ति, अपरे तु तद्वैयावृत्त्यकराश्चत्वार एवानुपरिहारिकाः, एकस्तु कल्पस्थितो वाचनाचार्यो गुरुभूत इत्यर्थः, एतेषां च निर्विशमानका-नामयं परिहारः—परिहारियाण उ तवो जहण्ण मज्झो तहेव उक्कोसो । सीउण्हवासकाले भणिओ धीरेहिं पत्तेयं । १ । ॥ ८० ॥

१ परिहारिकाणां तु तपो जघन्यं मध्यमं तथैवोत्कृष्टम् । शीतोष्णवर्षाकाले भणितं धीरैः प्रत्येकम् । १ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तत्थ जहण्णो गिम्हे चउत्थ छट्ठं तु होइ मज्झिमओ। अट्ठममिहमुक्कोसो एत्तो सिसिरे पवक्खामि। २। सिसिरे तु जहण्णादी छट्ठादी दसमचरिमगो होति। वासासु अट्ठमादी बारसपज्जंतगो णेओ। ३। पारणगे आयामं पंचसु गहो दोसभिग्गहो भिक्खे। कप्पट्ठियादि पइदिण करेति एमेव आयामं। ४। एवं छम्मासतवं चरित्तु परिहारिया अणुचरंति। अणुचरगे परिहारियपदट्ठिते जाव छम्मासा। ५। कप्पट्ठितोवि एवं छम्मासतवं करेंति सेसा उ। अणुपरिहारिगभावं वयंति कप्पट्ठिगत्तं च। ६। एवेसो अट्ठारसमासपमाणो उ वण्णिओ कप्पो। संखेवओ विसेसा विसेससुत्ताओ णायव्वो। ७। कप्पसमत्तीएँ तयं जिणकप्पं वा उविंति गच्छं वा। पडिवज्जमाणगा पुण जिणस्स पासे पवज्जंति। ८। तित्थयरसमीवासेवगस्स पासे व णो उ अण्णस्स। एतेसिं जं चरणं परिहारविसुद्धिगं तं तु। ९। 'तथा' इत्यानन्तर्यार्थे, गाथाभङ्गभयाद्व्यवहितस्योपन्यासः, 'सूक्ष्मसंपरायं' इति संपर्येति एभिः–संसारमिति संपरायाः कषायाः, सूक्ष्मा लोभांशावशेषत्वात्

---

१ तत्र जघन्यं ग्रीष्मे चतुर्थः षष्ठस्तु भवति मध्यमकम्। अष्टम इह उत्कृष्टं इतः शिशिरे प्रवक्ष्यामि। २। शिशिरे तु जघन्यादि षष्ठादि दशमचरमकं भवति। वर्षासु अष्टमादि द्वादशपर्यन्तकं ज्ञेयम्। ३। पारणके आचामाम्लं पञ्चसु ग्रहः द्वयोरभिग्रहो भिक्षायाम्। कल्पस्थितादयः प्रतिदिनं कुर्वन्ति एवमेवाचामाम्लम्। ४। एवं षण्मासतपः चरित्वा परिहारिका अनुचरन्ति। अनुचरकाः परिहारिकपदस्थिताः यावत्षण्मासाः। ५। कल्पस्थितोऽपि एवं षण्मासतपः करोति शेषास्तु अनुपरिहारिकभावं व्रजन्ति कल्पस्थितत्वं च। ६। एवमेषोऽष्टादशमासप्रमाणस्तु वर्णितः कल्पः। संक्षेपतः विशेषतो विशेषसूत्राज्ज्ञातव्यः। ७। कल्पसमाप्तौ तं जिनकल्पं वोपयन्ति गच्छं वा। प्रतिपद्यमानकाः पुनर्जिनस्य पार्श्वे प्रपद्यन्ते। ८। तीर्थंकरसमीपासेवकस्य पार्श्वे वा नत्वन्यस्य। एतेषां यच्चरणं परिहारविशुद्धिकं तत्तु॥ ९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

संपराया यत्र तत् सूक्ष्मसंपरायं, तच्च द्विधा–विशुध्यमानकं संक्लिश्यमानकं च, तत्र विशुध्यमानकं क्षपकोपशमकश्रेणिद्वयमारोहतो भवति, संक्लिश्यमानकं तूपशमश्रेणितः प्रच्यवमानस्येति, 'चः' समुच्चये इति गाथार्थः ॥ ११ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—'ततश्च' सूक्ष्मसंपरायानन्तरं यथैवाख्यातं यथाख्यातं अकषायचारित्रमिति यथा ख्यातं–प्रसिद्धं सर्वस्मिन् जीवलोके, तच्च छद्मस्थवीतरागस्य केवलिनश्च भवति, तत्र च छद्मस्थस्य उपशामकस्य क्षपकस्य वा, केवलिनस्तु सयोगिनोऽयोगिनो वेति, शेषं निगदसिद्धं, नवरं मरणं मरः जरा च मरश्च जरामरौ तौ अविद्यमानौ यस्मिन् तदजरामरमिति गाथार्थः ॥ ११५ ॥ तत्रैतेषां पञ्चानां चारित्राणां आद्यं चारित्रत्रयं क्षयोपशमलभ्यं चरमचारित्रद्वयं तूपशमक्षयलभ्यमेव, तत्र तत्कर्मोपशमक्रमप्रदर्शनायाह—

अणदंसनपुंसित्थी वेयछक्कं च पुरुसवेयं च । दो दो एगन्तरिए सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥ ११६ ॥

अथवा चरमचारित्रद्वयं श्रेण्यन्तर्भाविनस्तद्विनिर्गतस्य च भवति, अतः श्रेणिद्वयावसरः, तत्र उभयश्रेणिलाभे चादावुपशमश्रेणिर्भवतीत्यतस्तत्स्वरूपाभिधित्सयैवाह–अणदंस० । गाथाव्याख्या—तत्रोपशमश्रेणिप्रारम्भको भवत्यप्रमत्तसंयत एव, अन्ये तु प्रतिपादयन्ति–अविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानामन्यतम इति, श्रेणिपरिसमाप्तौ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानामन्यतमो भवति, स चैवमारभते–अण रणेति दण्डकधातुः अस्याच्प्रत्ययान्तस्य अण इति भवति, शब्दार्थस्तु अणन्तीत्यणाः, अणन्ति–शब्दयन्ति अविकलहेतुत्वेन असातवेद्यं नारकाद्यायुष्कं इत्यणाः–आद्याः क्रोधादयः, अथवा अनन्तानुबन्धिनः क्रोधादयः अनाः, समुदायशब्दानामवयवे वृत्तिदर्शनात् भीमसेनः सेन इति यथा, तत्रासौ प्रतिपत्ता प्रशस्तेष्वध्यवसाय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

स्थानेषु वर्त्तमानः प्रथमं युगपदन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण कालेन अनन्तानुबन्धिनः क्रोधादीन् उपशमयति, एवं सर्वत्र युगपदुपशमककालोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण एव द्रष्टव्यः, ततो दर्शनं दर्शस्तं, दर्शनं त्रिविधं—मिथ्या सम्यग्मिथ्या सम्यग्दर्शनं युगपदेवेति, ततोऽनुदीर्णमपि नपुंसकवेदं युगपदेव यदि पुरुषः प्रारम्भकः, पश्चात्स्त्रीवेदमेककालमेवेति, ततो हास्यादिषट्कं–हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साषट्कं, पुनः पुरुषवेदं । अथ स्त्री प्रारम्भिका ततः प्रथमं नपुंसकवेदमुपशमयति पश्चात्पुरुषवेदं ततः षट्कं ततः स्त्रीवेदमिति । अथ नपुंसक एव प्रारम्भकः ततोऽसौ अनुदीर्णमपि प्रथमं स्त्रीवेदमुपशमयति पश्चात्पुरुषवेदं ततः षट्कं ततो नपुंसकवेदमिति, पुनः 'द्वौ द्वौ' क्रोधाद्यौ 'एकान्तरितौ' संज्वलनविशेषक्रोधाद्यन्तरितौ 'सदृशौ' तुल्यौ 'सदृशं' युगपदुपशमयति, एतदुक्तं भवति–अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधौ सदृशौ क्रोधत्वेन युगपदुपशमयति, ततः संज्वलनं क्रोधमेकाकिनमेव, ततः अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानौ युगपदेव ततः संज्वलनमानमिति, एवं मायाद्वयं सदृशं पुनः संज्वलनां मायां, एवं लोभद्वयमपि पुनः संज्वलनं लोभमिति, तं चोपशमयंस्त्रिधा करोति, द्वौ भागौ युगपदुपशमयति, तृतीयभागं संख्येयानि खण्डानि करोति, तान्यपि पृथक् पृथक् कालभेदेनोपशमयति, पुनः संख्येयखण्डानां चरमखण्डं असंख्येयानि खण्डानि करोति, सूक्ष्मसंपरायस्ततः समये समये एकैकं खण्डं उपशमयतीति, इह च दर्शनसप्तके उपशान्ते निवृत्तिबादरोऽभिधीयते, तत ऊर्ध्वमनिवृत्तिबादरो यावत् संख्येयान्तिमद्विचरमखण्डं । आह—संज्वलनादीनां युक्त इत्थमुपशमः, अनन्तानुबन्धिनां तु दर्शनप्रतिपत्तावेवोपशमितत्वान्न युज्यत इति, उच्यते, दर्शनप्रतिपत्तौ तेषां क्षयो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पशमात् इह चोपशमादविरोध इति, आह–क्षयोपशमोपशमयोरेव कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, क्षयोपशमो ह्युदीर्णस्य क्षयः अनुदीर्णस्य च विपाकानुभवापेक्षया उपशमः, प्रदेशानुभवतस्तु उदयोऽस्त्येव, उपशमे तु प्रदेशानुभवोऽपि नास्तीति, उक्तं च भाष्यकारेण—“वेदेइ[1] संतकम्मं खओवसमिएसु नाणुभावं सो। उवसंतकसाओ उण वेएइ न संतकम्मंपि ॥ १ ॥” आह—संयतस्यानन्तानुबन्धिनामुदयो निषिद्धस्तत् कथमुपशम इति, उच्यते, स ह्यनुभावकर्माङ्गीकृत्य न तु प्रदेश-कर्मेति, तथा चोक्तमार्षे—“जीवे[2] णं भन्ते ! सयंकडं कम्मं वेदेइ ?, गोयमा ! अत्थेगइअं वेइए अत्थेगइअं नो वेएइ, से केणट्ठेणं ? भन्ते ! पुच्छा, गोयमा ! दुविहे कम्मे पण्णत्ते, तंजहा—पएसकम्मे अ अणुभावकम्मे अ, तत्थ णं जं तं पएसकम्मं तं नियमा वेएइ, तत्थ णं जं तं अणुभावकम्मं तं अत्थेगइअं वेएइ, अत्थे गइयं णो वेएइ” इत्यादि, ततश्च प्रदेशकर्मानुभावो-दयस्येहोपशमो द्रष्टव्यः। आह–यद्येवं संयतस्य अनन्तानुबन्ध्युदयतः कथं दर्शनविघातो न भवति ?, उच्यते, प्रदेशकर्मणो मन्दानुभावत्वात्, तथा कस्यचिदनुभावकर्मानुभवोऽपि नात्यन्तमपकाराय भवन्नुपलभ्यते, यथा संपूर्णमत्यादिचतुर्ज्ञा-निनः तदावरणोदय इत्यलं विस्तरेण ॥ ११६ ॥

---

१ वेदयति सत्कर्म क्षायोपशमिकेषु नानुभावं सः। उपशान्तकषायः पुनर्वेदयति न सत्कर्मापि। १। २ जीवो भदन्त ! स्वयंकृतं कर्म वेदयति ! गौतम ! अस्त्येककं (किञ्चिद्) वेदयति, अस्त्येककं न वेदयति, तत् केनार्थेन ? भदन्त ! पृच्छा, गौतम ! द्विविधं कर्म प्रज्ञप्तं, तद्यथा–प्रदेशकर्म अनुभाव-कर्म च, तत्र यत्तत् प्रदेशकर्म तत् नियमाद्वेदयति, तत्र यत् अनुभावकर्म तत् अस्त्येककं वेदयति, अस्त्येककं नो वेदयति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अत्र स्थापना उपशम श्रेणेः—इह च संख्येयलोभखण्डान्युपशमयन् बादरसंपरायः, चरमसंख्येयखण्डासंख्येयखण्डान्युपशमयन् सूक्ष्मसंपराय इति, तथा चाह निर्युक्तिकारः—

लोभाणुं वेअंतो जो खलु उवसामओ व खवगो वा।
सो सुहुमसंपराओ अहखाया ऊणओ किंची॥ ११७॥

गाथेयं गतार्थत्वात् न विव्रियते, नवरं यथाख्यातात् किञ्चिन्न्यून इति, ततः सूक्ष्मसंपरायावस्थामन्तर्मुहूर्त्तमात्रकालमानामनुभूयोपशामकनिर्ग्रन्थो यथाख्यातचारित्रीभवति ॥ ११७॥ स च यदि बद्धायुः प्रतिपद्यते तदवस्थश्च म्रियते, ततो नियमतोऽनुत्तरविमानवासिषु उत्पद्यते, श्रेणिप्रच्युतस्य त्वनियमः, अथाबद्धायुः अतोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रं उपशामकनिर्ग्रन्थो भूत्वा नियमतः पुनरपि उदितकषायः कार्त्स्न्येन श्रेणिप्रतिलोममावर्तते, तथा चामुमेवार्थमभिधित्सुराह निर्युक्तिकारः—

उवसामं उवणीआ गुणमहया जिणचरित्तसरिसंपि।
पडिवायंति कसाया किं पुण सेसे सरागत्थे?॥ ११८॥

व्याख्या—'उपशमः' शान्तावस्था तमुपशमं, अपिशब्दात् क्षयोपशममपि, उपनीताः गुणैर्महान् गुणमहान् तेन गुणमहता—उपशमकेन, किम्?—प्रतिपातयन्ति कषायाः, संयमाद् भवे वा, कम्?—जिनचारित्रतुल्यमपि उपशमकं, किं पुनः शेषान् सरागस्थानिति। यथेह भस्मच्छन्नानलः पवनाद्यासादितसहकारिका-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रणान्तरः पुनः स्वरूपमुपदर्शयति, एवमसावप्युदितकषायानलो जघन्यतस्तद्भव एव मुक्तिं लभते, उत्कृष्टतस्तु देशोनमर्धपुद्गलपरावर्त्तमपि संसारमनुबध्नातीति ॥ ११८ ॥ यतश्चैवं तीर्थकरोपदेशः अत औपदेशिकं गाथाद्वयमाह निर्युक्तिकारः—

जइ उवसंतकसाओ लहइ अणंतं पुणोऽवि पडिवायं। ण हु भे वीससियव्वं थेवे य कसायसेसंमि ॥ ११९॥
अणथोवं वणथोवं अग्गीथोवं कसायथोवं च। णहु भे वीससियव्वं थेवंपि हु तं बहुं होइ ॥ १२० ॥

प्रथमगाथा प्रकटार्थत्वान्न वितन्यते, द्वितीयगाथाव्याख्या–ऋणस्य स्तोकं ऋणस्तोकं तथाच स्वल्पादपि ऋणात् दासत्वं प्राप्ता वणिग्दुहितेति, उक्तं च भाष्यकारेण–"दासत्तं[1] देइ अणं अचिरा मरणं वणो विसप्पंतो। सव्वस्स दाहमग्गी देंति कसाया भवमणंतं ॥ १ ॥" अपिचशब्दनिपातसाफल्यं पूर्वोक्तानुसारेण स्वबुद्ध्या वक्तव्यमिति गाथार्थः ॥ १२० ॥ इत्थमौपशमिकं चारित्रमुक्तं, इदानीं क्षायिकमुच्यते, अथवा सूक्ष्मसंपराययथाख्यातचारित्रद्वयं उपशमश्रेण्यङ्गीकरणेनोक्तं, इदानीं क्षपकश्रेण्यङ्गीकरणतः प्रतिपादयन्नाह—

अण मिच्छ मीस सम्मं अट्ठ नपुंसित्थीवेय छक्कं च। पुंवेयं च खवेइ कोहाइए य संजलणे ॥ १२१ ॥

व्याख्या—इह क्षपकश्रेणिप्रतिपत्ताऽसंयतादीनामन्यतमोऽत्यन्तविशुद्धपरिणामो भवति, स च उत्तमसंहननः, तत्र पूर्वविदप्रमत्तः शुक्लध्यानोपगतोऽपि प्रतिपद्यते, अपरे तु धर्मध्यानोपगत एवेति, प्रतिपत्तिक्रमश्चायम्—प्रथममन्तर्मुहूर्त्तेन अनन्तानुबन्धिनः क्रोधादीन् युगपत्क्षपयति, तदनन्तभागं तु मिथ्यात्वे प्रक्षिप्य ततो मिथ्यात्वं सहैव तदंशेन युगपत्

१ दासत्वं ददाति ऋणं अचिरान्मरणं व्रणो विसर्पन्। सर्वस्य दाहमग्निर्ददति कषाया भवमनन्तम् ॥ १ ॥ (विशेषावश्यकगाथा १३११).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

क्षपयति,* यथा हि अतिसंभृतो दावानलः खलु अर्धदग्धेन्धन एव इन्धनान्तरमासाद्य उभयमपि दहति, एवमसावपि क्षपकः तीव्रशुभपरिणामत्वात् सावशेषं अन्यत्र प्रक्षिप्य क्षपयति, एवं पुनः सम्यग्मिथ्यात्वं ततः सम्यक्त्वमिति, इह च यदि बद्धायुः प्रतिपद्यते अनन्तानुबन्धिक्षये च व्युपरमति, ततः कदाचित् मिथ्यादर्शनोदयतस्तानपि पुनरुपचिनोति, मिथ्यात्वे तद्बीजसंभवात्, क्षीणमिथ्यात्वस्तु नोपचिनोति, मूलाभावात्, तदवस्थश्च मृतोऽवश्यमेव त्रिदशेषु उत्पद्यते, क्षीणसप्तकोऽपि तदप्रतिपतितपरिणाम इति, प्रतिपतितपरिणामस्तु नानामतित्वात् सर्वगतिभाग् भवति, आह—मिथ्यादर्शनादिक्षये किमसौ अदर्शनो जायते उत नेति, उच्यते, सम्यग्दृष्टिरेवासौ, आह—ननु सम्यग्दर्शनपरिक्षये कुतः सम्यग्दृष्टित्वम् ?, उच्यते, निर्मदनीकृतकोद्रवकल्पा अपनीतमिथ्यात्वभावा मिथ्यात्वपुद्गला एव सम्यग्दर्शनं, तत्परिक्षये च तत्त्वश्रद्धानलक्षणपरिणामाप्रतिपातात् प्रत्युत श्लक्ष्णाभ्रपटलापगमे चक्षुर्दर्शनवत् शुद्धतरोपपत्तेरिति अलं प्रपञ्चेन । स च यदि बद्धायुः प्रतिपद्यते ततो नियमात् सप्तके क्षीणे अवतिष्ठत एव, स च सम्यग्दर्शनमशेषमेव क्षपयति, अबद्धायुस्तु अनुपरत एव समस्तां श्रेणिं समापयति इति, स च स्वल्पसम्यग्दर्शनावशेष एव अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकं युगपत् आरभते ॥ १२१ ॥ एतेषां च मध्यभागं क्षपयन् एताः सप्तदश प्रकृतीः क्षपयति, तत्प्रतिपादकमिदं गाथाद्वयम्—

गइआणुपुव्वी दो दो जाइनामं च जाव चउरिंदी । आयावं उज्जोयं थावरनामं च सुहुमं च ॥ १२२ ॥
साहारणमपज्जत्तं निद्दानिद्दं च पयलपयलं च । थीणं खवेइ ताहे अवसेसं जं च अट्ठण्हं ॥ १२३ ॥

व्याख्या—गतिश्चानुपूर्वी च गत्यानुपूर्व्यौ 'दो दो' इति द्वे द्वे तन्नामनी, जातिनाम चेत्यस्मात् नामग्रहणं अभिसंब-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

ध्यते, एतदुक्तं भवति—नरकगतिनाम नरकानुपूर्वीनाम च, आनुपूर्वी–वृषभनासिकान्यस्तरज्जूसंस्थानीया, यया कर्मपुद्गल-संहत्या विशिष्टं स्थानं प्राप्यतेऽसौ, यया वोर्ध्वोत्तमाङ्गाधश्चरणादिरूपो नियमतः शरीरविशेषो भवति साऽऽनुपूर्वीति, तथा तिर्यग्गतिनाम तिर्यगानुपूर्वीनाम च, एवं गत्यानुपूर्वीनामनी द्वे द्वे, तथा 'जातिनाम' एकेन्द्रियादिजातिनाम यावच्चतुरिन्द्रियाः, एतदुक्तं भवति–एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम एवं शेषयोजनाऽपि कार्येति । आह–एकेन्द्रियाद्यानुपूर्वीनाम कस्मान्नोच्यते, आचार्य आह–तस्य तिर्यगानुपूर्वीनामक्षपणप्रतिपादनेनोक्तार्थत्वात्, 'चः' समुच्चये, तथा 'आतपं' इति आतपनाम, यदुदयात् आतपवान् भवति, 'उद्योतं' इति उद्योतनाम, यदुदयादुद्योतवान् भवति, स्थावराः–पृथिव्यादयः तन्नाम च पूर्ववत्, 'सूक्ष्मं' इति सूक्ष्मनाम च, 'साधारणं' इति साधारणनाम, अनन्तवनस्पतिनामेत्यर्थः, 'अपर्याप्तं' इति अपर्याप्तकनाम, तथा निद्रानिद्रा च इत्यादि प्रकटार्थत्वान्न विव्रियते, नवरं स्त्याना चैतन्यर्द्धिर्यस्यां सा स्त्यानर्धिः, स्त्यानर्ध्युत्तरकालमवशेषं यदष्टानां कषायाणां तत् क्षपयति, सर्वमिदमन्तर्मुहूर्त्तमात्रेणेति, ततो नपुंसकवेदं, ततः स्त्रीवेदं, ततो हास्यादिषट्कं, ततः पुरुषवेदं च खण्डत्रयं कृत्वा खण्डद्वयं युगपत् क्षपयति, तृतीयखण्डं तु संज्वलनक्रोधे प्रक्षिपति, पुरुषे प्रतिपत्तर्ययं क्रमः, नपुंसकादिप्रतिपत्तरि तु उपशमश्रेणिन्यायो वक्तव्यः, ततः क्रोधादींश्च संज्वलनान् प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तमात्रकालेनोक्तेनैव न्यायेन क्षपयति, श्रेणिपरिसमाप्तिकालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमेव, अन्तर्मुहूर्त्तानामसंख्येयत्वात् , लोभचरमखण्डं तु संख्येयानि खण्डानि कृत्वा पृथक् पृथक् कालभेदेन क्षपयति, चरमखण्डं पुनरसंख्येयानि खण्डानि करोति, तान्यपि समये समये एकैकं क्षपयति, इह च क्षीणदर्शनसप्तको निवृत्तिबादर उच्यते, तत ऊर्ध्वमनिवृत्तिबादरो यावत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

चरमलोभखण्डमिति, तत ऊर्ध्वमसंख्येयखण्डानि क्षपयन् सूक्ष्मसंपरायो यावच्चरमलोभाणुक्षयः, तत ऊर्ध्वं यथाख्यातचारित्रीभवति ॥ १२३ ॥ स च महासमुद्रप्रतरणपरिश्रान्तवत् मोहसागरं तीर्त्वा विश्राम्यति, ततश्छद्मस्थवीतरागत्वद्विचरमसमययोः प्रथमे निद्रादि क्षपयति तथा चाह निर्युक्तिकारः—

वीसमिऊण नियंठो दोहि उ समएहि केवले सेसे। पढमे निद्दं पयलं नामस्स इमाओ पयडीओ ॥ १२४ ॥
देवगइआणुपुव्वीविउव्विसंघयण पढमवज्जाइं। अन्नयरं संठाणं तित्थयराहारनामं च ॥ १२५ ॥

अर्थस्तु प्रायः सुगमत्वात् न वितन्यते, नवरं वैकुर्विकं च संहननानि चेति समासः, तानि प्रथमसंहननवर्जानि क्षपयति, तानि च षड् भवन्ति, तथा चोक्तम्—“वज्जरिसहनारायं पढमं बिइयं च रिसहनारायं। णारायमद्धणाराय कीलिया तह य छेवट्ठं ॥ १ ॥” तथा अन्यतरसंस्थानं मुक्त्वा यस्मिन्व्यवस्थितः शेषाणि क्षपयति, तानि चामूनि–“चउरंसे णग्गोहे मंडले साति वामणे खुज्जे। हुंडेवि अ संठाणे जीवाणं छ मुणेयव्वा ॥ १ ॥ तुल्लं वित्थडबहुलं उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च। हेट्ठिल्लकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥ २ ॥” तथा तीर्थकरनाम आहारकनाम च क्षपयति, यद्यतीर्थकरः प्रतिपत्तेति, अथ तीर्थकरस्ततः खल्वाहारकनामैवेति, ‘चः’ समुच्चये ॥ १२४–१२५

चरमे नाणावरणं पंचविहं दंसणं चउवियप्पं। पंचविहमंतरायं खवइत्ता केवली होइ ॥ १२६ ॥

---

१ वज्रर्षभनाराचं प्रथमं द्वितीयं च ऋषभनाराचम्। नाराचमर्धनाराचं कीलिका तथैव सेवार्त्तम् ॥ १ ॥ २ चतुरस्रं न्यग्रोधं मण्डलं सादि वामनं कुब्जम्। हुण्डमपि च संस्थानानि जीवानां षट् मुणितव्यानि ॥ १ ॥ तुल्यं विस्तृतबाहुल्याभ्यां उत्सेधबहुलं च मडभकोष्ठं च। अधःकायमडभं सर्वत्रासंस्थितं हुण्डम् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गमनिका—चरमे समये ज्ञानावरणं पञ्चविधं मतिज्ञानावरणादि, दर्शनं चतुर्विकल्पं चक्षुर्दर्शनादि पञ्चविधमन्तरायं च दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाख्यं क्षपयित्वा केवली भवतीति गाथार्थः ॥ १२६ ॥ ततः—

स्थापना चेयम्.

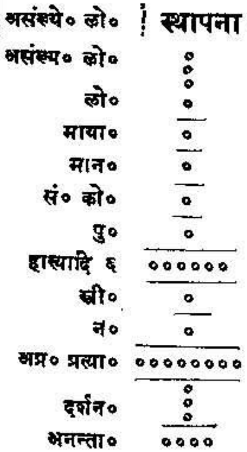

संभिण्णं पासंतो लोगमलोगं च सव्वओ सव्वं ।
तं नत्थि जं न पासइ भूयं भव्वं भविस्सं च ॥ १२७ ॥

व्याख्या—समेकीभावेन भिन्नं संभिन्नं, यथा बहिस्तथा मध्येऽपीत्यर्थः, अथवा संभिन्नमिति- द्रव्यं गृह्यते, कथम्?—कालभावौ हि तत्पर्यायौ, ताभ्यां समस्ताभ्यां समन्ताद्वा भिन्नं संभिन्नं 'पश्यन्' उपलभमानो, लोक्यत इति लोकः, केवलज्ञानभास्वतोपलभ्यत इति भावार्थः, अलोकोऽप्युपलभ्यत एव, तथापि धर्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां यत्र स लोकः इति तं, अलोकं च इत्यनेन क्षेत्रं प्रतिपादितं भवति, द्रव्याद्येतावदेव विज्ञेयमिति, किमेकया दिशा?—नेत्याह—'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु, तास्वपि किं कियदपि द्रव्यादि उत नेत्याह—'सर्वं' निरवशेषं, अमुमेवार्थं स्पष्टयन्नाह—तन्नास्ति किञ्चित् ज्ञेयं यन्न पश्यति 'भूतं' अतीतं, भवतीति भव्यं, वर्त्तमानमित्यर्थः, भावकर्मणोः प्राप्तयोः 'भव्यगेयेत्यादिनिपातनात्' (भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थापनीयजन्याप्लाव्यापात्या वा (पा०३–४–६८) कर्त्तरि सिद्धं, 'भविष्यद्' भावि वा, 'चः' समुच्चये इति गाथार्थः ॥ १२७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

इत्थं तावदुपोद्घातनिर्युक्तौ प्रस्तुतायां प्रसङ्गतो यदुक्तं—'तपोनियमज्ञानवृक्षमारूढः केवली' इति अयमसौ केवली निदर्शितः, एतस्मात् सामायिकादिश्रुतं आचार्यपारम्पर्येण आयातं, एतस्माच्च जिनप्रवचनप्रसूतिः, सर्वमिदं प्रासङ्गिकं निर्युक्तिसमुत्थानप्रसङ्गेनोक्तं, इदानीमपि केयं जिनप्रवचनोत्पत्तिः कियदभिधानं चेदं जिनप्रवचनं को वाऽस्य अभिधानविभाग इत्येतत् प्रासङ्गिकशेषं शेषद्वारसङ्ग्रहं वाऽभिधातुकाम आह—

जिणपवयणउप्पत्ती पवयणएगट्ठिया विभागो य। दारविही य नयविही वक्खाणविही य अणुओगो ॥ १२८॥

व्याख्या—इह 'जिनप्रवचनोत्पत्तिः प्रवचनैकार्थिकानि एकार्थिकविभागश्च' एतत् त्रितयमपि प्रसङ्गशेषं, द्वाराणां विधिः द्वारविधिः, विधानं विधिः, स ह्युपोद्घातोऽभिधीयते, नयविधिस्तु चतुर्थं अनुयोगद्वारमिति, शिष्याचार्यपरीक्षाऽभिधानं तु व्याख्यानविधिरिति, अनुयोगस्तु सूत्रस्पर्शकनिर्युक्तिः सूत्रानुगमश्चेति समुच्चयार्थः। आह–चतुर्थमनुयोगद्वारं नयविधिमभिधाय पुनस्तृतीयानुयोगद्वाराख्यानुयोगाभिधानं किमर्थम्? उच्यते, नयानुगमयोः सहचरभावप्रदर्शनार्थं, तथाहि—नयानुगमौ प्रतिसूत्रं युगपद् अनुधावतः, नयमतशून्यस्य अनुगमस्याभावात्, अनुयोगद्वारचतुष्टयोपन्यासे तु नयानामन्तेऽभिधानं युगपद्वक्तुं अशक्यत्वात्। आह—चतुरनुयोगद्वारातिरिक्तव्याख्यानविधेरुपन्यासो अनर्थकः, न, अनुगमाङ्गत्वात्, व्याख्याऽङ्गत्वाच्चानुगमाङ्गता इत्यलं विस्तरेणेति गाथार्थः ॥ १२८ ॥ तत्र जिनप्रवचनोत्पत्तिर्निर्युक्तिसमुत्थानप्रसङ्गतोऽभिहिता, अर्हद्वचनत्वात् प्रवचनस्य, इदानीं प्रवचनैकार्थिकानि तद्विभागं च प्रदर्शयन्नाह—

एगट्ठियाणि तिण्णि उ पवयण सुत्तं तहेव अत्थो अ। इक्किक्कस्स य इत्तो नामा एगट्ठिआ पंच ॥ १२९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रवचनस्य एकार्था: शब्दा;

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सुय धम्म तित्थ मग्गो पावयणं पवयणं च एगट्ठा । सुत्तं तंतं गंथो पाढो सत्थं च एगट्ठा ॥ १३० ॥
अणुओगो य नियोगो भास विभासा य वत्तियं चेव । अणुओगस्स उ एए नामा एगट्ठिआ पंच ॥ १३१ ॥

प्रथमगाथाव्याख्या—एकोऽर्थो येषां तान्येकार्थिकानि, त्रीण्येव, प्रवचनं पूर्वव्याख्यातं, सूचनात् सूत्रं, अर्यत इत्यर्थः, 'चः' समुच्चये, इह च प्रवचनं सामान्यश्रुतज्ञानं, सूत्रार्थौ तु तद्विशेषाविति, आह—सूत्रार्थयोः प्रवचनेन सहैकार्थता युक्ता, तद्विशेषत्वात्, सूत्रार्थयोस्तु परस्परविभिन्नत्वात् न युज्यते, तथा च सूत्रं व्याख्येयं अर्थस्तु तद्व्याख्यानमिति, अथवा त्रयाणामप्येषां भिन्नार्थतैव युज्यते, प्रत्येकमेकार्थिकविभागसद्भावात्, अन्यथा एकार्थिकत्वे सति भेदेनैकार्थिकाभिधानमयुक्तमिति, अत्रोच्यते, यथा हि मुकुलविकसितयोः पद्मविशेषयोः संकोचविकासपर्यायभेदेऽपि कमलसामान्यतयाऽभेदः, एवं सूत्रार्थयोरपि प्रवचनापेक्षया परस्परतश्चेति, तथाहि–अविवृतं मुकुलतुल्यं सूत्रं, तदेव विवृतं प्रबोधितं विकचकल्पमर्थः, प्रवचनं चोभयमपीति, यथा चैषामेकार्थिकविभाग उपलभ्यते–कमलमरविन्दं पङ्कजमित्यादि पद्मैकार्थिकानि, तथा कुड्मलं वृन्दं संकुचितमित्यादि मुकुलैकार्थिकानि, तथा विकचं फुल्लं विबुद्धमित्यादि विकसितैकार्थिकानि, तथा प्रवचनसूत्रार्थानामपि पद्ममुकुलविकसितकल्पानामेकार्थिकविभागोऽविरुद्धः । अथवा अन्यथा व्याख्यायते–एकार्थिकानि त्रीण्येवाश्रित्य वक्तव्यानि, प्रवचनमेकार्थगोचरः तथा सूत्रमर्थश्चेति, शेषं पूर्ववत् । आह—द्वारगाथायां यदुक्तं 'प्रवचनैकार्थिकानि वक्तव्यानि' तद्व्याहन्यते, न, सामान्यविशेषरूपत्वात्प्रवचनस्य, सूत्रार्थयोरपि प्रवचनविशेषरूपत्वेन प्रवचनत्वोपपत्तेः । आह–यद्येवं विभागश्चेति द्वारोपन्यासानर्थक्यं, न, विभागश्चेति किमुक्तं भवति ? नाविशेषेणैकार्थिकानि वक्तव्यानि सामान्यविशेषरूप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

स्यापि प्रवचनस्य–पञ्चदशेति, किं तर्हि ?–विभागश्च वक्तव्यः, विशेषगोचराभिधानपर्यायाणां सामान्यगोचराभिधानपर्यायत्वानुपपत्तेः, न हि चूतसहकारादयो वृक्षादिशब्दपर्याया भवन्ति, लोके तथाऽदृष्टत्वाद् इति गाथार्थः ॥ १२९ ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या—श्रुतस्य धर्मः–स्वभावः श्रुतधर्मः, बोधस्वभावत्वात् श्रुतस्य धर्मो बोधोऽभिधीयते, अथवा जीवपर्यायत्वात् श्रुतस्य श्रुतं च तद्धर्मश्चेति समासः, सुगतिधारणाद्वा श्रुतं धर्मोऽभिधीयते, 'तीर्थं' प्राकुनिरूपितशब्दार्थं, तच्च संघ इत्युक्तं, इह तु तदुपयोगानन्यत्वात् प्रवचनं तीर्थमुच्यते, तथा मृज्यते–शोध्यते अनेनात्मेति मार्गः, मार्गणं वा मार्गो, अन्वेषणं शिवस्येति, तथा प्रगतं अभिविधिना जीवादिषु पदार्थेषु वचनं प्रावचनं, प्रवचनं तु पूर्ववत् । उक्तः प्रवचनविभागः, इदानीं सूत्रविभागोऽभिधीयते–तत्र सूचनात् सूत्रं, तन्यतेऽनेनास्मादस्मिन्निति वा अर्थ इति तन्त्रं, तथा ग्रथ्यतेऽनेनास्मादस्मिन्निति वाऽर्थ इति ग्रन्थः, पठनं पाठः पठ्यते वा तदिति पाठः पठ्यते वाऽनेनास्मादस्मिन्निति वा अभिधेयमिति पाठः, व्यक्तीक्रियत इति भावार्थः, तथा शास्यतेऽनेनास्मादस्मिन्निति वा ज्ञेयमात्मनेति वा शास्त्रं, एकार्थिकानीति पुनरभिधानं सामान्यविशेषयोः कथञ्चिद्भेदख्यापनार्थमिति गाथार्थः ॥ १३० ॥ तृतीयगाथाव्याख्या—सूत्रस्यार्थेन अनुयोजनमनुयोगः, अथवा अभिधेयो व्यापारः सूत्रस्य योगः, अनुकूलोऽनुरूपो वा योगोऽनुयोगः, यथा घटशब्देन घटोऽभिधीयते, तथा नियतो निश्चितो वा योगो नियोगः, यथा घटशब्देन घट एवोच्यते न पटादिरिति, तथा भाषणात् भाषा, व्यक्तीकरणमित्यर्थः, यथा घटनात् घटः, चेष्टावानर्थो घट इति, विविधा भाषा विभाषा, पर्यायशब्दैः तत्स्वरूपकथनं, यथा घटः कुटः कुम्भ इति, वार्तिकं त्वशेषपर्यायकथनमिति शेषं सुबोधं, अयं गाथा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

समुदायार्थः, अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यति, तत्र प्रवचनादीनामविशेषेणैकार्थिकाभिधानप्रक्रमे सति एकार्थिकानुयोगादेर्भेदेनोपन्यासान्वाख्यानं अर्थगरीयस्त्वख्यापनार्थं, उक्तं च–'सुत्तधरा अत्थधरो इत्यादि' ॥ १३१ ॥ तत्र अनुयोगाख्यप्रथमद्वारस्वरूपव्याचिख्यासयाऽऽह—

णामं ठवणा दविए खित्ते काले य वयण भावे य। एसो अणुओगस्स उ णिक्खेवो होइ सत्तविहो ॥ १३२ ॥

गमनिका—'नाम' प्राक् निरूपितं, तत्र नामानुयोगो–यस्य जीवादेरनुयोग इति नाम क्रियते, नाम्नो वा अनुयोगो नामानुयोगः, नामव्याख्येत्यर्थः, 'स्थापना' अक्षनिक्षेपादिरूपा, तत्र अनुयोगं कुर्वन् कश्चित् स्थाप्यते, स्थापनायामनुयोगः स्थापनानुयोग इति समासः, स्थापना चासौ अनुयोगश्चेति वा, 'द्रव्ये' इति द्रव्यविषयोऽनुयोगो द्रव्यानुयोगः, स च आगमनोआगमज्ञशरीरेतरव्यतिरिक्तः द्रव्यस्य द्रव्याणां द्रव्येण द्रव्यैः द्रव्ये द्रव्येषु वाऽनुयोगो द्रव्यानुयोगः, एवं क्षेत्रादिष्वपि षड्भेदयोजना कार्येति, तत्र द्रव्यानुयोगो द्विविधः–जीवद्रव्यानुयोगः अजीवद्रव्यानुयोगश्च, एकैकः स चतुर्धा–द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो जीव एकं द्रव्यं क्षेत्रतोऽसंख्येयप्रदेशावगाढः कालतोऽनाद्यपर्यवसितः भावतोऽनन्तज्ञानदर्शनचारित्राचारित्रदेशचारित्रअगुरुलघुपर्यायवान् इति, अजीवद्रव्याणि परमाण्वादीनि, तत्र परमाणुर्द्रव्यत एकं द्रव्यं क्षेत्रत एकप्रदेशावगाढः कालतो जघन्येन समयमेकं द्वौ वा उत्कृष्टतस्तु असंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः, भावतस्तु एकरस एकवर्णः द्विस्पर्शः एकगन्ध इति, एतेषां च स्वस्थानेऽनन्ता रसादिपर्याया एकगुणतिक्तादिभेदेन द्रष्टव्याः, एवं द्व्यणुकादीनामप्यनन्ताणुस्कन्धावसानानां स्वरूपं द्रष्टव्यं, उक्तो द्रव्यानुयोगः, इदानीं द्रव्याणां–स च जीवाजीवभेदभिन्नानां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अनुयोगस्य नामादि सप्त निक्षेपाः वर्ण्यते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अवसेयः, यथा प्रज्ञापनायां समुदितानां जीवानामजीवानां च विचारः, तथा चोक्तं—"[1]जीवपज्जवाणं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा ! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, एवं अजीवपज्जवाणं पुच्छा उत्तरं च दट्ठवं" अलं विस्तरेण। द्रव्येणानुयोगः प्रलेपाक्षादिना, द्रव्यैस्तैरेव अक्षादिभिः प्रभूतैरिति, द्रव्ये फलकादौ द्रव्येषु प्रभूतासु निषद्यासु अवस्थितोऽनुयोगं करोतीति। एवं क्षेत्रानुयोगेऽपि क्षेत्रस्य भरतक्षेत्रादेः क्षेत्राणां जम्बूद्वीपादीनां यथा द्वीपसागरप्रज्ञप्त्यामिति, क्षेत्रेण यथा पृथिवीकायादिसंख्याव्याख्यानं, उक्तं च "[2]जंबुद्दीवपमाणं, पुढविजिआणं तु पत्थयं काउं। एवं मविज्जमाणा हवंति लोगा असंखिज्जा ॥ १ ॥" क्षेत्रैरनुयोगो यथा "[3]बहुहिं दीवसमुद्देहिं पुढविजिआणमित्यादि" क्षेत्रे तिर्यग्लोकेऽनुयोगो भरतादौ वा क्षेत्रेषु अनुयोगः अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु । कालस्य अनुयोगः समयादिप्ररूपणा, कालानां प्रभूतानां समयादीनां, कालेनानुयोगो यथा–बादरवायुकायिकानां वैक्रियशरीराण्यद्धापल्योपमस्य असंख्यभागमात्रेणापह्रियन्ते, कालैरनुयोगो यथा प्रत्युत्पन्नत्रसकायिका असंख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्रियन्ते प्रतिसमयापहारेण, कालेऽनुयोगो द्वितीयपौरुष्यां, कालेषु अवसर्पिण्यां त्रिषु कालेषु–सुषमदुष्षमायां चरमभागे दुष्षमसुषमायां दुष्षमायां चेति, उत्सर्पिण्यां कालद्वये–दुष्षमसुषमायां सुषमदुष्षमायां च। वचनस्यानुयोगो यथा इत्थंभूतं एकवचनं, वचनानां द्विवचनबहुवचनानां षोडशानां वा, वचनेनानुयोगो यथा–कश्चिदाचार्यः साध्वादिभिरभ्यर्थित एकवचनेन करोति,

१ जीवपर्यवा भदन्त ! किं संख्येया असंख्येया अनन्ताः ?, गौतम ! नो संख्येयाः नो असंख्येया अनन्ताः, एवमजीवपर्यवाणां पृच्छा उत्तरं च द्रष्टव्यं। २ जम्बूद्वीपप्रमाणं पृथ्वीजीवानां तु प्रस्थकं कृत्वा। एवं मीयमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥ ३ बहुभिर्द्वीपसमुद्रैः पृथ्वीजीवानां.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ८८ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

वचनैः–स एव बहुभिः असकृद् अभ्यर्थितो वेति, वचनेऽनुयोगः क्षायोपशमिके, वचनेषु तेष्वेव बहुषु, अन्ये तु प्रतिपादयन्ति–वचनेषु नास्त्यनुयोगः, तस्य क्षायोपशमिकत्वात्, तस्य चैकत्वादिति भावार्थः। भावानुयोगो द्विधा–आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाता उपयुक्तः, नोआगमत औदयिकादेरन्यतमस्येति, भावानां औदयिकादीनां, भावेन संग्रहादिना, उक्तं च–"पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा, तंजहा–संगहट्ठयाए १ उवग्गहट्ठयाए २ निज्जरट्ठयाए ३ सुयपज्जवजातेणं ४ अव्वोच्छित्तीए ५" भावैरेभिरेव समुदितैरनुयोगः, भावे क्षायोपशमिके, भावेषु आचारादिषु, अथवा प्रतिक्षणपरिणामत्वात् क्षयोपशमस्य भावषु अनुयोगः, अथवा भावेषु नास्त्येव, क्षयोपशमस्यैकत्वात्। एतेषां च द्रव्याद्यनुयोगानां परस्परसमावेशः स्वबुद्ध्या वक्तव्यः, उक्तं च भाष्यकारेण–"दव्वे णियमा भावो ण विणा ते यावि खित्तकालेहिं (ग्रन्थाग्रम् २५००) खित्ते तिण्हवि भयणा काले भयणाए तीसुंपि ॥ १ ॥ इत्यादि" उक्तोऽनुयोगः, एतद्विपरीतस्तु अननुयोग इति गाथार्थः ॥ १३२ ॥ साम्प्रतं तत्प्रतिपादकदृष्टान्तान् प्रतिपादयन्नाह–

वच्छगगोणी १ खुज्जा २ सज्झाए ३ चेव बहिरउल्लावो ४। गामिल्लुए ५ य वयणे सत्तेव य हुंति भावंमि ॥ १३३॥

व्याख्या–तत्र प्रथममुदाहरणं द्रव्याननुयोगानुयोगयोः वत्सकगौरिति–गोदोहेओ जदि जं पाडलाए वच्छयं तं बहुलाए मुयइ बाहुलेरं वा पाडलाए मुयइ, ततो अणणुओगो भवति, तस्स य दुद्धकज्जस्स अपसिद्धी भवति, जदि पुण ॥ ८८ ॥

१ पञ्चभिः स्थानैः सूत्रं वाचयेत्, तद्यथा–संग्रहार्थाय १ उपग्रहार्थाय २ निर्जरार्थाय ३ श्रुतपर्यायजातेन ४ अव्यवच्छित्त्या ५। २ गोदोहको यदि यः पाटलाया वत्सकं बहुलायै मुञ्चति, बाहुलेयं पाटलायै मुञ्चति, ततोऽननुयोगो भवति, तस्य च दुग्धकार्यस्य अप्रसिद्धिर्भवति, यदि पुनः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

अनुयोग-अननुयोगे वत्सकगौ आदि दृष्टान्ताः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जं[1] जाए तं ताए मुयइ, तो अणुओगो, तस्स य दुद्धकज्जस्स पसिद्धी भवति । एवं इहावि जदि जीवलक्खणेण अजीवं परूवेइ अजीवलक्खणेण वा जीवं, तो अणणुओगो भवति । तं भावं अण्णहा गेण्हति, तेण अत्थो विसंवदति, अत्थेण विसंवयंतेण चरणं, चरणेण मोक्खो, मोक्खाभावे दिक्खा णिरत्थिआ । अह पुण जीवलक्खणेण जीवं परूवेइ, अजीवलक्खणेणं अजीवं, तो अणुओगो, तस्स य कज्जसिद्धी भवतित्ति, अविगलो अत्थावगमो, ततो चरणवुड्ढी, ततो मोक्खोत्ति । एस पढमदिट्ठंतो ॥ १ ॥

क्षेत्राननुयोगानुयोगयोः कुब्जोदाहरणम्—पइट्ठाणे णगरे सालिवाहणो राया, सो वरिसे वरिसे भरुयच्छे नरवाहणं रोहेति, जाहे य वरिसारत्तो पत्तो ताहे सयं णगरं पडिजाति, एवं कालो वच्चति, अण्णया तेण रण्णा रोहएणं गएल्लएणं अत्थाणमंडवियाए णिच्छूढं, तस्स य पडिग्गहधारिणी खुज्जा, अपरिभोगा एसा भूमी, णूणं राया जातुकामो, तीसे य राउलओ जाणसालिओ परिचिओ, ताए तस्स सिट्ठं, सो पए जाणगाणि पमक्खित्ता पयट्टावियाणि य,

१ यो यस्यास्तं तस्यै मुञ्चति, ततोऽनुयोगः तस्य च दुग्धकार्यस्य प्रसिद्धिर्भवति । एवमिहापि यदि जीवलक्षणेन अजीवं प्ररूपयति, अजीवलक्षणेन वा जीवं ततोऽननुयोगो भवति, तं भावमन्यथा गृह्णाति, तेनार्थो विसंवदति, अर्थेन विसंवदता चारित्रं (विसंवदति), चरणेन मोक्षः, मोक्षाभावे दीक्षा निरर्थिका । अथ पुनर्जीवलक्षणेन जीवं प्ररूपयति, अजीवलक्षणेन अजीवं, ततोऽनुयोगः, तस्य च कार्यस्य सिद्धिर्भवति इति अविकलोऽर्थावगमस्ततश्चरणवृद्धिः, ततो मोक्ष इति, एष प्रथमदृष्टान्तः १. २ प्रतिष्ठाने नगरे शालिवाहनो राजा, स वर्षे वर्षे भृगुकच्छे नरवाहनं रुणद्धि, यदा च वर्षारात्रः प्राप्तो (भवेत्) तदा स्वकं नगरं प्रतियाति, एवं कालो व्रजति, अन्यदा तेन राज्ञा रोधकेन (रोद्धुं) गतेन आस्थानमण्डपिकायां निष्ठ्यूतं, तस्य च प्रतिग्रहधारिणी कुब्जा, अपरिभोगा एषा भूमिः, नूनं राजा यातुकामः, तस्याश्च राजकुलगो यानशालिकः परिचितः, तया तस्मै शिष्टं; स प्रगे यानानि प्रमार्ष्टुं प्रवर्त्तितवान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र अनुयोग-अननुयोगे कुब्जस्य उदाहरण

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तं[1] दट्ठूण सेसओ खंधावारो पट्ठिओ, राया रहंमि एकल्लो· धूलादिभया गच्छिस्सामित्ति पए पयट्टो, जाव सव्वोऽवि खंधावारो पट्ठितओ दिट्ठो, राया चिंतेति–ण मया कस्सवि कथितं, कहमेतेहिं णायं?, गविट्ठं परंपरएण जाव खुज्जत्ति, खुज्जा पुच्छिता, ताए तह चेव अक्खायं, एस अणणुओगो, तीसे मंडवियाए खेत्तं चेव चिन्तिज्जति, विवरीओ अणुओगो, एवं णिप्पदेसमेगन्तणिच्चमेगमागासं पडिवज्जावेंतस्स अणणुओगो, सप्पएसादि पुण पडिवज्जावेंतस्स अणुओगोत्ति ॥ २ ॥

कालाननुयोगानुयोगयोः स्वाध्यायोदाहरणं—ऐक्को साधू पादोसियं परियट्टंतो रहसेणं कालं ण याणति, सम्मदिट्ठिगा य देवया तं हितट्ठयाए बोधेति मिच्छादिट्ठियाए भएणं, सा तक्करस घडियं भरेउं महया महया सद्देणं घोसेति–महितं महितंति, सो तीसे कण्णरोडयं असहंतो भणति–अहो तक्कवेलत्ति, सा पडिभणति–जहा तुज्झं सज्झायवेलत्ति, ततो साहू उवउंजिऊण

---

१ तं दृष्ट्वा शेषः स्कन्धावारः प्रस्थितः, राजा रहसि एकको धूल्यादिभयात् गमिष्यामीति प्रगे प्रवृत्तः (गन्तुं), यावत् सर्वोऽपि स्कन्धावारः प्रस्थितो दृष्टः, राजा चिन्तयति–न मया कस्मैचिदपि कथितं, कथमेतैर्ज्ञातम्! गवेषितं परम्परकेण यावत्कुब्जेति, कुब्जा पृष्टा, तया तथैवाख्यातं, एषोऽननुयोगः, तस्याः मण्डपिकायाः क्षेत्रमेव चिन्तयेदिति, विपरीतोऽनुयोगः, एवं निष्प्रदेशमेकान्तनित्यमेकमाकाशं प्रतिपाद्यमानस्य अननुयोगः, सप्रदेशादि पुनः प्रतिपाद्यमानस्य अनुयोग इति। २ एकः साधुः प्रादोषिकं परिवर्त्तयन् रभसा कालं न जानाति, सम्यग्दृष्टिका च देवता तं हितार्थाय बोधयति मिथ्यादृष्टिकाया भयेन सा तक्रस्य घटिकां भृत्वा महता महता शब्देन घोषयति–मथितं मथितमिति, स तस्याः कर्णरोटकं (राटिं) असहमानो भणति–अहो तक्रवेलेति, सा प्रतिभणति–यथा तव स्वाध्यायवेलेति, ततः साधुरुपयुज्य.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काल अनुयोग-अननुयोगे स्वाध्यायस्य उदाहरणं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मिंच्छामिदुक्कडं भणति, देवताए अणुसासिओ–मा पुणो एवं काहिसि, मा मिच्छद्दिट्ठियाए छलिहिज्जिसि, एस अणणुओगो, काले पढियव्वं तो अणुओगो भवति ॥ ३ ॥

इदानीं वचनविषयं दृष्टान्तद्वयमननुयोगानुयोगयोः प्रदर्श्यते–तत्र प्रथमं बधिरोल्लापोदाहरणम्—एगंमि गामे बहिरकुडुंबयं परिवसति, थेरो थेरी य, ताणं पुत्तो तस्स भज्जा, सो पुत्तो हलं वाहेति, पथिएहिं पंथं पुच्छितो भणति–घरजायगा मज्झ एते बइल्ला, भज्जाए य से भत्तं आणीयं, तीसे कथेति जहा–बइल्ला सिंगिया, सा भणति–लोणितमलोणितं वा, माताए ते सिद्धयं, सासूए कहियं, सा भणति–थूलं वा बरडं वा वा थेरस्स पोत्तं होहिइ, थेरं सद्दावेइ, [1]थेरो भणइ–पिउं ते जीएणं, एगंपि तिलं न खामि, एवं जदि एगवयणे परूवितव्वे दुवयणं परूवेति, दुवयणे वा एगवयणं तो अणणुओगो, अह तहेव परूवेति, अणुओगो ॥ ४ ॥

---

१ मिथ्या मे दुष्कृतं भणति, देवतयाऽनुशिष्टः–मा पुनरेवं कार्षीः, मा मिथ्यादृष्ट्या चीच्छलः, एषोऽननुयोगः, काले पठितव्यं तदाऽनुयोगो भवति । २ एकस्मिन् ग्रामे बधिरकुटुम्बकं परिवसति, स्थविरः स्थविरा च, तयोः पुत्रः तस्य भार्या, स पुत्रो हलं वाहयति, पथिकैः पन्थानः पृष्टो भणति–गृहजातौ ममैतौ बलीवर्दौ, भार्यया च तस्य भक्तमानीतं, तस्यै कथयति यथा–बलीवर्दौ शृङ्गिणौ, सा भणति–लोणितं (सलवणं) अलोणितं वा, मात्रा ते साधितं श्वश्र्वै कथितं, सा भणति–स्थूलं वा रूक्षं वा स्थविरस्य पोतिका भविष्यति, स्थविरं शब्दयति, स्थविरो भणति–पिबामि (शपथः) ते जीवितं (तेन) एकमपि तिलं न खादामि, एवं यथैकवचने प्ररूपयितव्ये द्विवचनं प्ररूपयति द्विवचने वा एकवचनं तदाऽननुयोगः, अथ तथैव प्ररूपयति तदाऽनुयोगः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ग्रामेयकोदाहरणं द्वितीयं वचन एव, प्रस्तुतानुयोगप्राधान्यख्यापनार्थमिति । एगंमि नयरे एगा महिला, सा भत्तारे मए कट्ठादीणिवि ताव अक्कीयाणि, घोच्छामोत्ति अजीवमाणी खुड्डयं पुत्तं घेत्तुं गामे पवुत्था, सो दारओ वड्ढंतो मायरं पुच्छति–कहिं मम पिता ?, मओ त्ति, सो केणं जीविताइतो ?, भणति–ओलग्गाए, तो भणइ–अहंपि ओलग्गामि, सा भणति–ण जाणिहिसि ओलग्गिउं, तो कहं ओलग्गिज्जइ ?, भणिओ–विणयं करिज्जासि, केरिसो विणओ?, जोक्कारो कायव्वो णीयं चंकमियव्वं छंदाणुवत्तिणा होयव्वं, सो णगरं पधाविओ, अंतरा णेण वाहा मिगाणं णिलुक्का दिट्ठा, वड्डुणं सद्देणं जोक्कारोत्ति भणितं, तेणं सद्देणं मआ पलाणा, तेहिं घेत्तुं पहतो, सब्भावो णेण कहिओ, भणितो तेहिं–जदा एरिसं पेच्छेज्जासि, तदा णिलुक्कंतेहिं णीयं आगंतव्वं, ण य उल्लविज्जति, सणिअं वा, ततो णेण रयगा दिट्ठा, ततो णिलुक्कंतो सणिअं एति, तेसिं च रयगाणं पोत्ता हीरंति, थाणयं बद्धं, रक्खंति, एस चोरोत्ति बंधिओ पिट्टिओ सब्भावे कहिए मुक्को,

१ एकस्मिन्नगरे एका महिला, सा भर्त्तरि मृते काष्ठादीन्यपि तावद्विक्रीतवती, गर्हिताः स्म इति अजीवन्ती क्षुल्लकं पुत्रं गृहीत्वा ग्रामं प्रोषिता, स दारको वर्धमानः मातरं पृच्छति–क्व मम पिता !, मृत इति, स केन जीविकायितः । भणति–अवलगनया, ततो भणति–अहमपि अवलगामि, सा भणति–न जानासि अवलगितुं, ततः कथमवलग्यते ?, भणितः–विनयं कुर्याः, कीदृशो विनयः ?, जोत्कारः (जयोत्कारः) कर्त्तव्यः नीचैर्गन्तव्यं छन्दोऽनुवृत्तिना भवितव्यं, स नगरं प्रधावितः, अन्तरा अनेन व्याधा मृगेभ्यः (मृगान् ग्रहीतुं) निलीना दृष्टाः, बृहता शब्देन जोत्कार इति भणितं, तेन शब्देन मृगाः पलायिताः, तैर्गृहीत्वा प्रहतः, सद्भावोऽनेन कथितः, भणितस्तैः–यदैतादृशं पश्येस्तदा निलीयमानेन गन्तव्यं, न च उल्लाप्यते, शनैः शनैर्वा, ततोऽनेन रजका दृष्टाः, ततो निलीयमानः शनैः गच्छति, तेषां च रजकानां वस्त्राणि ह्रियन्ते, स्थानं बद्धं, रक्षन्ति, एष चौर इति बद्धः पिट्टितः सद्भावे कथिते मुक्तः,.

॥ ९० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तेहिं[1] भणितं–सुद्धं भवतु, एगत्थ बीयाणि वाविज्जंति, तेण भणिअं–सुद्धं भवतु, तेहिवि पिट्टिओ, सब्भावे कहिए मुक्को, एरिसे–बहुं भवतु भंडं (डिं) भरेह एयस्स, अण्णत्थ मडयं णीणिज्जंतं दट्टुं भणति–बहु भवतु एरिसं, तत्थवि हतो, सब्भावे कहिए मुक्को भणितो एरिसे वुच्चति–अच्चंतविओगो भवतु एरिसेणं, अण्णत्थ विवाहे भणइ–अच्चंतविओगो भवतु एरिसेणं, तत्थवि हतो, सब्भावे कहिए भणितो–एरिसे(सा)णं णिच्चं पिच्छया होह सासयं च भवतु एयं, अण्णत्थ णिअलबद्धयं दंडिअं दट्ठूण भणति–णिच्चं एयारिसाण पेच्छंतओ होहि, सासतं च ते भवतु, तत्थवि हतो सब्भावे कहिए मुक्को–एयाओ भे लहुं मोक्खो भवतु, एयं भणिज्जसि, अण्णत्थ मित्ते संघाडं करेंति, तत्थ भणति–एयाओ भे लहु मोक्खो भवतु, तत्थवि हतो सब्भावे कहिते मुक्को एगस्स दंडगकुलपुत्तगस्स अल्लीणो, तत्थ सेवंतो अच्छति। अण्णया दुब्भिक्खे तस्स कुलपुत्तगस्स अंबिलजवागू सिंद्धेल्लिया, भज्जाए से सो भणति–जाहि महायणमज्झाओ सदेहि जो भुंजति सीतला अजोग्गा,

---

१ तैर्भणितं–शुद्धं भवतु, एकत्र बीजानि उप्यन्ते, तेन भणितं–शुद्धं भवतु, तैरपि पिट्टितः, सद्भावे कथिते मुक्तः, एतादृशे–बहु भवतु भाण्डानि भरन्तु एतेन, अन्यत्र मृतकं नीयमानं दृष्ट्वा भणति–बहु भवत्वेतादृशं, तत्रापि हतः, सद्भावे कथिते मुक्तो भणितः एतादृश उच्यते–अत्यन्तं वियोगो भवत्वीदृशेन, अन्यत्र विवाहे भणति–अत्यन्तं वियोगो भवत्वीदृशेन, तत्रापि हतः, सद्भावे कथिते भणितः–ईदृशानां नित्यं प्रेक्षका भवत शाश्वतं च भवत्वेतत्, अन्यत्र निगडबद्धं दण्डिकं दृष्ट्वा भणति–नित्यमेतादृशानां प्रेक्षको भव, शाश्वतं च ते भवतु, तत्रापि हतः सद्भावे कथिते मुक्तः, एतस्मात् भवतां लघु मोक्षो भवतु, एतत् भणेः, अन्यत्र मित्राणि संघाटकं कुर्वन्ति, तत्र भणति–एतस्मात् भवतां लघु मोक्षो भवतु, तत्रापि हतः सद्भावे कथिते मुक्त एकं दण्डिककुलपुत्रमालीनः, तत्र सेवमानस्तिष्ठति। अन्यदा दुर्भिक्षे तस्य कुलपुत्रकस्य अम्लयवागूः सिद्धा, भार्यया तस्य स भणितः–याहि महाजनमध्यात् शब्दय यत् भुङ्क्ते शीतलाऽयोग्या,.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तेण गंतुं सो भणिओ–एहि किराइं सीतलीहोति अंबेली, सो लज्जितो, घरंगएण अंबाडिओ, भणितो–एरिसे कज्जे णीअं कण्णे कहिज्जइ, अण्णया घरं पलित्तं, ताहे गंतुं सणिअं कण्णे कहेति, जाव सो तहिं अक्खाउं गतो ताव घरं सबं झामिअं, तत्थावि अंबाडिओ भणिओ य–एरिसे कज्जे नवि गम्मति अक्खायएहिं, अप्पणा चेव पाणीयाइं काउं गोरसंपि छुब्भइ जहा तहा विज्झाउत्ति, अण्णया धुवंतस्स गोभत्तं छूढं । एवं जो अण्णंमि कहेयबे अण्णं कहेइ ताहे अणणुओगो भवति, सम्मं कहिज्जमाणे अणुओगो भवति ॥ सप्तैव च भवन्ति 'भावे' भावविषये, अननुयोगानुयोगयोः प्रतिपादकानि सप्तोदाहरणानि भवन्तीति गाथार्थः ॥ १३३ ॥ तानि चामूनि—

सावगभज्जा १ सत्तवइए २ अ कुंकणगदारए ३ नउले ४ ।
कमलामेला ५ संबस्स साहसं ६ सेणिए कोवो ७ ॥ १३४ ॥

---

१ तेन गत्वा स भणितः, एहि किल शीतलीभवति रब्बा, स लज्जितः, गृहगतेन तिरस्कृतः, भणितः–ईदृशे कार्ये नीचैः कर्णयोः कथ्यते, अन्यदा गृहं प्रदीप्तं, तदा गत्वा शनैः कर्णयोः कथयति, यावत्स तत्राख्यातुं गतस्तावद्गृहं सर्वं ध्मातं, तत्रापि तिरस्कृतो भणितश्च–ईदृशे कार्ये नैव गम्यते आख्यायकेन, आत्मनैव पानीयादि कृत्वा गोरसं (गोभक्तादि) अपि क्षिप्यते, यथा तथा विध्यायत्विति, अन्यदा धूपयतः (उपरि) गोभक्तं (छगणादि) क्षिप्तं । एवं योऽन्यस्मिन् कथयितव्ये अन्यत् कथयति तदाऽननुयोगो भवति, सम्यक् कथ्यमाने अनुयोगो भवति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भाव अनुयोग-अननुयोगे 'श्रावकभार्या' आदि सप्त दृष्टाताः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—तत्र श्रावकभार्योदाहरणं—सांत्रगेण णियभज्जाए वयंसिया विउव्विया दिट्ठा, अज्झोववण्णो, दुब्बलो भवति, महिलाए पुच्छिते निब्बंधे कए सिट्ठं, ताए भणितं–आणेमि, तेहिं चेव वत्थाभरणेहिं अप्पाणं णेवत्थित्ता अंधयारे अल्लीणा, अच्छितो, पच्छा बिइयदिवसे अधितिं पगतो वयं खंडियंति, ताए साभिण्णाणं पत्तियावितो । एवं जो ससमयवत्तव्वयं परसमयवत्तव्वयं भणति, उदइयभावलक्खणेणं उवसमियलक्खणं परूवेति, ताहे अणणुओगो भवति, सम्मं परूविज्जमाणे अणुओगोत्ति १ ।

सप्तभिः पदैर्व्यवहरतीति साप्तपदिकः—सत्तपादिगो ऐगंमि पच्चंतगामे एगो ओलग्गयमणूसो, साधुमाहणादीणं न सुणेति, ण वा अल्लीणति, ण वा सेज्जं देति, मा मम धम्मं कहेहिन्ति, ताहे मा सदओ होहामित्ति । अण्णया कया तं गामं साहुणो आगता, पडिस्सयं मग्गंति, ताहे गोट्ठिलएहिं एसो न देतित्ति सोवि एतेहिं पवंचिओ होउत्ति तस्स घरं चिंधिअं, जहा एरिसो तारिसो सावगोत्ति तस्स घरं जाह, तं गता पुच्छंता, दिट्ठो, जाव ण चेव आढाति, तत्थेक्केण साहुणा

१ श्रावकेण निजभार्याया वयस्या वैक्रिया (उद्भूतरूपा) दृष्टा, अध्युपपन्नो, दुर्बलो भवति, महेलया पृष्टे निर्बन्धे कृते शिष्टं, तया भणितं–आनयामि, तैरेव वस्त्राभरणैरात्मानं नेपथ्ययित्वा अन्धकारे आलीना, स्थितः, पश्चाद्वितीयदिवसे अधृतिं प्रगतः व्रतं खण्डितमिति, तया साभिज्ञानं प्रत्यायितः । एवं यः स्वसमयवक्तव्यतां परसमयवक्तव्यतां भणति, औदयिकभावलक्षणेनौपशमिकलक्षणं प्ररूपयति, तदाऽननुयोगो भवति, सम्यक् प्ररूप्यमाणे अनुयोग इति । २ साप्तपदिकः एकस्मिन् प्रत्यन्तग्रामे एकोऽवलगकमनुष्यः साधुब्राह्मणादीनां न शृणोति न वा सेवते (आलीनोति) न वा शय्यां ददाति, मा मे धर्मं चीकथन् इति तदा मा सदयो भूवमिति । अन्यदा कदाचित् तं ग्रामं साधव आगताः, प्रतिश्रयं मार्गयन्ति, तदा गोष्ठीकैरेष न ददातीति सोऽप्येभिः प्रवञ्चितो भवत्विति तस्य गृहं दर्शितं यथा–ईदृशस्तादृशो वा श्रावक इति तस्य गृहं यात, तद् गताः पृच्छन्तः, दृष्टो यावन्नैवाद्रियते, तत्रैकेन साधुना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ९२ ॥

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १

[1]भणिअं–जदि वा ण चेव सो एसो अहवा पवंचिता मोत्ति, तं सोऊण पुच्छिता तेण, कथितं जहा! अम्ह कथितं एरिसो तारिसो सावगोत्ति, सो भणति–अहो अकज्जं, ममं ताव पवंचतु, ता किं साधुणो पवंचितेन्ति, ताहे मा सारत्ता तेसिं होउत्ति भणति–देमि पडिस्सयं एक्काए ववत्थाए–जदि मम धम्मं ण कहेह, साहूहिं कहियं–एवं होउत्ति, दिण्णं घरं, वरिसारत्ते वित्ते आपुच्छंतेहिं धम्मो कहिओ, तत्थ ण किंचि तरइ घेत्तुं मूलगुणउत्तरगुणाणं मधुमज्जमंसविरतिं वा, पच्छा सत्तपदिवयं दिण्णं–मारेउकामेणं जावइएणं कालेणं सत्त पदा ओसक्किज्जंति एवइअं कालं पडिक्खित्तु मारेयवं, संबुज्झिस्सतित्तिकाउं, गता। अण्णया चोरो(रओ)गतो, अवसउणेणं णिअत्तो, रत्तिं सणिअं घरं एति, तद्दिवसं च तस्स भगिणी आगएल्लिआ, सा पुरिसणेवत्थि*आ भाउजायाए समं गोज्झपेक्खिया गया, ततो चिरेण आगया, णिद्दक्कंताओ तहेव एक्कंमि चेव सयणे सइयाओ, इअरो अ आगओ, ततो पेच्छति, परपुरिसोत्ति असिं करिसित्ता आहणेमित्ति,

---

१ भणितं–यदि वा नैव स एषोऽथवा प्रवञ्चिताः स्म इति, तच्छ्रुत्वा पृष्टास्तेन, कथितं यथाऽस्माकं कथितं ईदृशस्तादृशः श्रावक इति, स भणति–अहो अकार्यं, मां तावत्प्रवञ्चयतां, तत् किं साधवः प्रवञ्च्यन्ते, मा तेषामसारता भूत् इति भणति–ददामि प्रतिश्रयं एकया व्यवस्थया–यदि मह्यं धर्मं न कथयत, साधुभिः कथितम्–एवं भवत्विति, दत्तं गृहं, वर्षारात्रे वृत्ते आपृष्टैर्धर्मः कथितः, तत्र न किञ्चित् शक्नोति ग्रहीतुं मूलगुणोत्तरगुणानां मधुमद्यमांसविरतिं वा, पश्चात् सप्तपदिकव्रतं दत्तं, मारयितुकामेन यावता कालेन सप्त पदानि अवष्वष्क्यन्ते एतावन्तं कालं प्रतीक्ष्य मारयितव्यं, संभोत्स्यत इतिकृत्वा गताः। अन्यदा चौरो (भूत्वा) गतः, अपशकुनेन निवृत्तः, रात्रौ शनैर्गृहमेति, तद्दिवसे च तस्य भगिनी आगता, सा पुरुषनेपथ्या भ्रातुर्जायया समं नृत्यविशेषप्रेक्षिका गता, ततश्चिरेणागता, निद्राक्रान्ते तथैवैकस्मिन्नेव शयने शयिते, इतरश्चागतः, ततः पश्यति, परपुरुष इत्यसिं कृष्ट्वा आहन्मीति *वत्थं काऊण

॥ ९२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वंतं सुमरियं, ठितो सत्तपदंतरं, एअंमि अंतरे भगिणीअ से बाहा भज्जाए अक्कंतिआ, ताए दुक्खाविज्जंतियाए भणिअं हला! अवणेहि बाहाओ मे सीसं, तेण सरेण णाया भगिणी एसा मे पुरिसणेवत्थत्ति लज्जितो जातो, अहो मणागं मए अकज्जं न कयंति। उवणओ जहा सावगभज्जाए, संबुद्धो, विभासा, पव्वइओ २।

इदानीं कोङ्कणकदारकोदाहरणम्—कोंकणगविसए एक्को दारगो, तस्स माया मुया, पिता से अण्णमहिलिअं ण लभति सवत्तिपुत्तो अत्थित्ति। अण्णदा सपुत्तो कट्ठाणं गतो, ताहेणेण चिंतिअं–एअस्स तणएण महिलं ण लभामि, मारेमित्ति कंडं खित्तं, आणत्तो–वच्च कंडं आणेहि, सो पहावितो, अण्णेणं कंडेणं विद्धो, चेडेण भणिअं–किं ते कंडं खित्तं, विद्धोमित्ति, पुणोवि खित्तं, रडन्तो मारिओ, पुव्वं अजाणंतेण विद्धोमित्ति अणणुओगो, मारिज्जामित्ति एवं णाते अणुओगो, अहवा सारक्खणिज्जं मारेमित्ति अणणुओगो, सारक्खंतस्स अणुओगो। जहा सारक्खणिज्जं मारेंतो विपरीतं करेति,

१ व्रतं स्मृतं, स्थितः सप्तपदान्तरं, अत्रान्तरे भगिन्यास्तस्य भुजो भार्ययाऽऽक्रान्तः, तया दुःखितया (दुःखयन्त्या) भणितम्–हले ! अपनय भुजाया मे शिरः, तेन स्वरेण ज्ञाता भगिनी एषा मे पुरुषनेपथ्येति लज्जितो जातः, अहो मनाक् (विलम्बेन) मया अकार्यं न कृतमिति। उपनयो यथा श्रावकभार्यया, संबुद्धो, विभाषा, प्रव्रजितः। २ कोङ्कणकविषये एको दारकः, तस्य माता मृता, पिता तस्य अन्यमहेलां न लभते सपत्नीपुत्रोऽस्तीति, अन्यदा सपुत्रः काष्ठेभ्यो गतः, तदाऽनेन चिन्तितं–एतेन तनयेन महेलां न लभे, मारयामीति शरः क्षिप्तः, आज्ञप्तः–व्रज शरमानय, स प्रधावितः, अन्येन शरेण विद्धः, चेटकेन (दारकेण) भणितं–किं त्वया शरः क्षिप्तः,? विद्धोऽस्मीति, पुनरपि क्षिप्तः, रटन् मारितः, पूर्वमजानता विद्धोऽस्मीति (पुत्रविचारे) अननुयोगः, मार्येऽहमित्येवं ज्ञाते अनुयोगः, अथवा संरक्षणीयं मारयामीति अननुयोगः (पितुः) संरक्षतः अनुयोगः। यथा संरक्षणीयं मारयन् विपरीतं करोति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

एवं अण्णं परूवेयव्वं अण्णं परूवेमाणस्स विपरीतत्वात् अणणुओगो भवति, जहाभूतं परूवेमाणस्स अणुओगो भवति ३। णउले उदाहरणं—एगा चारगभडिया गब्भिणी जाया, अण्णावि णउलिया गब्भिणी चेव, तत्थ एगाए राईए ताओ सरिसिआओ पसूआओ, ताए चिंतिअं–मम पुत्तस्स रमणओ भविस्सइ, तस्स पीहयं खीरं च देति। अण्णआ तीसे अविरतिआए खंडंतीए जत्थ मंचुलिआए सो डिक्करओ उत्तारितो, तत्थ सप्पेणं चडित्ता खइतो मतो, इतरेण णउलेण ओयरंतो दिट्ठो मंचुलिआओ सप्पो, ततो णेणं खंडाखंडिं कतो, ताहे सो तेण रुहिरलित्तेणं तुंडेणं तीसे अविरतियाए मूलं गंतूण चाडूणि करेइ, ताए णायं–एतेण मम पुत्तो खइओ, मुसलेण आहणित्ता मारितो, ताहे धावंती गया पुत्तस्स मूलं, जाव सप्पं खंडाखंडीकयं पासति, ताहे दिगुणतरं अधितिं पगता। तीसे अविरइआए पुव्विं अणणुओगो पच्छा अणुओगो, एवं जो अण्णं परूवेयव्वं अण्णं परूवेति सो अणणुओओ, जो तं चेव परूवेति तस्स अणुओगो ४।

---

१ एवमन्यथाप्ररूपयितव्यं (यत्र तत्र) अन्यत् प्ररूपयतः विपरीतत्वात् अननुयोगो भवति, यथाभूतं प्ररूपयतः अनुयोगो भवति. २ नकुलविषयमुदाहरणं—एका चारकभट्टिनी (भर्तृका) गर्भिणी जाता, अन्याऽपि नकुलिका गर्भिणी चैव, तत्रैकस्यां रात्रौ ते युगपत् प्रसूते, तया चिन्तितं–मम पुत्रस्य रमणको भविष्यति, तस्मै स्पृह्यं (पृथुकं) क्षीरं च दत्ते। अन्यदा तस्यां अविरत्यां कण्डयन्त्यां यत्र मञ्चिकायां स पुत्रः अवतारितः (शायितः), तत्र सर्पेण चटित्वा खादितः (दष्टः) मृतः, इतरेण नकुलकेनावतरन् दृष्टः मञ्चिकायाः सर्पः, ततस्तेन खण्डखण्डीकृतः, तदा स तेन रुधिरलिप्तेन तुण्डेन तस्या अविरत्या मूलं गत्वा चाटूनि करोति, तया ज्ञातं–एतेन मम पुत्रः खादितः, मुशलेनाहत्य मारितः, तदा धावन्ती गता पुत्रस्य मूलं, यावत्सर्पं खण्डखण्डीकृतं पश्यति, तदा द्विगुणामधृतिं प्रगता। तस्या अविरतेः पूर्वमननुयोगः पश्चादनुयोगः, एवं योऽन्यत् प्ररूपयितव्यमन्यत् प्ररूपयति सोऽननुयोगः यस्तदेव प्ररूपयति तस्य अनुयोगः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कमलामेलाउदाहरणं—बारवईए बलदेवपुत्तस्स निसढस्स पुत्तो सागरचंदो रूवेणं उक्किट्ठो, सव्वेसिं संबादीणं इट्ठो, तत्थ य बारवईए वत्थव्वस्स चेव अण्णस्स रण्णो कमलामेलानाम धूआ उक्किट्ठसरीरा, सा य उग्गसेणपुत्तस्स णभसेणस्स वरेलिया, इतो य णारदो सागरचंदस्स कुमारस्स सगासं आगतो, अब्भुट्ठिओ, उवविट्ठे समाणे पुच्छति–भगवं ! किंचि अच्छेरयं दिट्ठं ?, आमं दिट्ठं, कहिं ? कहेह, इहेव बारवईए कमलामेलाणाम दारिया, कस्सइ दिण्णिआ?, आमं, कथं मम ताए समं संपओगो भवेज्जा ?, ण याणामित्ति भणित्ता गतो। सो य सागरचंदो तं सोऊण णवि आसणे णवि सयणे धितिं लभति, तं दारियं फलए लिहंतो णामं च गिण्हंतो अच्छति, णारदोऽवि कमलामेलाए अंतिअं गतो, ताएवि पुच्छिओ–किंचि अच्छेरयं दिट्ठपुव्वंति, सो भणति—दुवे दिट्ठाणि, रूवेण सागरचंदो विरूवत्तणेण णभसेणओ, सागरचंदे मुच्छिता णहसेणए विरत्ता, णारएण समासासिता, तेण गंतुं आइक्खितं–जहा इच्छतित्ति। ताहे सागरचंदस्स माता अण्णे अ

---

१ कमलामेलोदाहरणं–द्वारिकायां बलदेवपुत्रस्य निषधस्य पुत्रः सागरचन्द्रः रूपेणोत्कृष्टः, सर्वेषां शाम्बादीनामिष्टः, तत्र च द्वारिकायां वास्तव्यस्यैव अन्यस्य राज्ञः कमलामेलानाम्नी दुहिता उत्कृष्टशरीरा, सा चोग्रसेनपुत्रेण नभःसेनेन वृता, इतश्च नारदः सागरचन्द्रस्य कुमारस्य सकाशं (पार्श्वं) आगतः, अभ्युत्थितः, उपविष्टे सति पृच्छति–भगवन् ! किञ्चिदाश्चर्यं दृष्टम् ? ॐ दृष्टं, क्व कथयत, इहैव द्वारिकायां कमलामेलानाम्नी दारिका, कस्मैचिद्दत्ता ?, ॐ, कथं मम तया समं संप्रयोगो भवेत् ?, न जानामीति भणित्वा गतः। स च सागरचन्द्रः तत् श्रुत्वा नाप्यासने नापि शयने धृतिं लभते, तां दारिकां फलके लिखन् नाम च गृह्णन् तिष्ठति, नारदोऽपि कमलामेलाया अन्तिकं गतः, तयाऽपि पृष्टः (सुखवृत्तान्तः), किञ्चिदाश्चर्यं दृष्टपूर्वमिति, स भणति–द्वे दृष्टे रूपेण सागरचन्द्रः विरूपतया नभःसेनः, सागरचन्द्रे मूर्छिता, नभःसेने विरक्ता, नारदेन समाश्वासिता, तेन गत्वाऽऽख्यातं–यथेच्छतीति, तदा सागरचन्द्रस्य माता अन्ये च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥ ९४ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

१कुमारा आदण्णा मरइत्ति, संबो आगतो जाव पेच्छति सागरचंदं विलवमाणं, ताहे णेण पच्छतो ठाइऊण अच्छीणि दोहिवि हत्थेहि छादिताणि, सागरचंदेण भणितं—कमलामेलत्ति, संबेण भणितं—णाहं कमलामेला, कमलामेलोऽहं, सागरचंदेण भणितं—आमं तुमं चेव ममं विमलकमलदललोअणिं कमलामेलं मेलिहिसि, ताहे तेहिं कुमारेहिं संबो मज्जं पाएत्ता अब्भुवगच्छाविओ, विगतमदो चिंतेति—अहो मए आलो अब्भुवगओ, इदाणीं किं सक्कमण्णहाकाउं?, णिव्वहियव्वंति पज्जण्णं पण्णत्तिं मग्गिऊण जंदिवसं तस्स णभसेणस्स विवाहदिवसो तद्दिवसं ते सागरचंदसंबप्पमुहा कुमारा उज्जाणं गंतुं णारदस्स सरहस्सं दारिया सुरंगाए उज्जाणं णेत्तुं सागरचंदो परिणाविओ, ते तत्थ किड्डंता अच्छंति। इतरे य तं दारियं ण पेच्छंति, मग्गंतेहिं उज्जाणे दिट्ठा, विज्जाहररूवा विउव्विया, णारायणो सबलो णिग्गओ, जाव अपच्छिमं संबरूवेणं पाएसु पडिओ, सागरचंदस्स चेव दिण्णा, णभसेण तणया अ खमाविया । एत्थ सागरचंदस्स

---

१ कुमाराः खिन्ना म्रियत इति, शाम्ब आगतो यावत्प्रेक्षते सागरचन्द्रं विलपन्तं, तदाऽनेन पश्चात्स्थित्वा अक्षिणी द्वाभ्यामपि हस्ताभ्यां छादिते, सागरचन्द्रेण भणितं—कमलामेलेति, शाम्बेन भणितं—नाहं कमलामेला कमलामेलोऽहं, सागरचन्द्रेण भणितं—एवं त्वमेव मां विमलकमलदललोचनां कमलामेलां मेलयिष्यसि, तदा तैः कुमारैः शाम्बो मद्यं पाययित्वाऽभ्युपगमितः, विगतमदश्चिन्तयति—अहो मयाऽऽलमभ्युपगतं, इदानीं किं शक्यमन्यथाकर्तुं, निर्वहणीयमिति प्रद्युम्नं प्रज्ञप्तिं मार्गयित्वा यद्दिवसे तस्य नभःसेनस्य विवाहदिवसः तस्मिन् दिवसे ते सागरचन्द्रशाम्बप्रमुखाः कुमारा उद्यानं गत्वा नारदेन सरहस्यं दारिकां सुरङ्गया उद्यानं नीत्वा सागरचन्द्रः परिणायितः, ते तत्र क्रीडन्तस्तिष्ठन्ति । इतरे च तां दारिकां न प्रेक्षन्ते, मार्गयद्भिरुद्याने दृष्टा, विद्याधररूपाणि विकुर्वितानि, नारायणः सबलो निर्गतः, यावत्प्रान्ते शाम्बरूपेण पादयोः पतितः, सागरचन्द्रायैव दत्ता, नभःसेनतनयाश्च क्षमिताः । अत्र सागरचन्द्रस्य.

॥ ९४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संबं[1] कमलामेलं मण्णमाणस्स अणणुओगो णाहं कमलामेलेति भणिते अणुओगो, एवं जो विवरीयं परूवेति तस्स अणणुओगो जहाभावं परूवेमाणस्स अणुओगो ५।

संबेस्स साहसोदाहरणं—जंबूवई णारायणं भणति—एक्कावि मए पुत्तस्स अणाडिया ण दिट्ठा, णारायणेण भणितं—अज्ज दाएमि, ताहे णारायणेण जंबूवतीअ आभीरीरूवं कयं, दोवि तक्कं घेत्तुं बारवईमोइण्णाणि, महियं विक्किणंति, संबेण दिट्ठाणि, आभीरी भणिता—एहि महिअं कीणामित्ति, सा अणुगच्छति, आभीरो मग्गेण एति, सो एक्कं देउलिअं पविसइ, सा आभीरी भणति—णाहं पविसामि किंतु मोल्लं देहि तो एत्थ चेव ठितो तक्कं गेण्हाहि, सो भणति—अवस्स पविसितव्वं, सा णेच्छति, ताहे हत्थे लग्गो, आभीरो उद्धाइऊण लग्गो संबेण समं, संबो आवट्टितो, आभीरो वासुदेवो जातो इतरी जंबूवती, अंगुट्ठीकाऊण पलातो, बिईयदिवसे मड्डाए आणिज्जंतो खीलयं घडंतो एइ, जोक्कारे कए वासुदेवेण

---

१ शाम्बं कमलामेलां मन्यमानस्यानुयोगो नाहं कमलामेलेति भणितेऽनुयोगः, एवं यो विपरीतं प्ररूपयति तस्यानुयोगो यथाभावं प्ररूपयतः अनुयोगः। २ शाम्बस्य साहसोदाहरणम्–जम्बूवती नारायणं भणति–एकाऽपि मया पुत्रस्य अनाद्दतिर्न दृष्टा, नारायणेन भणितम्–अद्य दर्शयामि, तदा नारायणेन जम्बूवत्या आभीरीरूपं कृतं, द्वावपि तक्रं गृहीत्वा द्वारिकामवतीर्णौ, गोरसं विक्रीणीतः, शाम्बेन दृष्टौ, आभीरी भणिता–एहि गोरसं क्रीणामीति, साऽनुगच्छति, आभीरः पृष्ठत एति, स एकं देवकुलं प्रविशति, साऽऽभीरी भणति–नाहं प्रविशामि, किंतु मूल्यं दद्यास्तदाऽत्रैव स्थितस्तक्रं गृहाण, स भणति–अवश्यं प्रवेष्टव्यं, सा नेच्छति, तदा हस्ते लग्नः, आभीर उद्धाव्य लग्नः शाम्बेन समं, शाम्बोऽप्यावृत्तः, आभीरो वासुदेवो जात इतरा जम्बूवती अङ्गुष्ठी-(शिरोऽवगुण्ठनं) कृत्वा पलायितः, द्वितीयदिवसे बलात्कारेण आनीयमानः कीलकं घटयन् एति, जयोत्कारे कृते वासुदेवेन.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पुच्छिओ–किं एयं घडिज्जतित्ति, भणति–जो पारिओसियं बोलं काहिति तस्स मुहे खोट्टिज्जिहित्ति । पढमं अणणुओगो णोत अणुओगो, एवं जो विवरीयं परूवेति तस्स अणणुओगो इतरस्स अणुओगो ६ ।

श्रेणिकविषयकोपोद्दाहरणं–रायगिहे णगरे सेणिओ राया, चेल्लणा तस्स भज्जा, सा वद्धमाणसामिमपच्छिमतित्थगरं वंदित्ता वेयालियं माहमासे पविसति, पच्छा साहू दिट्ठो पडिमापडिवण्णओ, तीए रत्तिं सुत्तिआए हत्थो किहवि विलंबिओ, जया सीतेण गहिओ तदा चेतितं, पवेसितो हत्थो, तस्स हत्थस्स तणएणं सव्वं सरीरं सीतेण गहिअं,तीए भणिअं–स तवस्सी किं करिस्सति संपयं?। पच्छा सेणिएण चिंतियं–संगारदिण्णओ से कोई, रुट्ठेण कल्लं अभओ भणिओ–सिग्घं अंतेउरं पलीवेहि,सेणिओ गतो सामिसगासं,अभएण हत्थिसाला पलीविया,सेणिओ सामिं पुच्छति–चेल्लणा किं एगपत्ती अणेगपत्ती?,सामिणा भणिअं-एगपत्ती,

---

१ पृष्टः–किमेतत् घट्यते इति, भणति–यः पर्युषितं वृत्तान्तोल्लापं करिष्यति तस्य मुखे क्षेप्स्यते इति । प्रथममननुयोगः ज्ञाते अनुयोगः, एवं यो विपरीतं प्ररूपयति तस्याननुयोग इतरस्य अनुयोगः. २ राजगृहे नगरे श्रेणिको राजा चेल्लना तस्य भार्या, सा वर्धमानस्वामिनमपश्चिमतीर्थकरं वन्दित्वा विकाले माघमासे प्रविशति, पश्चात् साधुर्दृष्टः प्रतिपन्नप्रतिमः, तस्या रात्रौ सुप्ताया हस्तः कथमपि विलम्बितः (बहिः स्थितः) यदा शीतेन गृहीतः तदा चेतितं, प्रवेशितो हस्तः, तस्य हस्तस्य सम्बन्धिना सर्वं शरीरं शीतेन गृहीतं, पश्चात् तया भणितं–स तपस्वी किं करिष्यति साम्प्रतं?, पश्चात् श्रेणिकेन चिन्तितं–दत्तसङ्केतोऽस्याः कश्चित्, रुष्टेन कल्येऽभयो भणितः–शीघ्रमन्तःपुरं प्रदीपय, श्रेणिको गतः स्वामिसकाशं, अभयेन हस्तिशाला प्रदीपिता, श्रेणिकः स्वामिनं पृच्छति–चेल्लना किमेकपत्नी अनेकपत्नी?, स्वामिना भणितं–एकपत्नी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे मा डज्झिहितित्ति तुरितं णिग्गओ, अभओ णिप्फिडति, सेणिएणं भणिअं–पलीवितं ?, सो भणति–आमं, तुमं किं ण पविठ्ठो ?, भणति–अहं पव्वइस्सामि किं मे अग्गिणा ?, पच्छा णेण चिंतिअं–मा छड्डिज्जिहितित्ति भणितं–ण डज्झत्ति। सेणियस्स चेल्लणाए पुव्विं अणणुओगो पुच्छिए अणुओगो, एवं विवरीए परूविए अणणुओगो जहाभावे परूविए अणुओगो ७ ॥ १३४ ॥ इत्थं तावदनुयोगः सप्रतिपक्षः प्रपञ्चेनोक्तः, नियोगोऽपि पूर्वप्रतिपादितस्वरूपमात्रः सोदाहरणोऽनुयोगवदवसेयः, साम्प्रतं प्रागुपन्यस्तभाषादिस्वरूपप्रतिपादनायाह—

कट्ठे १ पुत्थे २ चित्ते ३ सिरिघरिए ४ पुंड ५ देसिए ६ चेव। भासगविभासए वा वत्तीकरणे अ आहरणा ॥ १३५ ॥

व्याख्या—तत्र 'काष्ठ' इति काष्ठविषयो दृष्टान्तः, यथा काष्ठे कश्चित् तद्रूपकारः खल्वाकारमात्रं करोति, कश्चित्स्थूलावयवनिष्पत्तिं, कश्चित् पुनरशेषाङ्गोपाङ्गाद्यवयवनिष्पत्तिमिति, एवं काष्ठकल्पं सामायिकादिसूत्रं, तत्र भाषकः परिस्थूरमर्थमात्रमभिधत्ते–यथा समभावः सामायिकमिति, विभाषकस्तु तस्यैवानेकधाऽर्थमभिधत्ते–यथा समभावः सामायिकं, समानां वा आयः समायः स एव स्वार्थिकप्रत्ययविधानात्सामायिकमित्यादि, व्यक्तीकरणशीलो व्यक्तिकरः, यः खलु निरवशेषव्युत्पत्त्यतिचारानतिचारफलादिभेदभिन्नमर्थं भाषते स व्यक्तिकर इति, स निश्चयतश्चतुर्दशपूर्वविदेव, इह च

१ तदा मा दाहीति त्वरितं निर्गतः, अभयो निस्सरति, श्रेणिकेन भणितं–प्रदीपितं ?, स भणति–आमं, त्वं किं न प्रविष्टः ?, भणति–अहं प्रव्रजिष्यामि किं ममाग्निना ? पश्चादनेन चिन्तितं–मा त्याक्षीदिति भणितं–न दग्धेति। श्रेणिकस्य चेल्लनायां पूर्वमननुयोगः पृष्टेऽनुयोगः, एवं विपरीते प्ररूपितेऽननुयोगः यथाभावे प्ररूपिते अनुयोगः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भाषा आदेः स्वरुपम् प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः१

॥ ९६ ॥

भाषकादिस्वरूपव्याख्यानात् भाषादय एव प्रतिपादिता द्रष्टव्याः, कुतः ?, भाषादीनां तत्प्रभवत्वात् १ । इदानीं पुस्तविषयो दृष्टान्तः–यथा पुस्ते कश्चिदाकारमात्रं करोति, कश्चित् स्थूरावयवनिष्पत्तिं, कश्चित्त्वशेषावयवनिष्पत्तिमिति, दार्ष्टान्तिकयोजना पूर्ववत् २ । इदानीं चित्रविषयो दृष्टान्तः–यथा चित्रकर्मणि कश्चित् वर्त्तिकाभिराकारमात्रं करोति, कश्चित्तु हरितालादिवर्णोद्भेदं, कश्चित्त्वशेषपर्यायैर्निष्पादयति, दार्ष्टान्तिकयोजना पूर्ववत् ३ । श्रीगृहिकोदाहरणं–श्रीगृहं–भाण्डागारं तदस्यास्तीति 'अत इनिठनौ' (५–२–११५) इति ठनीकादेशे च कृते श्रीगृहिक इति भवति, तद्दृष्टान्तः–तत्र कश्चिद् रत्नानां भाजनमेव वेत्ति–इह भाजने रत्नानीति, कश्चित्तु जातिमाने अपि, कश्चित्पुनर्गुणानपि, एवं प्रथमद्वितीयतृतीयकल्पा भाषकादयो द्रष्टव्याः ४ । तथा 'पोंडं' इति पुण्डरीकं पद्मं तद् यथेषद्भिन्नार्धभिन्नविकसितरूपं त्रिधा भवति, एवं भाषादि विज्ञेयं ५ । इदानीं देशिकविषयमुदाहरणं–देशनं देशः कथनमित्यर्थः, तदस्यास्तीति देशिकः–यथा कश्चिद्देशिकः पन्थानं पृष्टः दिङ्मात्रमेव कथयति, कश्चित् तद्व्यवस्थितग्रामनगरादिभेदेन, कश्चित् पुनस्तदुत्थगुणदोषभेदेन कथयतीति, दार्ष्टान्तिकयोजना पूर्ववत् ज्ञेया ६ । एवमेतानि भाषकविभाषकव्यक्तिकरविषयाण्युदाहरणानि प्रतिपादितानि इति गाथार्थः॥ १३५॥ इत्थं तावद्विभाग उक्तः, इदानीं द्वारविधिमवसरप्राप्तं विहाय व्याख्यानविधिं प्रतिपादयन्नाह—

गोणी१चंदणकंथा२चेडीओ ३ सावए४बहिर५गोहे ६ । टंकणओ ववहारो७, पडिवक्खो आयरियसीसे॥१३६॥

आह––चतुरनुयोगद्वारानधिकृतो व्याख्यानविधिः किमर्थं प्रतिपाद्यत इति, उच्यते, शिष्याचार्ययोः सुखश्रवणसुखव्याख्यानप्रवृत्त्या शास्त्रोपकारार्थः, अथवा अधिकृत एव वेदितव्यः, कुतः ?, अनुगमान्तर्भावात्, अन्तर्भावस्तु

॥ ९६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

व्याख्यानविधिं प्रतिपादनाय गो: इति दृष्टान्ता:, धृतस्य उदाहरणं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्याङ्गत्वात् इति । आह—यद्यसावनुगमाङ्गं ततः किमित्ययं द्वारविधेः पूर्वं प्रतिपाद्यते?, उच्यते, द्वारविधेरपि बहुवक्तव्यत्वात् मा भूदिहापि व्याख्याविधेर्विपर्ययः, अतोऽत्रैव आचार्यशिष्ययोर्गुणदोषाः प्रतिपाद्यन्ते, येन आचार्यो गुणवते शिष्यायानुयोगं करोति, शिष्योऽपि गुणवदाचार्यसन्निधावेव शृणोतीति । आह—यद्येवं व्याख्यानविधिरनुगमाङ्गं इहावतार्योच्यते तत्कथं द्वारगाथायामप्येवं नोपन्यस्त इति, उच्यते, सूत्रव्याख्यानस्य गुरुत्वख्यापनार्थं, विशेषेण सूत्रव्याख्यायां आचार्यः शिष्यो वा गुणवानन्वेष्टव्य इत्यलं विस्तरेण, प्रकृतं प्रस्तुमः—प्रक्रान्तगाथाव्याख्या—तत्र गोदृष्टान्तः, एते चाचार्यशिष्ययोः संयुक्ता दृष्टान्ताः, एक आचार्यस्य एकः शिष्यस्येति द्वौ वा एकस्मिन्नेवावतार्याविति ।

एगंमि[1] णगरे एगेण कस्सइ धुत्तस्स सगासाओ गावी रोगिता उट्ठितुंपि असमत्था णिविट्ठा चेव किणिता, सो तं पडिविक्किणति, कायगा भणंति–पेच्छामो से गतिपयारं तो किणीहामो, सो भणति–मएवि उवविट्ठा चेव गहिया, जदि पडिहाति ता तुम्हेवि एवमेव गिण्हह । एवं जो आयरिओ पुच्छितो परिहारंतरं दाउमसमत्थो भणति–मएवि एवं सुयं तुम्हेवि एवं सुणहत्ति, तस्स सगासे ण सोअव्वं, संसइयपयत्थंमि मिच्छत्तसंभवा, जो पुण

१ एकस्मिन्नगरे एकेन कस्यचिद्धूर्तस्य सकाशाद्गौरोगिणी उत्थातुमप्यसमर्था निविष्टैव क्रीता, स तां प्रतिविक्रीणाति, क्रायका भणन्ति–प्रेक्षामहेऽस्या गतिप्रचारं, ततः क्रेष्यामः, स भणति–मयाऽपि उपविष्टैव गृहीता, यदि प्रतिभाति तदा यूयमपि एवमेव गृह्णीत । एवं य आचार्यः पृष्टः परिहारान्तरं दातुमसमर्थो भणति–मयाऽपि एवं श्रुतं यूयमपि एवं शृणुतेति, तस्य सकाशे न श्रोतव्यं, सांशयिकपदार्थे मिथ्यात्वसंभवात्, यः पुन–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

अथ धूर्तस्य उदाहरणं प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अविकलगोविक्किणगो इव अक्खेवणिण्णयपसंगपारगो तस्स सगासे सोयब्बं, सीसोऽवि जो अवियारियगाही पढमगोविक्कण-गोब्ब सो अजोग्गो इतरो जोग्गोत्ति १।

चंदणकंथोदाहरणं—बारवईए वासुदेवस्स तिण्णि भेरीओ, तंजहा—संगामिआ उब्भुतिया कोमुतिया, तिण्णिवि गोसीसचंदणमइयाओ देवयापरिग्गहियाओ, तस्स चउत्थी भेरी असिवुवसमणी, तीसे उप्पत्ती कहिज्जइ—सक्को सुरमज्झे वासुदेवस्स गुणकित्तणं करेति–अहो उत्तमपुरिसाणं गुणा, एते अवगुणं ण गेण्हंति णीएण य ण जुज्झंति, तत्थेगो देवो असद्दहंतो आगतो, वासुदेवोऽवि जिणसगासं वंदओ पट्ठिओ, सो अंतराले कालसुणयरूवं मययं विउब्वेति वावण्णं दुब्भिगंधं, तस्स गंधेण सब्बो लोगो पराभग्गो, वासुदेवेण दिट्ठो, भणितं चणेण–अहो कालसुणगस्सेतस्स पंडुरा दंता सोहंति, देवो चिं*तितो–सच्चं सच्चं गुणग्गाही। ततो वासुदेवस्स आसरयणं गहाय पधावितो, सो वंदुरापालएण णाओ, तेण

---

१ ०रविकलगोविक्रायक इवाक्षेपनिर्णयप्रसङ्गपारगः तस्य सकाशे श्रोतव्यं, शिष्योऽपि योऽविचार्यग्राही प्रथमगोविक्रायक इव सोऽयोग्यः, इतरो योग्य इति १। २ चन्दनकन्थोदाहरणं–द्वारिकायां वासुदेवस्य तिस्रो भेर्यः, तद्यथा–सांग्रामिकी आभ्युदयिकी कौमुदीकी, तिस्रोऽपि गोशीर्षचन्दनमय्यो देवतापरिगृहीताः; तस्य चतुर्थी भेरी अशिवोपशमनी, तस्या उत्पत्तिः कथ्यते–शक्रः सुरमध्ये वासुदेवस्य गुणकीर्त्तनं करोति–अहो उत्तमपुरुषाणां गुणाः, एते अवगुणं न गृह्णन्ति नीचेन च न युध्यन्ते, तत्रैको देवोऽश्रद्दधत् आगतः, वासुदेवोऽपि जिनसकाशं वन्दकः (वन्दनाय) प्रस्थितः, सोऽन्तराले कृष्णश्वरूपं मृतकं विकुर्वति व्यापन्नं दुरभिगन्धं, तस्य गन्धेन सर्वो लोकः पराभग्नः, वासुदेवेन दृष्टः, भणितं चानेन–अहो कृष्णशुनः एतस्य पाण्डुरा दन्ताः शोभन्ते, देवश्चिन्तितवान्–सत्यं सत्यं गुणग्राही। ततो वासुदेवस्याश्वरत्नं गृहीत्वा प्रधावितः, स मन्दुरापालकेन ज्ञातः, तेन * चिंतेति.

॥ ९७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेव कृष्णस्य चन्दन्कन्था-भेर्याः उदाहरणं

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

कुवितं, कुमारा रायाणो य निग्गया, तेण देवेण हयविहया काऊण धाडिआ, वासुदेवोऽवि निग्गओ, भणति–मम कीस आसरयणं हरसि ?, देवो भणति—मं जुज्झे पराजिणिऊण गेण्ह, वासुदेवेण भणियं–बाढं, किह जुज्झामो ? तुमं भूमीए अहं रहेण, ता रहं गिण्ह, देवो भणति–अलं रहेणंति, एवं आसहत्थीवि पडिसिद्धा, बाहुजुद्धादियाइं सवाइं पडिसेहेइ, भणइ य–अहिट्ठाणजुद्धं देहि, वासुदेवेण भणिअं–पराजिओऽहं, णेहि आसरयणं, णाहं नीयजुज्झेण जुज्झामि, ततो देवो तुट्ठो भणितादिओ-वरेहि वरं, किं ते देमि ?, वासुदेवेण भणिअं–असिवोवसमणीं भेरीं देहि, तेण दिण्णा, एसुप्पत्ती भेरीए। तहिं सा छण्हं छण्हं मासाणं वज्जति, पच्चुप्पण्णा रोगा वाही वा उवसमंति, णवगा वि छम्मासे ण उप्पज्जंति, जो सद्दं सुणेति। तत्थऽण्णदा आगंतुओ वाणिअओ, सो अतीव दाहज्जरेण अभिभूतो भेरीपालयं भणइ–गेण्ह तुमं सयसहस्सं, मम एत्तो पलमेत्तं देहि, तेण लोभेण दिण्णं, तत्थ अण्णा चंदणथिग्गलिआ दिण्णा, एवं अण्णेणवि अण्णेणवि मग्गितो दिण्णं च,

---

१ कूजितं, कुमारा राजानश्च निर्गताः, तेन देवेन हतविहतीकृत्य धाटिताः, वासुदेवोऽपि निर्गतः, भणति-मम कस्मादश्वरत्नं हरसि ?, देवो भणति–मां युद्धे पराजित्य गृहाण, वासुदेवेन भणितं–बाढं, कथं युध्यावहे त्वं भूमौ अहं रथेन, तद् रथं गृहाण, देवो भणति–अलं रथेनेति, एवमश्वहस्तिनावपि प्रतिषिद्धौ, बाहुयुद्धादीनि सर्वाणि प्रतिषेधयति, भणति च–अधिष्ठानयुद्धं देहि, वासुदेवेन भणितं–पराजितोऽहं नय अश्वरत्नं, नाहं नीचयुद्धेन युध्ये, ततो देवस्तुष्टो भणितवान्–वृणुष्व वरं, किं तुभ्यं ददामि?, वासुदेवेन भणितं–अशिवोपशमनीं भेरीं देहि, तेन दत्ता, एषोत्पत्तिर्भेर्याः। तत्र सा षड्भिः षड्भिर्मासैः वाद्यते, प्रत्युत्पन्ना रोगा व्याधयो वोपशाम्यन्ति, नवका अपि षट्सु मासेषु नोत्पद्यन्ते, यः शब्दं शृणोति। तत्रान्यदाऽऽगन्तुको वणिक्, सोऽतीव दाहज्वरेणाभिभूतो भेरीपालकं भणति–गृहाण त्वं शतसहस्रं, ममैतस्मात् पलमात्रं देहि, तेन लोभेन दत्तं, तत्रान्या चन्दनथिग्गलिका दत्ता, एवमन्येनापि अन्येनापि मार्गितो दत्तं च,. * ताहे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सा चंदणकंथा जाता, अण्णदा असिवे वासुदेवेण ताडाविया, जाव तं चेव सभं ण पूरेति, तेण भणिअं–जोएह भेरिं, दिट्ठा कंथीकैता, सो भेरिवालो ववरोविओ, अण्णा भेरी अट्ठमभत्तेणाराहइत्ता लद्धा, अण्णो भेरिवालो कओ, सो आयर†क्खेण रक्खति, सो पूइतो–जो सीसो सुत्तत्थं चंदणकंथा‡व परमतादीहिं । मीसेति गलितमहवा सिक्खितमाणी ण सो जोग्गो ॥ १ ॥ कंथीकतसुत्तत्थो गुरूवि जोग्गो ण भासितव्वस्स । अविणासियसुत्तत्था सीसायरिया विणिद्दिट्ठा ॥ २ ॥ २ ।

इदानीं चेट्युदाहरणम्—वसंतपुरे जुण्णसेट्ठिधूता, णवगस्स य सेट्ठिस्स धूआ, तासिं पीई, तहवि से अत्थि वेरो अम्हे एएहिं उवट्टिताणि, ताओ अण्णआ कयावि मज्जितुं गताओ, तत्थ जा सा णवगस्स धूआ, सा तिलगचोद्दसगेणं अलंकारेण अलंकिआ, सा आहरणाणि तडे ठवेत्ता उत्तिण्णा, जुण्णसेट्ठिधूआ ताणि गहाय पधाविता, सा वारेति, इतरी अक्कोसंती गता, ताए मातापितीणं सिट्ठं, ताणि भणंति–तुण्हिक्का अच्छाहि, णवगस्स धूआ ण्हाइत्ता णियगघरं गया, अम्मापिईहिं

---

१ सा (भेरी) चन्दनकन्था जाता, अन्यदाऽशिवे वासुदेवेन ताडिता, यावत्तां सभामपि न पूरयति, तेन भणितं–पश्यत भेरीं, दृष्टा कन्थीकृता, स भेरीपालो व्यपरोपितः, अन्या भेर्यष्टमभक्तेनाराध्य लब्धा, अन्यो भेरीपालकः कृतः, स आत्मरक्षेण रक्षति, स पूजितः–यः शिष्यः सूत्रार्थे चन्दनकन्थामिव परमतादिभिः । मिश्रयति गलितमथवा शिक्षितमानी, न स योग्यः । १ । कन्थीकृतसूत्रार्थो गुरुरपि योग्यो न भाषितव्यस्य (अनुयोगस्य) । अविनाशितसूत्रार्थाः शिष्याचार्या विनिर्दिष्टाः । २ । २ वसन्तपुरे जीर्णश्रेष्ठिदुहिता, नवकस्य च श्रेष्ठिनः दुहिता, तयोः प्रीतिः, तथापि तयोरस्ति वैरं वयमेतैरुद्वर्त्तितानि, ते अन्यदा कदाचिन्मङ्क्तुं गते, तत्र या सा नवकस्य दुहिता, सा तिलकचतुर्दशकेन अलङ्कारेणालङ्कृता, साऽऽभरणानि तटे स्थापयित्वाऽवतीर्णा, जीर्णश्रेष्ठिदुहिता तानि गृहीत्वा प्रधाविता, सा वारयति, इतराक्रोशन्ती गता, तया मातापितृभ्यां शिष्टं, तौ भणतः–तूष्णीका तिष्ठ, नवकस्य दुहिता स्नात्वा निजगृहं गता, मातापितृभ्यां * कन्थाकथा. + ०वालओ. † आदरेण. ‡ कंथं व.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

साहइ, तेहिं मग्गियं, ण देंति, राउले ववहारो, तत्थ णत्थि सक्खी, तत्थ कारणिया भणंति–चेडीओ वाहिज्जंतु, तेहिं वाहित्ताँ भणिता–जति तुज्झच्चयं ता आविंध, ताहे सा जुण्णसेट्ठिचेडी जं हत्थे तं पाए, ण जाणति, तं च से असिलिट्ठं, ताहे तेहिं णाअं–जहा एयाइं ईमीसे ण होंति, ताहे इतरी भणिआ–तुमे आविंध, ताए कमेण आविद्धं, सिलिट्ठं च से जायं, भणिया य–मेल्लाहि, ताए तहेव णिच्चं आमुंचंतीए पडिवाडीए आमुकं, ताहे सो जुण्णसेट्ठी डंडितो । जहा सो एगभविअं मरणं पत्तो, एवायरिओवि जं अण्णत्थ तं अण्णहिं संघाडेति, अण्णवत्तव्वाओ अण्णत्थ परूवेति उस्सग्गादिआओ, एवं सो संसारदंडेण दंडिज्जति, तारिसस्स पासे ण सोतव्वं, जहा सा चेडी जसं पत्ता, एवं चेवायरिओ जो ण विसंवाएति, तेण अरिहंताणं आणा कता भवति, तारिसस्स पासे सोयव्वं । एत्थ गाथा–अत्थाणत्थनिउत्ताऽऽभरणाणं जुण्णसेट्ठिधूअव्व । †ण

---

१ कथयति, ताभ्यां मार्गितं, न दत्तः, राजकुले व्यवहारः, तत्र नास्ति साक्षी, तत्र कारणिका भणन्ति–चेट्यौ व्याह्रियेतां, तैर्व्याहृत्य भणिता–यदि तावकीनं तिलकचतुर्दशकं तदा परिधेहि, तदा सा जीर्णश्रेष्ठिचेटी यत् हस्ते (हस्तसम्बन्धि) तत् पादे (परिदधाति), न जानाति, तच्च तस्या अश्लिष्टं, तदा तैर्ज्ञातं–यथैतान्यस्या न भवन्ति, तदेतरा भणिता–त्वं परिधेहि, तया क्रमेण परिहितं, श्लिष्टं च तस्या जातं, भणिता च–मुञ्च, तया तथैव नित्यमामुञ्चन्त्या परिपाट्या आमुक्तं, तदा स जीर्णश्रेष्ठी दण्डितः। यथा स एकभविकं मरणं प्राप्तः, एवमाचार्योऽपि यत् (सूत्रं) अन्यत्र (उत्सर्गादौ) तद् अन्यत्र (अपवादादौ) संघातयति, अन्यवक्तव्यता अन्यत्र प्ररूपयति उत्सर्गादिकाः, एवं स संसारदण्डेन दण्ड्यते, तादृशस्य पार्श्वे न श्रोतव्यं, यथा सा चेटी यशः प्राप्ता, एवमेवाचार्यो यो न विसंवादयति, तेनार्हतां आज्ञा कृता भवति, तादृशस्य पार्श्वे श्रोतव्यं । अत्र गाथे–अस्थानार्थनियोक्ता आभरणानां जीर्णश्रेष्ठिदुहितेव । न * वाहिता. + एते से. † णो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गुरू विधिभणिते वा विवरीयनिओअओ सीसो ॥ १ ॥ सत्थाणत्थनिउत्ता ईसरधूआ सभूसणाणं व । होइ गूरू सीसोऽविअ विणिओअं तो जहा भणितं ॥ २ ॥ ३ । श्रावकोदाहरणं पूर्ववत्—नवरमुपसंहारः–चिरपेरिचितंपि ण सरति सुत्तत्थं सावगो सभज्जं व । जो ण सो जोग्गो सीसो गुरुत्तणं तस्स दूरेणं ॥ १ ॥ ४ । बधिरगोदाहरणं पूर्ववदेव, उपसंहारस्तु गाथयोच्यते—अण्णं पुट्ठो अण्णं जो साहइ सो गुरू ण बहिरो व । ण य सीसो जो अण्णं सुणेति अणुभासए अण्णं ॥ १ ॥ ५ । एवं गोधोदाहरणोपसंहारोऽपि वक्तव्यः ६ । इदानीं टङ्कणकोदाहरणं—उत्तरॉवहे टंकणा णाम मेच्छा, ते सुवण्णेणं दक्खिणावहाइं भंडाइं गेण्हंति, ते य परोप्परं भासं ण जाणंति, पच्छा पुंजं करेंति, हत्थेण उँ छाएंति, जाव इच्छा ण पूरति ताव ण अवणेंति, पुण्णे अवणेंति, एवं

---

१ गुरुः विधिभणिते वा विपरीतनियोजकः शिष्यः । १ । स्वस्थानार्थेनियोक्ता ईश्वरदुहिता स्वभूषणानामिव । भवति गुरुः शिष्योऽपिच विनियोगं तद (विनियोजयन्) यथा भणितम् । २ । २ चिरपरिचितावपि न स्मरति सूत्रार्थौ श्रावकः स्वभार्यामिव । यो न स योग्यः शिष्यः गुरुत्वं तस्य दूरेण । १ । ३ अन्यस्पृष्टोऽन्यत् यः कथयति स न गुरुर्बधिर इव । न च शिष्यो योऽन्यच्छृणोत्यनुभाषतेऽन्यत् । १ । ४ उत्तरापथे टङ्कणानामानो म्लेच्छाः, ते सुवर्णेन दक्षिणापथानि भाण्डानि गृह्णन्ति, ते च परस्परं भाषां न जानते, पश्चात् पुञ्जं कुर्वन्ति, हस्तेन स्वाच्छादयन्ति, यावदिच्छा न पूर्यते तावन्नापनयन्ति, पूर्णेऽपनयन्ति, एवं * हत्थेण उच्छाडेंति.

॥ ९९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ते'सिं इच्छियपडिच्छियववहारो एवं–अक्खेवनिण्णयपसंगदाणग्गहणाणुवत्तिणो दोवि । जोग्गा सीसायरिआ टंकणवणिओवमा एसा ॥ १ ॥ ७ ।

इत्थं*मुक्तप्रकारेण गवादिषु द्वारेषु साक्षादभिहितार्थविपर्ययः–प्रतिपक्षः आचार्यशिष्ययोर्यथायोगं योजनीयः, स च योजित एवेति गाथार्थः ॥ १३६ ॥ इदानीं विशेषतः शिष्यदोषगुणान् प्रतिपादयन्नाह—

कस्स न होही वेसो अनब्भुवगओअ निरुवगारी अ । अप्पच्छंदमईओ पट्ठिअओ गंतुकामो अ ॥ १३७ ॥
विणओणएहिं कयपंजलीहि छंदमणुअत्तमाणेहिं । आराहिओ गुरुजणो सुयं बहुविहं लहुं देइ ॥ १३८ ॥

आह—शिष्यदोषगुणानां विशेषाभिधानं किमर्थम् ?, उच्यते, कालान्तरेण तस्यैव गुरुत्वभवनात्, अयोग्याय च गुरुपदनिबन्धनविधाने तीर्थकराज्ञादिलोपप्रसङ्गात् । प्रथमगाथाव्याख्या—कस्य न भविष्यति द्वेष्यः–अप्रीतिकरः, यः किम्भूतः ?–न अभ्युपगतः अनभ्युपगतः–श्रुतोपसंपदाऽनुपसंपन्न इति भावार्थः, उपसंपन्नोऽपि न सर्व एवाद्वेष्यो भवतीत्यत आह—'निरुपकारी च' निरुपकर्त्तुं शीलमस्येति निरुपकारी, गुरोरकृत्यकारीत्यर्थः, उपकार्यपि न सर्व एवाद्वेष्य इत्यत आह—आत्मच्छन्दा आत्मायत्ता मतिर्यस्य कार्येषु असावात्मच्छन्दमतिः, स्वाभिप्रायकार्यकारीत्यर्थः, गुर्वायत्तमतिरपि न सर्व एवाद्वेष्यः अत आह—'प्रस्थितः'

---

१ तेषां ईच्छितप्रतीच्छित (इप्सितप्रतीप्सित) व्यवहारः, एवं–आक्षेपनिर्णयप्रसङ्गदानग्रहणानुवर्त्तिनो द्वयेऽपि । योग्या आचार्यशिष्या टङ्कणवणिगुपमा एषा । १ । * ० मुक्तेन.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संप्रस्थितद्वितीय इति, गन्तुकामश्च गन्तुकामोऽभिधीयते यो हि सदैव गन्तुमना व्यवतिष्ठते, वक्ति च–श्रुतस्कन्धादिपरिसमाप्तावश्यमहं यास्यामि, क इहावतिष्ठते इति, अयमयोग्यः शिष्य इति गाथार्थः ॥ १३७ ॥ इदानीं दोषपरिज्ञानपूर्वकत्वात् गुणाः प्रतिपाद्यन्ते–द्वितीयगाथाव्याख्या—विनयः–अभिवन्दनादिलक्षणः तेन अवनताः विनयावनताः तैरित्थंभूतैः सद्भिः, तथा पृच्छादिषु कृताः प्राञ्जलयो यैस्ते कृतप्राञ्जलयः तैः, तथा छन्दो–गुर्वभिप्रायः तं सूत्रोक्तश्रद्धानसमर्थनकरणकारणादिनाऽनुवर्त्तयद्भिः आराधितो गुरुजनः, 'श्रुतं' सूत्रार्थोभयरूपं 'बहुविधं' अनेकप्रकारं 'लघु' शीघ्रं 'ददाति' प्रयच्छतीति गाथार्थः ॥ १३८ ॥ इदानीं प्रकारान्तरेण शिष्यपरीक्षां प्रतिपादयन्नाह—

सेलघण कुडग चालणि परिपूणग हंस महिस मेसे अ। मसग जलूग बिराली जाहग गो भेरि आभीरी ॥ १३९ ॥

व्याख्या—एतानि शिष्ययोग्यायोग्यत्वप्रतिपादकान्युदाहरणानीति । किंच—चरियं[1] च कप्पितं वा आहरणं दुविहमेव नायव्वं । अत्थस्स साहणट्ठा इंधणमिव ओदणट्ठाए । १ । तत्थ इमं कप्पिअं जहा—मुग्गसेलो पुक्खलसंवट्टओ अ महामेहो जंबूदीवप्पमाणो, तत्थ णारयत्थाणीओ कलहं आँलाएति–मुग्गसेलं भणति–तुज्झ नामग्गहणे कए पुक्खलसंवट्टओ भणति–जहा णं एगाए धाराए विराएमि, सेलो ॥१००॥

---

१ चरितं च कल्पितं वाऽऽहरणं द्विविधमेव ज्ञातव्यम् । अर्थस्य साधनार्थाय इन्धनानीवौदनार्थाय । १ । तत्रेदं कल्पितं यथा–मुद्गशैलः पुष्करसंवर्त्तकश्च महामेघः जम्बूद्वीपप्रमाणः, तत्र नारदस्थानीयः कलहमालगयति (आयोजयति)–मुद्गशैलं भणति–तव नामग्रहणे कृते पुष्कलसंवर्तको भणति–यथैकया धारया विद्रावयामि, शैल * आलो(जो)एति.

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

शिष्यपरिक्षविषयक विविध-दृष्टांता:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]उप्पासितो भणति–जदि मे तिलतुसतिभागंपि उल्ले*ति तो णामं ण वहामि, पच्छा मेहस्स मूले भणति मुग्गसेलवयणाइं, सो रुट्ठो, सव्वादरेण वरिसिउमारद्धो जुगप्पहा+णाहि धाराहिं, सत्तरत्ते वुट्ठे चिंतेति–विरा†ओ होहित्ति ठिओ, पाणिए ओसरिए इतरो मिसिमिसिंतो उज्जलतरो जातो भण‡ति–जोहारोत्ति, ताहे मेहो लज्जितो गतो । एवं चेव कोइ सीसो मुग्गसेलसमाणो एगमवि पदं ण लग्गति, अण्णो आयरिओ गज्जंतो आगतो, अहं णं गाहेमित्ति, आह—आचार्यस्यैव तज्जाड्यं, यच्छिष्यो नावबुध्यते । गावो गोपालकेनेव, कुतीर्थेनावतारिताः ॥ १ ॥ ताहे पढावेउमारद्धो, ण सक्किओ, लज्जिओ गओ, एरिसस्स ण दायव्वं, किं ¶कारणं ?–आयरिए सुत्तंमि अ परिवादो सुत्तअत्थपलिमं$थो । अण्णेसिंपिय हाणी पुट्ठावि ण दुद्ध‖या वंझा ॥ १ ॥ पडिवक्खो कण्ह§भूमी–वुट्ठेवि दोणमेहे ण कण्हभोमाओ लोट्टए उदयं । गहणधरणासमत्थे इअ देयमछित्तिकारंमि ॥ १ ॥

---

१ उत्प्रासितो (असूयितः) भणति–यदि मे तिलतुषत्रिभागमपि आर्द्रयति तदा नाम न वहामि, पश्चात्मेघस्य मूले भणति मुद्गशैलवचनानि, स रुष्टः, सर्वादरेण वर्षितुमारब्धः, युगप्रधानाभिर्धाराभिः, सप्तरात्रं वृष्टे चिन्तयति–विद्रुतो भविष्यति इति स्थितः, पानीयेऽपसृते इतरो दीप्यन् उज्ज्वलतरो जातो भणति–जुहारः (जयोत्कारः) इति, तदा मेघो लज्जितो गतः ॥ एवमेव कश्चिच्छिष्यो मुद्गशैलसमान एकमपि पदं न लगयति, अन्य आचार्यः गर्जयन् आगतः, अहमेनं ग्राहयामि–तदा पाठयितुमारब्धः, न शकितः, लज्जितो गतः, ईदृशाय न दातव्यं, किं कारणम् ?–आचार्ये सूत्रे च परिवादः सूत्रार्थपरिमन्थः (विघ्नः)। अन्येषामपि च हानिः स्पृष्टाऽपि न दुग्धदा (दोग्ध्री) वन्ध्या ॥ १ ॥ प्रतिपक्षः कृष्णभूमिः–वृष्टेऽपि द्रोणमेघे न कृष्णभूमात् लुठति उदकम् । ग्रहणधरणसमर्थे दातव्यमच्छित्तिकरे । १ । * उल्लेवि. + ०पमाणाहिं. † विराइओ. ‡ भणितो. ¶ कज्जं. $ ०पलिमंथा. ‖ दुज्झया. § ०भूमीसु.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ||१०१||

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

इदानीं कुटोदाहरणम्—कुटा घटा उच्यन्ते, ते दुविहा–नवा जुण्णा य, जुण्णा दुविहा–भाविया अभाविया य, भाविआ दुविहा–पसत्थभाविआ अपसत्थभाविआ य, पसत्था–अगुरुतुरुक्कादीहिं, अपसत्था–पलंडुलसुणमादीहिं, पसत्थभाविया वम्मा अवम्मा य, एवं अपसत्थावि, जे अपसत्था अवम्मा जे य पसत्था वम्मा ते ण सुंदरा, इतरे सुंदरा, अभाविता ण केणइ भाविता–णवगा आवाँ*गातो उत्तारितमेत्तगा, एवं चेव सीसगा णवगा–जे मिच्छद्दिट्ठी तप्पढमयाए गाहिज्जंति, जुण्णावि जे अभाविता ते सुंदरा–कुप्पवयणपाँ+सत्थेहिं भाविता एवमेव भावकुडा। संविग्गेहिँ पसत्था वम्माऽवम्मा य तह चेव ॥ १ ॥ जे अपसत्था वम्मा जे य पसत्था संविग्गा य अवम्मा एते लट्ठगा, इतरेवि †अवम्मा। अहवा कूडा चउविहा–छिड्डुकुडे १ बोडकुडे २ खंडकुडे ३ संपुण्णकुडे ४ इति, ‡छिड्डो जो मूले छिड्डो, बोड¶ओ जस्स ओट्ठा नत्थि, खंडो एगं ओट्ठपुडं नत्थि, संपुण्णो सव्वंगो चेव, छिड्डे जं छूढं तं गलति, बोडे तावतिअं ठाति, खंडे एगेण पासेण ||१०१||

---

१ ते द्विविधाः, नवा जीर्णाश्च, जीर्णा द्विविधा–भाविता अभाविताश्च, भाविता द्विविधाः–प्रशस्तभाविता अप्रशस्तभाविताश्च, प्रशस्ताः–अगुरुतुरुष्कादिभिः, अप्रशस्ताः–पलाण्डुलशुनादिभिः, प्रशस्तभाविता वाम्या अवाम्याश्च, एवमप्रशस्ता अपि, ये अप्रशस्ता अवाम्या ये च प्रशस्ता वाम्यास्ते न सुन्दराः, इतरे सुन्दराः, अभाविता न केनचिद्भाविता–नवका आपाकादुत्तारितमात्राः, एवमेव शिष्या नवका–ये मिथ्यादृष्टयस्तत्प्रथमतया ग्राह्यन्ते, जीर्णा अपि येऽभाविताास्ते सुन्दराः। कुप्रवचनपार्श्वस्थैर्भाविता एवमेव भावकुटाः। संविग्नैः प्रशस्ताः वाम्या अवाम्याश्च तथैव। १। ये अप्रशस्ता वाम्या ये च प्रशस्ताः संविग्नाश्चावाम्या एते लष्टाः, इतरेऽप्यवाम्याः। अथवा कुटाश्चतुर्विधाः–छिद्रकुटः अनोष्ठकुटः खण्डकुटः संपूर्णकुटः इति, छिद्रो यो मूले छिद्रवान्, अनोष्ठकुटः–यस्य ओष्ठौ न स्तः, खण्ड एकमोष्ठपुटं नास्ति, संपूर्णः सर्वाङ्गश्चैव, छिद्रे यत्क्षिप्तं तद्गलति, बोटके तावत् तिष्ठति, खण्डे एकेन पार्श्वेण. * आवाहगाओ. + ०ओसण्णेहिं. † ०रे अहम्मा. ‡ तत्थ. ¶ बोडो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

छड्डिज्जइ, जदि इच्छा थोवेणवि रुंभइ,एस विसेसो बोडखंडाणं,संपुण्णो सवं धरेति,एवं चेव सीसा चत्तारि समोतारेयवा।

चालन्युदाहरणम्——चालनी–लोकप्रसिद्धा यया कणिकादि चाल्यते,–जहं चालणीए उदयं छुब्भंतं तक्खणं अधोणीति। तह सुत्तत्थपयाइं जस्स तु सो चालणिसमाणो॥ १ ॥ तथाच शैलच्छिद्रकुटचालनीभेदप्रदर्शनार्थमुक्तमेव भाष्यकृता–सेलेयछिद्दचालणि मिहो कहा सोउ उट्ठियाणं तु। छिड्डाह तत्थ बेट्ठो सुमरिंसु सरामि णेयाणीं॥ १॥ एगेण विसति बितिएण नीति कण्णेण चालणी आह। धण्णु त्थ आह सेलो जं पविसइ णीइ वा तुब्भं॥ २॥ तावसखउरकढिणयं चालणिपडिवक्खु ण सवइ दवंपि।

इदानीं परिपूणकोदाहरणम्——तत्र परिपूर्णकः घृतपूर्णक्षीरकगालनकं चिटिकावासो वा, तेन ह्याभीर्यः किल घृतं गालयन्ति, स च कचवरं धारयति घृतमुज्झति, एवं—वक्खाणादिसु दोसे हिययंमि ठवेति मुअति गुणजालं। सीसो सो उ अजोग्गो भणिओ परिपूणगसमाणो॥ १॥ आह—सर्वज्ञमतेऽपि दोषसंभव इत्ययुक्तं, सत्यमुक्तमेव भाष्यकृता—

---

१ निःसरति, यदीच्छा स्तोकेनापि रुध्यते, एष विशेषो बोटकखण्डयोः, संपूर्णः सर्वं धारयति, एवमेव शिष्याश्चत्वारः समवतारयितव्याः। २ यथा चालन्यामुदकं क्षिप्यमाणं तत्क्षणमधो गच्छति। तथा सूत्रार्थपदानि यस्य तु स चालनीसमानः। १। ३ शैलच्छिद्रचालनीनां मिथः कथां श्रुत्वोत्थितानां तु। छिद्र आह–तत्रोपविष्टः अस्मार्षं स्मरामि नेदानीम्। १। एकेन विशति कर्णेन द्वितीयेन निःसरति चालन्याह। धन्याऽत्र आह शैलो यत्प्रविशति निःसरति वा तव (त्वयि) २। तापसकमण्डलु चालनीप्रतिपक्षः न स्रवति द्रवमपि. ४ व्याख्यानादिषु दोषान् हृदये स्थापयति मुञ्चति गुणजालम्। शिष्यः स त्वयोग्यो भणितः परिपूणकसमानः। १। * रुज्झति. + परिपूणकः (स्यात्). † इत्युक्तं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१०२॥ | हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

[1]सव्वण्णुपमाणाओ दोसा ण हु संति जिणमए किं*चि । जं अणुवउत्तकहणं अपत्तमासज्ज व †भवंति । १ ।

इदानीं हंसोदाहरणम्—[2]अंबत्तणेण जीहाइ कूइआ होइ खीरमुदगंमि । हंसो मोत्तूण जलं आपियइ पयं तह सुसीसो ॥ १ ॥ मोत्तूण दढं दोसे गुरुणोऽणुवउत्तभासितादीए । गिण्हइ गुणे उ जो सो जोग्गो समयत्थसारस्स ॥ २ ॥

इदानीं महिषोदाहरणम्—[3]सयमवि ण पियइ महिसो ण य जूहं पियइ लोलियं उदयं । विग्गहविगहाहि तहा अथक्कपुच्छाहि य कुसीसो ॥ १ ॥

मेषोदाहरणम्—अवि [4]गोप्पदंमिवि पिबे सुढिओ तणुअत्तणेण तुंडस्स । ण करेति कलुसमुदगं मेसो एवं सुसीसोऽवि ॥१॥

मशकोदाहरणम्—[5]मसगो व तुदं जच्चादिएहि णि+च्छुब्भते कुसीसोऽवि ।

जलूकोदाहरणम्–जलूगा[6] व अदूमंतो पिबति सुसीसोऽवि सुयणाणं ।

बिराल्युदाहरणम्—छड्डेउं[7] भूमीए जह खीरं पिबति दुट्ठमज्जारी । परिसुट्ठियाण पासे सिक्खति एवं विणयभंसी ॥ १ ॥

---

१ सर्वज्ञप्रामाण्यात् दोषा नैव सन्ति जिनमते केऽपि । यदनुपयुक्तकथनं अपात्रमासाद्य वा भवन्ति । १ । २ अम्लतया जिह्वायाः कूर्चिका भवति क्षीरमुदके । हंसो मुक्त्वा जलमापिबति पयः तथा सुशिष्यः । १ । मुक्त्वा दृढं दोषान् गुरोरनुपयुक्तभाषितादिकान् । गृह्णाति गुणाँस्तु यः स योग्यः समयार्थ-(स्थ) सारस्य । २ । ३ स्वयमपि न पिबति महिषो न च यूथं पिबति लोठितमुदकम् । विग्रहविकथाभिस्तथा अविश्रान्तपृच्छाभिश्च कुशिष्यः । १ । ४ अपि गोष्पदेऽपि पिबति मेषस्तनुत्वेन तुण्डस्य । न करोति कलुषमुदकं मेष एवं सुशिष्योऽपि । १ । ५ मशक इव तुदन् जात्यादिभिराददाति (तुदति) कुशिष्योऽपि. ६ जलौका इव अदुन्वन् पिबति सुशिष्योऽपि श्रुतज्ञानं. ७ छर्दयित्वा भूमौ यथा क्षीरं पिबति दुष्टमार्जारी । पर्षदुत्थितानां पार्श्वे शिक्षते एवं विनयभ्रंशी. ॥ १ ॥ * केवि. + भणंति. † वि०.

॥१०२॥

Jain Education International · For Personal & Private Use Only · www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

जाहकस्तिर्यग्विशेषः, तदुदाहरणम्—पातुं थोवं थोवं खीरं पासाणि जाहओ लिहइ। एमेव जितं काउं पुच्छति मतिमं ण खेदेति। १।

गोउदोहरणम्—एगेण धम्मट्ठितेण चाउव्वेज्जाण गावी दिण्णा, ते भणंति–परिवाडीए दुज्झउ, तहा कतं, पढमपरिवाडीदोहगो चिंतेति–अज्ज चेव मज्झं दुद्धं, कल्लं अण्णस्स होहिति, ता किं मम तणपाणिएण इह हारवितेण ?, ण दिण्णं, एवं सेसेहि वि, गावी मता, अवण्णवादो य धिज्जाइयाणं, तद्दव्वण्णदव्वोच्छेदो, उक्तं च—अण्णो दोज्झति कल्लं णिरत्थयं से वहामि किं चारिं ?। चउचरणगवी उ मता अवण्णहाणी उ बडुआणं ॥ १ ॥ प्रतिपक्षगौः–माँ मे होज्ज अवण्णो गोवज्झा मा पुणो व ण लभेज्जा। वयमवि दोज्झामो पुण अणुग्गहो अण्णदूहेऽवि । दार्ष्टान्तिकयोजना–सीसा पडिच्छगाणं भरोत्ति तेवि य सीसगभरोत्ति। ण करेंति सुत्तहाणी अण्णत्थवि दुलहं तेसिं ॥ १ ॥ अविणीयत्तणओ।

---

१ पीत्वा स्तोकं स्तोकं क्षीरं पार्श्वयोर्जाहको लेढि। एवमेव जीतं (परिचितं) कृत्वा पृच्छति मतिमान् न खेदयति। १। २ गवोदाहरणम्–एकेन धर्मार्थिकेन चातुर्वैद्येभ्यो गौर्दत्ता, ते भणन्ति-परिपाट्या दुहन्तु, तथा कृतं, प्रथमपरिपाटीदोहकश्चिन्तयति–अद्यैव मम दुग्धं, कल्ये अन्यस्य भविष्यति, तत्किं मम तृणपानीयाभ्यामाहारिताभ्यामिह ?, न दत्तं, एवं शेषैरपि, गौर्मृता, अवर्णवादश्च धिग्जातीयानां, तद्द्रव्यान्यद्रव्यव्यवच्छेदः, उक्तं च—अन्यो धोक्ष्यति कल्ये निरर्थकं तस्या वहामि किं चारीम्। चतुश्चरणा गौर्मृतैव, अवर्णो हानिस्तु बटुकानाम्। १। ३ माऽस्माकं भूदवर्णो गोवधका (इति) मा पुनश्च न लभिध्वम्। वयमपि धोक्ष्यामः पुनरनुग्रहोऽन्येन दुग्धेऽपि। १। ४ शिष्याः प्रतीच्छकानां भार इति तेऽपि च शिष्यभार इति। न कुर्वन्ति सूत्रहानिः अन्यत्रापि दुर्लभं तेषां। १। अविनीतत्वात्. * ०वाडिगो. + मज्झ उ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक- ॥१०३॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

भेर्युदाहरणं पूर्ववत् । आभीर्युदाहरणम्—आभीराणि घयं गड्डीए घेत्तूण पट्टणं विक्किणाणि* गयाणि, आढत्ते मेप्पे+ आभीरी हेट्ठओ ठिता पडिच्छति†, आभीरोऽवि वारगेण अप्पिणति, कथमवि अणुवउत्तं प्पिण‡णे गहणे वा अंतरे वारगो भग्गो, आभीरी भणति-आ सच्च गामेल्लग! किं ते ¶कडं?, इतरोऽवि आह—तुमं उम्मत्ता अण्णं पलोएसि अण्णं गेण्हसि, ताणं कलहो, पिट्टापिट्टी जाता, सेसंपि घयं पडियं, उसूरए§ जंताणं सेसघयरूवगा बलद्दा य तेणेहिं हडा, अणाभागि§णो संवुत्ताणि। एवं जो सीसो पच्चुच्चारादि करेंतो अण्णहा परूवेंतो पढंतो वा सिक्खावितो भणति—तुमे चेव एवं वक्खाणिअं कहिअं वा–मा णिण्हवेहि दाउं उवजुंजिअ देहि किंचि चिंतेहि। वच्चामेलियदाणे किलिस्ससि तं चऽहं चेव॥ १॥ पडिवक्खे कहाणगं पूर्ववत्, नानात्वं प्रदर्श्यते, भग्गे वा||रगे उत्तिण्णो, दोहिवि तुरितं तुरितं कप्परेहिं घतं लइअं, थेवं नड्ढं, सो आभीरो भणति–

---

१ आभीरा घृतं गन्त्र्या गृहीत्वा पत्तनं विक्रायका गताः, आरब्धे माने आभीरी अधःस्थिता प्रतीप्सति, आभीरोऽपि वारकेणार्पयति, कथमप्यनुपयुक्तं अर्पणे ग्रहणे वाऽन्तरा घटो भग्नः, आभीरी भणति-आः सत्यं ग्रामेयक ! किं त्वया कृतं !, इतरोऽप्याह–त्वमुन्मत्ताऽन्यं प्रलोकयसि अन्यं गृह्णासि, तयोः कलहो (जातः) केशाकेशि जातं, शेषमपि घृतं पतितं, उत्सूरे यातोः शेषघृतरूप्यका बलीवर्दौ च स्तेनैर्हृतौ, अनाभागिनौ (भोगानां) संवृत्तौ । एवं यः शिष्यः प्रत्युच्चारादि कुर्वन् अन्यथा प्ररूपयन् पठन् वा शिक्षितः भणति-त्वयैवैवं व्याख्यातं कथितं वा, मा अपलपीः दत्त्वा उपयुज्य देहि किञ्चिच्चिन्तय । व्यत्याम्रेडितदाने क्लेक्ष्यसि त्वं चाहमेव । १ । प्रतिपक्षे कथानकं, भग्ने घटे उत्तीर्णः, द्वाभ्यामपि त्वरितं त्वरितं कर्परैर्घृतं लातं, स्तोकं नष्टं, स आभीरो भणति–

* विक्किणगाणि. + मेप्पे. † पडिच्छेति. ‡ ०उत्त प्पि०. ¶ कतं. § उसूरयं. § अणाभागीणि संवुत्ताणि. || वारगो उदीण्णो.

॥१०३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मए ण सुट्ठु पणामितं, सावि भणति–मए ण सुट्ठु गहियं । एवं आयरिएण आलावगे दिं*ण्णे विणा†सितो, पच्छा आयरिओ भणति–मा एवं कुट्टेहि, मया अणुवउत्तेण दिण्णो त्ति, सीसो भणति–मए ण सुट्ठु गहितोत्ति । अहवा जहा आभीरो जाणति—एवड्डा धारा घडे माइ‡त्ति, एवं आयरिओऽवि जाणति–एवड्डुं आलावगं सक्केहिति गेण्हिउंति गाथार्थः ॥१३९॥

इत्थमाचार्यशिष्यदोषगुणकथनलक्षणो व्याख्यानविधिः प्रतिपादितः, इदानीं कृतमङ्गलोपचारो व्यावर्णितप्रसङ्ग-विस्तरः प्रदर्शितव्याख्यानविधिरुपोद्घातदर्शनायाह—

उद्देसे‡ १ निद्देसे २ निग्गमे ३ खित्त ४ काल ५ पुरिसे ६ अ ।
कारण ७ पच्चय ८ लक्खण ९ नए १० समोआरणा ११ ऽणुमए १२ ॥ १४० ॥
किं १३ कइविहं १४ कस्स १५ कहिं १६ केसु १७ कहं १८ केच्चिरं १९ हवइ कालं ।
कइ २० संतर २१ मविरहिअं २२ भवा २३ गरिस २४ फासण २५ निरुत्ती २६ ॥ १४१ ॥

व्याख्या—उद्देशो वक्तव्यः, एवं सर्वेषु क्रिया योज्या, उद्देशन¶मुद्देशः–सामान्याभिधानं अध्ययनमिति, निर्देशनं निर्देशः–विशेषाभिधानं सामायिकमिति, तथा निर्गमणं निर्गमः, कुतोऽस्य निर्गमणमिति वाच्यं, क्षेत्रं वक्तव्यं कस्मिन्

१ मया न सुष्ठु अर्पितं, साऽपि भणति–मया न सुष्ठु गृहीतं । एवमाचार्येण आलापके दत्ते विनाशितः, पश्चादाचार्यो भणति–मैवं कुट्टीः, मयाऽनुपयुक्तेन दत्त इति, शिष्यो भणति–मया न सुष्ठु गृहीत इति । अथवा यथा आभीरो जानाति–एतावती धारा घटे माति इति, एवमाचार्योऽपि जानाति–एतावन्तं आलापकं शक्ष्यति ग्रहीतुमिति. * दिण्णि. + विणासेंते. † माति. ‡ उद्देसे य. ¶ उद्देशः समुद्देशः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याखान-विधिः उपोद्घातः -- उद्देश, निर्देश-आदि २६ पदार्थाः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ||१०४||

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

क्षेत्रे ?, कालो वक्तव्यः कस्मिन् काले ?, पुरुषश्च वक्तव्यः कुतः पुरुषात् ?, कारणं वक्तव्यं किं कारणं गौतमादयः शृण्वन्ति?, तथा प्रत्याययतीति प्रत्ययः स च वक्तव्यः, केन प्रत्ययेन भगवतेदमुपदिष्टं ? को वा गणधराणां श्रवण इति, तथा लक्षणं वक्तव्यं श्रद्धानादि, तथा नया–नैगमादयः, तथा तेषामेव समवतरणं* वक्तव्यं यत्र संभवति+, वक्ष्यति च '[2]मूढणइयं सुयं कालियं तु' इत्यादि, 'अनुमतं' इति कस्य व्यवहारादेः किमनुमतं सामायिकमिति, वक्ष्यति—'[3]तवसंजमो अणुमओ' इत्यादि, किं सामायिकम् ? '[4]जीवो गुणपडिवण्णो' इत्यादि वक्ष्यति, कतिविधं सामायिकं ? '[5]सामाइयं च तिविहं सम्मत्त सुयं तहा चरित्तं च' इत्यादि प्रतिपादयिष्य†ते, कस्य सामायिकमिति, वक्ष्यति–'[6]जस्स सामाणिओ अप्पा' इत्यादि, क्व सामायिकं, क्षेत्रादाविति, वक्ष्यति–'[7]खेत्तकाल‡दिसि गति भविय' इत्यादि, केषु सामायिकमिति, सर्वद्रव्येषु, वक्ष्यति–'[8]सव्वगतं सम्मत्तं सुए चरित्ते ण पज्जवा सव्वे' इत्यादि, कथमवाप्यते ?, वक्ष्यति–'[9]माणुस्सखित्तजाइ' इत्यादि, कियच्चिरं भवति ? कालमिति, वक्ष्यति–'[10]सम्मत्तस्स सुयस्स य छावट्ठी सागरोवमाइ ठिती' इत्यादि, 'कति' इति कियन्तः प्रति¶पद्यन्ते ? पूर्वप्रतिपन्ना$ वेति वक्तव्यं, वक्ष्यति च–'[11]सम्मत्तदेसविरया पलियस्स असंखभागमित्ता§ उ' इत्यादि,

---

१ सम्यक्त्वसामायिकादेः. २ मूढनयिकं श्रुतं कालिकं तु. ३ तपःसंयमोऽनुमतः. ४ जीवो गुणप्रतिपन्नः. ५ सामायिकं च त्रिविधं सम्यक्त्वं श्रुतं तथा चारित्रं च. ६ यस्य समानीतः आत्मा. ७ क्षेत्रकालदिग्गतिभव्य० ८ सर्वगतं सम्यक्त्वं श्रुते चरित्रे न पर्यवाः सर्वे. ९ मानुष्यं क्षेत्रं जातिः. १० सम्यक्त्वस्य श्रुतस्य च षट्षष्टिः सागरोपमाणि स्थितिः. ११ सम्यक्त्वदेशविरताः पल्यस्यासंख्यभागमात्रा एव. * समवतारणं च. + संभवन्ति. † ०ष्यति. ‡ ०दिसिकाल०. ¶ ०पाद्यन्ते $ ०पन्नाश्चेति § ०मेत्ता.

||१०४||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'सान्तरं' इति सह अन्तरेण वर्त्तत इति सान्तरं, किं सान्तरं निरंतरं वा ?, यदि सान्तरं किमन्तरं भवति ?, वक्ष्यति–'[१]कालमणंतं च सुते अद्धापरियट्टगो य देसूणो' इत्यादि, 'अविरहितं' इति अविरहितं कियन्तं कालं प्रतिपद्यन्त इति, वक्ष्यति –'सुते[२]सम्मअगारीणं आवलियासंखभाग' इत्यादि, तथा 'भवा' इति कियतो भवानुत्कृष्टतः खल्ववाप्यं*न्ते '[३]सम्मत्तदेसविरता पलियस्स असंखभागमित्ता उ । अट्ठभवा उ+ चरित्ते' इत्यादि, आकर्षणमाकर्षः, एकानेकभवेषु ग्रहणानीति भा†वार्थः, '[४]तिण्हं सहस्सपुहुत्तं सयपुहुत्तं च होंति विरईए । एगभवे आगरिसा' इत्यादि, स्पर्शना वक्तव्या, कियत्क्षेत्रं सामायिकवन्तः स्पृशन्तीति‡, वक्ष्यति–'सम्म[५]त्तचरणसहिआ सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं' इत्यादि, निश्चिता उक्तिर्निरुक्तिर्वक्तव्या–'[६]सम्मद्दिट्ठी अमोहो सोही सब्भाव दंसणे बोही' इत्यादि वक्ष्यति। अयं तावद्गाथाद्वयसमुदायार्थः, अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं प्रपञ्चेन वक्ष्यामः। अत्र कश्चिदाह—पूर्वमध्ययनं सामायिकं तस्यानुयोगद्वारचतुष्टयमुपन्यस्तं, अतस्तदुपन्यास एव उद्देशनिर्देशावुक्तौ, तथौघनामनिष्पन्ननिक्षेपद्वये च, अतः पुनरनयोरभिधानमयुक्तमिति, अत्रोच्यते, तत्र हि अत्र¶ द्वारद्वयोक्तयोरनागतग्रहणं द्रष्टव्यं, अन्यथा तद्ग्रहणमन्तरेण द्वारोपन्यासादय एव न स्युः, अथवा द्वारोपन्यासादिविहितयोस्तत्राभिधानमात्रं इह त्वर्थानुग-

---

१ कालोऽनन्तश्च श्रुते, पुद्गलपरावर्त्तश्च देशोनः. २ श्रुतसम्यक्त्वागारिणां आवलिकाऽसंख्यभाग. ३ सम्यक्त्वदेशविरताः पल्यस्यासंख्यभागमात्रानेव । अष्टभवास्तु चारित्रे. ४ त्रयाणां सहस्रपृथक्त्वं, शतपृथक्त्वं च भवति विरतेः । एकभवे आकर्षाः–५ सम्यक्त्वचरणसहिताः सर्वं लोकं स्पृशन्ति निरवशेषं ६ सम्यग्दृष्टिरमोहः शोधिः सद्भावः दर्शनं बोधिः. * ०वाप्यते. + नेदम्. † भावार्थ इति. ‡ ०ति भावार्थः. ¶ एतद्वारद्व०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मद्वाराधिकारे वि*धानतो लक्षणतश्च व्याख्या क्रियत इति । आह—यद्येवं निर्गमो न वक्तव्यः, तस्यागमद्वार एवाभिहितत्वात्, तथा च 'आत्मागम' इत्याद्युक्तं, ततश्च तीर्थकरगणधरेभ्य एव निर्गतमिति गम्यते इति, उच्यते, सत्यं किंतु इह तीर्थकरगणधराणामेव निर्गमोऽभिधीयते, कोऽसौ तीर्थकरो गणधराश्चेति, वक्ष्य+ते–वर्धमानो गौतमादयश्चेति, यथा च तेभ्यो निर्गतं तथा† क्षेत्रकालपुरुषकारणप्रत्ययविशिष्टमित्यतोऽदोष इति । आह—यद्येवं लक्षणं न वक्तव्यं, उपक्रम एव नामद्वारे क्षायोपशमिकभावेऽवतारितत्वात्, प्रमाणद्वारे च जीवगुणप्रमाणे आगमे इति,उच्यते,तत्र निर्देशमात्रत्वात्, इह तु प्रपञ्चतोऽभिधानाददोषः, अथवा तत्र श्रुतसामायिकस्यैवोक्तं, इह तु चतुर्णामपि लक्षणाभिधानाददोषः । आह—नयाः प्रमाणद्वार एवोक्ताः किमिहोच्यन्ते ?, स्वस्थाने च मूलद्वारे वक्ष्यमाणा एवेति, उच्यते, प्रमाणद्वारोक्ता एवेह व्याख्यायन्ते, अथवा प्रमाणद्वाराधिकारात्तत्र प्रमाणभावमात्रमुक्तं, इह तु स्वरूपावधारणमवतारो वाऽऽ‡रभ्यते, एते च सर्व एव सामायिकसमुदायार्थमात्रविषयाः प्रमाणोक्ता उपोद्घातोक्ताश्च नयाः ¶सूत्रविनियोगिनः, मूलद्वारोपन्यस्तनयास्तु सूत्रव्याख्योपयोगिन एवेति । आह—प्रमाणद्वारे जीवगुणः सामायिकं ज्ञानं चेति प्रतिपादितमे§व, ततश्च किं सामायिकमित्याशङ्कानुपपत्तिः,उच्यते,जीवगुणत्वे ज्ञानत्वे च सत्यपि किं तज्जीव एव आहोस्विद् जीवादन्यदिति संशयः,तदुच्छित्त्यर्थमुपन्यासाददोषः । आह—नामद्वारे क्षायोपशमिकं सामायिकमुक्तं तत्तदावरणक्षयोपशमाल्लभ्यत इति गम्यत एव, अतः कथं लभ्यत इत्यतिरिच्यते, न, क्षयोपशमलाभस्यैवेह शेषाङ्गलाभचिन्तनादिति । एवं यदुपक्रमनिक्षेपद्वारद्वयाभिहितमपि पुनः ॥१०५॥

* ऽभिधानतो. + वक्ष्यति. † तथा च यथा च. ‡ चिन्त्यते. ¶ न तु सूत्रविनियोगिनः. § ०मेवेति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

प्रतिपादयति अनुगमद्वारावसरे तदशेषं निर्दिष्टनिक्षिप्तप्रपञ्चव्याख्यानार्थमिति । आह—उपक्रमः प्रायः शास्त्रसमुत्थानार्थ उक्तः, अयमप्युपोद्घातः शास्त्रसमुद्घातप्रयोजन एवेति कोऽनयोर्भेदः ?, उच्यते, उपक्रमो ह्युद्देशमात्रनियतः, तदुद्दिष्टवस्तुप्रबोधनफलस्तु प्रायेणोपोद्घातः, अर्थानुगमत्वात् इत्यलं विस्तरेण, प्रकृतमुच्यते ॥ १४१ ॥ तत्रोद्देशद्वारावयवार्थप्रतिपादनायेदमाह—

नामं ठवणा दविए खेत्ते काले समास उद्देसे । उद्देसुद्देसंमि अ भावंमि अ होइ अट्ठमओ ॥ १४२ ॥

व्याख्या—तत्र नामोद्देशः—यस्य जीवादेरुद्देश इति नाम क्रियते, नाम्नो वा उद्देशः नामोद्देशः, स्थापनोद्देशः—स्थापनाभिधानं उद्देशन्यासो वा, 'द्रव्ये' इति द्रव्यविषय उद्देशो द्रव्योद्देशः, स च आगमनोआगमज्ञशरीरेतरव्यतिरिक्तः द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्ये वा उद्देशो द्रव्योद्देशः, द्रव्यस्य—द्रव्यमिदमिति, द्रव्येण—द्रव्यपतिरयमिति, द्रव्ये—सिंहासने राजा चूते कोकिलः गिरौ मयूर इति, एवं क्षेत्रविषयोद्देशोऽपि वक्तव्यः,एवं कालविषयोऽपीति, 'समासः' संक्षेपस्तद्विषय उद्देशः समासोद्देशः, स च अङ्गश्रुतस्कन्धाध्ययनेषु द्रष्टव्यः, तत्र अङ्गसमासोद्देशः—अङ्गं अङ्गी तदध्येता तदर्थज्ञ इत्येवमन्यत्रापि योजना कार्या, उद्देशः—अध्ययनविशेषः तस्य उद्देश उद्देशोद्देशः, तद्विषयश्च उद्देश इति, स चोद्देशोद्देशोऽभिधीयते—उद्देशवान् तदध्येता तदर्थज्ञो वेति, भावविषयश्च भवति उद्देशः अष्टमक इति, स चायं—भावः भावी भावज्ञो वेति गाथार्थः ॥ १४२ ॥ अयमेव ह्युद्देशोऽष्टविधविशिष्टनामसहितो निर्देश इत्यवसेयः, तथा चाह निर्युक्तिकारः—

एमेव य निद्देसो अट्ठविहो सोऽवि होइ णायव्वो । अविसेसिअमुद्देसो विसेसिओ होइ निद्देसो ॥ १४३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

व्याख्या—'एवमेव च' यथा उद्देश उक्तस्तथा, निर्देशोऽप्यष्टविध एव भवति ज्ञातव्यः, सर्वथा साम्यप्राप्त्यतिप्रसङ्गविनिवृत्त्यर्थमाह–किंतु 'अविशेषितः' सामान्याभिधानादिगोचरः उद्देशः, विशेषितस्तु भवति निर्देशः, यथा नामनिर्देशो जिनभद्र इत्याद्यभिधानविशेषनिर्देशः, स्थापनानिर्देशः स्थापनाविशेषाभिधानं निर्देशस्थापना वा, विशिष्टद्रव्याभिधानं द्रव्यनिर्देशः यथा—गौः, तेन वा–अश्ववानित्यादि, एवं क्षेत्रविशेषाभिधानं क्षेत्रनिर्देशः यथा—भरतं, क्षेत्रेण–सौराष्ट्र इत्यादि, कालविशेषाभिधानं कालनिर्देशः यथा—समय इत्यादि, तेन वा–वासन्तिक इत्यादि, समासनिर्देशः–आचाराङ्गं आवश्यक-श्रुतस्कन्धः सामायिकं चेति, उद्देशनिर्देशः–शस्त्रपरिज्ञादेः प्रथमो द्वितीयो वेति, भगवत्यां वा पुद्गलोद्देशो वेति, भावव्यत्त्यभिधानं भावनिर्देशः यथा—औदयिक इत्यादि, तेन—औदयिकवान् क्रोधीत्यादि वेति अलं विस्तरेणेति गाथार्थः॥१४३॥ इह समासोद्देशनिर्देशाभ्यामधिकारः, कथं ?, अध्ययनमिति समासोद्देशः सामायिकमिति समासनिर्देशः, इदं च सामायिकं नपुंसकम् , अस्य च निर्देष्टा त्रिविधः–स्त्री पुमान् नपुंसकं चेति, तत्र को नयो नैगमादिः कं निर्देशमिच्छतीत्यमुं अर्थमभिधित्सुराह—

दुविहंपि णेगमणओ णिद्देसं* संगहो य ववहारो। निद्देसगमुज्जुसुओ उभयसरित्थं च सद्दस्स ॥ १४४ ॥

व्याख्या—'द्विविधमपि' निर्देश्यवशात् निर्देशकवशाच्च नैगमनयो निर्देशमिच्छति, कुतः ?, लोकसंव्यवहारप्रवणत्वात् नैकगमत्वाच्चास्येति, लोके च निर्देश्यवशात् निर्देशकवशाच्च निर्देशप्रवृत्तिरुपलभ्यते, निर्देश्यवशात् यथा—वासवदत्ता ॥१०६॥

* णिद्दिट्ठं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

प्रियदर्शनेति, निर्देशकवशाच्च यथा—मनुना प्रोक्तो ग्रन्थो मनुः,अक्षपादप्रोक्तोऽक्षपाद इत्यादि,लोकोत्तरेऽपि निर्देश्यवशात् यथा—षड्जीवनिका, तत्र हि षड् जीवनिकाया निर्देश्या इति, एवमाचारक्रियाऽभिधायकत्वादाचार इत्यादि, तथा निर्देशकवशात् जिनवचनं कापिलीयं नन्दसंहितेत्येवमादि, एवं सामायिकमर्थरूपं रूढितो नपुंसकमितिकृत्वा नैगमस्य निर्देश्यवशान्नपुंसकनिर्देश एव, तथा सामायिकवतः स्त्रीपुन्नपुंसकलिङ्गत्वात् तत्परिणामानन्यत्वाच्च सामायिकार्थरूपस्य स्त्रीपुंनपुंसकलिङ्गत्वाविरोधमपि मन्यते, तथा निर्देष्टुस्त्रिलिङ्गसंभवात् निर्देशकवशादपि त्रिलिङ्गतामनुमन्यते नैगमः। आह—'द्विविधमपि नैगमनयः' इत्येतावत्युक्ते निर्देश्यवशात् निर्देशकवशाच्च निर्देशमिच्छतीति क्रियाऽध्याहारः कुतोऽवसीयते इति, उच्यते, यत आह—'निर्दिष्टं' वस्त्वङ्गीकृत्य, संग्रहो व्यवहारः, चशब्दस्य व्यवहितः संबन्धो, निर्देशमिच्छतीति वाक्यशेषः अत्र भावना—वचनं ह्यर्थप्रकाशकमेवोपजायते, प्रदीपवत्, यथा हि प्रदीपः प्रकाश्यं प्रकाशयन्नेव आत्मरूपं प्रतिपद्यते, एवं ध्वनिरप्यर्थं प्रतिपादयन्नेव, ततस्तत्प्रत्ययोपलब्धेः, तस्मान्निर्दिष्टवशात् निर्देशप्रवृत्तिरिति, ततश्च सामायिकमर्थरूपं रूढितो नपुंसकमतस्तदधिकृत्य संग्रहो व्यवहारश्च निर्देशमिच्छतीति, अथवा सामायिकवतः स्त्रीपुंनपुंसकलिङ्गत्वात् तत्परिणामानन्यत्वाच्च सामायिकार्थस्य त्रिलिङ्गतामपि मन्यत इति। तथा निर्देशकसत्त्वमङ्गीकृत्य सामायिकनिर्देशं ऋजुसूत्रो मन्यते, वचनस्य वक्तुरधीनत्वात् तत्पर्यायत्वात् तद्भावभावित्वादिति। ततश्च यदा पुरुषो निर्देष्टा तदा पुँल्लिङ्गता, एवं स्त्रीनपुंसकयोजनाऽपि कार्या, तथा 'उभयसदृशं' निर्देश्यनिर्देशकसदृशं, समानलिङ्गमेव वस्त्वङ्गीकृत्य, शब्दस्य निर्देशप्रवृत्तिरिति वाक्यशेषः, एतदुक्तं भवति–उपयुक्तो हि निर्देष्टा निर्देश्यादभिन्न एव, तदुपयोगानन्यत्वात्,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ततश्च पुंसः पुमांसमभिदधतः पुन्निर्देश एव, एवं स्त्रियाः स्त्रियं प्रतिपादयन्त्याः स्त्रीनिर्देश एव, एवं नपुंसकस्य नपुंसकमभिदधानस्य नपुंसकनिर्देश एव, यदा तु पुमान् स्त्रियमभिधत्ते, तदा स्त्र्युपयोगानन्यत्वात् स्त्रीरूप एवासौ, निर्देश्यनिर्देशकयोः समानलिङ्गतैव, एवं सर्वत्र योज्यं*, असमानलिङ्गनिर्देष्टाऽस्य अवस्त्वेव, यदा पुमान् पुमांसं स्त्रियं चाहेति, कुतः ?, तस्य पुरुषयोषिद्विज्ञानोपयोगभेदाभेदविकल्पद्वारेण पुरुषयोषिदापत्तेः, अन्यथा वस्त्वभावप्रसङ्गात्, तस्मादुपयुक्तो यमर्थमाह स तद्विज्ञानानन्यत्वात्तन्मय एव, तन्मयत्वाच्च तत्समानलिङ्गनिर्देशः, ततश्च सामायिकवक्ता तदुपयोगानन्यत्वात् सामायिकं प्रतिपादयन्नात्मानमेवाह यतः तस्मात्तत्समानलिङ्गाभिधान एवासौ, रूढितश्च सामायिकार्थरूपस्य नपुंसकत्वा त्स्त्रियाः पुंसो नपुंसकस्य वा प्रतिपादयतः+ सामायिकं नपुंसकलिङ्गनिर्देश एवेति गाथासमासार्थः । व्यासार्थस्तु विशेषविवरणादवगन्तव्य इति । सर्वनयमतान्यपि चामूनि पृथग्विपरीतविषयत्वात् न प्रमाणं, समुदितानि त्वन्तर्बाह्यनिमित्तसामग्रीमयत्वात् प्रमाणमिति अलं विस्तरेण, गमनिकामात्रप्रधानत्वात् प्रस्तुतप्रयासस्य ॥ १४४ ॥

इदानीं निर्गमविशेषस्वरूपप्रतिपादनायाह—

नामं ठवणा दविए खित्ते काले तहेव भावे अ । एसो उ निग्गमस्सा णिक्खेवो छव्विहो होइ ॥ १४५ ॥

गमनिका—नामस्थापने पूर्ववत्, द्रव्य†निर्गमः—आगमनोआगमज्ञशरीरेतरव्यतिरिक्तः, स च त्रि‡धा—सचित्ताचित्तमिश्रभेदभिन्नः, तत्र सचित्तात्सचित्तस्य यथा पृथिव्या अङ्कुरस्य, सचित्तान्मिश्रस्य यथा—भूमेः पतङ्गस्य, सचित्तादचित्तस्य ॥१०७॥

१ पक्षस्य अचित्तत्वात्. * संयोज्यं. + ०ति सामा०. † द्रव्यस्य द्रव्याद्वा. ‡ ०रिक्तः सचित्ता०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

यथा–भूमेर्बाष्पस्य, तथा मिश्रात्सचित्तस्य यथा—देहात्कृमिकस्य, मिश्रान्मिश्रस्य यथा—स्त्रीदेहाद्गर्भस्य, मिश्रादचित्तस्य यथा—देहाद् विष्ठायाः, अचित्तात्सचित्तस्य यथा—काष्ठात्कृमिकस्य, अचित्तान्मिश्रस्य यथा—काष्ठाद् घुणस्य, अचित्ताद-चित्तस्य यथा—काष्ठाद् घूणचूर्णस्य । अथवा द्रव्यात् द्रव्यस्य द्रव्यात् द्रव्याणां द्रव्येभ्यो द्रव्यस्य द्रव्येभ्यो द्रव्याणा-मिति, तत्र द्रव्याद् द्रव्यस्य यथा—रूपकात् रूपकस्य निर्गमः, एकस्मादेव कलान्तरप्रयुक्तादिति भावार्थः, एकस्मादेव कलान्तरतः प्रभूतनिर्गमो द्वितीयभङ्गभावना, प्रभूतेभ्यः स्वल्पकालेनैकस्य निर्गमो भवति तृतीयभङ्गभावना, प्रभूतेभ्यः प्रभूतानां कलान्तरतश्चतुर्थभङ्गभावनेति, 'क्षेत्रे' इति क्षेत्रविषयो निर्गमः प्रतिपाद्यते, एवं सर्वत्र अक्षरगमनिका कार्या, तत्र कालनिर्गमः–कालो ह्यमूर्त्तस्तथापि उपचारतो वसन्तस्य निर्गमः दुर्भिक्षाद्वा निर्गतो देवदत्तो बालकालाद्वेति, अथवा कालो द्रव्यधर्म एव, तस्य द्रव्यादेव निर्गमः, तत्प्रभवत्वादिति, एवं भावनिर्गमः तत्र पुद्गलाद्वर्णादिनिर्गमः, जीवात्क्रोधादिनिर्गमः इति, तयोर्वा पुद्गलजीवयोर्वर्णविशेषक्रोधादिभ्यो निर्गम इति, एष एव निर्गमस्य निक्षेपः षड्विध इति गाथार्थः ॥ १४५ ॥

एवं शिष्यमतिविकाशार्थं प्रसङ्गत उक्तोऽनेकधा निर्गमः, इह च प्रशस्तभावनिर्गममात्रेण अप्रशस्तापगमेन वाऽधिकारः, शेषैरपि तदङ्गत्वाद्, इह च द्रव्यं वीरः क्षेत्रं महासेनवनं कालः प्रमाणकालः भावश्च भावपुरुषः, एवं च निर्गमाङ्गानि द्रष्टव्यानीति एतानि च द्रव्याधीनानि यतः अतः प्रथमं जिनस्यैव मिथ्यात्वादिभ्यो निर्गममभिधित्सुराह—

१ उष्णतायाः. २ केशयुतत्वात् एवमग्रेऽपि. * ०र्गमो वक्तव्यः तृती०. + कालान्तरतश्च०. † विकासार्थं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पं*थं किर देसित्ता साहूणं अडविविप्पणट्ठाणं । सम्मत्तपढमलंभो बोद्धव्वो वद्धमाणस्स ॥ १४६ ॥

गमनिका—पन्थानं किल देशयित्वा साधूनां अटवीविप्रनष्टानां पुनस्तेभ्य एव देशनां श्रुत्वा सम्यक्त्वं प्राप्तः, एवं सम्यक्त्वप्रथमलाभो बोद्धव्यो वर्धमानस्येति समुदायार्थः ॥ १४६ ॥ अवयवार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—अवरवि-देहे एगंमि गामे बलाहिओ,सो य रायादेसेण सगडाणि गहाय दारुनिमित्तं महाडविं पविट्ठो,इओ य साहुणो मग्गपवण्णा सत्थेण समं वच्चंति,सत्थे आवासिए भिक्खट्ठं पविट्ठाणं गतो सत्थो, पहाविते,अयाणंता विभुल्ला,मूढदिसा पंथं अयाणमाणा तेण अडविपंथेण मज्झण्हदेसकाले तण्हाए छुहाए अप†रद्धा तं देसं गया जत्थ सो सगडसण्णिवेसो, सो य ते पासित्ता महंतं संवेगमावण्णो भणति–अहो इमे साहुणो अदेसिया तवस्सिणो अडविमणुपविट्ठा, तेसिं सो अणुकंपाए विपुलं असण-पाणं दाऊणं आह—एह भगवं! जेण पथेणमवयारेमि, पुरतो संपत्थिओ, ताहे तेऽवि साहुणो तस्सेव मग्गेण अणुगच्छंति,

१ अपरविदेहेषु एकस्मिन्ग्रामे बलाधिकः, स च राजादेशेन शकटानि गृहीत्वा दारुनिमित्तं महाटवीं प्रविष्टः, इतश्च साधवः मार्गप्रपन्नाः सार्थेन समं व्रजन्ति, सार्थे आवासिते भिक्षार्थं प्रविष्टेषु गतः सार्थः, प्रधावितः, अजानन्तो भ्रष्टाः, दिग्मूढाः पन्थानमजानानाः तेन अटवीपथेन मध्याह्नदेशकाले तृषा क्षुधा अपराद्धाः (च व्याप्ताः) तं देशं गता यत्र स शकटसन्निवेशः, स च तान् दृष्ट्वा महान्तं संवेगमापन्नो भणति–अहो इमे साधवोऽदेशिकास्तपस्विनोऽटवीमनुप्रविष्टाः, तेभ्योऽसौ अनुकम्पया विपुलमशनपानं दत्त्वाऽऽह–एत भगवन्तः ! येन पथि युष्मानवतारयामि, पुरतः संप्रस्थितः, तदा तेऽपि साधवः तस्यैव पृष्ठतः अनुगच्छन्ति,. * जह मिच्छत्ततमाओ विणिग्गओ जह य केवलं पत्तो । जह य पयासिअमेयं सामइअं तह पवक्खामि ॥ १ ॥ (गाथैषाऽव्याख्याता निर्युक्तिपुस्तके). + पहाविता. † य पारद्धा.

॥१०८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

¹ततो गुरू तस्स धम्मं कहेदुमारद्धो, तस्स सो अवगतो,ते पंथं समोयारेत्ता नियत्तो, ते पत्ता सदेस,सो पुण अविरयसम्मद्दिट्ठी कालं काऊण सोहम्मे कप्पे पलिओवमठिइओ देवो जाओ। अस्यैवार्थस्योपदर्शकमिदं गाथाद्वयमाह भाष्यकारः—

अवरविदेहे गामस्स चिंतओ रायदारुवणगमणं। साहू भिक्खनिमित्तं सत्था हीणे तहिं पासे ॥१॥ (भाष्यम्)
दाणन्न पंथनयणं अणुकंप गुरू कहण सम्मत्तं। सोहम्मे उववण्णो पलियाउ सुरो महिड्ढीओ॥ २ ॥ (भाष्यम्)

गमनिका—अवरविदेहे ग्रामस्य चिन्तको राजदारुवनगमनं, निमित्तशब्दलोपोऽत्र द्रष्टव्यः, राजदारुनिमित्तं वनगमनं, साधून् भिक्षानिमित्तं सार्थाद्भ्रष्टाँस्तत्र दृष्टवान्, दानमन्नपानस्य, नयनं *पंथि अनुकम्पया गुरोः कथनं सम्यक्त्वं प्राप्तः मृत्वा सौधर्म उपपन्नः पल्योपमायुः सुरो महर्द्धिक इति गा+थाद्वयार्थः।

लद्धूण य सम्मत्तं अणुकंपाए उ सो सुविहियाणं। भासुरवरबोंदिधरो देवो वेमाणिओ जाओ ॥ १४७ ॥

गमनिका—लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अनुकम्पयाऽ†सौ सुविहितेभ्यः भास्वरां—दीप्तिमतीं वरां–प्रधानां 'बोंदिं' तनुं धारयतीति समासः, देवो वैमानिको जात इति निर्युक्तिगाथार्थः ॥ १४७ ॥ तथा च—

चइऊण देवलोगा इह चेव य भारहंमि वासंमि। इक्खागकुले जाओ उसभसुअसुओ मरीइत्ति ॥ १४८ ॥

---

१ ततो गुरुः तस्मै धर्मं कथयितुमारब्धः, तेन सोऽवगतः, तान्पथि समवतार्य निवृत्तः, ते प्राप्ताः स्वदेशं, स पुनरविरतसम्यग्दृष्टिः कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे पल्योपमस्थितिको देवो जातः. * पथि नयनं. + गाथार्थः. † सो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

अत्र भाष्यम् आरब्धं, तद् अन्तर्गत भगवन्-महावीरस्य प्रथमभवस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१०९॥ | हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

व्याख्या—ततः स्वायुष्कक्षये सति च्युत्वा देवलोकादिहैव भारते वर्षे इक्ष्वाकुकुले 'जातः' उत्पन्नः ऋषभसुतसुतो मरीचिः सामान्येन ऋषभपौत्र इति गाथार्थः ॥ १८ ॥ यतश्चैवमतः—

इक्खागकुले जाओ इक्खागकुलस्स होइ उप्पत्ती । कुलगरवंसेऽईए भरहस्स सुओ मरीइत्ति ॥ १४९ ॥

व्याख्या—इक्ष्वाकूणां कुलं इक्ष्वाकुकुलं तस्मिन्, 'जातः' उत्पन्नः, भरतस्य सुतो मरीचिरिति योगः, तत्र सामान्य-ऋषभपौत्रत्वाभिधाने सति इदं विशेषाभिधानमदुष्टमेव, स च कुलकरवंशेऽतीते जातः, तत्र कुलकरा वक्ष्यमाणलक्षणा-स्तेषां वंशः कुलकरवंशः *प्रवाह इति समासः, तस्मिन्नतीते-अतिक्रान्ते इति, यतश्चैवमत इक्ष्वाकुकुलस्य भवति उत्पत्तिः, वाच्येति वाक्यशेषः, इत्ययं गाथार्थः ॥ १४९ ॥ तत्र कुलकरवंशेऽतीत इत्युक्तं, अतः प्रथमं कुलकराणामेवोत्पत्तिः प्रति-पाद्यते, यत्र यस्मिन्काले क्षेत्रे च तत्प्रभवस्तन्निदर्शनाय चेदमाह— (ग्रन्थाग्रम् ३०००)

ओसप्पिणी इमीसे तइयाएँ समाएँ पच्छिमे भागे । पलिओवमट्ठभाए सेसंमि उ कुलगरुप्पत्ती ॥ १५० ॥

अद्धभरहमज्झिल्लुतिभागे गंगासिंधुमज्झंमि । इत्थ बहुमज्झदेसे उप्पण्णा कुलगरा सत्त ॥ १५१ ॥

प्रथमगाथागमनिका—अवसर्पिण्यामस्यां वर्त्तमानायां या तृतीया समा–सुषमदुष्षमासमा, तस्याः पश्चिमो भागस्तस्मिन् ॥१०९॥
कियन्मात्रे पल्योपमाष्टभाग एव शेषे तिष्ठति सति कुलकरोत्पत्तिः संजातेति वाक्यशेष इति गाथार्थः ॥ १५० ॥ द्वितीय-

* ०स्तेषां वंशः प्रवाहः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गाथागमनिका—अर्धभरतमध्यमत्रिभागे, कस्मिन् ?–गङ्गासिन्धुमध्ये, अत्र बहुमध्यदेशे न पर्यन्तेषु, उत्पन्नाः कुलकराः सप्त, अर्धं भरतं विद्याधरालयवैताढ्यपर्वतादारतो गृह्यत इति गाथार्थः ॥ १५१ ॥ इदानीं कुलकरवक्तव्यताभिधायिकां द्वारगाथां प्रतिपादयन्नाह—

पुव्वभवजम्मनामं पमाण संघयणमेव संठाणं । वण्णित्थियाउ भागा भवणोवाओ य णीई य * ॥ १५२ ॥

गमनिका—कुलकराणां पूर्वभवा वक्तव्याः, जन्म वक्तव्यं तथा नामानि प्रमाणानि तथा संहननं वक्तव्यं, एवशब्दः पूरणार्थः, तथा संस्थानं वक्तव्यं तथा वर्णाः प्रतिपादयितव्याः तथा स्त्रियो वक्तव्याः तथा आयुर्वक्तव्यं भागा वक्तव्याः–कस्मिन् वयोभागे कुलकराः संवृत्ता इति, भवनेषु उपपातः भवनोपपातः वक्तव्यः, भवनग्रहणं भवनपतिनिकायोपपातप्रदर्शनार्थं, तथा नीतिश्च या यस्य हकारादिलक्षणा सा वक्तव्येति गाथासमुदायार्थः, अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यति ॥ १५२ ॥ तत्र प्रथमद्वारावयवार्थाभिधित्सयेदमाह—

अवरविदेहे दो वणिय वयंसा माइ उज्जुए चेव । कालगया इह भरहे हत्थी मणुओ अ आयाया ॥ १५३ ॥
दट्ठुं सिणेहकरणं गयमारुहणं च नामणिप्फत्ती । परिहाणि गेहि कलहो सामत्थण विन्नवण हत्ति ॥ १५४ ॥

गमनिका—अपरविदेहे द्वौ वणिग्वयस्यौ मायी ऋजुश्चैव कालगतौ इह भरते हस्ती मनुष्यश्च आयातौ, दृष्ट्वा स्नेहकरणं गजारोहणं च नामनिर्वृत्तिः परिहाणिः गृद्धिः कलहः, 'सामत्थणं' देशीवचनतः पर्यालोचनं भण्यते, विज्ञापना–ह

* पुव्वभव कुलगराणं उसभजिणिंदस्स भरहरण्णो अ । इक्खागकुलुप्पत्ती णेयव्वा आणुपुव्वीए । (गाथैषा निर्युक्तिपुस्तकेऽव्याख्याता च).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

अत्र कुलकरस्य वक्तव्यता प्रस्तुता:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक- ॥११०॥

इति गाथार्थः ॥ १५४ ॥ भावार्थस्तु कथानकादवसेयः, अध्याहार्यक्रियायोजना च स्वबुद्ध्या प्रति*पदं कार्या, यथा–अपर-विदेहे द्वौ वणिग्वयस्यौ अभूतामिति, नवरं हस्ती मनुष्यश्च आयाताविति, अनेन जन्म प्रतिपादितं वेदितव्यं, अवरविदेहे दो मित्ता वाणिअया, तत्थेगो मायी एगो उज्जुगो, ते पुण एगओ चेव ववहरंति, तत्थेगो †जो मायी सो तं उज्जुअं अति-संधेइ, इतरो सव्वमगूहंतो सम्मं सम्मेण ववहरति, दोवि पुण दाणरुई, ततो सो उज्जुगो कालं काऊण इहेव दाहिणड्ढे मिहुणगो जाओ, वंको पुण तंमि चेव पदेसे हत्थिरयणं जातो, सो य सेतो वण्णेणं चउद्दंतो य, जाहे ते पडिपुण्णा‡ ताहे तेण हत्थिणा हिंडंतेण सो दिट्ठो मिहुणगो, दट्ठूण य से पीती उप्पण्णा, तं च से आभिओगजणिअं कम्ममुदिण्णं, ताहे तेण मिहुणगं खंधे विलइयं, तं दट्ठूण य तेण सव्वेण लोएण अब्भहियमणूसो एसो इमं च से विमलं वाहणंति तेण से विमल-वाहणोत्ति नामं कयं, तेसिं च जातीसरणं जायं, ताहे कालदोसेण ते रुक्खा परिहायंति–म¶त्तंगा भिंगंगा तुडियं च

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

---

१ अपरविदेहेषु द्वौ मित्रे वणिजौ, तत्रैको मायावी एक ऋजुकः, तौ पुनरेकत एव व्यवहरतः, तत्रैको यो मायावी स तमृजुं अतिसन्दधाति, इतरः सर्व-मगूहयन् सम्यग् साम्येन व्यवहरति, द्वावपि पुनर्दानरुची, ततः स ऋजुकः कालं कृत्वेहैव दक्षिणार्धे मिथुनकनरो जातः, वक्रः पुनः तस्मिन्नेव प्रदेशे हस्ति-रत्नं जातः, स च वर्णेन श्वेतश्चतुर्दन्तश्च, यदा तौ प्रतिपूर्णौ तदा तेन हस्तिना हिण्डमानेन स दृष्टः मिथुनकनरः, दृष्ट्वा च तस्य प्रीतिरुत्पन्ना, तच्च तस्याभियोगजनितं कर्मोदीर्णं, तदा तेन मिथुनकनरः स्कन्धे विलगितः, तद्दृष्ट्वा च तेन सर्वेण लोकेन अभ्यधिकमनुष्य एष इदं चास्य विमलं वाहनमिति तेन तस्य विमलवाहन इति नाम कृतं, तयोश्च जातिस्मरणं जातं, तदा कालदोषेण ते वृक्षाः परिहीयन्ते, तद्यथा–मत्ताङ्गा भृङ्गाङ्गास्त्रुटिताङ्गा– * प्रतिपादं. † •स्सावासिट्टा०. † स. ‡ •ण्णा जाता. ¶ तं० म०.

॥११०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चित्तँगा (य) चित्तरसा। गेहागारा अणियणा सत्तमया कप्परुक्खत्ति ॥१॥ तेसु परिहायंतेसु कसाया उप्पण्णा–इमं मम, मा एत्थ कोइ अण्णो अल्लियउत्ति भणितुं पयत्ता, जो ममीकयं अल्लियइ तेण कसाइज्जंति, गेण्हणे अ संखडंति, ततो तेहिं चिंतितं–किंचि अधिपतिं ठवेमो जो ववत्थाओ ठवेति, ताहे तेहिं सो विमलवाहणो एस अम्हेहिंतो अहितोत्ति ठवितो, ताहे तेण तेसिं रुक्खा विरिक्का, भणिया य–जो तुब्भं एयं मेरं अतिक्कमति तं मम कहिज्जाहत्ति, अहं से +दंडं करिहामि, सोऽवि किह जाणति ?, जाइस्सरो तं वणियत्तं सरति, ताहे तेसिं जो कोइ अवरज्झइ सो तस्स कहिज्जइ, ताहे सो तेसिं दंडं ठवेति, को पुण दंडो ?, हक्कारो, हा तुमे दुट्ठु कयं, ताहे सो जाणति–अहं सव्वस्सहरणो कतो, तं वरं किर हतो मे सीसं छिण्णं, ण य एरिसं विडंबणं पावितो†त्ति, एवं बहुकालं हक्कारदंडो अणुवत्तिओ। तस्स य चंदजसा भारिया, तीए समं भोगे भुंजंतस्स अवरं मिथुणं जायं, तस्सवि कालंतरेण अवरं, एवं ते एगवंसंमि सत्त कुलगरा उप्पण्णा। पूर्वभवाः खल्व-

---

१ श्चित्राङ्गाश्चित्ररसाः। गृहाकारा अनग्नाः सप्तमकाः कल्पवृक्षा इति, ॥१॥ तेषु परिहीयमाणेषु कषाया उत्पन्ना, इदं मम, मा अत्र कोऽप्यन्यो लगीत् इति भणितुं प्रवृत्ताः, यो ममीकृतं लगति तेन कषायन्ते, ग्रहणे च क्लिश्नन्ति (संखण्डयन्ति), ततस्तैश्चिन्तितं–कमपि अधिपतिं स्थापयामो यो व्यवस्थाः स्थापयति, तदा तैः स विमलवाहन एषोऽस्मभ्यमधिक इति स्थापितः, तदा तेन तेभ्यो वृक्षा विभक्ताः, भणिताश्च–यो युष्माकं एतां मर्यादां अतिक्रामति तं मह्यं कथयेतः, अहं तस्य दण्डं करिष्यामि, सोऽपि कथं जानीते ?, जातिस्मरस्तद् वणिक्त्वं स्मरति, तदा तेषां यः कश्चिदपराध्यति स तस्मै कथ्यते, तदा स तस्य दण्डं स्थापयति, कः पुनर्दण्डः ?, हाकारः–हा त्वया दुष्टु कृतं, तदा स जानीते–अहं सर्वस्वहरणीकृतः (स्याम्), तदा वरं किल हतः शिरो मे छिन्नं, नचेदृशं विटम्बनां, प्रापित इति, एवं बहुकालं हाकारदण्डोऽनुवर्तितः। तस्य च चन्द्रयशा भार्या, तया समं भोगान्भुञ्जतोऽपरं मिथुनकं (युग्मं) जातं, तस्यापि कालान्तरेणापरं, एवं ते एकवंशे सप्त कुलकरा उत्पन्नाः। * चित्तंगा. + अहं दंडं वत्तेहामि. † पडितोत्ति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१११॥

मीषां प्रथमानुयोगतोऽवसेयाः, जन्म पुनरिहैव सर्वेषां द्रष्टव्यम् । व्याख्यातं पूर्वभवजन्मद्वारद्वयमिति, इदानीं कुलकर-नामप्रतिपादनायाह—

पढमित्थ विमलवाहण चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे । तत्तो अ पसेणइए मरुदेवे चेव नाभी य ॥ १५५ ॥

गमनिका—प्रथमोऽत्र विमलवाहनश्चक्षुष्मान् यशस्वी चतुर्थोऽभिचन्द्रः ततश्च प्रसेनजित् मरुदेवश्चैव नाभिश्चेति, भावार्थः सुगम एवेति गाथार्थः ॥ १५५ ॥ गतं नामद्वारम् , अधुना प्रमाणद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

णव धणुसया य पढमो अट्ठ य सत्तद्धसत्तमाइं च । छच्चेव अद्धछट्ठा पंचसया पण्णवीसं तु ॥ १५६ ॥

व्याख्या—नव धनुःशतानि प्रथमः अष्टौ च सप्त अर्धसप्तमानि षट् च अर्धषष्ठानि पञ्च शतानि पञ्चविंशति, अन्ये पठन्ति–पञ्चशतानि विंशत्यधिकानि, यथासंख्यं विमलवाहनादीनामिदं प्रमाणं द्रष्टव्यं इति गाथार्थः ॥ १५६ ॥ गतं प्रमाणद्वारं, इदानीं कुलकरसंहननसंस्थानप्रतिपादनायाह—

वज्जरिसहसंघयणा समचउरंसा य हुंति संठाणे । वण्णंपि य वुच्छामि पत्तेयं जस्स जो आसी ॥ १५७ ॥

गमनिका—वज्रऋषभसंहननाः सर्व एव समचतुरस्राश्च भवन्ति 'संस्थाने' इति संस्थानविषये निरूप्यमाणा इति, वर्ण-द्वारसंबन्धाभिधानायाह—वर्णमपि च वक्ष्ये प्रत्येकं यस्य य आसीदिति गाथार्थः ॥ १५७ ॥

चक्खुम जसमं च पसेणइअं एए पिअंगुवण्णाभा । अभिचंदो ससिगोरो निम्मलकणगप्पभा सेसा ॥ १५८ ॥

हारिभद्रीय-वृत्तिः विभागः १ ॥१११॥

१ वसुदेवहिण्डीतः * पण्णवीसा य. + पञ्चविंशतिश्च. ‡ ०प्यमाणे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—चक्षुष्मान् यशस्वी च प्रसेनजिच्चैते प्रियङ्गुवर्णाभाः अभिचन्द्रः शशिगौरः निर्मलकनकप्रभाः शेषाः—विमलवाहनादयः, भावार्थः सुगम एव, नवरं निर्मलकनकवत् प्रभा—छाया येषां ते तथाविधा इति गाथार्थः ॥ १५८ ॥ गतं वर्णद्वारं, स्त्रीद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

चंदजसचंदकंता सरूव पडिरूव चक्खुकंता य । सिरिकंता मरुदेवी कुलगरपत्तीण नामाइं ॥ १५९ ॥

गमनिका—चन्द्रयशाः चन्द्रकान्ता सुरूपा प्रतिरूपा चक्षुःकान्ता च श्रीकान्ता मरुदेवी कुलकरपत्नीनां नामानीति गाथार्थः ॥ १५९ ॥ एताश्च संहननादिभिः कुलकरतुल्या एव द्रष्टव्याः, यत आह—

संघयणं संठाणं उच्चत्तं चेव कुलगरेहि समं । वण्णेण एगवण्णा सव्वाओ पियंगुवण्णाओ ॥ १६० ॥

गमनिका—संहननं संस्थानं उच्चैस्त्वं चैव कुलकरैः—आत्मीयैः, समं—अनुरूपं आसां प्रस्तुतस्त्रीणामिति, किंतु प्रमाणेन ईषन्न्यूना इति संप्रदायः, तथापि ईषन्न्यूनत्वान्न भेदाभिधानमिति, वर्णेन एकवर्णाः सर्वाः प्रियङ्गुवर्णा इति गाथार्थः ॥ १६० ॥ स्त्रीद्वारं गतं, इदानीं आयुर्द्वारम्—

पलिओवमदसभाँए पढमस्साउं तओ असंखिज्जा । ते आणुपुव्विहीणा पुव्वा नाभिस्स संखेज्जा ॥ १६१ ॥

व्याख्या—पल्योपमदशभागः, 'प्रथमस्य' विमलवाहनस्य आयुरिति, ततः अन्येषां चक्षुष्मदादीनां असंख्येयानि, पूर्वाणीति योगः, तान्येवानुपूर्वीहीनानि नाभेः संख्येयान्यायुष्कमित्ययं गाथार्थः ॥ १६१ ॥

* ०भागो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अन्ये तु व्याचक्षते–पल्योपमदशभाग एव प्रथमस्यायुः ततो द्वितीयस्य असंख्येयाः*–पल्योपमासख्येयभागा इति वाक्य-शेषः, त एव चानुपूर्वीहीनाः शेषाणामायुष्कं द्रष्टव्याः तावद् यावत्पूर्वाणि नाभेः संख्येयानि इति, अविरुद्धा चेयं व्याख्येति। अन्ये तु व्याचक्षते—पल्योपमदशभागः प्रथमस्य आयुष्कं, ततः शेषाणां ‘असंखेज्जा’ इति समुदितानां पल्योपमासंख्येयभागाः, एतदुक्तं भवति—द्वितीयस्य पल्योपमासंख्येयभागः, शेषाणां तत एवासंख्येयभागोऽसंख्येय-भागः पात्यते तावद्यावन्नाभेः असंख्येयानि पूर्वाणि। इदं पुनरपव्याख्यानं, कुतः ?, पञ्चानामसंख्येयभागानां पल्योपम-चत्वारिंशत्तमे+भागानुपपत्तेः, कथम् ?, पल्योपमं† विंशतिभागाः क्रियते‡, तदष्टभागे कुलकरोत्पत्तिः, प्रथमस्य दशभाग आयुः, शेषाणां पञ्चानामर्धरूपाच्चत्वारिंशत्तमभागाद् असंख्यातोऽसंख्यातो भाग आयुः तथाऽप्यर्धं किञ्चिन्न्यूनं चत्वारिंशत्तमो भागोऽवशिष्यते, यतः कृतविंशतिभागपल्योपमस्य अष्टभागे अष्टभागे इदं भवति, ततोऽपि दशभागे द्वौ जातौ¶, गताः असंख्याताः पञ्चभागाः, अर्धाद् यदर्धं किञ्चिन्न्यूनं स चत्वारिंशत्तमो भाग इति, उक्तं च—‘पलिओवमट्ठभागे सेसंमि उ कुलगरुप्पत्ती’ (गाथा १५०), तत्रापि प्रथमस्य दशमभाग आयुष्कमुक्तं, तस्मिँश्चापगते विंशतितमभागद्वयस्य व्यपगमा-च्छेषश्चत्वारिंशद्भागोऽवतिष्ठते$, स च संख्येयतमः, ततश्च कालो न गच्छति, आह—अत एव नाभेरसंख्येयानि पूर्वाणि आयुष्कमिष्टं§, उच्यते, इष्टमिदं, अयुक्तं चैतत्, मरुदेव्याः संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, न हि केवलज्ञानमसंख्येयवर्षायुषां भवतीति, ततः किमिति चेद्, उच्यते, ततश्च नाभेरपि संख्येयवर्षायुष्कत्वम् ॥ १६१ ॥ यत आह—

* ०या भागाः. + ०तिम०. † ०पमविं०. ‡ क्रियन्ते. ¶ जातौ. $ ०ष्ठति. § ०मिष्ट.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

जं चेव आउयं कुलगराण तं चेव होइ तासिंपि। जं पढमगस्स आउं तावइयं चेव हत्थिस्स ॥ १६२ ॥

गमनिका—यदेव आयुष्कं कुलकराणां तदेव भवति तासामपि–कुलकराङ्गनानां, संख्यासाम्याच्च तदेवेत्यभिधीयते, तथा यत्तु प्रथमस्यायुः कुलकरस्य, तावदेव भवति हस्तिनः, एवं शेषकुलकरहस्तिनामपि कुलकरतुल्यं द्रष्टव्यमिति गाथार्थः ॥ १६२ ॥ इदानीं भागद्वारं—कः कस्य सर्वायुष्कात् कुलकरभाग इति—

जं जस्स आउयं खलु तं दसभागे* समं विभइऊणं+। मज्झिमछ्ट्ठतिभागे कुलगरकालं वियाणाहि ॥ १६३ ॥

व्याख्या—यद्यस्यायुष्कं खलु तद् दशभागान् समं विभज्य मध्यमाष्टत्रिभागे कुलकरकालं विजानीहीति गाथार्थः ॥ १६३ ॥ अमुमेवार्थं प्रचिकटयिषुराह—

पढमो य कुमारत्ते भागो चरमो य वुड्ढभावंमि। ते पयणुपिज्जदोसा सव्वे देवेसु उववण्णा ॥ १६४ ॥

गमनिका—तेषां दशानां भागानां प्रथमः कुमारत्वे गृह्यते, भागः चरमश्च वृद्धभा†ग इति, शेषा मध्यमा अष्टौ भागाः कुलकरभागा इति, अत एवोक्तं 'मध्यमाष्टत्रिभागे' इति, मध्यमाश्च ते अष्टौ च मध्यमाष्टौ त एव च त्रिभागस्तस्मिन् कुलकरकालं विजानीहि, गतं भागद्वारं, उपपातद्वारमुच्यते—ते प्रतनुप्रेमद्वेषाः, प्रेम रागे वर्त्तते, द्वेषस्तु प्रसिद्ध एव, सर्वे विमलवाहनादयो देवेषु उपपन्ना इति गाथार्थः ॥ १६४ ॥ न ज्ञायते केषु देवेषु उपपन्ना इति, अत आह—

दो चेव सुवण्णेसुं उद‡हिकुमारेसु हुंति दो चेव। दो दीवकुमारेसुं एगो नागेसु उववण्णो ॥ १६५ ॥

* ०भागो. + ०इएणं. † ०भाव. ‡ वद्य०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—द्वावेव सुपर्णेषु देवेषु उदधिकुमारेषु भवतः द्वावेव द्वौ द्वीपकुमारेषु एको नागेषु उपपन्नः, यथासंख्यमयं विमलवाहनादीनामुपपात इति गाथार्थः ॥ १६५ ॥ इदानीं तत्स्त्रीणां हस्तिनां चोपपातमभिधित्सुराह—

हत्थी छच्चित्थीओ नागकुमारेसु हुंति उववण्णा । एगा सिद्धिं पत्ता मरुदेवी नाभिणो पत्ती ॥ १६६ ॥

गमनिका—हस्तिनः षट् स्त्रियश्चन्द्रयशाद्या नागकुमारेषु भवन्ति उपपन्नाः, अन्ये तु प्रतिपादयन्ति—एक एव हस्ती षट् स्त्रियो नागेषु उपपन्नाः, शेषैर्नाधिकार इति, एका सप्तमी सिद्धिं प्राप्ता मरुदेवी नाभेः पत्नीति गाथार्थः ॥ १६६ ॥ उक्तमुपपातद्वारं, अधुना नीतिद्वारप्रतिपादनायाह—

हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दंडनीईओ । वुच्छं तासि विसेसं जहक्कमं आणुपुव्वीए ॥ १६७ ॥

गमनिका—हक्कारः मक्कारः धिक्कारश्चैवं* दण्डनीतयो वर्त्तन्ते, वक्ष्ये तासां विशेषं यथाक्रमं—या यस्येति, आनुपूर्व्या—परिपाट्येति गाथार्थः ॥ १६७ ॥

पढमबीयाण पढमा तइयचउत्थाण अभिनवा बीया । पंचमछट्ठस्स य सत्तमस्स तइया अभिनवा उ ॥ १६८ ॥

गमनिका—प्रथमद्वितीययोः–कुलकरयोः प्रथमा दण्डनीतिः–हक्काराख्या, तृतीयचतुर्थयोरभिनवा द्वितीया, एतदुक्तं भवति—स्वल्पापराधिनः प्रथमया दण्डः क्रियते, महदपराधिनो द्वितीययेत्यतोऽभिनवा सेति, सा† च मकाराख्या, तथा ॥११३॥

* श्चैवं. † द्वितीयेति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पञ्चमषष्ठयोः, सप्तमस्य तृतीयैव अभिनवा—धिक्काराख्या, एताश्च तिस्रो लघुमध्यमोत्कृष्टापराधगोचराः खल्ववसेया इति गाथार्थः ॥ १६८ ॥

सेसा उ दंडनीई माणवगनिहीओ होति भरहस्स । उसभस्स गिहावासे असक्कओ आसि आहारो ॥१६९॥

गमनिका—शेषा तु दण्डनीतिः माणवकनिधेर्भवति भरतस्य, वर्त्तमानक्रियाभिधानं इह क्षेत्रे सर्वावसर्पिणीस्थितिप्रदर्शनार्थं, अन्यास्वप्यतीतासु एष्यासु चावसर्पिणीषु अयमेव न्यायः प्रायो नीत्युत्पाद इति, तस्य च भरतस्य पिता ऋषभनाथः, तस्य च ऋषभस्य गृहवासे असंस्कृत आसीदाहारः–स्वभावसंपन्न एवेति, तस्य हि देवेन्द्रादेशाद्देवाः देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रयोः स्वादूनि फलानि क्षीरोदाच्चोदकमुपनीतवन्त इति गाथार्थः ॥ १६९ ॥ इयं मूल*निर्युक्तिगाथा, एनामेव भाष्यकृद् व्याख्यानयन्नाह—

परिभासणा उ पढमा मंडलिबंधं+मि होइ बीया उ ।
चारग छविछेआई भरहस्स चउव्विहा नीई ॥ ३ ॥ † (भाष्यम्)

गमनिका—यदुक्तं'शेषा तु दण्डनीतिर्माणवकनिधेर्भवति भरतस्य'सेयं–परिभाषणा तु प्रथमा,मण्डलीबन्धश्च भवति द्वितीया तु, चारकः छविच्छेदश्च भरतस्य चतुर्विधा नीतिः, तत्र परिभाषणं परिभाषा–कोपाविष्करणेन मा यास्यसीत्यपराधिनोऽभिधानं, तथा मण्डलीबन्धः–नास्मात्प्रदेशाद् गन्तव्यं, चारको–बन्धनगृहं, छविच्छेदः–हस्तपादनासिकादिच्छेद इति, इयं

* भाष्यकारेण व्याख्यानादस्याः मूलत्वं तन्न पाश्चात्यभागकल्पना निर्युक्तेः. मूलभाष्य० + बंधोमि † मूलभाष्यगाथेति निर्युक्तिपुस्तके ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥११४॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

भरतस्य चतुर्विधा दण्डनीतिरिति। अन्ये त्वेवं प्रतिपादयन्ति–किल परिभाषणामण्डलिबन्धौ ऋषभनाथेनैवोत्पादिताविति, चारकच्छविच्छेदौ तु माणवकनिधेरुत्पन्नौ इति, भरतस्य–चक्रवर्त्तिन एवं चतुर्विधा नीतिरिति गाथार्थः ॥ ३ ॥ अथ कोऽयं भरत इत्याह–ऋषभनाथपुत्रः,अथ कोऽयं ऋषभनाथ इति तद्वक्तव्यताऽभिधित्सयाऽऽह—नाभी गाहा। अथवा प्रतिपादितः कुलकरवंशः,इदानीं प्राक्सूचितेक्ष्वाकुवंशः प्रतिपाद्यते–स च ऋषभनाथप्रभव इत्यतस्तद्वक्तव्यताऽभिधित्सयाऽऽह—

नाभी विणीअभूमी मरुदेवी उत्तरा य साढा य। राया य वइरणाहो विमाणसव्वट्ठसिद्धाओ ॥ १७० ॥

गमनिका—इयं हि निर्युक्तिगाथा प्रभूतार्थप्रतिपादिका, अस्यां च प्रतिपदं* क्रियाऽध्याहारः कार्यः, स चेत्थम्—नाभिरिति नाभिर्नाम कुलकरो बभूव, विनीता भूमिरिति–तस्य विनीताभूमौ प्रायः अवस्थानमासीद्, मरुदेवीति तस्य भार्या, राजा च प्रागभवे वैरनाभः सन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा तीर्थकरनामगोत्रं कर्म बद्धा मृत्वा सर्वार्थसिद्धिमवाप्य ततस्तस्याः मरुदेव्याः तस्यां विनीतभूमौ सर्वार्थसिद्धाद्विमानादवतीर्य ऋषभनाथः संजातः, तस्योत्तराषाढानक्षत्रमासीत् इति गाथार्थः ॥ १७० ॥ इदानीं यः प्रागभवे वैरनाभः यथा च तेन सम्यक्त्वमवाप्तं यावतो वा भवान् अवाप्तसम्यक्त्वः संसारं पर्यटितः यथा च तेन तीर्थकरनामगोत्रं कर्म बद्धमित्यमुमर्थमभिधित्सुराह—

धणसत्थवाह घोसण जइगमण अडविवासठाणं च। बहुवोलीणे वासे चिंता घयदाणमासि तया ॥ १७१ ॥ ॥११४॥

* प्रतिपादं. + धणमिहुणसुरमहब्बललिलयंगयवइरजंघमिहुणे य। सोहम्मविज्जअच्चुअ चक्की सव्वट्ट उसभे अ ॥ १ ॥ (गाथेयं अव्याख्याता निर्युक्तौ)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

अत्र ऋषभनाथस्य वक्तव्यता दर्शयते, तद् अन्तर्गत पुर्वभवा: - धन सार्थवाह आदीनाम् वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

उत्तरकुरु सोहम्मे महाविदेहे महब्बलो राया। ईसाणे ललियंगो महाविदेहे वइरजंघो ॥ १ ॥* (प्रक्षिप्ता)
उत्तरकुरु सोहम्मे विदेहि तेगिच्छियस्स तत्थ सुओ। रायसुय सेट्ठिमच्चासत्थाहसुया वयंसा से ॥ १७२ ॥

अन्या अपि उक्तसंबन्धा एव द्रष्टव्याः तावत् यावत् 'पढमेण पच्छिमेण' गाहा, किंतु यथाऽवसरमसंमोहनिमित्तमुपन्यासं करिष्यामः। प्रथमगाथागमनिका—धनः सार्थवाहो घोषणं यतिगमनं अटवी वर्षस्थानं च बहुवोलीने वर्षे चिन्ता घृतदानमासीत्तदा। द्वितीयगाथागमनिका—उत्तरकुरौ सौधर्मे महाविदेहे महाबलो राजा ईशाने ललिताङ्गो महाविदेहे च वैरजङ्घः। इयमन्यकर्त्तृकी गाथा सोपयोगा च। तृतीयगाथागमनिका—उत्तरकुरौ सौधर्मे महाविदेहे चिकित्सकस्य तत्र सुतः राजसुतश्रेष्ठ्यमात्यसार्थवाहसुता वयस्याः 'से' तस्य। आसां भावार्थः कथानकादवसेयः, प्रतिपदं च अनुरूपः क्रियाऽध्याहारः कार्य इति, यथा—धनः+ सार्थवाह इति धनो नाम सार्थवाह आसीत्, स हि देशान्तरं गन्तुमना घोषणं कारितवानित्यादि। कथानकम्— 'तेणं कालेणं तेणं समएणं अवरविदेहे वासे धणो नाम सत्थवाहो होत्था, सो खितिपतिट्ठिआओ नयराओ वसंतपुरं पट्ठिओ वणिज्जेणं, घोसणयं कारेइ–'जो मए सद्धिं जाइ तस्साहमुदंतं वहामित्ति,' तंजहा—खाणेण वा पाणेण वा वत्थेण वा पत्तेण वा ओसहेण वा भेसज्जेण वा अण्णेण वा केणई जो जेण विसूरइत्ति

१ तस्मिन्काले तस्मिन्समयेऽवरविदेहे वर्षे धनो नाम सार्थवाहोऽभूत्, स क्षितिप्रतिष्ठितात् नगराद्वसन्तपुरं प्रस्थितो वाणिज्येन, घोषणां कारयति–यो मया सार्धं याति तस्याहमुदन्तं वहामीति, तद्यथा–खादनेन वा पानेन वा वस्त्रेण वा पात्रेण वा औषधेन वा भैषज्येन वा अन्येन वा यो (विना) येन केनचिद्विषीदति इति' * इयं अन्यकर्त्तृकी सोपयोगा चेति वृत्तिकाराः. + धनसा०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥११५॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

तं[1] च सोऊण बहवे तडियकप्पडियादओ पयट्टंति, विभासा, जाव तेण समं गच्छो साहूण संपट्ठितो, को पुण कालो ?, चरमनिदाघो, सो य सत्थो जाहे अडविमज्झे संपत्तो ताहे वासरत्तो जाओ, ताहे सो सत्थवाहो अइदुग्गमा पंथत्तिकाउं तत्थेव सत्थनिवेसं काउं वासावासं ठितो, तंमि य ठिते सबो सत्थो ठितो, जाहे य तेसिं सत्थिल्लियाणं भोयणं णिट्ठियं ताहे कंदमूलफलाणि समुद्दिसिउमारद्धा, तत्थ साहुणो दुक्खिया जदि कहवि अहापवत्ताणि लभंति ताहे गेण्हंति, एवं काले वच्चंते थोवावसेसे वासारत्ते ताहे तस्स धणस्स चिंता जाता–को एत्थ सत्थे दुक्खिओत्ति ?, ताहे सरिअं जहा मए समं साहुणो आगया, तेसिं च कंदाइ न कप्पंति, ते दुक्खिता तवस्सिणो, कल्लं देमित्ति पभाए निमन्तिता भणंति–जं परं अम्ह कप्पिअं होज्जा* तं गेण्हेज्जामो, किं पुण तुब्भं कप्पति ?, जं अकयमकारियं भिक्खामेत्तं, जं वा सिणेहा+दि, तो तेण साहूण घयं फासुयं विउलं दाणं दिण्णं, सो य अहाउयं पालेत्ता कालमासे कालं किच्चा तेण दाणफलेण उत्तरकुराए

---

१ तच्छ्रुत्वा च बहवस्तटिककार्पटिकादयः प्रवर्त्तन्ते, विभाषा (वर्णनं), यावत्तेन समं गच्छः साधूनां संप्रस्थितः, कः पुनः कालः?, चरमनिदाघः, स च सार्थो यदाऽटवीमध्ये संप्राप्तः तदा वर्षारात्रो जातः, तदा स सार्थवाहोऽतिदुर्गमाः पन्थान इतिकृत्वा तत्रैव सार्थनिवेशं कृत्वा वर्षावासं स्थितः, तस्मिंश्च स्थिते सर्वः सार्थः स्थितः, यदा च तेषां सार्थिकानां भोजनं निष्ठितं तदा कन्दमूलफलानि समुद्देष्टुं (भक्तुं) आरब्धाः, तत्र साधवः दुःखिता यदि कथमपि यथाप्रवृत्तानि लभन्ते तदा गृह्णन्ति, एवं काले व्रजति स्तोकावशेषो वर्षारात्रः तदा धनस्य चिन्ता जाता–क एतस्मिन्सार्थे दुःखित इति, तदा स्मृतं यथा मया समं साधव आगतास्तेषां कन्दादि न कल्पते, ते दुःखितास्तपस्विनः, कल्ये दास्ये इति प्रभाते निमन्त्रिता भणन्ति–यत्परमस्माकं कल्प्यं भवेत्तद्गृहीष्यामः, किं पुनर्भवतां कल्पते ?, यदकृतमकारितं भिक्षामात्रं यद्वा स्नेहादि, ततः तेन साधुभ्यो घृतं प्रासुकं विपुलं दानं दत्तं, स च यथायुष्कं पालयित्वा कालमासे कालं कृत्वा तेन दानफलेन उत्तरकुरुषु * होज्ज. + सिणेहंति.

॥११५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मणूसो जाओ, तओ* आउक्खएणं सोहम्मे कप्पे देवो उववण्णो, ततो चइऊण इहेव जंबूदीवे दीवे अवरविदेहे गंधिलावतीविजए वेयड्ढपव्वए गंधारजणवए गन्धसमिद्धे विज्जाहरणगरे अतिबल+रण्णो नत्ता सयबलराइणो पुत्तो महाबलो नाम राया जाओ, तत्थ सुबुद्धिणा अमच्चेण सावगेण पिअवयस्सेण णाडयपेक्खाअक्खित्तमणो संबोहिओ, मासावसेसाऊ बावीसदिणे भत्तपच्चक्खाणं काउं मरिऊण ईसाणकप्पे सिरिप्पभे विमाणे ललियंगओ नाम देवो जाओ, ततो चइऊण इहेव जंबूदीवे दीवे पुक्खलावइविजए लोहग्गलणगरसामी वइरजंघो नाम राजा जाओ, तत्थ सभारिओ पच्छिमे वए पव्वयामित्ति चिंततो पुत्तेण वासघरे जोगधूवधूविए मारिओ, मरिऊण उत्तरकुराए सभारिओ मिहुणगो जाओ, तओ सोहम्मे कप्पे देवो जाओ, ततो चइऊण म†हाविदेहे वासे खिइपइट्ठिए णगरे वेज्जपुत्तो आयाओ, जद्दिवसं च जातो तद्दिवसमेगाहजातगा से इमे चत्तारि वयंसगा तंजहा–रायपुत्ते सेट्ठिपुत्ते अमच्चपुत्ते सत्थाहपुत्तेत्ति, संवड्ढिआ ते, अण्णया कयाइ

---

१ मनुष्यो जातः, तत आयुःक्षयेण सौधर्मे कल्पे देव उत्पन्नः, ततश्च्युत्वा इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे अपरविदेहेषु गन्धिलावत्यां वैताढ्यपर्वते गान्धारजनपदे गन्धसमृद्धे विद्याधरनगरे अतिबलराजस्य नप्ता शतबलराजस्य पुत्रः महाबलनामा राजा जातः, तत्र सुबुद्धिना अमात्येन श्रावकेण प्रियवयस्येन नाटकप्रेक्षाक्षिप्तमनाः संबोधितः, मासावशेषायुः द्वाविंशतिदिनीं भक्तप्रत्याख्यानं कृत्वा मृत्वेशानकल्पे श्रीप्रभे विमाने ललिताङ्गकनामा देवो जातः, ततश्च्युत्वेहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे पुष्कलावतीविजये लोहार्गलनगरस्वामी वज्रजङ्घनामा राजा जातः, तत्र सभार्यः पश्चिमे वयसि प्रव्रजामीति चिन्तयन् पुत्रेण वासगृहे योगधूपधूपिते (तेन) मारितः, मृत्वोत्तरकुरुषु सभार्यो मिथुनको जातः, ततः सौधर्मे कल्पे देवो जातः, ततश्च्युत्वा पुनरपि महाविदेहे वर्षे क्षितिप्रतिष्ठिते नगरे वैद्यपुत्र आयातः, यद्दिवसे च जातस्तद्दिवसे एकाहर्जातास्तस्येमे चत्वारो वयस्यास्तथा–राजपुत्रः श्रेष्ठिपुत्रः अमात्यपुत्रः सार्थवाहपुत्र इति, संवर्धितास्ते, अन्यदा कदाचित्. * तेणं. + ०बलस्स र०. † पुणोवि म०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]तस्स वेज्जस्स घरे एगँओ सवे सन्निसण्णा अच्छंति, तत्थ साहू महप्पा सो किमिंकुट्ठेण गहिओ अइगतो भिक्खस्स, तेहिं सप्पणयं सहासं सो भणति–तुब्भेहिं नाम सवो लोगो खाय†वो, ण तुब्भेहिं तवस्सिस्स वा अणाहस्स वा किरिया कायवा, सो भणति–करेज्जामि, किं पुण? ममोसहाणि णत्थि, ते भणंति–अम्हे मोल्लं देमो, किं ओसहं जाइज्जउ ?, सो भणति–कंबलरयणं गोसीसचंदणं च, तइयं सह‡स्सपागं तिल्लं तं मम अत्थि, ताहे मग्गिउं पवत्ता, आगमियं च णेहिं जहा–अमुगस्स वाणियगस्स अत्थि दोवि एयाणि, ते गया तस्स सगासं दो लक्खाणि घेत्तुं, वाणिअओ संभंतो भणति–किं देमि ?, ते भणंति–कंबलरयणं गोसीसचंदणं च देहि, तेण भण्णति–किं एतेहिं कज्जं ?, भणंति–साहुस्स किरिया कायवा, तेण भणितं–अलाहि मम मोल्लेण, इहरहा एव गेण्हह, करेह किरियं, ममवि धम्मो होउत्ति, सो वाणियगो चिंतेइ–जइ ताव एतेसिं बालाणं एरिसा सद्धा धम्मस्सुवरिं, मम णाम मंदपुण्णस्स इहलोगपडिबद्धस्स नत्थि, सो

---

१ तस्य वैद्यस्य गृहे एकतः सन्निषण्णास्तिष्ठन्ति, तत्र साधुर्महात्मा स कृमिकुष्ठेन गृहीतः अतिगतो भिक्षायै, तैः सप्रणयं सहास्यं सोऽभाणि–युष्माभिर्नाम सर्वो लोकः खादितव्यः, न युष्माभिः तपस्विनो वा अनाथस्य वा क्रिया (चिकित्सा) कर्त्तव्या, स भणति–करोमि, किं पुनः ? मम औषधानि न सन्ति, ते भणन्ति–वयं मूल्यं दद्मः, किमौषधं याच्यते (तां), स भणति–कम्बलरत्नं गोशीर्षचन्दनं च, तृतीयं सहस्रपाकं तैलं तन्ममास्ति, तदा मार्गयितुं प्रवृत्ताः, ज्ञातं च तैः यथा–अमुकस्य वणिजो द्वे अपि एते स्तः, ते गतास्तस्य सकाशं द्वे लक्षे गृहीत्वा, वणिक् संभ्रान्तो भणति–किं ददामि ?, ते भणन्ति–कम्बलरत्नं गोशीर्षचन्दनं च देहि, तेन भण्यते–किमेतैः कार्यं ?, भणन्ति–साधोः क्रिया कर्त्तव्या, तेन भणितं–अलं मम मूल्येन, इतरथैव गृह्णीत कुरुध्वं क्रियां, ममापि धर्मो भवत्विति, स वणिग् चिन्तयति–यदि तावदेतेषां बालानामीदृशी श्रद्धा धर्मस्योपरि, मम नाम मन्दपुण्यस्य इहलोकप्रतिबद्धस्य नास्ति, स

* एगयओ. + कोढेण. † खाइयव्वो. ‡ सयसह०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

[1]संवेगमावण्णो तहारूवाणं थेराणं अंतिए पवइओ सिद्धो। अमुमेवार्थं उपसंहरन् गाथाद्वयमाह—

विज्जसुअस्स य गेहे किमिकुट्ठोवद्दुअं जइं दट्ठुं। बिंति य ते विज्जसुयं करेहि एअस्स तेगिच्छं ॥ १७३ ॥
तिल्लं तेगिच्छसुओ कंबलगं चंदणं च वाणियओ। दाउं अभिणिक्खंतो तेणेव भवेण अंतगडो ॥ १७४ ॥

गमनिका—वैद्यसुतस्य च गेहे कृमिकुष्ठोपद्रुतं मुँनिं दृष्ट्वा +वंदन्ति च ते वैद्यसुतं–कुरु अस्य चिकित्सां, तैलं चिकित्सकसुतः कम्बलकं चन्दनं च वणिग् दत्त्वा अभिनिष्क्रान्तः, तेनैव भवेन अन्तकृत्, भावार्थः स्पष्ट एव, क्वचित् क्रियाध्याहारः स्वबुद्ध्या कार्य इति गाथाद्वयार्थः ॥ १७३—१७४ ॥ कथानकशेषमुच्यते—[2]इमेवि घेत्तूण ताणि ओसहाणि गता तस्स साहुणो पासं जत्थ सो उज्जाणे पडिमं ठिओ, ते तं पडिमं ठिअं वंदिऊण अणुण्णवेंति–अणुजाणह भगवं! अम्हे तुम्हं धम्मविग्घं काउं उवट्ठिआ, ताहे तेण तेल्लेण सो साहू अब्भंगिओ, तं च तिल्लं रोम†कूवेहिं सव्वं अइगतं, तंमि य अइगए किमिआ सव्वे संखुद्धा, तेहिं चलंतेहिं तस्स साहुणो अतीव वेयणा पाउब्भूया, ताहे ते निग्गते दट्ठूण कंबलरयणेण

१ संवेगमापन्नः तथारूपाणां स्थविराणां अन्तिके प्रव्रजितः सिद्धः। २ इमेऽपि गृहीत्वा तान्यौषधानि गतास्तस्य साधोः पार्श्वे यत्र स उद्याने प्रतिमया स्थितः, ते तं प्रतिमया स्थितं वन्दित्वाऽनुज्ञापयन्ति–अनुजानीहि भगवन्! वयं तव धर्मविघ्नं कर्तुमुपस्थिताः, तदा तेन तैलेन स साधुरभ्यक्तः, तच्च तैलं रोमकूपैः (०पेषु) सर्वं अतिगतं (व्याप्तं), तस्मिंश्चातिगते कृमयः सर्वे संक्षुब्धाः, तेषु चलत्सु तस्य साधोरतीव वेदना प्रादुर्भूता, तदा तान्निर्गतान् दृष्ट्वा कम्बलरत्नेन * यतिं. + वन्दन्ते च. † रोमं कू०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥११७॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

सो पाउओ साहू, तं सीतलं, तं चेव* तेल्लं उण्हवीरियं, किमिया तत्थ लग्गा, ताहे पुव्वाणीयगोकडेवरे पप्फो+डेंति, ते सव्वे पडिया, ताहे सो साहू चंदणेण लित्तो, ततो समासत्थो, एवेक्कसिं दो तिण्णि वारे अब्भंगेऊण सो साहू तेहिं नीरोगो कओ, पढमं मक्खिज्जति,† पच्छा आलिंपति गोसीसचंदणेणं पुणो मक्खिज्जइ, एवेताए परिवाडीए पढमब्भंगे तयागया णिग्गया बिइयाए मंसगया तइयाए अट्ठिगया बेंदिया णिग्गया, ततो संरोहणीए ओसहीए कणगवण्णो जाओ, ताहे खामित्ता पडिगता, ते पच्छा साहू जाता, अहाउयं पालइत्ता तम्मूलागं पंचवि जणा अच्चुए उववण्णा, ततो चइऊण इहेव जंबूदी‡वे पुव्वविदेहे पुक्खलावइविजए पुंडरगिणीए नयरीए व¶इरसेणस्स रण्णो धारिणीए देवीए उयरे पढमो वइरणाभो णाम पुत्तो जाओ, जो से$ वेज्जपुत्तो चक्कवट्टी आ§गतो, अवसेसा कमेण बाहुसुबाहुपीढमहापीढत्ति, वइरसेणो पव्वइओ, सो य तित्थंकरो जाओ, इयरेवि संवड्ढिया पंचलक्खणे‖ भोए भुंजंति, जद्दिवसं वइरसेणस्स केवलनाणं उप्प[]ण्णं,

१ स प्रावृतः साधुः, तत् शीतलं, तच्चैव तैलं उष्णवीर्यं, कृमयस्तत्र लग्नाः, तदा पूर्वानीतगोकलेवरे प्रस्फोटयन्ति (क्षिपन्ति), ते सर्वे पतिताः, तदा साधुः स चन्दनेन लिप्तः, ततः समाश्वस्तः, एवमेकं द्वौ त्रीन् वारान् अभ्यज्य स साधुस्तैर्नीरोगः कृतः, प्रथमं म्रक्ष्यते पश्चादालिप्यते गोशीर्षचन्दनेन पुनर्म्रक्ष्यते, एवमेतया परिपाट्या प्रथमाभ्यङ्गे त्वग्गता निर्गता द्वितीयायां मांसगतास्तृतीयायामस्थिगता द्वीन्द्रिया निर्गताः, ततः संरोहण्यौषध्या कनकवर्णो जातः, तदा क्षमयित्वा प्रतिगताः, ते पश्चात् साधवो जाताः, यथायुष्कं पालयित्वा तन्मूलं पञ्चापि जना अच्युते उत्पन्नाः। ततश्च्युत्वा इहैव जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहेषु पुष्करावतीविजये पुण्डरीकिण्यां नगर्यां वज्रसेनस्य राज्ञः धारिण्या देव्या उदरे प्रथमो वज्रनाभनामा पुत्रो जातः, यः स वैद्यपुत्रश्चक्रवर्त्ती आयातः (उत्पन्नः), अवशेषाः क्रमेण बाहुसुबाहुपीठमहापीठा इति, वज्रसेनः प्रव्रजितः, स च तीर्थकरो जातः, इतरेऽपि संवर्धिताः पञ्चलक्षणान् भोगान् भुञ्जते, यद्दिवसे वज्रसेनस्य केवलज्ञानमुत्पन्नं, * च. + पप्फोडियं. † ताहे पाउणिज्जति. ‡ दीवे दीवे. ¶ वइरसेणस्स. $ सो वेज्जपुत्तो. § सो जाओ. ‖ ०णभोए. [] समुप्पण्णं.

॥११७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

तद्दिवसं वइरणाभस्स चक्करयणं समुप्पण्णं, वइरो चक्की जाओ, तेणं साहुवेयावच्चेण चक्कवट्टीभोया उदिण्णा, अवसेसा चत्तारि मंडलिया रायाणो, तत्थ वइरणाभचक्कवट्टिस्स चउरासीतिं पुव्वलक्खा सव्वाउगं, तत्थ कुमारो तीसं मंडलिओ सोलस चउव्वीस महाराया चोद्दस सामण्णपरिआओ, एवं चउरासीइ सव्वाउयं, भोगे भुंजंता विहरंति, इओ य तित्थयरसमोसरणं, सो पिउपायमूले चउहिवि सहोदरेहिं सहिओ पव्वइओ, तत्थ वइरणाभेण चउद्दस पुव्वा अहिज्जिया, सेसा एक्कारसंगवी चउरो, तत्थ बाहू तेसिं वेयावच्चं करेति, जो सुबाहू सो साहुणो वीसामेति, एवं ते करेंते वइरणाभो भगवं अणुवूहइ–अहो सुलद्धं जम्मजीविअफलं, जं साहूणं वेयावच्चं कीरइ, परिस्संता वा साहुणो वीसामिज्जंति, एवं पसंसइ, एवं पसंसिज्जंतेसु तेसु तेसिं दोण्हं पच्छिमाणं अप्पत्तिअं भवइ, अम्हे सज्झायंता न पसंसिज्जामो, जो करेइ सो पसंसिज्जइ,

---

१ तद्दिवसे वज्रनाभस्य चक्ररत्नं समुत्पन्नं, वज्रनाभः चक्री जातः, तेन साधुवैयावृत्त्येन चक्रवर्त्तिभोगा उदीर्णाः (लब्धाः), अवशेषाश्चत्वारो माण्डलिका राजानो (जाताः), तत्र वज्रनाभचक्रवर्त्तिनश्चतुरशीतिलक्षपूर्वाणि सर्वायुष्कं कुमारः त्रिंशतं माण्डलिकः षोडश चतुर्विंशतिं महाराजः चतुर्दश श्रामण्यपर्यायः, एवं चतुरशीतिः सर्वायुष्कं, भोगान् भुञ्जमाना विहरन्ति, इतश्च तीर्थकरसमवसरणं, स पितृपादमूले चतुर्भिरपि सहोदरैः सहितः प्रव्रजितः, तत्र वज्रनाभेन चतुर्दश पूर्वाण्यधीतानि, शेषा एकादशाङ्गविदः चत्वारः, तत्र बाहुस्तेषां वैयावृत्त्यं करोति, यः सुबाहुः स साधून् विश्रमयति, एवं तौ कुर्वन्तौ वज्रनाभो भगवान् अनुबृंहयति–अहो सुलब्धं जन्मजीवितफलं, यत् साधूनां वैयावृत्त्यं क्रियते, परिश्रान्ता वा साधवो विश्रम्यन्ते, एवं प्रशंसति, एवं प्रशस्यमानयोस्तयोर्द्वयोः पश्चिमयोरप्रीतिकं भवति, आवां स्वाध्यायन्तौ न प्रशस्यावहे, यः करोति स प्रशस्यते, * ०चक्किस्स. + ०सीइं. † ०सरणे. ‡ बीज.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक-
॥११८॥

हारिभद्री-
यवृत्तिः
विभागः १

सँवो (चो) लोगववहारोत्ति, वइरणाभेण य विसुद्धपरिणामेण तित्थगरणामगोत्तं कम्मं बद्धंति। अमुमेवार्थमुपसंहरन्निदं गाथाचतुष्टयमाह—

साहुं तिगिच्छिऊणं सामण्णं देवलोगगमणं च। पुंडरगिणिए उ चुया तओ सुया वइरसेणस्स ॥ १७५ ॥
पढमित्थ वइरणाभो बाहु सुबाहू य पीढमहपीढे*। तेसि पिआ तित्थअरो णिक्खंता तेऽवि तत्थेव ॥ १७६ ॥
पढमो चउदसपुव्वी सेसा इक्कारसंगविउ चउरो। बीओ वेयावच्चं किइकम्मं तइअओ कासी ॥ १७७ ॥
भोगफलं बाहुबलं पसंसणा जिट्ठ इयर अचियत्तं। पढमो तित्थयरत्तं वीसहि ठाणेहि कासी य ॥ १७८ ॥

आसामक्षरगमनिका—साधुं चिकि+त्सित्वा श्रामण्यं देवलोकगमनं च पौण्डरीकिण्यां च च्युताः, ततः सुता वैरसेनस्य जाता इति वाक्यशेषः, प्रथमोऽत्र वैर†नाभः बाहुः सुबाहुश्च पीठमहापीठौ, तेषां पिता तीर्थकरो निष्क्रान्तास्तेऽपि तत्रैव–पितुः सकाशे इत्यर्थः, प्रथमश्चतुर्दशपूर्वी शेषा एकादशाङ्गविदश्चत्वारः, तेषां चतुर्णां बाहुप्रभृतीनां मध्ये द्वितीयो वैयावृत्त्यं कृतिकर्म तृतीयोऽकार्षीत्, भोगफलं बाहु‡बलं प्रशंसनं ज्येष्ठ इतरयोरचियत्तं, प्रथमस्तीर्थकरत्वं विंश¶तिभिः स्थानैरकार्षीत्, भावार्थस्तु उक्त एव, क्रियाऽध्याहारोऽपि स्वबुद्ध्या कार्यः, इह च विस्तरभयान्नोक्त इति गाथाचतुष्टयार्थः ॥१७५-१७६-१७७-१७८॥ यदुक्तं 'प्रथमस्तीर्थकरत्वं विंशतिभिः स्थानैरकार्षीत्,' तानि स्थानानि प्रतिपादयन्निदं गाथात्रयमाह– ॥११८॥

---

१ सर्वो(त्वो) लोकव्यवहार इति, वज्रनाभेन च विशुद्धपरिणामेन तीर्थंकरनामगोत्रं कर्म बद्धमिति. * पीढा. + चिकित्सयित्वा. † वइरनाभः. ‡ बाहुफलं. ¶ विंशत्या (स्यात्).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अरिहंत सिद्ध पवयण गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसुं। वच्छल्लया एएसिं अभिक्खनाणोवओगे य ॥ १७९ ॥
दंसण विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइआरो। खणलव तवच्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥ १८० ॥
अप्पुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया। एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ १८१ ॥

व्याख्या—तत्र अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामर्हन्तीति अर्हन्तः–शास्तार इति भावार्थः १ । सिद्धास्तु अशेषनिष्ठितकर्मांशाः परमसुखिनः कृतकृत्या इति भावार्थः २ । प्रवचनं–श्रुतज्ञानं तदुपयोगानन्यत्वाद्वा सङ्घ इति ३ । गृणन्ति शास्त्रार्थमिति गुरवः–धर्मोपदेशादिदातार इत्यर्थः ४ । स्थविराः–जातिश्रुतपर्यायभेदभिन्नाः, तत्र जातिस्थविरः षष्टिवर्षः श्रुतस्थविरः समवायधरः पर्यायस्थविरो विंशतिवर्षपर्यायः ५ । बहु श्रुतं येषां ते बहुश्रुताः, आपेक्षिकं बहुश्रुतत्वं, एवमर्थेऽपि संयोज्यं, किंतु सूत्रधरेभ्योऽर्थधराः प्रधानाः तेभ्योऽप्युभयधरा इति ६ । विचित्रं अनशनादिलक्षणं तपो विद्यते येषां ते तपस्विनः सामान्यसाधवो वा ७ । अरहंन्तश्च* सिद्धाश्च प्रवचनं च गुरवश्च स्थविराश्च बहुश्रुताश्च तपस्विनश्च अर्हत्सिद्धप्रवचनगुरुस्थविरबहुश्रुततपस्विनः । वत्सलभावो वत्सलता, सा चानुरागयथावस्थितगुणोत्कीर्त्तनायथानुरूपोपचारलक्षणा तया, एतेषामर्हदादीनामिति, प्राकृ षष्ठ्यर्थे सप्तमी 'बहुस्सुए तवस्सीणं' वा पाठान्तरं, तीर्थकरनामगोत्रं कर्म बध्यत इति, अभीक्ष्णं–अनवरतं ज्ञानोपयोगे च सति बध्यते ८ । दर्शनं–सम्यक्त्वं, विनयो–ज्ञानादिविनयः, स च दशवैकालिकादवसेयः, दर्शनं च विनयश्च दर्शनविनयौ तयोर्निरतिचारः तीर्थकरनामगोत्रं कर्म बध्नाति १०–११

* अर्हन्तश्च (स्यात्).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरिहन्त आदि २० स्थानकानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यकम्-अवश्यकर्त्तव्यं संयमव्यापारनिष्पन्नं तस्मिंश्च निरतिचारः सन्निति १२। शीलानि च व्रतानि च शीलव्रतानि शीलानि–उत्तरगुणाः व्रतानि–मूलगुणाः तेषु च अनतिचार इति १३। क्षणलवग्रहणं कालोपलक्षणं, क्षणलवादिषु संवेगभावनाध्यानासेवनतश्च बध्यते १४। तथा तपस्त्यागयोर्बध्यते, यो हि यथाशक्त्या* तपः आसेवते त्यागं च यतिजने विधिना करोति १६। व्यावृतभावो वैयावृत्त्यं, तच्च दशधा, तस्मिन्सति बध्यते १७। समाधिः–गुर्वादीनां कार्यकरणेन+ स्वस्थतापादनं समाधौ च सति बध्यते १८। तथा अपूर्वज्ञानग्रहणे सति श्रुतभक्तिः श्रुतबहुमानः, स च विवक्षितकर्मबन्धकारणमिति १९। तथा प्रवचनप्रभावनता च, सा च यथाशक्त्या मार्गदेशनेति २०। एवमेभिः कारणैः अनन्तरोक्तैः तीर्थकरत्वं लभते जीव इति गाथात्रयार्थः ॥ १७९–१८०–१८१ ॥

पुरिमेण पच्छिमेण य एए सव्वेऽवि फासिया ठाणा। मज्झिमएहिं जिणेहिं एक्कं दो तिण्णि सव्वे वा ॥ १८२॥

गमनिका—पुरिमेण पश्चिमेन च एतानि–अनन्तरोक्तानि सर्वाणि स्पृष्टानि स्थानानि, मध्यमैर्जिनैः एकं द्वे त्रीणि सर्वाणि चेति गाथार्थः ॥ १८२ ॥

आह—तं च कहं वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाईहिं। बज्झइ तं तु भगवओ तइयभवोसक्कइत्ताणं ॥१८३॥

गमनिका —तच्च तीर्थकरनामगोत्रं कर्म कथं वेद्यत इति, अग्लान्या धर्मदेशनादिभिः, बध्यते तत्तु भगवतो यो

* यथाशक्ति (स्यात्). + ०करणद्वारेण.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्थङ्कर-कर्मन: वेदनं, तस्य बन्धनं

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

भवस्तस्मात् तृतीयं भवमवसर्प्य, अथवा बध्यते तत्तु भगवतस्तृतीयं भवं प्राप्य, ओसक्कइत्ताणंति–तत्स्थितिं संसारं वाऽवसर्प्येति, तस्य ह्युत्कृष्टा सागरोपमकोटीकोटिर्बन्धस्थितिः, तच्च प्रारम्भबन्धसमयादारभ्य सततमुपचिनोति, यावदपूर्वकरणै*संख्येयभागैरिति, केवलिकाले तु तस्योदय इति गाथार्थः ॥१८३॥ तत्कस्यां गतौ बध्यत इत्याह—

नियमा मणुयगईए इत्थी पुरिसेयरो य सुहलेसो । आसेवियबहुलेहिं वीसाए अण्णयरएहिं ॥ १८४ ॥

गमनिका—नियमात् मनुष्यगतौ बध्य+ते, कस्तस्यां बध्नातीत्याशङ्क्याह—स्त्री पुरुष इतरो वेति–नपुंसकं (कः), किं सर्व एव?, नेत्याह—शुभा लेश्या यस्यासौ शुभलेश्यः, स 'आसेवितबहुलेहिं' बहुलासेवितैः–अनेकधाऽऽसेवितैरित्यर्थः, प्राकृतशैल्या पूर्वापरनिपातोऽत†न्त्रं, विंशत्या अन्यतरैः स्थानैर्बध्नातीति गाथार्थः ॥ १८४ ॥ कथानकशेषमिदानीम्—बाहु‡णा वेया¶वच्चकरणेण चक्किभोगा णिव्वत्तिया, सुबाहुणा वीसा$मणाए बाहुबलं निव्वत्तिअं, पच्छिमेहिं दोहिं ताए मायाए इत्थिनामगोत्तं कम्ममज्जितंति, ततो अहाउअमणुपालेत्ता पंचवि कालं काऊण सव्वट्ठसिद्धे विमाणे तित्तीससागरोवमठिइया देवा

---

१ बाहुना वैयावृत्त्यकरणेन चक्रिभोगा निर्वर्त्तिताः, सुबाहुना विश्रामणया बाहुबलं निर्वर्त्तितं, पश्चिमाभ्यां द्वाभ्यां तया मायया स्त्रीनामगोत्रं कर्म अर्जितमिति, ततो यथायुष्कमनुपाल्य पञ्चापि कालं कृत्वा सर्वार्थसिद्धे विमाने त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिका देवाः * करणं. + पच्यते. † ०ऽतश्चं च. ‡ बाहुणावि. ¶ वैयावृत्य०. $ वीसावणाए.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

उववण्णा, तत्थवि अहाउयं अणुपालेत्ता पढमं वइरणाभो चइऊण इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए वइक्कंताए सुसमाएवि सुसमदुसमाएवि बहुवीइक्कंताए चउरासीइए पुव्वसयसहस्सेसु एगूणणउए य पक्खेहि सेसेहिं आसाढबहुलपक्खचउत्थीए उत्तरासाढजोगजुत्ते मियंके इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदे*वीए भारियाए कुच्छिसि गब्भत्ताए उववण्णो, चोद्द+स सुमिणा उसभगयाईआ पासिय पडिबुद्धा, नाभि†स्स कुलगरस्स कहेइ, तेण भणियं–तुब्भ पुत्तो महाकुलकरो भविस्सइ, सक्कस्स य आसणं चलियं, सिग्घं आगमणं, भणइ–देवाणु‡पिए ! तव पुत्तो सयलभुवणमंगलालओ पढमराया पढमधम्मचक्कवट्टी भविस्सइ, केई भणंति–बत्तीसंपि इंदा आगंतूण वागरेंति, ततो मरुदेवा हट्ठतुट्ठा गब्भं वहइत्ति। अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

उववाओ सव्वट्ठे सव्वेसिं पढमओ चुओ उसभो। रिक्खेण असाढाहिं असाढबहुले चउत्थीए ॥१८५॥

गमनिका—उपपातः सर्वार्थे सर्वेषां संजातः, ततश्च आयुष्कपरिक्षये सति प्रथमश्च्युतो ऋषभ ऋक्षेण–नक्षत्रेण आषा-

---

१ उत्पन्नाः, तत्रापि यथायुरनुपाल्य प्रथमं वज्रनाभश्च्युत्वा अस्या अवसर्पिण्याः सुषमसुषमायां व्यतिक्रान्तायां सुषमायामपि सुषमदुष्षमायामपि बहुव्यतिक्रान्तायां चतुरशीतौ पूर्वशतसहस्रेषु एकोननवतौ च पक्षेषु शेषेषु आषाढकृष्णपक्षचतुर्थ्यां उत्तराषाढायोगयुक्ते मृगाङ्के इक्ष्वाकुभूमौ नाभेः कुलकरस्य मरुदेव्या भार्यायाः कुक्षौ गर्भतयोत्पन्नः, चतुर्दश स्वप्नान् ऋषभगजादिकान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा, नाभये कुलकराय कथयति, तेन भणितं–तव पुत्रो महाकुलकरो भविष्यति, शक्रस्य चासनं चलितं, शीघ्रमागमनं, भणति–देवानुप्रिये ! तव पुत्रः सकलभुवनमङ्गलालयः प्रथमराजः प्रथमधर्मचक्रवर्त्ती भविष्यति, केचिद् भणन्ति–द्वात्रिंशदपि इन्द्रा आगत्य व्यागृणन्ति, ततो मरुदेवी हृष्टतुष्टा गर्भं वहतीति. * मरुदेवण. + चउद्दस०. † नाभिकुल०. ‡ ०णुपिया.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋशभस्य जन्म,वृद्धिः, जातिस्मरण आदिनाम् वर्णनं

<table>
<tr><td>आगम
(४०)</td><td>[भाग-२८] “आवश्यक”– मूलसूत्र-१/१ (मूलं+निर्युक्ति:+वृत्ति:)
अध्ययनं [–], मूलं [– /गाथा-], निर्युक्ति: [१८५], भाष्यं [३...],</td></tr>
<tr><td>प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]</td><td>

ढाभिः आषाढबहुले चतुर्थ्यामिति गाथार्थः ॥ १८५॥ इदानीं तद्वक्तव्यताऽभिधित्सया एनां द्वारगाथामाह निर्युक्तिकारः—

जम्मणे नाम वुड्ढी अ, जाईएँ सरणे इअ। वीवाहे अ अवच्चे अभिसेए रज्जसंगहे ॥ १८६ ॥

गमनिका—'जंमण' इति जन्मविषयो विधिर्वक्तव्यः, वक्ष्यति च 'चित्तबहुलट्ठमीए' इत्यादि, नाम+ इति–नामविषयो विधिर्वक्तव्यः, वक्ष्यति 'देसूणगं च' इत्यादि, 'वुड्ढी यत्ति' वृद्धिश्च भगवतो वाच्या, वक्ष्यति च 'अह सो वड्ढति भगवमित्यादि', 'जातीसरणेतियत्ति'* जातिस्मरणे च विधिर्वक्तव्यः, वक्ष्यति च 'जाईसरो य' इत्यादि, 'वीवाहे यत्ति' वीवाहे च विधिर्वक्तव्यः, वक्ष्यति च 'भोगसमत्थं' इत्यादि, 'अवच्चेत्ति' अपत्येषु क्रमो वाच्यः, वक्ष्यति च 'तो भरहबंभिसुंदरीत्यादि' 'अभिसेगत्ति' राज्याभिषेके विधिर्वाच्यः 'आभोएउं सक्को उवागओ' इत्यादि वक्ष्यति, 'रज्जसंगहेत्ति' राज्यसंग्रहविषयो विधिर्वाच्यः, 'आसा हत्थी गावो' इत्यादि। अयं समुदायार्थः, अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं यथावसरं वक्ष्यामः। तत्र प्रथमद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

चित्तबहुलट्ठमीए जाओ उसभो असाढणक्खत्ते। जम्मणमहो अ सव्वो णेयव्वो जाव घोसणयं ॥ १८७॥

गमनिका—चैत्रबहुलाष्टम्यां जातो ऋषभ आषाढानक्षत्रे जन्ममहश्च सर्वो नेतव्यो यावद् घोष†णमिति गाथार्थः ॥१८७॥ भावार्थस्तु कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—सा[1] य मरुदेवा नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण‡ य राइंदियाणं

1 सा च मरुदेवी नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अर्धाष्टसु च रात्रिन्दिवेषु. * जातीसरणेतिय (वृत्तौ). + नामेति. † ०णकमिति. ‡ माणं राइं०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति
</td></tr>
<tr><td></td><td>भगवत: जन्म-कल्याणकस्य वर्णनं</td></tr>
</table>

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

बहुवीइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि चित्तबहुलट्ठमीए उत्तरासाँढानक्खत्ते आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया, जायमाणेसु य तित्थयरेसु सव्वलोए उज्जोओ भवति, तित्थयरमायरो य पच्छण्णगब्भाओ भवंति जराहिरकलमलाणि य न हवंति, ततो जाते तिलोयणाहे अहोलोयवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ, तंजहा—भोगंकरा भोगवती, सुभोगा भोगमालिणी। सुवच्छा वच्छमित्ता य, पुप्फमाला अणिंदिया ॥ १ ॥ एयासिं आसणाणि चलंति, ततो भगवं उसहसामिं ओहिणा जायं आभोएऊण दिव्वेण जाणविमाणेण सिग्घमागंतूण तित्थयरं तित्थयरजणणिं च मरुदेविं अभिवंदिऊण संलवंति—नमोऽत्थु ते जगप्पईवदाईए !, अम्हे णं देवाणुप्पिए ! अहोलोयवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमो तं तुब्भेहि न भाइयव्वंति, ततो तंमि पदेसे अणेगखंभसयसंनिविट्ठं जम्मणभवणं विउव्विऊण संवट्टगपवणं विउव्वंति, ततो तस्स भगवंतस्स जम्मणभवणस्स आजोयणं सव्वतो समंता तणकट्ठकंटककक्करसक्कराइ तमाहुणिय आहुणिय एगंते

---

१ बहुव्यतिक्रान्तेषु अर्धरात्रकालसमये चैत्रकृष्णाष्टम्यां उत्तराषाढानक्षत्रे अरोगा अरोगं दारकं प्रजाता, जायमानेषु च तीर्थकरेषु सर्वलोके उद्योतो भवति, तीर्थंकरमातरश्च प्रच्छन्नगर्भा भवन्ति जराहधिरकलिमलानि च न भवन्ति, ततो जाते त्रिलोकनाथे अधोलोकवास्तव्या अष्ट दिक्कुमार्यः, तद्यथा–भोगङ्करा भोगवती सुभोगा भोगमालिनी। सुवत्सा वत्समित्रा च पुष्पमाला अनिन्दिता ॥१॥ एतासामासनानि चलन्ति, ततो भगवन्तं ऋषभस्वामिनं अवधिना जातं आभोग्य दिव्येन यानविमानेन शीघ्रमागम्य तीर्थकरं तीर्थकरजननीं च मरुदेवीमभिवन्द्य संलपन्ति–नमोऽस्तु तुभ्यं जगत्प्रदीपदायिके ! वयं देवानुप्रिये ! अधोलोकवास्तव्याः अष्ट दिक्कुमार्यः भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमानं कुर्मस्तत् त्वया न भेतव्यमिति, ततस्तस्मिन् प्रदेशे अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टं जन्मभवनं विकुर्व्य संवर्त्तकपवनं विकुर्वन्ति, ततस्तस्य भगवतः जन्मभवनस्यायोजनं सर्वतः समन्तात् तृणकाष्ठकण्टककर्करशर्करादि तत् आधूय आधूयैकान्ते * उत्तरासाढ०. ॥१२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	

पक्खिवंति, ततो खिप्पं*मेव पच्चुवसमंति, ततो भगवतो तित्थगरस्स जणणीसहिअस्स पणामं काऊण नाइदूरे निविट्ठाओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति। तओ उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ, तंजहा–मेघंकरा मेघवती, सुमेघा मेघमालिनी। तोयधारा विचित्ता य, वारिसेणा वलाहया ॥ १ ॥ एयाओऽवि तेणेव विहिणा आगंतूण अब्भवद्दलयं विउव्वित्ता आजोयणं भगवओ जम्मणभवणस्स णच्चोदयं णाइमट्टियं पफुसियपविरलं रयरेणुविणासणं सुरभिगंधोदयवासं वासित्ता पुप्फवद्दलयं विउव्वित्ता जलथलयभासरप्पभूयस्स बिंटट्ठाइस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमस्स जाणुस्सेधपमाणमेत्तं पुप्फवासं वासंति, तं+ चेव जाव आगायमाणीओ चिट्ठंति। तओ पुरच्छिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारिसामिणीओ, तंजहा–णंदुत्तरा य णंदा आणंदा णंदिवद्धणा चेव। विजया य वेजयंती जयं†ति अवराजिया चेव ॥ १ ॥ तहेवागंतूण जाव न तुब्भेहिं बीहियव्वंति भणिऊण भगवओ तित्थगरस्स जणणिसहिअस्स पुरि‡च्छिमेणं आदंसगहत्थिआओ आगायमाणीओ चिट्ठंति।

---

१ प्रक्षिपन्ति, ततः क्षिप्रमेव प्रत्युपशमयन्ति, ततो भगवते तीर्थकराय जननीसहिताय प्रणामं कृत्वा नातिदूरे निविष्टाः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। तत ऊर्ध्वलोकवास्तव्या अष्ट दिक्कुमार्यः, तद्यथा–मेघङ्करा मेघवती, सुमेघा मेघमालिनी। तोयधारा विचित्रा च, वारिषेणा बलाहका ॥ १ ॥ एता अपि तेनैव विधिनाऽऽगत्याभ्रवर्दलं विकुर्वयित्वा आयोजनं भगवतो जन्मभवनात् नात्युदकं नातिमृत्तिकं विरलशीकरं (फुसारं) रजोरेणुविनाशनं सुरभिगन्धोदकवर्षा वर्षयित्वा पुष्पवर्दलं विकुर्व्य जलस्थलजभास्वरप्रभूतस्य वृन्तस्थायिनः दशार्धवर्णस्य कुसुमस्य जानूत्सेधप्रमाणमात्रां पुष्पवर्षां वर्षयन्ति, तदेव यावद् आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। ततः पूर्वदिग्रुचकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारीस्वामिन्यः, तद्यथा–नन्दोत्तरा च नन्दा आनन्दा नन्दिवर्धना चैव। विजया च वैजयन्ती जयन्ती अपराजिता चैव ॥ १ ॥ तथैवागत्य यावत्त्वया न भेतव्यमिति भणित्वा भगवतस्तीर्थकराजननीसहितात्पूर्वस्यां आदर्शहस्ता आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। * खिप्पा०. + तह चेव. † ०यंती. ‡ पुरच्छिमेणं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

एवं दाहिणरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ, तंजहा–समाहारा सुप्पदिण्णा, सुप्पबुद्धा जसोहरा। लच्छिमती भोगवती, चित्तगुत्ता वसुंधरा ॥ १ ॥ तहेवागंतूण जाव भुवणाणंदजणणस्स जणणिसहिअस्स दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ चिट्ठंति। एवं पच्छिमरुयगवत्थव्वाओऽवि अट्ठ, तंजहा–इलादेवी सुरादेवी, पुहवी पउमावती। एगणासा णवमिआ, सीया भद्दा य अट्ठमा ॥१॥ एयाओऽवि तित्थयरस्स जणणिसहिअस्स पच्चत्थिमेणं तालियंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ चिट्ठंति। एवं उत्तररुयगवत्थव्वाओऽवि अट्ठ, तंजहा–अलंबुसा मिस्सकेसी, पुंडरिगिणी य वारुणी। हाँसा सव्वप्पभा चेव, सिरि हिरी चेव उत्तरओ ॥ १ ॥ तहेवागंतूण तित्थगरस्स जणणिसहिअस्स उत्तरेण णातिदूरे चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ चिट्ठंति। ततो विदिसिरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि विज्जुकुमारीसामिणीओ, तंजहा–चित्ता य चित्तकणगा, सत्तेरा सोयामणी ॥ तहेवागंतूण तिहुअणबंधुणो जणणिसहिअस्स चउसु विदिसासु दीवियाहत्थगयाओ णाइदूरे आगायमाणीओ चिट्ठंति। ततो

---

१ एवं दक्षिणरुचकवास्तव्या अष्ट, तद्यथा–समाहारा सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा यशोधरा। लक्ष्मीवती भोगवती, चित्रगुप्ता वसुन्धरा ॥१॥ तथैवागत्य यावत् भुवनानन्दजनकाज्जननीसहितात् दक्षिणस्यां भृङ्गारहस्ता आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। एवं पश्चिमरुचकवास्तव्या अपि अष्ट, तद्यथा–इलादेवी सुरादेवी, पृथ्वी पद्मावती। एकनासा नवमिका, सीता भद्रा चाष्टमी ॥१॥ एता अपि तीर्थंकरात् जननीसहितात्पश्चिमायां तालवृन्तहस्तगता आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। एवमुत्तररुचकवास्तव्या अपि अष्ट, तद्यथा–अलम्बुसा मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी च वारुणी। हासा सर्वप्रभा चैव, श्रीः ह्रीश्चैवोत्तरतः ॥१॥ तथैवागत्य तीर्थंकराज्जननीसहितादुत्तरस्यां नातिदूरे चामरहस्तगता आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। ततो विदिग्रुचकवास्तव्याश्चतस्रः विद्युत्कुमारीस्वामिन्यः, तद्यथा–चित्रा च चित्रकनका, सतारा सौदामिनी ॥ तथैवागत्य त्रिभुवनबन्धोर्जननीसहिताच्चतसृषु विदिक्षु दीपिकाहस्तगता नातिदूरे आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति। ततो * आसा. + उत्तरा. † ०सि बाहिरह०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मज्झरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारिपहाणाओ, तंजहा–रूयया रूययंसा, सुरूया रूयगावती ॥ तहेवागंतूण जाव ण उवरोहं गंतव्वंतिकट्टु भगवओ भवियजणकुमुयसंडमंडणस्स चउरंगुलवज्जं णाभिं कप्पेंति, वियरयं खणंति, णाभिं वियरए निहणंति, रयणाणं वैराण य पूरेंति, हरियालियाए य पीढं बंधेंति, भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स पुरच्छिमदाहिण-उत्तरेण तओ कदलीहरए विउव्वंति, तेसिं बहुमज्झदेसे तओ चंदसाले विउव्वंति, तेसिं बहुमज्झदेसे तओ सीहासणे विउव्वंति, भगवं तित्थयरं करयलपरिग्गहिअं तित्थगरजणणिं च बाहाए गिण्हिऊण दाहिणिल्ले कदलीघरचाउस्साले सीहासणे निवेसिऊण सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति, सुरभिणा गंधवट्टएण उव्वट्टिंति, ततो भगवं तित्थयरं करकमलजुअलरुद्धं काऊण तिहुयणनिव्वुइयरस्स जणणिं च सुइरं बाहाहिं गहाय पुरच्छिमिल्ले कदलीघरचाउस्सालसीहासणे सन्नि-

---

१ मध्यरुचकवास्तव्याश्चतस्रो दिक्कुमारीप्रधानाः, तद्यथा–रुचका रुचकांशा, सुरुचा रुचकावती ॥ तथैवागत्य यावन्नोपरोधं गन्तव्यमितिकृत्वा भगवतो भव्यजनकुमुदषण्डमण्डनस्य चतुरङ्गुलवर्जं नाभिं कल्पयन्ति, विवरं खनन्ति, नाभिं विवरे निघ्नन्ति, रत्नैर्वज्रैश्च पूरयन्ति, हरितालिकया च पीठं बध्नन्ति, भगवतस्तीर्थंकरस्य जन्मभवनाद् पूर्वदक्षिणोत्तरासु त्रीणि कदलीगृहाणि विकुर्वयन्ति, तेषां बहुमध्यदेशे तिस्रश्चन्द्रशाला विकुर्वन्ति, तासां बहुमध्यदेशे त्रीणि सिंहासनानि विकुर्वन्ति, भगवन्तं तीर्थकरं करतलपरिगृहीतं तीर्थकरजननीं च बाह्वोः गृहीत्वा दाक्षिणात्ये कदलीगृहचतुःशाले सिंहासने निवेश्य शतपाकसहस्रपाकतैलैरभ्यञ्जयन्ति, सुरभिणा गन्धवर्त्तकेनोद्वर्त्तयन्ति, ततो भगवन्तं तीर्थकरं करकमलयुगलरुद्धं कृत्वा त्रिभुवननिर्वृतिकरस्य जननीं च सुचिरं बाहुभ्यां गृहीत्वा पौरस्त्ये कदलीगृहचतुःशालसिंहासने * ०मारीओ पहा०. + पेढं. † करकमल०. ‡ घरगे. ¶ ०लसीहा०. $ निसियावेऊण. § सहरं. ‖ भयं. ** छिन्दति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१२३॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

वेसा*वेंति, ततो मज्जणविहीए मज्जंति, गंधका+साइएहि अंगया†इं लूहेंति, सरसेणं गोसीसचंदणेणं समालहेंति, दिव्वाइं देवदूसजुअलाइं नियंसंति, सव्वालंकारविभूसियाइं करेंति, तओ उत्तरिल्ले कदलीघरचाउस्सालसीहासणे निसीयाविंति, त‡ओ आभिओगेहिं चुल्लहिमवंताओ सरसाइं गोसीसचंदणकट्ठाइं आणावेऊण अरणीए अग्गिं उप्पाएंति, तेहिं गोसीसचंदणकट्ठेहिं अग्गिं उज्जालेंति, अग्गिहोमं करेंति, भूइकम्मं करेंति, रक्खापोट्टलिअं करेंति, भगवओ तित्थंकरस्स कण्णमूलंसि दुवे पाहाणवट्टए टिंटियावेंति, भवउ २ भवं पव्वयाउएत्तिकट्टु भगवंतं तित्थकरं करतलपुडेण तित्थगरमातरं च बाहाए गहाय जेणेव भगवओ जम्मणभवणे जेणेव स¶यणिज्जे तेणेव उवागच्छंति, तित्थयरजणणिं सयणिज्जे निसियावेंति, भगवं तित्थयरं पासं ठवेंति, तित्थकरस्स जणणिसहिअस्स नाइदूरे आगायमाणीओ चिट्ठंति ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

संवट्ट मेह आयंसगा य भिंगार तालियंटा य । चामर जोई रक्खं करेंति एयं कुमारीओ ॥॥ १८८ ॥

---

१ सन्निवेशयन्ति, ततो मज्जनविधिना मज्जयन्ति, गन्धकाषायीभिरङ्गानि रूक्षयन्ति, सरसेन गोशीर्षचन्दनेन समालभन्ते, दिव्यानि देवदूष्ययुगलानि परिधापयन्ति, सर्वालङ्कारविभूषिते कुर्वन्ति, तत औत्तरे कदलीगृहचतुःशालसिंहासने [] निषादयन्ति, तत आभियोगिकैः क्षुल्लकहिमवतः सरसानि गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि आनाय्य अरणीतोऽग्निमुत्पादयन्ति, तैर्गोशीर्षचन्दनकाष्ठैरग्निं उज्ज्वालयन्ति, अग्निहोमं कुर्वन्ति, भूतिकर्म कुर्वन्ति, रक्षापोट्टलिकां कुर्वन्ति, भगवतस्तीर्थंकरस्य कर्णमूले द्वौ पाषाणवर्तुलौ आस्फालयन्ति, भवतु २ भवान् पर्वतायुष्क इतिकृत्वा भगवन्तं तीर्थंकरं करतलपुटेन तीर्थंकरमातरं च भुजयोर्गृहीत्वा यत्रैव भगवतो जन्मभवनं यत्रैव शयनीयं तत्रैवोपागच्छन्ति, तीर्थंकरजननीं शयनीये निषादयन्ति, भगवन्तं तीर्थंकरं पार्श्वे स्थापयन्ति, तीर्थंकरस्य जननीसहितस्य नातिदूरे आगायन्त्यस्तिष्ठन्ति । * निसियावेंति. + ०गंधकासाइए. † ०गायाइं. ‡ तत्थ आभिओगिएहिं. ¶ वाससय०. || मेरु अह उड्ढलोआ चउदिसिरुअगा उ अट्ठ पत्तेअं । चउविदिसि मज्झरुयगा इति छप्पण्णा दिसिकुमारी ॥ १ ॥ सोपयोगा प्रक्षिप्ता. [] निवेशयन्ति.

॥१२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गतार्था, द्वारयोजनामात्रं प्रदर्श्यते–'संवट्ट मेहे'ति संवर्त्तकं मेघम् उक्तप्रयोजनं विकुर्वन्ति, आदर्शकांश्च गृहीत्वा तिष्ठन्ति, भृङ्गारांस्तालवृत्तांश्चेति, तथा चामरं ज्योतिः रक्षां कुर्वन्ति, एतत् सर्वं दिक्कुमार्य इति गाथार्थः ॥ १८८ ॥

ततो सक्कस्स देविंदस्स णाणामणिकिरणसहस्सरंजिअं सीहासणं चलिअं, भगवं तित्थगरं ओहिणा आभोएति, सिग्घं पालएण विमाणेणं एइ, भगवं तित्थयरं जणणिं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–णमोऽत्थु ते रयणकुच्छिधारिए !, अहं णं सक्के देविंदे भगवओ आदितित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमि, तं णं तुमे ण उवरुज्झियबंतिकट्टु ओसोयणिं दलयति, तित्थगरपडिरूवगं विउव्वति, तित्थयरमाँ*उए पासे ठवेति, भगवं तित्थयरं करयलपुडेण गेण्हति, अप्पाणं च पंचधा विउव्वति–गहियजिणिंदो एक्को दोण्णि य पासंमि चामराहत्था । गहिउज्जलायवत्तो एक्को एक्कोऽथ वज्जधरो ॥ १ ॥ ततो सक्को चउविहदेवनिकायसहिओ सिग्घं तुरियं जेणेव मंदरे पव्वए पंडगवणे मंदरचूलियाए दाहिणेणं अइपंडुकंबलसिलाए अभिसेयसीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे पुरच्छाभिमुहे निसीयति,

१ ततः शक्रस्य देवेन्द्रस्य नानामणिकिरणसहस्ररञ्जितं सिंहासनं चलितं, भगवन्तं तीर्थंकरमवधिनाऽऽभोगयति, शीघ्रं पालकेन विमानेनायाति, भगवन्तं तीर्थंकरं जननीं च त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–नमोऽस्तु तुभ्यं रत्नकुक्षिधारिके !, अहं शक्रो देवेन्द्रो भगवत आदितीर्थकरस्य जन्ममहिमानं करोमि, तत् त्वया नोपरोद्धव्यमितिकृत्वाऽवस्वापिनीं ददाति, तीर्थकरप्रतिरूपकं विकुर्वति, तीर्थकरमातुः पार्श्वे स्थापयति, भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन गृह्णाति, आत्मानं च पञ्चधा विकुर्वति–गृहीतजिनेन्द्र एको द्वौ च पार्श्वयोश्चामरहस्तौ । गृहीतोज्ज्वलातपत्र एक एकोऽथ वज्रधरः ॥ १ ॥ ततः शक्रः चतुर्विधदेवनिकायसहितः शीघ्रं त्वरितं यत्रैव मन्दरे पर्वते पाण्डकवने मन्दरचूलिकाया दक्षिणेन अतिपाण्डुकम्बलशिलायामभिषेकसिंहासनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासने पौरस्त्याभिमुखो निषीदति, * मायरुए.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[१] एत्थ बत्तीसंपि इंदा भगवओ पादसमीवं आगच्छंति, पढमं अच्चुयइंदोऽभिसेयं करेति, ततो अणु परिवाडीए जाव सक्को ततो चमरादीया जाव चंदसूरत्ति, ततो सक्को भगवओ जम्मणाभिसेयमहिमाए निव्वत्ताए ताए सव्विड्ढीए चउव्विहदेवणिकायसहिओ तित्थंकरं घेत्तूण पडियागओ, तित्थगरपडिरूवं पडिसाहरइ, भगवं तित्थयरं जणणीए पासे ठवेइ, ओसोवणिं पडिसंहरइ, दिवं खोमजुअलं कुंडलजुअलं च भगवओ तित्थगरस्स ऊसीसयमूले ठवेति, एगं सिरिदामगंडं तवणिज्जुज्जललंबूसगं सुवण्णपयरगमंडियं नाणामणिरयणहारद्धहारउवसोहियसमुदयं भगवओ तित्थगरस्स उप्पिं उल्लोयगंसि नि*क्खिवति, जे णं भगवं तित्थगरे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणे+ सुहं सुहेणं अभिरममाणे चिट्ठति, ततो वेसमणो सक्कवयणेणं बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्णकोडीओ बत्तीसं नंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगसोभग्गरूवजोव्वणगुणलावण्णं भगवतो तित्थकरस्स जम्मणभवणंमि साहरति, ततो सक्को अभि†ओगिएहिं देवेहिं महया महया सद्देणं उग्घोसावेइ

---

१ अत्र द्वात्रिंशदपि इन्द्रा भगवतः पादसमीपमागच्छन्ति, प्रथममच्युतेन्द्रोऽभिषेकं करोति, ततोऽनु परिपाट्या यावत् शक्रस्ततश्चमरादयः यावच्चन्द्रसूर्या इति, ततः शक्रो भगवतो जन्माभिषेकमहिमनि निर्वृत्ते तया सर्वर्द्ध्या चतुर्विधदेवनिकायसहितस्तीर्थंकरं गृहीत्वा प्रत्यागतः, तीर्थंकरप्रतिरूपं प्रतिसंहरति, भगवन्तं तीर्थंकरं जनन्याः पार्श्वे स्थापयति, अवस्वापिनीं प्रतिसंहरति, दिव्यं क्षौमयुगलं कुण्डलयुगलं च भगवतस्तीर्थंकरस्योच्छीर्षकमूले स्थापयति, एकं श्रीदामगण्डं तपनीयोज्ज्वललम्बूसकं सुवर्णप्रतरकमण्डितं नानामणिरत्नहारार्धहारोपशोभितसमुदयं भगवतस्तीर्थंकरस्योपरि उल्लोचे निक्षिपति, यद् भगवांस्तीर्थंकरोऽनिमेषया दृष्ट्या प्रेक्षमाणः सुखंसुखेनाभिरममाणस्तिष्ठति, ततो वैश्रमणः शक्रवचनेन द्वात्रिंशतं हिरण्यकोटीः द्वात्रिंशतं सुवर्णकोटीः द्वात्रिंशत् नन्दासनानि द्वात्रिंशत् भद्रासनानि सुभगसौभाग्यरूपयौवनगुणलावण्यं भगवतस्तीर्थंकरस्य जन्मभवने संहरति, ततः शक्र आभियोगिकैर्देवैर्महता महता शब्देनोद्घोषयति. * अभिनिक्खि०. + पेहमाणे पेहमाणे. † अभिओगेहिं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

हंदि[1] ! सुणंतु बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसिअवेमाणिआ देवा य देवीओ य जे णं देवाणुप्पिआ ! भगवओ तित्थगरस्स तित्थगरमाऊए वा असुभं मणं संपधारे*ति, तस्स णं अज्जयमंजरीविव सत्तहा मुद्धाणं फुट्टउत्तिकट्टु घोसणं घोसावेइ, ततो णं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिआ देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं काऊण गता नंदीसरवरदीवं, तत्थ अट्ठाहिआमहिमाओ काऊण सए सए आलए पडिगतत्ति। जंमणेत्ति गयं, इदानीं नामद्वारं, तत्र भगवतो नामनिबन्धनं चतुर्विंशतिस्तवे वक्ष्यमाणं 'ऊरुसु उसभलंछण उसभं सुमिणंमि तेण उसभजिणो' इत्यादि, इह तु वंशनामनिबन्धनमभिधातुकाम आह—

देसूणगं च वरिसं सक्कागमणं च वंसठवणा य। आहारमंगुलीए ठवंति देवा मणुण्णं तु ॥ १८९॥

व्याख्या—देशोनं च वर्षं भगवतो जातस्य तावत् पुनः शक्रागमनं च संजातं, तेन वंशस्थापना च कृता भगवत इति, सोऽयं ऋषभनाथः, अ+स्य गृहा†वासे असंस्कृत आसीदाहार इति। किं च–सर्वतीर्थकरा एव बालभावे वर्त्तमाना न स्तन्यो‡पयोगं कुर्वन्ति, किन्त्वाहाराभिलाषे सति स्वामेवाङ्गुलिं वदने प्रक्षिपन्ति, तस्यां च आहारमङ्गुल्यां नानारससमा-

१ हन्दि शृण्वन्तु बहवो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका देवाश्च देव्यश्च यो देवानुप्रिया ! भगवति तीर्थकरे तीर्थकरमातरि वा अशुभं मनः संप्रधारयति, तस्यार्यमञ्जरीव सप्तधा मूर्धा स्फुटत्वितिकृत्वा घोषणां घोषयति, ततो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका देवा भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमानं कृत्वा गता नन्दीश्वरवरद्वीपं, तत्राष्टाहिकामहिमानं कृत्वा स्वके स्वके आलये प्रतिगता इति। जन्मेति गतम्. * ०धारेति. + ऋषभस्य. † गृहवासे. ‡ स्तनो०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

युक्तं स्थापयन्ति देवा 'मनोज्ञं' मनोऽनुकूलम् । एवमतिक्रान्तबालभावास्तु अग्निपक्वं* गृह्णन्ति, ऋषभनाथस्तु प्रव्रज्यामप्रतिपन्नो देवोपनीतमेवाहारमुपभुक्तवान् इत्यभिहितमानुषङ्गिकमिति गाथार्थः ॥ १८९ ॥ प्रकृतमुच्यते—आह–इन्द्रेण वंशस्थापना कृता इत्यभिहितं, सा किं यथाकथञ्चित् कृता आहोस्वित् प्रवृत्तिनिमित्तपूर्विकेति, उच्यते, प्रवृत्तिनिमित्तपूर्विका, न यादृच्छिकी, कथम् ?—

सक्को वंसट्ठवणे इक्खु अगू तेण हुंति इक्खागा । जं च जहा जंमि वए जोगं कासी य तं सव्वं ॥ १९० ॥

कथानकशेषम्—जीतमेतं[1] अतीतपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं पढमतित्थगराणं वंसट्ठवणं करेत्तएत्ति, ततो तिदसजणसंपरिवुडो आगओ, कहं रित्तहत्थो पविसामित्ति महंतं इक्खुलट्ठिं गहाय आगतो । इओ य नाभिकुलकरो उसभसामिणा अंकगतेण अच्छइ, सक्केण उवागतेण भगवया इक्खुलट्ठीए दिट्ठी पाडियत्ति, ताहे सक्केण भणियं–भयवं ! किं इक्खू अगू–भक्षयसि+ ?, ताहे सामिणा हत्थो पसारिओ हरिसिओ य, ततो सक्केण चिंतियं–जम्हा तित्थगरो इक्खू अहिलसइ, तम्हा इक्खागवंसो भवउ, पुव्वगा य भगवओ इक्खुरसं पिवियाइया तेण गोत्तं कासवंति । एवं सक्को वंसं ठाविऊण

१ जीतमेतत् अतीतानागतवर्त्तमानानां शक्राणां देवेन्द्राणां प्रथमतीर्थकराणां वंशस्थापनं कर्त्तुमिति, ततस्त्रिदशजनसंपरिवृत आगतः, कथं रिक्तहस्तः प्रविशामीति महतीं इक्षुयष्टिं गृहीत्वाऽऽगतः । इतश्च नाभिकुलकरो ऋषभस्वामिनाऽङ्कगतेन तिष्ठति, शक्र उपागते भगवतेक्षुयष्टौ दृष्टिः पातितेति, तदा शक्रेण भणितम्–भगवन् ! किमिक्षुं भक्षयसि ?, तदा स्वामिना हस्तः प्रसारितो हृष्टश्च, ततः शक्रेण चिन्तितम्–यस्मात् तीर्थकर इक्षुमभिलषति, तस्मादिक्ष्वाकुवंशो भवतु, पूर्वजाश्च भगवत इक्षुरसं पीतवन्तस्तेन गोत्रं काश्यपमिति । एवं शक्रो वंशं स्थापयित्वा * ०पक्कमेव. + भक्खयसि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गंभो, पुणोवि–'जं च जहा जंमि वए जोग्गं कासी य तं सव्वं'ति । गाथा गतार्था, तथाऽप्यक्षरगमनिका क्रियते–तत्र 'शक्रो' देवराडिति 'वंशस्थापने' प्रस्तुते इक्षुं गृहीत्वा आगतः, भगवता करे प्रसारिते सत्याह–भगवन् ! किं इक्खुं अकु–भक्षयसि !, अकुशब्दः भक्षणार्थे वर्त्तते, भगवता गृहीतं, तेन भवन्ति इक्ष्वाऽकाः–इक्षुभोजिनः, इक्ष्वाका† ऋषभनाथवंशजा इति । एवं 'यच्च' वस्तु 'यथा' येन प्रकारेण 'यस्मिन्' वयसि योग्यं शक्रः कृतवांश्च तत्सर्वमिति, पश्चार्धपाठान्तरं वा 'तालफलाहयभगिणी होही पत्तीति सारवणा' 'तालफलाहतभगिनी भविष्यति पत्नीति सारवणा' किल भगवतो नन्दायाश्च तुल्यवयःख्यापनार्थमेवं पाठ इति, तदेव तालफलाहतभगिनी भगवतो बालभाव एव मिथुनकैर्नाभिसकाशमानीता, तेन च भविष्यति पत्नीति सारवणा–संगोपना कृतेति, तथा चानन्तरं वक्ष्यति "णंदाय सुमंगला सहिओ" । अन्ये तु प्रतिपादयन्ति –सर्वैवेयं जन्मद्वारवक्तव्यता, द्वारगाथाऽपि किलैवं पठ्यते–'जम्मणे य विवड्ढी य' त्ति, अलं प्रसङ्गेन । इदानीं वृद्धिद्वारमधिकृत्याह—

अह वड्ढइ सो भयवं दियलोयचुओ अणोवमसिरीओ । देवगणसंपरिवुडो नंदाइ सुमंगला सहिओ ॥ १९१ ॥
असिअसिरओ सुनयणो बिंबुट्ठो धवलदंतपंतीओ । वरपउमगब्भगोरो फुल्लुप्पलगंधनीसासो ॥ १९२ ॥

प्रथमगाथा निगदसिद्धैव, द्वितीयगाथागमनिका—न सिता असिताः–कृष्णा इत्यर्थः, शिरसि जाताः शिरोजाः–केशाः असिताः शिरोजा यस्य स तथाविधः, शोभने नयने यस्यासौ सुनयनः, बिल्वं(म्बं)–गोल्हाफलं बिल्व(म्ब)वदोष्ठौ यस्यासौ

१ गतः, पुनरपि–यच्च यथा यस्मिन्वयसि योग्यं अकार्षीच्च तत्सर्वमिति । * भगवं. + भक्षणार्थः. § ०कव † फलाहतं. ‡ तदैव. ¶ फलाहत.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

बिल्वो(म्बो)ष्ठः, धवले दन्तपङ्क्ती यस्य स धवलदन्तपङ्क्तिकः, वरपद्मगर्भवद् गौरः पुष्पोत्पलगन्धवन्निःश्वासो यस्येति गाथार्थः ॥ १९१—१९२ ॥ इदानीं जातिस्मरणद्वारावयवार्थं विवॅरिषुराह—

जाइस्सरो अ भयवं अप्परिवडिएहिं तिहि उ नाणेहिं ।
कंती+हि य बुद्धी†हि य अब्भहिओ तेहि मणुएहिं ॥ १९३ ॥

गमनिका—जातिस्मरणश्च भगवान् अप्रतिपतितैरेव त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिभिः, अवधिज्ञानं हि देवलौकिकमेव अप्रच्युतं भगवतो भवति, तथा कान्त्या च बुद्ध्या च अभ्यधिकस्तेभ्यो मिथुनकमनुष्येभ्य इति गाथार्थः ॥ १९३ ॥ इदानीं विवाहद्वारव्याचिख्यासयेदमाह—

पढमो अकालमच्चू तहिं तालफलेण दारओ पहओ । कण्णा य कुलगरेणं सिट्ठे गहिआ उसहपत्ती ॥ १९४ ॥

व्याख्या—भगवतो देशोनवर्षकाल एव किञ्चन मिथुनकं संजातापत्यं सद् अपत्यमिथुनकं तालवृक्षाधो विमुच्य रिरंसया क्रीडागृहकमगमत्, तस्माच्च तालवृक्षात् पवनप्रेरितमेकं तालफलमपतत्, तेन दारको व्यापादितः, तदपि मिथुनकं तां दारिकां संव‡र्धयित्वा प्रतनुकषायं मृत्वा सुरलोक¶ उत्पन्नं, सा चोद्यानदेवतेवोत्कृष्टरूपा एकाकिन्येव वने विचचार, दृष्ट्वा च तां त्रिदशवधूसमानरूपां मिथुनकनरा विस्मयोत्फुल्लनयना नाभिकुलकराय न्यवेदयन्, शिष्टे च तैः कन्या कुलकरेण गृहीता ऋषभपत्नी भविष्यतीतिकृत्वा, अयं गाथार्थः ॥ भगवांश्च तेन कन्याद्वयेन सार्धं विहरन् यौवनमनुप्राप्तः, अत्रान्तरे

* विवूर्षु०. + कंतीइ. † बुद्धीइ. ‡ संवर्ध्य. ¶ ०लोकमुत्पन्नं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

देवराजस्य चिन्ता जाता–कृत्यमेतदतीतप्रत्युत्पन्नानागतानां शक्राणां प्रथमतीर्थकराणां विवाहकर्म क्रियत इति संचिन्त्य अनेकत्रिदशसुरवधूवृन्दसमन्वितोऽवतीर्णवान्, अवतीर्य च भगवतः स्वयमेव वरकर्म चकार, पत्न्योरपि देव्यो वधूकर्मेति ॥ १९४ ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

भोगसमत्थं नाउं वरकम्मं तस्स कासि देविंदो। दुण्हं वरमहिलाणं बहुकम्मं कासि देवीओ ॥ १९५ ॥

गमनिका—भोगसमर्थं ज्ञात्वा वरकर्म तस्य कृतवान् देवेन्द्रः, द्वयोः वरमहिलयोर्वधूकर्म कृतवत्यो देव्य इति गाथार्थः; भावार्थस्तूक्त एव ॥ १९५ ॥ इदानीमपत्यद्वारमभिधित्सुराह—

छप्पुव्वसयसहस्सा पुव्विं जायस्स जिणवरिंदस्स। तो भरहबंभिसुंदरिबाहुबली चेव जायाइं ॥ १९६ ॥

निगदसिद्धैवेयं, नवरमनुत्तरविमानादवतीर्य सुमङ्गलाया बाहुः पीठश्च भरतब्राह्मीमिथुनकं जातं, तथा सुबाहुर्महापीठश्च सुनन्दाया बाहुबली सुन्दरी च मिथुनकमिति ॥ १९६ ॥ अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह मूलभाष्यकारः—

देवी सुमंगलाए भरहो बंभी य मिहुणयं जायं। देवीइ सुनंदाए बाहुबली सुंदरी चेव ॥ ४ ॥ (मू० भा०)

सुगमत्वान्न विव्रियते। आह—किमेतावन्त्येव भगवतोऽपत्यानि उत नेति, उच्यते,

अउणापण्णं जुअले पुत्ताण सुमंगला पुणो पसवे। नीईणमइक्कमणे निवेअणं उसभसामिस्स ॥ १९७ ॥

गमनिका—एकोनपञ्चाशत् युग्मानि पुत्राणां सुमङ्गला पुनः प्रसूतवती, अत्रान्तरे प्राक् निरूपितानां हक्कारादिप्रभृ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तीनां दण्डनीतीनां ते लोकाः प्रचुरतरकषायसंभवाद् अतिक्रमणं कृतवन्तः, ततश्च नीतीनामतिक्रमणे सति ते लोका अभ्यधिकज्ञानादिगुणसमन्वितं भगवन्तं विज्ञाय 'निवेदनं' कथनं 'ऋषभस्वामिने' आदितीर्थकराय कृतवन्त इति क्रिया, अयं गाथार्थः ॥ १९७ ॥ एवं निवेदिते सति भगवानाह—

राया करेइ दंडं सिट्ठे ते बिंति अम्हवि स होउ । मग्गह य कुलगरं सो अ बेइ उसभो य भे राया ॥ १९८ ॥

गमनिका—मिथुनकैर्निवेदिते सति भगवानाह—नीत्यतिक्रमणकारिणां 'राजा' सर्वनरेश्वरः करोति दण्डं, स च अमात्यारक्षकादिबलयुक्तः कृताभिषेकः अनतिक्रमणीयाज्ञश्च भवति, एवं 'शिष्टे' कथिते सति भगवता 'ते' मिथुनका 'ब्रुवते' भणन्ति—अस्माकमपि 'स' राजा भवतु, वर्त्तमानकालनिर्देशः खल्वन्यास्वपि अवसर्पिणीषु प्रायः समानन्यायप्रदर्शनार्थः त्रिकालगोचरसूत्रप्रदर्शनार्थो वा, अथवा प्राकृतशैल्या छान्दसत्वाच्च बेंति इति—उक्तवन्तः, भगवानाह—यद्येवं 'मग्गह य कुलगरं' ति याचध्वं कुलकरं राजानं, स च कुलकरस्तैर्याचितः सन् 'बेइ' त्ति पूर्ववदुक्तवान्—ऋषभो 'भे' भवतां राजेति गाथार्थः ॥ १९८ ॥ ततश्च ते मिथुनका राज्याभिषेकनिवर्त्तनार्थमुदकानयनाय पद्मिनीसरो गतवन्तः, अत्रान्तरे देवराजस्य खल्वासनकम्पो बभूव, विभाषा पूर्ववत् यावदिहागत्याभिषेकं कृतवानिति । अमुमेवार्थमुपसंहरन् अनुक्तं च प्रतिपादयन्निदमाह—

आभोएउं सक्को उवागओ तस्स कुणइ अभिसेअं । मउडाइअलंकारं नरिंदजोग्गं च से कुणइ ॥ १९९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गमनिका—'आभोगयित्वा' उपयोगपूर्वकेन अवधिना विज्ञाय 'शक्रो' देवराज उपागतः, 'तस्य' भगवतः करोति 'अभिषेकं' राज्याभिषेकमिति, तथा मुकुटाद्यलङ्कारं च, आदिशब्दात् कटककुण्डलकेयूरादिपरिग्रहः, चशब्दस्य व्यवहितः संबन्धः, नरेन्द्रयोग्यं च 'से' तस्य करोति, अत्रापि वर्त्तमानकालनिर्देशप्रयोजनं पूर्ववदवसेयं, पाठान्तरं वा 'आभोएउं सक्को आगंतुं तस्स कासि अभिसेयं। मउडाइअलंकारं नरेंदजोग्गं च से कासी ॥ १ ॥" भावार्थः पूर्ववदेवेति गाथार्थः ॥ १९९ ॥ अत्रान्तरे ते मिथुनकनरास्तस्मात् पद्मसरसः खलु नलिनीपत्रैरुदकमादाय भगवत्समीपमागत्य तं चालङ्कृत-विभूषितं दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्लनयनाः किंकर्त्तव्यताव्याकुलीकृतचेतसः कियन्तमपि कालं स्थित्वा भगवत्पादयोः तदुदकं निक्षिप्तवन्त इति, तानेवंविधक्रियोपेतान् दृष्ट्वा देवराड् अचिन्तयत्–अहो खलु विनीता एते पुरुषा इति वैश्रवणं यक्षराजमाज्ञापितवान्–इह द्वादशयोजनदीर्घां नवयोजनविष्कम्भां विनीत*नगरीं निष्पादयेति, स चाज्ञासमनन्तरमेव दिव्यभवनप्राकारमालोपशोभितां नगरीं चक्रे। अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—अत्रान्तरे

भिसिणीपत्तेहिअरे उदयं घित्तुं छुहंति पाएसु। साहु विणीआ पुरिसा विणीअनयरी अह निविट्ठा ॥ २०० ॥

गमनिका—बिसि+नीपत्रैरितरे उदकं गृहीत्वा 'छुभंतित्ति' प्रक्षिपन्ति, वर्त्तमाननिर्देशः प्राग्वत्, पादयोः, देवराजो†ऽभिहितवान्–साधु विनीताः पुरुषा विनीतनगरी अथ निविष्टेति गाथार्थः ॥ २०० ॥ गतमभिषेकद्वारम्, इदानीं संग्रहद्वाराभिधित्सयाऽऽह—

* विनीता०. + भिसिनी०. † देवराडभि०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक- ॥१२८॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

आसा हत्थी गावो गहिआइं रज्जसंगहनिमित्तं। घित्तूण एवमाई चउव्विहं संगहं कुणइ ॥ २०१ ॥

गमनिका—अश्वा हस्तिनो गाव एतानि चतुष्पदानि तदा गृहीतानि भगवता राज्ये संग्रहः राज्यसंग्रहस्तन्निमित्तं गृहीत्वा एवमादि चतुष्पदजातमसौ भगवान् 'चतुर्विधं' वक्ष्यमाणलक्षणं संग्रहं करोति, वर्त्तमाननिर्देशप्रयोजनं पूर्ववत्, पाठान्तरं वा 'चउव्विहं संगहं कासी' इति अयं गाथार्थः ॥ २०१ ॥ स चायम्—

उग्गा १ भोगा २ रायण्ण ३ खत्तिआ ४ संगहो भवे चउहा।
आरक्खि १ गुरु २ वयंसा ३ सेसा जे खत्तिआ ४ ते उ ॥ २०२ ॥

गमनिका—उग्रा भोगा राजन्याः क्षत्रिया एषां समुदायरूपः संग्रहो भवेच्चतुर्धा, एतेषामेव यथासंख्यं स्वरूपमाह—आरक्खीत्यादि, आरक्षका उग्रदण्डकारित्वात् उग्राः, गुर्विति गुरुस्थानीया भोगाः*, वयस्या इति राजन्याः समानवयस इतिकृत्वा वयस्याः, शेषा उक्तव्यतिरिक्ता ये क्षत्रियाः 'ते तु' तुशब्दः पुनःशब्दार्थः ते पुनः क्षत्रिया इति गाथार्थः ॥ २०२ ॥ इदानीं लोकस्थितिवैचित्र्यनिबन्धनप्रतिपादनमाह+—

आहारे १ सिप्प २ कम्मे ३ अ, मामणा ४ अ विभूसणा ५।
लेहे ६ गणिए ७ अ रूवे ८ अ, लक्खणे ९ माण १० पोअए ११ ॥ २०३ ॥

* भोजाः. + ०पादनायाह.

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

आहार, शिल्प, कर्म आदि द्वाराणां वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ववहारे १२ नीइ १३ जुद्धे १४ अ, ईसत्थे १५ अ उवासणा १६ ।
तिगिच्छा १७ अत्थसत्थे १८ अ, बंधे १९ घाए २० अ मारणा २१ ॥ २०४ ॥
जण्णू २२ सव २३ समवाए २४, मंगले २५ कोउगे २६ इअ ।
वत्थे २७ गंधे २८ अ मल्ले २९ अ, अलंकारे ३० तहेव य ॥ २०५ ॥
चोलो ३१ वँण ३२ विवाहे ३३ अ, दत्तिआ ३४ मडयपूअणा ३५ ।
झावणा ३६ थूभ ३७ सद्दे ३८ अ, छेलावणय ३९ पुच्छणा ४० ॥ २०६ ॥

एताश्चतस्रोऽपि द्वारगाथाः, एताश्च भाष्यकारः प्रतिद्वारं व्याख्यास्यत्येव, तथाप्यक्षरगमनिकामात्रमुच्यते, तत्रापि प्रथमगाथामधिकृत्याह—तत्र 'आहार' इति आहारविषयो विधिर्वक्तव्यः, कथं कल्पतरुफलाहारासंभवः संवृत्तः ? कथं वा पक्काहारः संवृत्त इति, तथा 'शिल्प' इति शिल्पविषयो विधिर्वक्तव्यः, कुतः कदा कथं कियन्ति वा शिल्पानि उपजातानि ?, 'कर्मणि' इति कर्मविषयो विधिर्वाच्यः, यथा कृषिवाणिज्यादि कर्म संजातमिति, तच्चाग्नौ उत्पन्ने संजातमिति, 'चः' समुच्चये 'मामणत्ति' ममीकारार्थे देशीवचनं, ततश्च परिग्रहममीकारो वक्तव्यः, स च तत्काल एव प्रवृत्तः, 'चः' पूर्ववत्, विभूषणं विभूषणा मण्डनमित्यर्थः, सा च वक्तव्या, सा च भगवतः प्रथमं देवेन्द्रैः कृता, पश्चाल्लोकेऽपि प्रवृत्ता, 'लेख' इति लेखनं लेखः–लिपीविधानमित्यर्थः, तद्विषयो विधिर्वक्तव्यः, तच्च जिनेन ब्राह्मया दक्षिणकरेण प्रदर्शितमिति, गणित-

* लवणयण.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

विषयो विधिर्वाच्यः, एवमन्यत्रापि क्रिया योज्या, गणितं–संख्यानं, तच्च भगवता सुन्दर्या वामकरेणोपदिष्टमिति, ‘चः’ समुच्चये, रूपं–काष्ठकर्मादि, तच्च भगवता भरतस्य कथितमिति, ‘चः’ पूर्ववत्, ‘लक्षणं’ पुरुषलक्षणादि, तच्च भगवतैव बाहुबलिनः कथितमिति, ‘मानमिति’ मानोन्मानावमानगणिमप्रतिमानलक्षणं, ‘पोत’ इति बोहित्थः प्रोतं वा अनयो-र्मानपोतयोर्विधिर्वाच्यः, तत्र मानं द्विधा–धान्यमानं रसमानं च, तत्र धान्यमानमुक्तम्–‘दो असतीओ पसती’ इत्यादि, रसमानं तु ‘चउसट्ठीया बत्तीसिआ’ एवमादि १, उन्मानं–येनोन्मीयते यद्वोन्मीयते तद्यथा–कर्ष इत्यादि २, अवमानं येनावमीयते यद्वाऽवमीयते तद्यथा–हस्तेन दण्डेन वा हस्तो वेत्यादि ३, गणिमं–यद्गण्यते एकादिसं-ख्ययेति ४, प्रतिमानं–गुञ्जादि ५, एतत्सर्वं तदा प्रवृत्तमिति, पोता अपि तदैव प्रवृत्ताः, अथवा प्रकर्षेण उतनं प्रोतः–मुक्ताफलादीनां प्रोतनं तदैव प्रवृत्तमिति प्रथमद्वारगाथासमासार्थः । द्वितीयगाथागमनिका—‘ववहारे’ त्ति व्यवहारविषयो विधिर्वाच्यः, राजकुलकरणभाषाप्रदानादिलक्षणो* व्यवहारः, स च तदा प्रवृत्तो, लोकानां प्रायः स्वस्वभावोपगमात्, ‘णीतित्ति’ नीतौ विधिर्वक्तव्यः, नीतिः–हक्कारादिलक्षणा सामाद्युपायलक्षणा वा तदैव जातेति, ‘जुद्धे यत्ति’ युद्धविषयो विधिर्वाच्यः, तत्र युद्धं–बाहुयुद्धादिकं लावकादीनां वा तदैवेति, ‘ईसत्थे यत्ति’ प्राकृतशैल्या सुकारलोपात् इषुशास्त्रं–धनुर्वेदः तद्विषयश्च विधिर्वाच्य इति, तदपि तदैव जातं राजधर्मे सति, अथवा एकारान्ताः सर्वत्र प्रथमान्ता एव द्रष्टव्याः, व्यवहार इति–व्यवहारस्तदा जातः, एवं सर्वत्र योज्यं, यथा–‘कयरे आगच्छति दित्त- ॥१२९॥

* प्रतिपादना०. + स्वभावोपग०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूवे इत्यादि' 'उवासणेति' उपासना–नापितकर्म तदपि तदैव जातं, प्राग्व्यवस्थितनखलोमान एव प्राणिन आसन् इति, गुरुनरेन्द्रादीनां वोपासनेति, 'चिकित्सा' रोगहरणलक्षणा सा तदैव जाता एवं सर्वत्र क्रियाध्याहारः कार्यः, 'अत्थसत्थे य' त्ति अर्थशास्त्रं, 'बंधे घाते य मारणे त्ति' बन्धो–निगडादिजन्यः घातो–दण्डादिताडना जीविताद्व्यपरोपणं मारणेति, सर्वाणि तदैव जातानीति द्वितीयद्वारगाथासमासार्थः । तृतीयगाथागमनिका–एकारान्ताः प्रथमाद्वितीयान्ताः प्राकृते भवन्त्येव, तत्र यज्ञाः–नागादिपूजारूपा उत्सवाः–शक्रोत्सवादयः समवायाः–गोष्ठ्यादिमेलकाः, एते तदा प्रवृत्ताः, मङ्गलानि–स्वस्तिकसिद्धार्थकादीनि कौतुकानि–रक्षादीनि मङ्गलानि च कौतुकानि चेति समासः, मंगलेत्ति एकारः अलाक्षणिको मुखसुखोच्चारणार्थः, एतानि भगवतः प्राग् देवैः कृतानि, पुनस्तदैव लोके प्रवृत्तानि, तथा 'वस्त्रं' चीनांशुकादि 'गन्धः' कोष्ठपुटादिलक्षणः 'माल्यं' पुष्पदाम 'अलङ्कारः' केशभूषणादिलक्षणः, एतान्यपि वस्त्रादीनि तदैव जातानीति तृतीयद्वारगाथासमासार्थः । चतुर्थगाथागमनिका–तत्र 'चूलेति' बालानां चूडाकर्म,तेषामेव कलाग्रहणार्थं नयनमुपनयनं धर्मश्रवणनिमित्तं वा साधुसकाशं नयनमुपनयनं, 'वीवाहः' प्रतीत एव, एते चूडादयः तदैव प्रवृत्ताः (३५००), दत्ता च कन्या पित्रादिना परिणीयत इत्येतत्तदैव संजातं, भिक्षादानं वा, मृतकस्य पूजना मरुदेव्यास्तदैव प्रथमसिद्ध इतिकृत्वा देवैः कृतेति लोके च रूढा, 'ध्यापना' अग्निसंस्कारः, स च भगवतो निर्वाणप्राप्तस्य प्रथमं त्रिदशैः कृतः, पश्चाल्लोकेऽपि संजातः, भगवदादिदग्धस्थानेषु स्तूपाः तदैव कृता लोके च प्रवृत्ताः, शब्दश्च–रुदितशब्दो भगवत्येवापवर्गं गते भरतदुःखमसाधारणं ज्ञात्वा शक्रेण कृतः, लोकेऽपि रूढ एव, 'छेलापनकमिति' देशीवचनमुत्कृष्टबालक्रीडापनं सेण्टिताद्यर्थवाचकमिति, तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पृच्छनं पृच्छा, सा इङ्खिणिकादिलक्षणा इङ्खिणिकाः कर्णमूले घण्टिकां चालयन्ति, पुनर्यक्षाः खल्वागत्य कर्णे कथयन्ति किमपि प्रष्टुर्विवक्षितमिति, अथवा निमित्तादिप्रच्छना सुखशयितादिप्रच्छना वेति चतुर्थद्वारगाथासमासार्थः ॥ २०३–२०४–२०५–२०६ ॥ इदानीं प्रथमद्वारगाथाऽऽद्यद्वारावयवार्थाभिधित्सया मूलभाष्यकृदाह—

आसी अ कंदहारा मूलाहारा य पत्तहारा य ।
पुप्फफलभोइणोऽवि अ जइआ किर कुलगरो उसभो ॥ ५ ॥ (मू० भा०)

गमनिका—आसंश्च कन्दाहारा मूलाहाराश्च पत्राहाराश्च पुष्पफलभोजिनोऽपि च, कदा ?, यदा किल कुलकर ऋषभः । भावार्थः स्पष्ट एव । नवरं ते मिथुनका एवंभूता आसन्, किलशब्दस्तु परोक्षाप्ताऽऽगमवादसंसूचक इति गाथार्थः ॥ तथा

आसी अ इक्खुभोई इक्खागा तेण खत्तिआ हुंति ।
सणसत्तरसं धण्णं आमं ओमं च भुंजीआ ॥ ६ ॥ (मू० भा०)

गमनिका—आसंश्च इक्षुभोजिन इक्ष्वाकवस्तेन क्षत्रिया भवन्ति, तथा च शणः सप्तदशो यस्य तत् शणसप्तदशं 'धान्यं' शाल्यादि 'आमं' अपक्वं 'ओमं' न्यूनं च 'भुंजीआ' इति भुक्तवन्त इति गाथार्थः ॥ ६ ॥ तथापि तु कालदोषात्तदपि न जीर्णवन्तः, ततश्च भगवन्तं पृष्टवन्तः, भगवाँश्चाह–हस्ताभ्यां घृष्ट्वाऽऽहारयध्वमिति । अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह मूलभाष्यकृत्—

ओमंपाहारंता अजीरमाणंमि ते जिणमुविंति। हत्थेहिँ घंसिऊणं आहारेहत्ति ते भणिआ॥ ७॥ (मू० भा०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गमनिका—ओममप्याहारयन्तः अजीर्यमाणे 'ते' मिथुनका 'जिनं' प्रथमतीर्थकरं उपयान्ति, सर्वावसर्पिणीस्थितिप्रदर्शनार्थो वर्त्तमाननिर्देशो, भगवता च हस्ताभ्यां घृष्ट्वा आहारयध्वमिति ते भणिताः सन्तः। किम् ?—

आसी अ पाणिघंसी तिम्मिअतंदुलपवालपुडभोई।
हत्थतलपुडाहारा जइआ किर कुलकरो उसहो ॥ ८ ॥ (मू० भा०)

व्याख्या—आसँश्च ते मिथुनका भगवदुपदेशात् पाणिभ्यां घँर्ष्टुं* शीलं येषां ते पाणिघर्षिणः, एतदुक्तं भवति–ता एवौषधीः हस्ताभ्यां घृष्ट्वा त्वचं चापनीय भुक्तवन्तः, एवमपि कालदोषात् कियत्यपि गते काले ता अपि न जीर्णवन्तः, पुनर्भगवदुपदेशत एव तीमिततन्दुलप्रवालपुटभोजिनो बभूवुः, तीमिततन्दुलान् प्रवालपुटे भोक्तुं शीलं येषां ते तथाविधाः, तन्दुलशब्देन औषध्य एवोच्यन्ते। पुनः कियताऽपि कालेन गच्छता अजरणदोषादेव+ भगवदुपदेशेन हस्ततलपुटाहारा आसन्, हस्ततलपुटेषु आहारो विहितो येषामिति समासः, हस्ततलपुटेषु कियन्तमपि कालमौषधीः स्थापयित्वोपभुक्तवन्त इत्यर्थः। तथा कक्षासु स्वेदयित्वेति, यदा किल कुलकरो वृ†षभः, किलशब्दः परोक्षाप्तागमवादसंसूचकः, तदा ते मिथुनका एवंभूता आसन्निति गाथार्थः ॥ पुनरभिहितप्रकारद्व्यादिसंयोगैराहारितवन्तः, तद्यथा–पाणिभ्यां घृष्ट्वा पत्रपुटेषु च मुहूर्त्तं तीमित्वा तथा हस्ताभ्यां घृष्ट्वा हस्तपुटेषु च मुहूर्त्तं धृत्वा पुनर्हस्ताभ्यां घृष्ट्वा कक्षास्वेदं च कृत्वा पुनस्तीमित्वा हस्तपुटेषु च मुहूर्त्तं धृत्वेत्यादिभङ्गकयोजना, केचित् प्रदर्शयन्ति घृष्ट्वापदं विहाय, तच्चायुक्तं, त्वगपनयनमन्तरेण तीमितस्यापि

* घृष्टुं. + अजीरण०. † ऋषभः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१३१॥ | हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

हस्तपुटधृतस्य सौकुमार्यत्वानुपपत्तेः, श्लक्ष्णत्वग्भावत्वाद्वा अदोष इति, द्वितीययोजना पुनः–हस्ताभ्यां घृष्ट्वा पत्रपुटेषु तीमित्वा हस्तपुटेषु मुहूर्त्तं धृत्वेति, तृतीययोजना पुनः–हस्ताभ्यां घृष्ट्वा पत्रपुटेषु च तीमित्वा हस्तपुटेषु च धृत्वा कक्षासु स्वेदयित्वेति ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

घंसेऊणं तिम्मण घंसणतिम्मणपवालपुडभोई । घंसणतिम्मपवाले हत्थउडे कक्खसेएँ* य ॥ ९ ॥ (मू० भा०)

भावार्थ उक्त एव, नवरम् उक्तार्थाक्षरयोजना–घृष्ट्वा तीमनं+ कृतवन्त इत्यनेन प्रागभिहितप्रत्येकभङ्गकाक्षेपः कृतो वेदितव्यः, 'घृ†ष्टप्रवालपुटतीमितभोजि|न' इत्यनेन द्वितीययोजनाक्षेपः, 'घृष्टेति' तिमनं 'प्रवाल' इति प्रवाले तिमित्वा हस्तपुटे कियन्तमपि कालं विधाय भुक्तवन्त इति शेषः, इत्यनेन तृतीययोजनाक्षेपः, तथा कक्षास्वेदे च कृते सति भुक्तवन्त इत्यनेन अनन्तराभिहितत्रययुक्तेन चतुर्भङ्गकयोजनाक्षेप इति गाथार्थः ॥ अत्रान्तरे—

अगणिस्स य उट्ठाणं दुमघंसा दट्ठू भीअपरिकहणं ।
पासेसुं परिछिंदह गिण्हह पागं च तो कुणह ॥ १० ॥ (मू० भा०)

आह–सर्वं तीमनादि ते मिथुनकास्तीर्थकरोपदेशात्कृतवन्तः, स च भगवान् जातिस्मरः,¶ स किमित्यग्न्युत्पादोपदेशं न दत्तवानिति, उच्यते, तदा कालस्यैकान्तस्निग्धत्वात् सत्यपि यत्ने वह्न्यनुत्पत्तेरिति । स च भगवान् विजानाति–न ह्येकान्तस्निग्धरूक्षयोः कालयोर्वह्न्युत्पादः किंतु अनतिस्निग्धरूक्षकाल इत्यतो नादिष्टवानिति, ते च च‖तुर्थभङ्गविकल्पि- ॥१३१॥

* सेईअ. + तिमितं. † घृष्ट्वा. ¶ रः सन् कि०. ‖ चतुर्भं०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तमप्याहारं कालदोषान्न जीर्णवन्त इत्यस्मिन्प्रस्तावे अग्नेश्चोत्थानं संवृत्तमिति, कुतः ?, द्रुमघर्षात् , तं चोत्थितं प्रवृद्धज्वालावलीसनाथं भूप्राप्तं तृणादि दहन्तं दृष्ट्वा अपूर्वरत्नबुद्ध्या ग्रहणं प्रति प्रवृत्तवन्तः,दह्यमानास्तु भीतपरिकथनं ऋषभाय कृतवन्त इति,भीतानां परिकथनं भीतपरिकथनं, भीत्या वा परिकथनं भीतिपरिकथनं पाठान्तरमिति । भगवानाह—'पार्श्वे'त्यादि, सुगमं, ते ह्यजानाना वह्नावेवौषधीः प्रक्षिप्तवन्तः, ताश्च दाहमापुः, पुनस्ते भगवतो हस्तिस्कन्धगतस्य न्यवेदयन्–स हि स्वयमेवौषधीर्भक्षयतीति, भगवानाह–न तत्रातिरोहितानां प्रक्षेपः क्रियते, किन्तु मृत्पिण्डमानयध्वमिति, तैरानीतः, भगवान् हस्तिकुम्भे पिण्डं निधाय पत्र*काकारं निदर्श्येदृशानि कृत्वा इहैव पक्त्वा एतेषु पाकं निवर्त्तयध्वमित्युक्तवानिति, ते तथैव कृतवन्तः, इत्थं तावत्प्रथमं कुम्भकारशिल्पमुत्पन्नम् ॥ अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

पक्खेव डहणमोसहि कहणं निग्गमण हत्थिसीसंमि ।
पयणारंभपवित्ती ताहे कासी अ ते मणुआ ॥ ११ ॥+ (मू० भा०)

भावार्थ उक्त एव, किन्तु क्रियाऽध्याहारकरणेन अक्षरगमनिका स्वबुद्ध्या कार्या, यथा–प्रक्षेपं कृतवन्तो दहनमौषधीनां बभूवेत्यादि ॥ उक्तमाहारद्वारं, शिल्पद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

पंचेव य सिप्पाइं घड १ लोहे २ चित्त ३ णंत ४ कासवए ५ । इक्किक्कस्स य इत्तो वीसं वीसं भवे भेया ॥२०७॥

गमनिका—पञ्चैव 'शिल्पानि' मूलशिल्पानि, तद्यथा–घडलोहे चित्तणंतकासवए,तत्र घट इति–कुम्भकारशिल्पोपलक्षणं,

* कुम्भाकारं. + मिंठेण हत्थिपिंडे मट्टियपिंडं गहाय कुडगं च । निव्वत्तेसि अ तइआ जिणोवइट्ठेण मग्गेण ॥ १ ॥ निव्वत्तिए समाणे भण्णई राया तओ बहुजणस्स । एवइआ भे कुव्वह पयट्टिअं पढमसिप्पं तु ॥ २ ॥ (प्रक्षिप्ते अव्याख्याते च).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

लोहमिति*–लोहकारशिल्पस्य चित्रमिति–चित्रकरशिल्पस्य णंतमिति–देशीवचनं वस्त्रशिल्पस्य काश्यप इति–नापितशिल्पस्य, एकैकस्य च एभ्यो विंशतिर्विंशतिः भवन्ति भेदा इति गाथार्थः ॥ २०७ ॥ साम्प्रतं शेषद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाऽऽह भाष्यकारः—

कम्मं किसिवाणिज्जाइ ३ मामणा जा परिग्गहे ममया ४ ।
पुव्विं देवेहिँ कया विभूसणा मंडणा गुरुणो ५ ॥ १२ ॥
लेहं लिवीविहाणं जिणेण बंभीइ दाहिणकरेणं ६ ।
गणिअं संखाणं सुंदरीइ वामेण उवइट्ठं ७ ॥ १३ ॥
भरहस्स रूवकम्मं ८ नराइलक्खणमहोइअं बलिणो ९ ।
माणुंम्माणंवमाणंप्पमाणंगणिमाइवत्थूणं १० ॥ १४ ॥
मणिआई दोराइसु पोआ तह सागरंमि वहणाइं ११ ।
ववहारो लेहवणं कज्जपरिच्छेदणत्थं वा १२ ॥ १५ ॥
णीई हक्काराई सत्तविहा अहव सामभेआई १३ ।
जुद्धाइ बाहुजुद्धाइआइ वट्टाइआणं वा १४ ॥ १६ ॥ (भाष्यम्)

* लोहे (मूले).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	ईसत्थं धणुवेओ १५ उवासणा मंसुकम्ममाईआ १६। गुरुरायाईणं वा उवासणा पज्जुवासणया ॥ १७ ॥ रोगहरणं तिगिच्छा १७ अत्थागमसत्थमत्थसत्थंति १८। निअलाइजमो बंधो १९ घाओ दंडाइताडणया २० ॥ १८ ॥ मारणया जीववहो २१ जण्णा नागाइआण पूआओ २२। इंदाइमहा पायं पइनिअया ऊसवा हुंति २३ ॥ १९ ॥ समवाओ गोट्ठीणं गामाईणं च संपसारो वा २४। तह मंगलाइं सत्थिअसुवण्णसिद्धत्थयाईणि २५ ॥ २० ॥ पुव्विं कयाइ पहुणो सुरेहि रक्खाइ कोउगाइं च २६। तह वत्थगन्धमल्लालंकारा केसभूसाई २७–२८–२९–३० ॥ २१ ॥ तं दट्ठूण पवत्तोऽलंकारेउं जणोऽवि सेसोऽवि। विहिणा चूलाकम्मं बालाणं चोलया नाम ३१ ॥ २२ ॥ उवणयणं तु कलाणं गुरुमूले साहुणो तओ धम्मं। घित्तुं हवंति सड्ढा केई दिक्खं पवज्जंति ३२ ॥ २३ ॥ Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

दट्टुं कयं विवाहं जिणस्स लोगोऽवि काउमारद्धो ३३ ।
गुरुदत्तिआ य कण्णा परिणिज्जंते तओ पायं ॥ २४ ॥
दत्तिव्व दाणमुसभं दिंतं दट्ठूं जणंमिवि पवत्तं ।
जिणभिक्खादाणंपि हु, दट्ठूं भिक्खा पवत्ताओ ३४ ॥ २५ ॥
मडयं मयस्स देहो तं मरुदेवीइ पढमसिद्धुत्ति ।
देवेहि पुरा महिअं ३५ झावणया अग्गिसक्कारो ॥ २६ ॥
सो जिणदेहाईणं देवेहि कओ ३६ चिआसु थूभाई ३७ ।
सद्दो अ रुण्णसद्दो लोगोऽवि तओ तहा पगओ ३८ ॥ २७ ॥
छेलावणमुक्किट्ठाइ बालकीलावणं व सेंटाई ३९ ।
इंखिणिआइ रुअं वा पुच्छा पुण किं कहं कज्जं ? ॥ २८ ॥
अहव निमित्ताईणं सुहसइआइ सुहदुक्खपुच्छा वा ४० ।
इच्चेवमाइ पाएणुप्पन्नं उसभकालंमि ॥ २९ ॥
किंचिच्च (त्थ) भरहकाले कुलगरकालेऽवि किंचि उप्पन्नं ।
पहुणा य देसिआई सव्वकलासिप्पकम्माइं ॥ ३० ॥ (भाष्यम्)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एताश्च स्पष्टत्वात् प्रायो द्वारगाथाव्याख्यान एव च व्याख्यातत्वात् न प्रतन्यन्ते ॥

उसभचरिआहिगारे सव्वेसिं जिणवराण सामण्णं । संबोहणाइ वुत्तुं वुच्छं पत्तेअमुसभस्स ॥ २०८ ॥

व्याख्या—ऋषभचरिताधिकारे 'सर्वेषाम्' अजितादीनां जिनवराणां 'सामान्यं' साधारणं संबोधनादि, आदिशब्दात् परित्यागादिपरिग्रहः, वक्तुं, किम् ?, वक्ष्यति निर्युक्तिकारः प्रत्येकं केवलस्य ऋषभस्य वक्तव्यतामिति गाथार्थः ॥ २०८ ॥

संबोहण १ परिच्चाए २, पत्तेअं ३ उवहिंमि अ ४ ।
अन्नलिंगे कुलिंगे अ ५, गामायार ६ परीसहे ७ ॥ २०९ ॥
जीवोवलंभ ८ सुयलंभे ९, पच्चक्खाणे १० अ संजमे ११ ।
छउमत्थ १२ तवोकम्मे १३, उप्पाया नाण १४ संगहे १५ ॥ २१० ॥
तित्थं १६ गणो १७ गणहरो १८, धम्मोवायस्स देसगा १९ ।
परिआअ २० अंतकिरिआ, कस्स केण तवेण वा २१ ? ॥ २११ ॥

आसां व्याख्या—स्वयंबुद्धाः सर्व एव तीर्थकृतस्तथापि तु कल्प इतिकृत्वा लोकान्तिका देवाः सर्वतीर्थकृतां संबोधनं कुर्वन्ति । परित्याग इति–परित्यागविषयो विधिर्वक्तव्यः, किं भगवन्तश्चारित्रप्रतिपत्तौ परित्यजन्तीति । प्रत्येकमिति–कः कियत्परिवारो निष्क्रान्तः । उपधाविति–उपधिविषयो विधिर्वक्तव्यः, कः केनोपधिरासेवितः, को वा विनेयानामनुज्ञात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकराणाम् संबोधन, परित्याग आदि २१ द्वाराणां वर्णनं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

इति । 'अन्यलिङ्गं' साधुलिङ्गं 'कुलिङ्गं' तापसादिलिङ्गं, तत्र न ते अन्यलिङ्गे निष्क्रान्ता नापि कुलिङ्गे, किंतु तीर्थकरलिङ्ग एवेति, ग्राम्याचाराः–विषयाः परीषहाः–क्षुत्पिपासादयः, तत्र ग्राम्याचारपरीषहयोर्विधिर्वाच्यः, कुमारप्रव्रजितैर्विषया न भुक्ताः शेषैर्भुक्ताः, परीषहाः पुनः सर्वैर्निर्जिता एवेति प्रथमद्वारगाथासमासार्थः । साम्प्रतं द्वितीयगाथागमनिका—तत्र जीवोपलम्भः–सर्वैरेव तीर्थकरैर्नैव जीवादिपदार्था उपलब्धा इति । श्रुतलाभः–पूर्वभवे प्रथमस्य द्वादशाङ्गानि खल्वासन् शेषाणामेकादशेति । प्रत्याख्यानं च पञ्चमहाव्रतरूपं पुरिमपश्चिमयोः मध्यमानां तु चतुर्महाव्रतरूपमिति, मैथुनस्य परिग्रहेऽन्तर्भावात्। संयमोऽपि पुरिमपश्चिमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनाभ्यां द्विभेदः, मध्यमानां सामायिकरूप एव, सप्तदशप्रकारो वा सर्वेषामिति । छादयतीति छद्म–कर्माभिधीयते, छद्मनि तिष्ठन्ति इति छद्मस्थाः, कः कियन्तं कालं छद्मस्थः खल्वासीदिति । तथा तपःकर्म–किं कस्येति वक्तव्यं । तथा ज्ञानोत्पादो वक्तव्यो, यस्य यस्मिन्नहनि केवलमुत्पन्नमिति । तथा संग्रहो वक्तव्यः, शिष्यादिसंग्रह इति द्वितीयद्वारगाथासमासार्थः । साम्प्रतं तृतीयद्वारगाथागमनिका–तत्र तीर्थमिति–कथं कस्य कदा तीर्थमुत्पन्नमित्यादि वक्तव्यं, तीर्थं–प्रागुक्तशब्दार्थं तच्च चातुर्वर्णः श्रमणसङ्घः, तच्च ऋषभादीनां प्रथमसमवसरण एवोत्पन्नं, वीरस्य तु द्वितीय इति द्वारं । गण इति–एकवाचनाचारक्रियास्थानां समुदायो न कुलसमुदाय इति, ते च ऋषभादीनां कस्य कियन्त इति वक्तव्यं । तथा गणधराः–सूत्रकर्त्तारः, ते च कस्य कियन्त इति वक्तव्यम् । तथा धर्मोपायस्य देशका वक्तव्याः, तत्र दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं धारयतीति धर्मः, तस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

उपायो–द्वादशाङ्गं प्रवचनम् अथवा पूर्वाणि धर्मोपायैं*स्तस्य देशकाः–देशयन्तीति देशकाः, ते च सर्वतीर्थकृतां गणधरा एव, अथवा अन्येऽपि यस्य यावन्तश्चतुर्दशपूर्वविदः। तथा पर्याय इति–कः कस्य प्रव्रज्यादिपर्याय इत्येतद्वक्तव्यं। तथा अन्ते क्रिया अन्तक्रिया सा च निर्वाणलक्षणा, सा च कस्य केन तपसा संजाता? वाशब्दात् कस्मिन् वा संजाता कियत्परिवृतस्य चेति वक्तव्यमिति तृतीयद्वारगाथासमासार्थः ॥ २०९–२१०–२११ ॥ इदानीं प्रथमद्वारगाथाऽऽद्यदलावयवार्थप्रतिपादनायाह—

सव्वेऽवि सयंबुद्धा लोगन्तिअबोहिआ य जीएणं १। सव्वेसिं परिच्चाओ संवच्छरिअं महादाणं ॥ २१२ ॥

व्याख्या—सर्व एव तीर्थकृतः स्वयंबुद्धा वर्त्तन्ते, गर्भस्थानामपि ज्ञानत्रयोपेतत्वात्, लोकान्तिकाः–सारस्वतादयः तद्बोधिताश्च जीतमितिकृत्वा–कल्प इतिकृत्वा, तथा च स्थितिरियं तेषां यदुत—स्वयंबुद्धानपि भगवतो बोधयन्तीति। सर्वेषां परित्यागः सांवत्सरिकं महादानं–वक्ष्यमाणलक्षणमिति गाथार्थः ॥ २१२ ॥

रज्जाइच्चाओऽवि य २ पत्तेअं को व कत्तिअसमग्गो ३। को कस्सुवही ? को वाऽणुण्णाओ केण सीसाणं४ ॥२१३॥

व्याख्या—राज्यादित्यागोऽपि च परित्याग एव, 'प्रत्येकम्' एकैकः को वा कियत्समग्र इति वाच्यं, कः कस्योपधिरिति, को वाऽनुज्ञातः केन शिष्याणामिति गाथार्थः ॥ २१३ ॥ इदं च गाथाद्वयमपि समासव्याख्यारूपमवगन्तव्यम्। साम्प्रतं प्रपञ्चेन प्रथमद्वारगाथाऽऽद्यावयवार्थप्रतिपादनायाह—

* धर्मोपायस्य.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सारस्सय १ माइच्चा २ वण्ही ३ वरुणा ४ य गद्दतोया ५ य।
तुसिआ ६ अव्वाबाहा ७ अग्गिच्चा ८ चेव रिट्ठा ९ य॥ २१४॥

गमनिका—'सारस्सयमादिच्चत्ति' सारस्वतादित्याः, अनुस्वारस्त्वलाक्षणिकः, 'वण्ही वरुणा यत्ति' प्राकृतशैल्या वकारलोपात् वह्न्यरुणाश्च, गर्दतोयाश्च तुषिता अव्याबाधाः 'अग्गिच्चा चेव रिट्ठा यत्ति' अग्न्यर्चाश्चैव रिष्ठाश्च, अग्न्यर्चाश्च संज्ञान्तरतो मरुतोऽप्यभिधीयन्ते, रिष्ठाश्चेति 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः' ब्रह्मलोकस्थरिष्ठप्रस्तटाधाराष्टकृष्णराजिनिवासिन इत्यर्थः। अष्टकृष्णराजीस्थापना त्वेवम्। उक्तं च भगवत्याम्—"कहिं णं भंते! कण्हराईओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! उप्पिं सणंकुमारमाहिंदाणं कप्पाणं हेट्ठि बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे, एत्थ णं अक्खाडगसमचउरंससंठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ" एताश्च स्वभावत एवात्यन्तकृष्णा वर्त्तन्त इति, अलं प्रपञ्चकथयेति गाथार्थः॥ २१४॥

एए देवनिकाया भयवं बोहिंति जिणवरिंदं तु। सव्वजगज्जीवहिअं भयवं! तित्थं पवत्तेहिं॥ २१५॥

गमनिका—एते देवनिकायाः स्वयंबुद्धमपि भगवन्तं बोधयन्ति जिनवरेन्द्रं तु, कल्प इतिकृत्वा, कथम्?, सर्वे च ते जगज्जीवाश्च सर्वजगज्जीवाः तेषां हितं हे भगवन्! तीर्थं प्रवर्त्तयस्वेति गाथार्थः॥ २१५॥ उक्तं संबोधनद्वारम्, इदानीं परित्यागद्वारमाह—

संवच्छरेण होही अभिणिक्खमणं तु जिणवरिंदाणं। तो अत्थसंपयाणं पवत्तए पुव्वसूरंमि॥ २१६॥

१ कुत्र हे भगवन्! कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! उपरि सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः कल्पयोरधस्ताद्ब्रह्मलोके कल्पे रिष्ठे प्रस्तटविमाने, अत्र अक्षाटकसमचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता अष्ट कृष्णराजयः प्रज्ञप्ताः. * संबन्धविवक्षा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

भावार्थः स्पष्ट एव, नवरं पूर्वसूर्ये–पूर्वाह्ने इत्यर्थः, इति गाथार्थः ॥ २१६ ॥ कियत्प्रतिदिनं दीयत इत्याह—

एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा । सूरोदयमाईअं दिज्जइ जा पायरासाओ ॥ २१७ ॥

गमनिका—पूर्वार्धं सुगमं, कथं दीयत इत्याह–सूर्योदय आदौ यस्य दानस्य तत् सूर्योदयादि, सूर्योदयादारभ्य दीयत इत्यर्थः, कियन्तं कालं यावत् ?—प्रातरशनं प्रातराशः प्रातर्भोजनकालं यावत् इति गाथार्थः ॥ २१७ ॥ यथा दीयते तथा प्रतिपादयन्नाह—

सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउमुहमहापहपहेसुं । दारेसु पुरवराणं रत्थामुहमज्झयारेसुं ॥ २१८ ॥
वरवरिआ घोसिज्जइ किमिच्छअं दिज्जए बहुविहीअं । सुरअसुरदेवदाणवनरिंदमहिआण निक्खमणे ॥ २१९ ॥

तत्र शृङ्गाटकं △ त्रिकं ⊥ चतुष्कं + चत्वरं * चतुर्मुखं ╬ 'महापथो' राजमार्गः, पथशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, सिङ्घाटकं च त्रिकं चेत्यादिद्वन्द्वः क्रियते, तथा द्वारेषु पुरवराणां प्रतोलिषु इति भावार्थः, 'रथ्यामुखानि' रथ्याप्रवेशा 'मध्य†-कारा' मध्या एव तेषु रथ्यामुखमध्यकारेष्विति गाथार्थः ॥ किं ?, वरवरिका घोष्यते–वरं याचध्वं वरं याचा†ध्वमित्येवं घोषणा समयपरिभाषया वरवरिकोच्यते, किमिच्छकं दीयत इति–कः किमिच्छति ? यो यदिच्छति तस्य तद्दानं समयत एव किमिच्छकमित्युच्यते । एकमपि वस्त्वङ्गीकृत्यैतत्परिसमाप्त्या भवति, अतः बहवो विधयो मुक्ताफलप्रदानादिलक्षणा यस्मिंस्त-

* सिङ्घाटकं. + मध्या०. † याचयध्वं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

द्वहुविधिकं। 'सुरअसुरेत्यादि' सुरअसुरग्रहणात् चतुष्प्रकारदेवनिकायग्रहणं,देवदानवनरग्रहणेन तदुपलक्षितेन्द्रग्रहणं वेदितव्यमिति गाथार्थः ॥ २१८–२१९ ॥ इदानीमेकैकेन तीर्थकृता कियद्द्रव्यजातं संवत्सरेण दत्तमिति प्रतिपादयन्नाह—

तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ। असिइं च सयसहस्सा एअं संवच्छरे दिण्णं ॥ २२० ॥

भावार्थः सुगम एव, प्रतिदिनदेयं त्रिभिः षष्ठ्यधिकैर्वासरशतैः गुणितं यथावर्णितं भवति इति गाथार्थः ॥ २२० ॥

॥ इति प्रथमवरवरिका ॥

साम्प्रतमधिकृतद्वारार्थानुपात्येव वस्तु प्रतिपादयन्नाह—

वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च। एए मुत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ॥ २२१ ॥

रायकुलेसुऽवि जाया विसुद्धवंसेसु खत्तिअकुलेसुं। न य इत्थि*आभिसेआ कुमारवासंमि पव्वइआ ॥ २२२ ॥

संती कुंथू अ अरो अरिहंता चेव चक्कवट्टी अ। अवसेसा तित्थयरा मंडलिआ आसि रायाणो ॥ २२३ ॥

एताः तिस्रोऽपि निगदसिद्धा एव, परित्यागद्वारानुपातिता तु राज्यं चोक्तलक्षणं विहाय प्रव्रजिता इत्येवं भावनीया ॥ २२१–२२२–२२३ ॥ गतं परित्यागद्वारं, साम्प्रतं प्रत्येकद्वारं व्याचिख्यासुराह—

एगो भगवं वीरो पासो मल्ली अ तिहि तिहि सएहिं। भयवं च वासुपुज्जो छहि पुरिससएहि निक्खंतो ॥ २२४ ॥ ॥१३६॥

उग्गाणं भोगाणं रायण्णाणं च खत्तिआणं च। चउहि सहस्सेहुसभो सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥ २२५ ॥

* स्त्रीपाणिग्रहणराज्याभिषेकोभयरहिता इत्यर्थः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

व्याख्या—एको भगवान् वीरः–चरमतीर्थंकरः प्रव्रजितः, तथा पार्श्वो मल्लिश्च त्रिभिस्त्रिभिः शतैः सह, तथा भगवांश्च वासुपूज्यः षड्भिः पुरुषशतैः सह निष्क्रान्तः–प्रव्रजितः। तथा उग्राणां भोगानां राजन्यानां च क्षत्रियाणां च चतुर्भिः सहस्रैः सह ऋषभः, किम् ?, निष्क्रान्त इति वर्त्तते, शेषास्तु–अजितादयः सहस्रपरिवारा निष्क्रान्ता इति, उग्रादीनां च स्वरूपमधः प्रतिपादितमेवेति गाथार्थः ॥ २२४–२२५ ॥ साम्प्रतं प्रसङ्गतोऽत्रैव ये यस्मिन् वयसि निष्क्रान्ता इत्येतदभिधित्सुराह—

वीरो अरिट्ठनेमी पासो मल्ली अ वासुपुज्जो अ। पढमवए पव्वइआ सेसा पुण पच्छिमवयंमि ॥ २२६॥

निगदसिद्धैव। गतं प्रत्येकद्वारं, साम्प्रतमुपधिद्वारप्रतिपादनायाह—

सव्वेऽवि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउव्वीसं। न य नाम अण्णलिंगे नो गिहिलिंगे कुलिंगे वा ५ ॥२२७॥

गमनिका—सर्वेऽपि 'एकदूष्येण' एकवस्त्रेण निर्गताः जिनवराश्चतुर्विंशतिः, अपिशब्दस्य व्यवहितः संबन्धः, 'सर्वे' यावन्तः खल्वतीता जिनवरा अपि एकदूष्येण निर्गताः, किं पुनस्तन्मतानुसारिणः न सोपधयः ?। ततश्च य उपधिरासेवितो भगवद्भिः स साक्षादेवोक्तः, यः पुनर्विनेयेभ्यः स्थविरकल्पिकादिभेदभिन्नेभ्योऽनुज्ञातः स खलु अपिशब्दात् ज्ञेय इति, चतुर्विंशतीति संख्या भेदेन वर्त्तमानावसर्पिणीतीर्थकरप्रतिपादिकेति । गतमुपधिद्वारम्, इदानीं लिङ्गद्वारं–सर्वे तीर्थकृतः तीर्थकरलिङ्ग एव निष्क्रान्ताः, न च नाम अन्यलिङ्गे न गृहस्थलिङ्गे कुलिङ्गे वा, अन्यलिङ्गाद्यर्थ उक्त एवेति गाथार्थः ॥ २२७ ॥ इदानीं यो येन तपसा निष्क्रान्तस्तदभिधित्सुराह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१३७॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

सुमई थ निच्चभत्तेण निग्गओ वासुपुज्ज जिणो चउत्थेणं। पासो मल्लीवि अ अट्ठमेण सेसा उ छट्टेणं ॥ २२८॥

व्याख्या—सुमतिः तीर्थकरः, थेति निपातः, 'नित्यभक्तेन' अनवरतभक्तेन 'निर्गतो' निष्क्रान्तः, तथा वासुपूज्यो जिनश्चतुर्थेन, निर्गत इति वर्त्तते, तथा पार्श्वो मल्ल्यपि चाष्टमेन, 'शेषास्तु' ऋषभादयः षष्ठेनेति गाथार्थः ॥२२८॥ साम्प्रतमिहैव निर्गमनाधिकाराद्यो यत्र येषूद्यानादिषु निष्क्रान्त इत्येतत्प्रतिपाद्यते—

उसभो अ विणीआए बारवईए अरिट्ठवरनेमी। अवसेसा तित्थयरा निक्खंता जम्मभूमीसुं ॥ २२९ ॥

उसभो सिद्धत्थवणंमि वासुपुज्जो विहारगेहंमि। धम्मो अ वप्पगाए नीलगुहाए अ मुणिनामा ॥ २३० ॥

आसमपयंमि पासो वीरजिणिंदो अ नायसंडंमि। अवसेसा निक्खंता, सहसंबवणंमि उज्जाणे ॥ २३१ ॥

एतास्तिस्रोऽपि निगदसिद्धा एव ॥ इदानीं प्रसङ्गत एव निर्गमणकालं प्रतिपादयन्नाह—

पासो अरिट्ठनेमी सिज्जंसो सुमइ मल्लिनामो अ। पुव्वण्हे निक्खंता सेसा पुण पच्छिमण्हंमि ॥ २३२ ॥

निगदसिद्धा इत्यलं विस्तरेण ॥ गतमुपधिद्वारं, तत्प्रसङ्गत एव चान्यलिङ्गकुलिङ्गार्थोऽपि व्याख्यात एव। इदानीं ग्राम्याचारद्वारावयवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

गामायारा विसया निसेविआ ते कुमारवज्जेहिं ६। गामागराइएसु व केसु विहारो भवे कस्स ? ॥ २३३ ॥ ॥१३७॥

व्याख्या—ग्राम्याचारा विषया उच्यन्ते, निषेवितास्ते कुमारवर्जैस्तीर्थकृद्भिः, ग्रामाकरादिषु वा केषु विहारो भवेत् कस्येति वाच्यमिति गाथार्थः ॥ २३३ ॥ तत्र—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मगहारायगिहाइसु मुणओ खित्तारिएसु विहरिंसु । उसभो नेमी पासो वीरो अ अणारिएसुंपि ॥ २३४ ॥

सूत्रसिद्धा ॥ गतं ग्राम्याचारद्वारं, साम्प्रतं परीषहद्वारं व्याचिख्यासयाऽऽह—

उदिआ परीसहा सिं पराइआ ते अ जिणवरिंदेहिं ७ नव जीवाइपयत्थे उवलभिऊणं च निक्खंता ८॥२३५॥

व्याख्या—उदिताः परीषहाः–शीतोष्णादयः अमीषां पराजितास्ते च जिनवरेन्द्रैः सर्वैरेवेति ॥ गतं परीषहद्वारं, व्याख्याता च प्रथमद्वारगाथेति ॥ साम्प्रतं च द्वितीया व्याख्यायते–तत्रापि प्रथमद्वारम् , आह च नव जीवादिपदार्थान् उपलभ्य च निष्क्रान्ताः, आदिशब्दाद् अजीवाश्रवबन्धसंवरपुण्यपापनिर्जरामोक्षग्रह इति गाथार्थः ॥ २३५ ॥ गतं जीवोपलम्भद्वारम् , अधुना श्रुतोपलम्भादिद्वारार्थप्रतिपादनायाह—

पढमस्स बारसंगं सेसाणिक्कारसंग सुयलंभो ९। पंच जमा पढमंतिमजिणाण सेसाण चत्तारि ॥ २३६ ॥
पच्चक्खाणमिणं १० संजमो अ पढमंतिमाण दुविगप्पो । सेसाणं सामइओ सत्तरसंगो अ सव्वेसिं ११॥२३७॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धमेव, नवरं 'पढमंतिमाण दुविगप्पो' त्ति सामायिकच्छेदोपस्थापनाविकल्पः ॥ २३६–२३७ ॥ साम्प्रतं छद्मस्थकालतपःकर्मद्वारावयवार्थव्याचिख्यासयाऽऽह—

वाससहस्सं १ बारस २ चउदस ३ अट्ठार ४ वीस ५ वरिसाइं ।
मासा छ ६ नव ७ तिण्णि अ ८ चउ ९ तिग १० दुग ११ मिक्कग १२ दुगं च १३ ॥ २३८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

तिग १४ दुग १५ मिक्कग १६ सोलस वासा १७ तिण्णि अ १८ तहेवऽहोरत्तं १९ ।
मासिक्कारस २० नवगं २१ चउपण्ण दिणाइ २२ चुलसीई २३ ॥ २३९ ॥
तह बारस वासाइं, जिणाण छउमत्थकालपरिमाणं १२।उग्गं च तवोकम्मं विसेसओ वद्धमाणस्स १३॥२४०॥

एतास्तिस्रोऽपि निगदसिद्धा एव ॥ २३८-२३९-२४० ॥ इदानीं ज्ञानोत्पादद्वारं विवृण्वन्नाह—

फग्गुणबहुलिक्कारसि उत्तरसाढाहि नाणमुसभस्स १।पोसिक्कारसि सुद्धे रोहिणिजोएण अजिअस्स २ ॥२४१॥
कत्तिअबहुले पंचमि मिगसिरजोगेण संभवजिणस्स ३। पोसे सुद्धचउद्दसि अभीइ अभिणंदणजिणस्स ४ ॥२४२॥
चित्ते सुद्धिक्कारसि महाहि सुमइस्स नाणमुप्पण्णं ५। चित्तस्स पुण्णिमाए पउमाभजिणस्स चित्ताहिं ६ ॥२४३॥
फग्गुणबहुले छट्ठी विसाहजोगे सुपासनामस्स ७।फग्गुणबहुले सत्तमि अणुराह ससिप्पहजिणस्स ८॥२४४॥
कत्तिअसुद्धे तइया मूले सुविहिस्स पुप्फदंतस्स ९। पोसे बहुलचउद्दसि पुव्वासाढाहि सीअलजिणस्स १०॥२४५॥
पण्णरसि माहबहुले सिज्जंसजिणस्स सवणजोएणं ११।सयभिय वासुपुज्जे बीयाए माहसुद्धस्स १२ ॥ २४६॥
पोसस्स सुद्धछट्ठी उत्तरभद्दवय विमलनामस्स १२। वइसाह बहुलचउदसि रेवइजोएणऽणंतस्स १४॥२४७॥
पोसस्स पुण्णिमाए नाणं धम्मस्स पुस्सजोएणं १५। पोसस्स सुद्धनवमी भरणीजोगेण संतिस्स १६ ॥ २४८॥
चित्तस्स सुद्धतइआ कित्तिअजोगेण नाण कुंथुस्स १७। कत्तिअसुद्धे बारसि अरस्स नाणं तु रेवइहिं १८ ॥२४९॥
मग्गसिरसुद्धइक्कारसीइ मल्लिस्स अस्सिणीजोगे १९। फग्गुणबहुले बारसि सवणेणं सुव्वयजिणस्स२० ॥ २५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मगसिरसुद्धिक्कारसि अस्सिणिजोगेण नमिजिणिंदस्स २१ ।
आसोअमावसाए नेमिजिणिंदस्स चित्ताहिं २२ ॥ २५१ ॥
चित्ते बहुलचउत्थी विसाहजोएण पासनामस्स २३। वइसाहसुद्धदसमी हत्थुत्तरजोगि वीरस्स २४।१४ ॥२५२॥
तेवीसाए नाणं उप्पण्णं जिणवराण पुव्वण्हे । वीरस्स पच्छिमण्हे पमाणपत्ताएँ चरिमाए ॥ २५३ ॥

एताश्च त्रयोदश गाथा निगदसिद्धाः । साम्प्रतमधिकृतद्वार एव येषु क्षेत्रेषूत्पन्नं तदेतदभिधित्सुराह—

उसभस्स पुरिमताले वीरस्सुजुवालिआनईतीरे । सेसाण केवलाइं जेसुज्जाणेसु पव्वइआ ॥ २५४ ॥

निगदसिद्धा । साम्प्रतमिहैव यस्य येन तपसोत्पन्नं तत्तपः प्रतिपादयन्नाह—

अट्ठमभत्तंतमी पासोसहमल्लिरिट्ठनेमीणं । वसुपुज्जस्स चउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाणं ॥ २५५ ॥

निगदसिद्धा । गतं ज्ञानोत्पादद्वारं, इदानीं संग्रहद्वारं विवरीषुराह—

चुलसीइं च सहस्सा १ एगं च २ दुवे अ ३ तिण्णि ४ लक्खाइं ।
तिण्णि अ वीसहिआइं ५ तीसहिआइं च तिण्णेव ६ ॥ २५६ ॥
तिण्णि अ ७ अड्ढाइज्जा ८ दुवे अ ९ एगं च १० सयसहस्साइं ।
चुलसीइं च सहस्सा ११ बिसत्तरि १२ अट्ठसट्ठिं च १३ ॥ २५७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

छावट्ठिं १४ चउसट्ठिं १५ बावट्ठिं १६ सट्ठिमेव १७ पण्णासं १८।
चत्ता १९ तीसा २० वीसा २१ अट्ठारस २२ सोलस २३ सहस्सा ॥ २५८ ॥
चउद्दस य सहस्साइं २४ जिणाण जइसीससंगहपमाणं।
अज्जासंगहमाणं उसभाईणं अओ वुच्छं ॥ २५९ ॥
तिण्णेव य लक्खाइं १ तिण्णि य तीसा य २ तिण्णि छत्तीसा ३।
तीसा य छच्च ४ पंच य तीसा ५ चउरो अ वीसा अ ॥ २६० ॥
चत्तारि अ तीसाई ७ तिण्णि अ असिआइ ८ तिण्हमेत्तो अ।
वीसुत्तरं ९ छलहिअं १० तिसहस्सहिअं च लक्खं च ११ ॥ २६१ ॥
लक्खं १३ अट्ठसयाणि अ १४ बावट्ठिसहस्स चउसयसमग्गा १५।
एगट्ठी छच्च सया १६ सट्ठिसहस्सा सया छच्च १७ ॥ २६२ ॥
सट्ठि १८ पणपण्ण १९ वण्णे २० गचत्त २१ चत्ता २२ तहट्ठतीसं च २३।
छत्तीसं च सहस्सा २४ अज्जाणं संगहो एसो ॥ २६३ ॥
पढमाणुओगसिद्धो पत्तेअं सावयाइआणंपि।
नेओ सव्वजिणाणं सीसाण परिग्गहो (संगहो) कमसो १५ ॥ २६४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एता अपि नव गाथाः स्पष्टा एवेति न प्रतन्यन्ते ॥ २५६–२६४ ॥ गतं संग्रहद्वारं, व्याख्याता च द्वितीयद्वारगाथेति । साम्प्रतं तृतीयाद्यद्वारप्रतिपादनाय आह—

तित्थं चाउव्वण्णो संघो सो पढमए समोसरणे। उप्पण्णो अ जिणाणं वीरजिणिंदस्स बीअंमि १६ ॥ २६५ ॥

निगदसिद्धैव, नवरं वीरजिनेन्द्रस्य 'द्वितीये' इति अत्र यत्र केवलमुत्पन्नं कल्पात्तत्र कृतसमवसरणापेक्षया मध्यमायां द्वितीयमुच्यत इति ॥ २६५ ॥ गतं तीर्थद्वारं, साम्प्रतं गणद्वारं व्याचिख्यासुराह—

चुलसीइ १ पंचनउई २ बिउत्तरं ३ सोलसुत्तर ४ सयं च ५ ।
सत्तहिअं ६ पणनउई ७ तेणउई ८ अट्ठसीई अ ९ ॥ २६६ ॥
इक्कासीई १० बावत्तरी अ ११ छावट्ठि १२ सत्तवण्णा य १३
पण्णा १४ तेयालीसा १५ छत्तीसा १६ चेव पणतीसा १७ ॥ २६७ ॥
तित्तीस १८ अट्ठवीसा १९ अट्ठारस २० चेव तहय सत्तरस २१ ।
इक्कारस २२ दस २३ नवगं २४ गणाण माणं जिणिंदाणं १७ ॥ २६८ ॥

एतास्तिस्रोऽपि निगदसिद्धा एव, नवरमेकवाचनाचारक्रियास्थानां समुदायो गणो न कुलसमुदाय इति पूज्या व्याचक्षते ॥ २६६–२६७–२६८ ॥ गतं गणद्वारम्, अधुना गणधरद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

एक्कारस उ गणहरा जिणस्स वीरस्स सेसयाणं तु । जावइआ जस्स गणा तावइआ गणहरा तस्स १८ ॥२६९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१४०॥

हारिभद्री- यवृत्तिः विभागः १

निगदसिद्धैव, नवरं मूलसूत्रकर्त्तारो गणधरा उच्यन्ते ॥ २६९ ॥ गतं गणधरद्वारम्, इदानीं धर्मोपायस्य देशका इत्येतद्व्याचिख्यासुराह—

धम्मोवाओ पवयणमहवा पुव्वाइँ देसगा तस्स । सव्वजिणाण गणहरा चउदसपुव्वी व जे जस्स ॥ २७० ॥
सामाइयाइया वा वयजीवणिकायभावणा पढमं । एसो धम्मोवाओ जिणेहि सव्वेहि उवइट्ठो १९ ॥ २७१ ॥

गाथाद्वयमपीदं सूत्रसिद्धमेव ॥ २७० ॥ २७१ ॥ गतं धर्मोपायस्य देशका इति द्वारम्, इदानीं पर्यायद्वारप्रतिपादनायाह—

उसभस्स पुव्वलक्खं पुव्वंगूणमजिअस्स तं चेव । चउरंगूणं लक्खं पुणो पुणो जाव सुविहित्ति ॥ २७२ ॥
पणवीसं तु सहस्सा पुव्वाणं सीअलस्स परिआओ । लक्खाइं इक्कवीसं सिज्जंसजिणस्स वासाणं ॥ २७३ ॥
चउपण्णं १२ पण्णारस १३ तत्तो अद्धट्ठमाइ लक्खाइं १४ ।
अड्ढाइज्जाइं १५ तओ वाससहस्साइं पणवीसं १६ ॥ २७४ ॥
तेवीसं च सहस्सा सयाणि अद्धट्ठमाणि अ हवंति १७ ।
इगवीसं च सहस्सा १८ वाससउणा य पणपण्णा १९ ॥ २७५ ॥
अद्धट्ठमा सहस्सा २० अड्ढाइज्जा य २१ सत्त य सयाइं २२ ।
सयरी २३ बिचत्तवासा २४ दिक्खाकालो जिणिंदाणं ॥ २७६ ॥

॥१४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

एताः पञ्च निगदसिद्धा एव ॥ २७२–२७६ ॥ एवं तावत्सामान्येन प्रव्रज्यापर्यायः प्रतिपादितः, साम्प्रतमत्रैव भेदेन भगवतां कुमारादिपर्यायं प्रतिपादयन्नाह—

उसभस्स कुमारत्तं पुव्वाणं वीसई सयसहस्सा । तेवट्ठी रज्जंमी अणुपालेऊण णिक्खंतो ॥ २७७ ॥
अजिअस्स कुमारत्तं अट्ठारस पुव्वसयसहस्साइं । तेवण्णं रज्जंमी पुव्वंगं चेव बोद्धव्वं ॥ २७८ ॥
पण्णरस सयसहस्सा कुमारवासो अ संभवजिणस्स । चोआलीसं रज्जे चउरंगं चेव बोद्धव्वं ॥ २७९ ॥
अद्धत्तेरस लक्खा पुव्वाणऽभिणंदणे कुमारत्तं । छत्तीसा अद्धं चिय अट्ठंगा चेव रज्जंमि ॥ २८० ॥
सुमइस्स कुमारत्तं हवंति दस पुव्वसयसहस्साइं । अउणातीसं रज्जे बारस अंगा य बोद्धव्वा ॥ २८१ ॥
पउमस्स कुमारत्तं पुव्वाणऽद्धट्ठमा सयसहस्सा । अद्धं च एगवीसा सोलस अंगा य रज्जंमि ॥ २८२ ॥
पुव्वसयसहस्साइं पंच सुपासे कुमारवासो उ । चउदस पुण रज्जंमी वीसं अंगा य बोद्धव्वा ॥ २८३ ॥
अड्ढाइज्जा [अद्धुट्ठा उ] लक्खा कुमारवासो ससिप्पहे होइ । अद्धं छ च्चिय रज्जे चउवीसंगा य बोद्धव्वा ॥२८४॥
पण्णं पुव्वसहस्सा कुमारवासो उ पुप्फदंतस्स । तावइअं रज्जंमी अट्ठावीसं च पुव्वंगा ॥ २८५ ॥
पणवीससहस्साइं पुव्वाणं सीअले कुमारत्तं । तावइअं परिआओ पण्णासं चेव रज्जंमि ॥ २८६ ॥
वासाण कुमारत्तं इगवीसं लक्ख हुंति सिज्जंसे । तावइअं परिआओ बायालीसं च रज्जंमि ॥ २८७ ॥
गिहवासे अट्ठारस वासाणं सयसहस्स निअमेणं । चउपण्ण सयसहस्सा परिआओ होइ वसुपुज्जे ॥ २८८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पण्णरस सयसहस्सा कुमारवासो अ तीसई रज्जे । पणरस सयसहस्सा परिआओ होइ विमलस्स॥ २८९ ॥
अड्ढमलक्खाइं वासाणमणंतई कुमारत्ते । तावइअं परिआओ रज्जंमी हुंति पण्णरस ॥ २९० ॥
धम्मस्स कुमारत्तं वासाणड्ढाइआइं लक्खाइं । तावइअं परिआओ रज्जे पुण हुंति पंचेव ॥ २९१ ॥
संतिस्स कुमारत्ते मंडलियचक्किपरिआए चउसुंपि । पत्तेअं पत्तेअं वाससहस्साइं पणवीसं ॥ २९२ ॥
एमेव य कुंथुस्सवि चउसुवि ठाणेसु हुंति पत्तेअं । तेवीससहस्साइं वरिसाणद्धट्ठमसया य ॥ २९३ ॥
एमेव अरजिणिंदस्स चउसुवि ठाणेसु हुंति पत्तेअं । इगवीस सहस्साइं वासाणं हुंति णायव्वा ॥ २९४ ॥
मल्लिस्सवि वाससयं गिहवासे सेसअं तु परिआओ । चउपण्ण सहस्साइं नव चेव सयाइ पुण्णाइं ॥ २९५ ॥
अद्धट्ठमा सहस्सा कुमारवासो उ सुव्वयजिणस्स । तावइअं परिआओ पण्णरससहस्स रज्जंमि ॥ २९६ ॥
नमिणो कुमारवासो वाससहस्साइ दुण्णि अद्धं च । तावइअं परिआओ पंच सहस्साइं रज्जंमि ॥ २९७ ॥
तिण्णेव य वाससया कुमारवासो अरिट्ठनेमिस्स । सत्त य वाससयाइं सामण्णे होइ परिआओ॥ २९८ ॥
पासस्स कुमारत्तं तीसं परिआओ सत्तरी होइ । तीसा य वद्धमाणे बायालीसा उ परिआओ ॥ २९९ ॥
आद्यानां सुविधिपर्यन्तानामनुपरिपाट्येयं श्रामण्यपर्यायगाथा—तद्यथा—
उसभस्स पुव्वलक्खं पुव्वंगूणमजिअस्स तं चेव । चउरंगूणं लक्खं पुणो पुणो जाव सुविहित्ति ॥ ३०० ॥
सेसाणं परिआओ कुमारवासेण सहिअओ भणिओ । पत्तेअंपि अ पुव्वं सीसाणमणुग्गहट्ठाए ॥ ३०१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

छउमत्थकालमित्तो सोहेउं सेसओ उ जिणकालो । सव्वाउअंपि इत्तो उसभाईणं निसामेह ॥ ३०२ ॥

चउरासीइ १ बिसत्तरि २ सट्ठी ३ पण्णासमेव ४ लक्खाइं ।
चत्ता ५ तीसा ६ वीसा ७ दस ८ दो ९ एगं १० च पुव्वाणं ॥ ३०३ ॥
चउरासीई ११ बावत्तरी १२ अ सट्ठी १३ अ होइ वासाणं ।
तीसा १४ य दस १५ य एगं १६ च एवमेए सयसहस्सा ॥ ३०४ ॥
पंचाणउइ सहस्सा १७ चउरासीई अ १८ पंचवण्णा १९ य ।
तीसा २० य दस २१ य एगं २२ सयं २३ च बावत्तरी २४ चेव २० ॥ ३०५ ॥

एताश्च एकोनत्रिंशदपि गाथाः सूत्रसिद्धा एव द्रष्टव्या इति । गतं पर्यायद्वारम्; इदानीमन्तक्रियाद्वारावसर इति, तत्रान्ते क्रिया अन्तक्रिया–निर्वाणलक्षणा, सा कस्य केन तपसा क्व जाता ?, वाशब्दात्कियत्परिवृतस्य चेत्येतत्प्रतिपादयन्नाह—

निव्वाणमंतकिरिआ सा चउदसमेण पढमनाहस्स । सेसाण मासिएणं वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं ॥ ३०६ ॥
अट्ठावयचंपुज्जिंतपावासम्मेअसेलसिहरेसुं । उसभ वसुपुज्ज नेमी वीरो सेसा य सिद्धिगया ॥ ३०७ ॥
एगो भयवं वीरो तित्तीसाइ सह निव्वुओ पासो । छत्तीसएहिं पंचहिं सएहि नेमी उ सिद्धिगओ ॥ ३०८ ॥
पंचहिं समणसएहिं मल्ली संती उ नवसएहिं तु । अट्ठसएणं धम्मो सएहि छहि वासुपुज्जजिणो ॥ ३०९ ॥
सत्तसहस्साणंतइजिणस्स विमलस्स छस्सहस्साइं । पंचसयाइ सुपासे पउमाभे तिण्णि अट्ठ सया ॥ ३१० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

दसहि सहस्सेहि उसभो सेसा उ सहस्सपरिवुडा सिद्धा। कालाइ जं न भणिअं पढमणुओगाउ तं णेअं ॥३११॥
इच्चेवमाइ सव्वं जिणाण पढमाणुओगओ णेअं। ठाणासुण्णत्थं पुण भणिअं २१ पगयं अओ वुच्छं ॥ ३१२॥
उसभजिणसमुट्ठाणं उट्ठाणं जं तओ मरीइस्स। सामाइअस्स एसो जं पुव्वं निग्गमोऽहिगओ ॥ ३१३ ॥

एता अप्यष्टौ निगदसिद्धा एव ।

चित्तबहुलट्ठमीए चउहि सहस्सेहि सो उ अवरण्हे। सीआ सुदंसणाए सिद्धत्थवणंमि छट्ठेणं ॥ ३१४ ॥

गमनिका—चैत्रबहुलाष्टम्यां चतुर्भिः सहस्रैः समन्वितः सन् अपराह्णे शिबिकायां सुदर्शनायां व्यवस्थितः सिद्धार्थवने षष्ठेन भक्तेन निष्क्रान्त इति वाक्यशेषः, अलङ्करणकं परित्यज्य चतुर्मुष्टिकं च लोचं कृत्वेति ॥ ३१४ ॥ आह—चतुर्भिः सहस्रैः समन्वित इत्युक्तं, तत्र तेषां दीक्षां किं भगवान् प्रयच्छति उत नेति, नेत्याह—

चउरो साहस्सीओ लोअं काऊण अप्पणा चेव। जं एस जहा काही तं तह अम्हेऽवि काहामो ॥ ३१५ ॥

गमनिका—प्राकृतशैल्या चत्वारि सहस्राणि लोचं पञ्चमुष्टिकं कृत्वा आत्मना चैव इत्थं प्रतिज्ञां कृतवन्तः–'यत्' क्रियाऽनुष्ठानं 'एष' भगवान् 'यथा' येन प्रकारेण करिष्यति तत्तथा 'अम्हेऽवि काहामोत्ति' वयमपि करिष्याम इति गाथार्थः ॥ ३१५ ॥ भगवानपि भुवनगुरुत्वात्स्वयमेव सामायिकं प्रतिपद्य विजहार। तथा चाह—

उसभो वरवसभगई[*] घित्तूणमभिग्गहं परमघोरं। वोसट्ठचत्तदेहो विहरइ गामाणुगामं तु ॥ ३१६ ॥

* वसभसमगइ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—ऋषभो वृषभसमगतिर्गृहीत्वा अभिग्रहं 'परमघोरं' परमः–परमसुखहेतुभूतत्वात् घोरः–प्राकृतपुरुषैः कर्त्तुमशक्यत्वात् तं, 'व्युत्सृष्टत्यक्तदेहो विहरति ग्रामानुग्रामं तु' व्युत्सृष्टो–निष्प्रतिकर्मशरीरतया, तथा चोक्तम्–'अच्छिंपि नो पमज्जिज्जा, णोऽवि य कंडुविया मुणी गायं' त्यक्तः–खलु दिव्याद्युपसर्गसहिष्णुतया, शेषं सुगममिति गाथार्थः ॥ ३१६ ॥ स एवं भगवांस्तैरात्मीयैः परिवृतो विजहार, न च तदाऽद्यापि भिक्षादानं प्रवर्त्तते, लोकस्य परिपूर्णत्वादर्थ्यभावाच्च, तथा चाह मूलभाष्यकारः—

णवि ताव जणो जाणइ का भिक्खा ? केरिसा व भिक्खयरा ? ।
ते भिक्खमलभमाणा वणमज्झे तावसा जाया ॥ ३१ ॥ (मू० भा०)

गमनिका—नापि तावज्जनो जानाति–का भिक्षा ? कीदृशा वा भिक्षाचरा इति, अतस्ते भगवत्परिकरभूता भिक्षामलभमानाः क्षुत्परीषहार्त्ता भगवतो मौनव्रतावस्थिताद् उपदेशमलभमानाः कच्छमहाकच्छावेवोक्तवन्तः–अस्माकमनाथानां भवन्तौ नेताराविति, अतः कियन्तं कालमस्माभिरेवं क्षुत्पिपासोपगतैरासितव्यं ?, तावाहतुः–वयमपि न विद्मः, यदि भगवान् अनागतमेव पृष्टो भवेत्–किमस्माभिः कर्त्तव्यं ? किं वा नेति, ततः शोभनं भवेत्, इदानीं तु एतावद्युज्यते–भरतलज्जया गृहगमनमयुक्तमाहारमन्तरेण चासितुं न शक्यत इत्यतो वनवासो नः श्रेयान्, तत्रोपवासरताः परिशटितपरिणतपत्राद्युपभोगिनो भगवन्तमेव ध्यायन्तस्तिष्ठाम इति संप्रधार्य सर्वसंमतेनैव गङ्गानदीदक्षिणकूले रम्यवनेषु वल्कल-

१ अक्ष्यपि नो प्रमार्जयेत् नापि च कण्डूयेत् मुनिर्गात्रम्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

ऋषभदेवस्य आहार अन्तराय कथनं एवं तं भिक्षाप्राप्ते: कथा

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

चीरधारिणः खल्वाश्रमिणः संवृत्ता इति, आह च* 'वनमध्ये तापसा जाताः' इति गाथार्थः ॥ तयोश्च कच्छमहाकच्छयोः सुतौ नमिविनमिनौ पित्रनुरागात् ताभ्यामेव सह विहृतवन्तौ, तौ च वनाश्रयणकाले ताभ्यामुक्तौ–दारुणः खल्विदानीमस्माभिर्वनवासविधिरङ्गीकृतः तद्याथ यूयं स्वगृहाणीति, अथवा भगवन्तमेव उपसर्पथः, स +वोऽनुकम्पयाऽभिलषितफलदो भविष्यति, तावपि च पित्रोः प्रणामं कृत्वा पित्रादेशं तथैव कृतवन्तौ, भगवत्समीपमागत्य प्रतिमास्थिते भगवति जलाशयेभ्यो नलिनीपत्रेषु उदकमानीय सर्वतः प्रवर्षणं कृत्वा आजानूच्छ्रयमानं सुगन्धिकुसुमप्रकरं च अवनतोत्तमाङ्गक्षितिनिहितजानुकरतलौ प्रतिदिनमुभयसन्ध्यं राज्यसंविभागप्रदानेन भगवन्तं विज्ञाप्य पुनस्तदुभयपार्श्वे खड्गव्यग्रहस्तौ तस्थतुः ॥ तथा चाह निर्युक्तिकारः—

नमिविनमीणं जायण नागिंदो विज्जदाण वेअड्ढे । उत्तरदाहिणसेढी सट्ठीपण्णासनगराइं ॥ ३१७ ॥

अक्षरगमनिका—नमिविनमिनोर्याचना, नागेन्द्रो भगवद्वन्दनायागतः, तेन विद्यादानमनुष्ठितं, वैताढ्ये पर्वते उत्तरदक्षिणश्रेण्योः यथायोगं षष्टिपञ्चाशन्नगराणि निविष्टानीति गाथाक्षरार्थः ॥ ३१७ ॥ भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—अन्नया[1] धरणो नागराया भगवंतं वंदओ आगओ, इमेहि य विण्णविअं, तओ सो ते तहा जायमाणे भणति–भगवं चत्तसंगो, ण एयस्स अत्थि किंचि दायव्वं, मा एयं जाएह, अहं तुब्भं भगवओ भत्तीए देमि, सामिस्स सेवा अफला मा ॥१४३॥

1 अन्यदा धरणो नागराजः भगवन्तं वन्दितुमागतः, आभ्यां विज्ञप्तं च, ततः स तौ तथा याचमानौ भणति–भगवान् त्यक्तसङ्गः, नैतस्य विद्यते किञ्चिद्दातव्यं, मैनं याचिष्टं, अहं वां भगवतो भक्त्या ददामि, स्वामिनः सेवाऽफला मा. * नेदम् प्र०. + चा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवउत्तिकाउं पढियसिद्धाणं गंधव्वपन्नगाणं अडयालीसं विज्जासहस्साइं गिण्हह,ताण इमाओ महाविज्जाओ चत्तारि,तंजहा– गोरी गंधारी रोहिणी पण्णत्तित्ति, तं गच्छह तुब्भे विज्जाहररिद्धीए सयणं जणवयं च उवलोभेऊण दाहिणिल्लाए उत्तरिल्लाए य विज्जाहरसेढीए रहनेउरचक्कवालपामोक्खे गगणवल्लभपामोक्खे य पण्णासं सट्ठिं च विज्जाहरणगरे णिवेसिऊण विहरह । तओ ते लद्धप्पसाया कामियं पुप्फयविमाणं विउव्विऊण भगवंतं तित्थयरं नागरायं च वंदिऊणँ[*] पुप्फयविमाणारूढा कच्छ-महाकच्छाणं भगवप्पसायं उवदंसेमाणा विणीयनगरिमुवँगम्म[+] भरहस्स रण्णो तमत्थं निवेदित्ता सयणं परियणं गहाय वेयड्ढे पव्वए णमी दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेढीए विणमी उत्तरिल्लाए पण्णासं सट्ठिं च विज्जाहरनगराइं निवेसिऊण विहरंति । अत्रान्तरे—

भगवं अदीणमणसो संवच्छरमणसिओ विहरमाणो । कण्णाहि निमंतिज्जइ वत्थाभरणासणेहिं च ॥ ३१८ ॥

व्याख्या—भगः खल्वैश्वर्यादिलक्षणः सोऽस्यास्तीति भगवान् असावपि अदीनं मनो यस्यासौ अदीनमनाः–निष्प्रक-

---

१ भूदितिकृत्वा पठितसिद्धानां गन्धर्वप्रज्ञकानां अष्टचत्वारिंशत् विद्यासहस्राणि गृह्णीतं, तासामिमा महाविद्याश्चतस्रः, तद्यथा–गौरी गान्धारी रोहिणी प्रज्ञसिरिति, तद् गच्छतं युवां विद्याधरर्ध्या स्वजनं जनपदं चोपप्रलोभ्य दक्षिणस्यामुत्तरस्यां च विद्याधरश्रेण्यां रथनूपुरचक्रवालप्रमुखाणि गगनवल्लभप्रमुखाणि च पञ्चाशतं षष्टिं च विद्याधरनगराणि निवेश्य विहरतं । ततस्तौ लब्धप्रसादौ कामितं पुष्पकविमानं विकुर्व्य भगवन्तं तीर्थंकरं नागराजं च वन्दित्वा पुष्पकविमानारूढौ कच्छमहाकच्छाभ्यां भगवत्प्रसादं उपदर्शयन्तौ विनीतानगरीमुपागम्य भरताय राज्ञे तमर्थं निवेद्य स्वजनं परिजनं गृहीत्वा वैताढ्ये पर्वते नमिर्दाक्षिणात्यायां विद्याधरश्रेण्यां विनमिरौत्तरायां पञ्चाशतं षष्टिं च विद्याधरनगराणि निवेश्य विहरतः. * दोवि. + ०मतिगम्म.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

म्पचित्त इत्यर्थः । 'संवत्सरं' वर्षं न अशितः अनशितः विहरन् भिक्षाप्रदानानभिज्ञेन लोकेनाभ्यर्हितश्च (श्चेति) कृत्वा कन्याभिर्निमन्त्र्यते, वस्त्राणि–पट्टांशुकानि आभरणानि–कटककेयूरादीनि आसनानि–सिंहासनादीनि एतैश्च निमन्त्र्यत इति । वर्त्तमाननिर्देशप्रयोजनं पूर्ववदिति गाथार्थः ॥३१८॥ एवं विहरता भगवता कियता कालेन भिक्षा लब्धेत्येतत्प्रतिपादनायाह—

संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसभेण लोगनाहेण । सेसेहि बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥ ३१९ ॥

गमनिका—संवत्सरेण भिक्षा लब्धाः ऋषभेण लोकनाथेन–प्रथमतीर्थकृता, शेषैः–अजितादिभिः भरतक्षेत्रतीर्थकृद्भिः द्वितीयदिवसे लब्धाः प्रथमभिक्षा इति गाथार्थः ॥ ३१९ ॥ तीर्थकृतां प्रथमपारणकेषु† यद्यस्य पारणकमासीत् तदभिधित्सुराह—

उसभस्स उ पारणए इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स । सेसाणं परमण्णं अमयरसरसोवमं आसी ॥ ३२० ॥

गमनिका—ऋषभस्य तु इक्षुरसः प्रथमपारणके आसील्लोकनाथस्य, शेषाणाम्–अजितादीनां परमं च तदन्नं च परमान्नं–पायसलक्षणं, किंविशिष्टमित्याह—अमृतरसवद् रसोपमा यस्य तद् अमृतरसरसोपममासीदिति गाथार्थः ॥३२०॥ तीर्थकृतां प्रथमपारणकेषु यद्वृत्तं तदभिधित्सुराह—

घुट्ठं च अहोदाणं दिव्वाणि अ आहयाणि तूराणि । देवा य संनिवइआ वसुहारा चेव वुट्ठा य ॥ ३२१ ॥

गमनिका—देवैराकाशगतैः घुष्टं च अहोदानमिति–अहोशब्दो विस्मये अहो दानमहो दानमित्येवं दीयते, सुदत्तं

+ पट्टदेवाङ्गादीनि. † नास्ति पदद्वयमिदं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

भवतामित्यर्थः, तथा दिव्यानि च आहतानि तूराणि तदा त्रिदशैरिति देवाश्च सन्निपतिताः, तदैव वसुधारा चैव वृष्टा, वसु द्रव्यमुच्यत इति गाथार्थः ॥ ३२१ ॥ एवं सामान्येन पारणककालभाव्युक्तम्, इदानीं यत्र यथा च यच्च आदितीर्थकरस्य पारणकमासीत् तथाऽभिधित्सुराह—

गयउर सिज्जंसिक्खुरसदाण वसुहार पीढँ गुरुपूआ। तक्खसिलायलगमणं बाहुबलिनिवेअणं चेव ॥ ३२२ ॥

अस्या भावार्थः कथानकादवबोद्धव्यः। तच्चेदम्—[१]कुरुजणपदे गयपुर†णगरे बाहुबलिपुत्तो सोमप्पभो, तस्स पुत्तो सेज्जंसो जुवराया, सो सुमिणे मंदरं पव्वयं सामवण्णं पासति, ततो तेण अमयकलसेण अभिसित्तो अब्भहिअं सोभितुमाढत्तो, नगरसेट्ठी सुबुद्धिनामो, सो सूरस्स रस्सीसहस्सं ठा‡णाओ चलियं पासति, नवरं सिज्जंसेण हक्खुत्तं, सो य अहिअयरं तेयसंपुण्णो जाओ, राइणा सुमिणे एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण सह जुज्झंतो दिट्ठो, सिज्जंसेण साह¶ज्जं दिण्णं, ततो णेण तं बलं भग्गंति, ततो अत्थाणीए एगओ मिलिया, सुमिणे साहंति, न पुण जाणंति–किं भविस्सइत्ति, नवरं राया भणइ–कुमारस्स महंतो कोऽवि लाभो भविस्सइत्ति भणिऊण उट्ठिओ अत्थाणीओ, सिज्जंसोऽवि गओ

[१] कुरुजनपदे गजपुरनगरे बाहुबलिपुत्रः सोमप्रभः, तस्य पुत्रः श्रेयांसो युवराजः, स स्वप्ने मन्दरं पर्वतं श्यामवर्णमपश्यत्, ततस्तेन अमृतकलशेनाभिषिक्तः अभ्यधिकं शोभितुमारब्धः, नगरश्रेष्ठी सुबुद्धिनामा, स सूर्यस्य रश्मिसहस्रं स्थानात् चलितं अपश्यत्, नवरं श्रेयांसेन अभिक्षिप्तं, स चाधिकतरं तेजःसंपूर्णो जातः, राज्ञा स्वप्ने एकः पुरुषो महाप्रमाणो महता रिपुबलेन सह युध्यमानो दृष्टः, श्रेयांसेन साहाय्यं दत्तं, ततोऽनेन तद्बलं भग्नमिति, तत आस्थानिकायां एकतो मिलिताः, स्वप्नान् साधयन्ति, न पुनर्जानन्ति–किं भविष्यतीति, नवरं राजा भणति–कुमारस्य महान् कोऽपि लाभो भविष्यतीति भणित्वा उत्थित आस्थानिकातः, श्रेयांसोऽपि गतो * पेढ०. + वूल०. † ०पुरे. ‡ थाणाओ. ¶ साहिज्जं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] "आवश्यक" मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति

ऋषभदेवस्य प्रथम भिक्षादाने श्रेयांसकुमारस्य प्रबन्धः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

निंयगभवणं, तत्थ य ओलोयणट्ठिओ पेच्छति सामिं पविसमाणं, सो चिंतेइ–कहिं मया एरिसं नेवत्थं दिट्ठपुव्वं? जारिसं पपितामहस्सत्ति, जाती संभरिता–सो पुव्वभवे भगवओ सारही आसि, तत्थ तेण वइरसेणतित्थगरो तित्थयरलिंगेण दिट्ठोत्ति, वइरणाभे य पव्वयंते सोऽवि अणुपव्वइओ, तेण तत्थ सुयं जहा–एस वइरणाभो भरहे पढमतित्थयरो भविस्सइत्ति, तं एसो सो भगवंति। तस्स य मणुस्सो खोयरसघडएण सह अतीओ, तं गहाय भगवंतमुवट्ठिओ, कप्पइत्ति सामिणा पाणी पसारिओ, सव्वो निसिट्ठो पाणीसु, अच्छिद्दपाणी भगवं, उपरि सिहा वड्ढइ, न य छड्डिज्जइ, भगवओ एस लद्धी, भगवया सो पारिओ, तत्थ दिव्वाणि पाउब्भूयाणि, तंजहा–वसुहारा वुट्ठा १ चेलुक्खेवो कओ २ आहयाओ देवदुंदुहीओ ३ गंधोदककुसुमवरिसं मुक्कं ४ आगासे य अहोदाणं घुट्ठंति ५। तओ तं देवसंनिवाअं पासिऊण लोगो सेज्जंसघरमुवगओ, ते तावसा अन्ने य रायाणो, ताहे सेज्जंसो ते पण्णवेइ–एवं भिक्खा दिज्जइ, एएसिं च दिण्णे सोग्गती गम्मइ, ततो ते सव्वेऽवि

---

१ निजकभवनं, तत्र चावलोकनस्थितः पश्यति स्वामिनं प्रविशन्तं, स चिन्तयति–क मया ईदृशं नेपथ्यं दृष्टपूर्वं यादृशं प्रपितामहस्येति, जातिः स्मृता, –स पूर्वभवे भगवतः सारथिरासीत्, तत्र तेन वज्रसेनतीर्थकरस्तीर्थकरलिङ्गेन दृष्ट इति, वज्रनाभे च प्रव्रजति सोऽप्यनुप्रव्रजितः, तेन तत्र श्रुतं यथा–एष वज्रनाभो भरते प्रथमतीर्थंकरः भविष्यतीति, तदेष स भगवानिति। तस्य च मनुष्य इक्षुरसघटेन सहागतः, तं गृहीत्वा भगवन्तमुपस्थितः, कल्पत इति स्वामिना पाणी प्रसारितौ, सर्वो निसृष्टः पाण्योः, अच्छिद्रपाणिर्भगवान्, उपरि शिखा वर्धते, न चाधः पतति, भगवत एषा लब्धिः, भगवता स पारितः, तत्र दिव्यानि प्रादुर्भूतानि–तद्यथा–वसुधारा वृष्टा १ चेलोत्क्षेपः कृतः २ आहता देवदुन्दुभयः ३ गन्धोदककुसुमवर्षा मुक्ता ४ आकाशे चाहोदानं घुष्टमिति ५। ततस्तं देवसंनिपातं दृष्ट्वा लोकः श्रेयांसगृहमुपागतः, ते तापसा अन्ये च राजानः, तदा श्रेयांसस्तान् प्रज्ञापयति–एवं भिक्षा दीयते, एतेभ्यश्च दत्ते सुगतिर्गम्यते, ततस्ते सर्वेऽपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पुच्छंति–कहं तुमे जाणियं ? जहा–सामिस्स भिक्खा दायव्वत्ति, सेज्जंसो भणइ–जाइसरणेण, अहं सामिणा सह अट्ठ भवग्गहणाइं अहेसि, तओ ते संजायकोउहला भणंति–इच्छामो णाउं अट्ठसु भवग्गहणेसु को को तुमं सामिणो आसित्ति, ततो सो तेसिं पुच्छंताणं अप्पणो सामिस्स य अट्ठभवसंबद्धं कहं कहेइ जहा “वसुदेवहिंडीए”, ताणि पुण संखेवओ इमाणि, तंजहा–ईसाणे सिरिप्पभे विमाणे भगवं ललिअंगओ अहेसि, सेज्जंसो से सयंपभादेवी पुव्वभवनिन्नामिआ १ पुव्वविदेहे पुक्खलावइविजए लोहग्गले नयरे भगवं वइरजंघो आसि, सिज्जंसो से सिरिमती भारिया २ तत्तो उत्तरकुराए भगवं मिहुणगो सेज्जंसोऽवि मिहुणिआ अहेसि ३ ततो सोहम्मे कप्पे दुवेऽवि देवा अहेसि ४ ततो भगवं अवरविदेहे विज्जपुत्तो सेज्जंसो पुण जुण्णसेट्ठिपुत्तो केसवो नाम छट्ठो मित्तो अहेसि ५ ततो अच्चुए कप्पे देवा ६ ततो भगवं पुंडरीगिणीए नगरीए वइरणाहो सेज्जंसो सारही ७ ततो सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवा ८ इह पुण भगवओ पपोत्तो जाओ सेज्जंसोत्ति । तेसिं

१ पृच्छन्ति–कथं त्वया ज्ञातं ? यथा स्वामिने भिक्षा दातव्येति, श्रेयांसो भणति–जातिस्मरणेन, अहं स्वामिना सहाष्टौ भवग्रहणान्यभूवं, ततस्ते संजातकौतूहला भणन्ति–इच्छामो ज्ञातुं, अष्टसु भवग्रहणेषु कस्कस्त्वं स्वामिनोऽभव इति, ततः स तेभ्यः पृच्छद्भ्य आत्मनः स्वामिनश्चाष्टभवसंबद्धां कथां कथयति यथा वसुदेवहिण्ड्यां, तानि पुनः संक्षेपत इमानि, तद्यथा–ईशाने श्रीप्रभे विमाने भगवान् ललिताङ्गक आसीत्, श्रेयांसस्तस्य स्वयंप्रभा देवी पूर्वभवनिर्नामिका १ पूर्वविदेहेषु पुष्कलावतीविजये लोहार्गले नगरे भगवान् वज्रजङ्घ आसीत्, श्रेयांसस्तस्य श्रीमती भार्या २ तत उत्तरकुरुषु भगवान् मिथुनकः श्रेयांसोऽपि मिथुनिका आसीत् ३ ततः सौधर्मे कल्पे द्वावपि देवौ अभूताम् ४ ततो भगवानपरविदेहेषु वैद्यपुत्रः श्रेयांसः पुनर्जीर्णश्रेष्ठिपुत्रः केशवनामा षष्ठं मित्रमभूत् ५ ततोऽच्युते कल्पे देवौ ६ ततो भगवान् पुण्डरीकिण्यां नगर्यां वज्रनाभः श्रेयांसः सारथिः ७ ततः सर्वार्थसिद्धे विमाने देवौ ८ इह पुनर्भगवतः प्रपौत्रो जातः श्रेयांस इति । तेषां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

च तिण्हवि सुमिणाण एतदेव फलं–जं भगवओ भिक्खा दिण्णत्ति । ततो जणवओ एवं सोऊण सेज्जंसं अभिणंदिऊण सट्ठाणाणि गतो, सेज्जंसोऽवि भगवं जत्थ ठिओ पडिलाभिओ ताणि पयाणि मा पाएहिं अक्कमिहामित्ति भत्तीए तत्थ रयणामयं पेढं करेइ, तिसंझं च अच्चिणइ, विसेसेण य पव्वदेसकाले अच्चिणेऊण भुंजइ, लोगो पुच्छइ–किमेयंति, सेज्जंसो भणति–आदिगरमंडलगंति, ततो लोगेणवि जत्थ जत्थ भगवं ठितो तत्थ तत्थ पेढं कयं, तं च कालेण आइच्चपेढं संजायंति गाथार्थः ॥ एवं भगवतः खल्वादिकरस्य पारणकविधिरुक्तः, साम्प्रतं प्रसङ्गतः शेषतीर्थकराणामजितादीनां येषु स्थानेषु प्रथमपारणकान्यासन् यैश्च कारितानि तद्गतिश्चेत्यादि प्रतिपाद्यते, तत्र विवक्षितार्थप्रतिपादिकाः खल्वेता गाथा इति ।

हत्थिणउरं १ अओज्झा २ सावत्थी ३ तहय चेव साकेअं ४ ।
विजयपुर ५ बंभथलयं ६ पाडलिसंडं ७ पउमसंडं ८ ॥ ३२३ ॥
सेयपुरं ९ रिट्ठपुरं १० सिद्धत्थपुरं ११ महापुरं १२ चेव ।
धण्णकड १३ वद्धमाणं १४ सोमणसं १५ मंदिरं १६ चेव ॥ ३२४ ॥
चक्कपुरं १७ रायपुरं १८ मिहिला १९ रायगिहमेव २० बोद्धव्वं ।
वीरपुरं २१ बारवई २२ कोअगडं २३ कोल्लयग्गामो २४ ॥ ३२५ ॥

१ च त्रयाणामपि स्वप्नानामेतदेव फलं–यत् भगवते भिक्षा दत्तेति । ततो जनपद एवं श्रुत्वा श्रेयांसमभिनन्द्य स्वस्थानं गतः, श्रेयांसोऽपि भगवान् यत्र स्थितः प्रतिलम्भितः तानि चरणानि मा पादैराक्रमिषमिति भक्त्या तत्र रत्नमयं पीठं करोति, त्रिसन्ध्यं चार्चयति, विशेषेण च पर्वदेशकालेऽर्चयित्वा भुङ्क्ते, लोकः पृच्छति–किमेतदिति, श्रेयांसो भणति–आदिकरमण्डलमिति, ततो लोकेनापि यत्र यत्र भगवान् स्थितः तत्र तत्र पीठं कृतं, तत्र कालेनादित्यपीठं संजातमिति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

एएसु पढमभिक्खा लद्धाओ जिणवरेहि सव्वेहिं।
दिण्णाउ जेहि पढमं तेसिं नामाणि वोच्छामि ॥ ३२६ ॥
सिज्जंस १ बंभदत्ते २ सुरेंददत्ते ३ य इंददत्ते ४ अ।
पउमे ५ अ सोमदेवे ६ महिंद ७ तह सोमदत्ते ८ अ ॥ ३२७ ॥
पुस्से ९ पुणव्वसू १० पुणनंद ११ सुनंदे १२ जए १३ अ विजए १४ य।
तत्तो अ धम्मसीहे १५ सुमित्त १६ तह वग्घसीहे १७ अ ॥ ३२८ ॥
अपराजिअ १८ विस्ससेणे १९ वीसइमे होइ बंभदत्ते २० अ।
दिण्णे २१ वरदिण्णे २२ पुण धण्णे २३ बहुले २४ अ बोद्धव्वे ॥ ३२९ ॥

एए कयंजलिउडा भत्तीबहुमाणसुक्कलेसागा। तक्कालपहट्ठमणा पडिलाभेसुं जिणवरिंदे ॥ ३३० ॥
सव्वेहिंपि जिणेहिं जहिअं लद्धाओ पढमभिक्खाओ। तहिअं वसुहाराओ वुट्ठाओ पुप्फवुट्ठीओ ॥ ३३१ ॥
अद्धत्तेरसकोडी उक्कोसा तत्थ होइ वसुहारा। अद्धत्तेरस लक्खा जहण्णिआ होइ वसुहारा ॥ ३३२ ॥
सव्वेसिंपि जिणाणं जेहिं दिण्णाउ पढमभिक्खाओ। ते पयणुपिज्जदोसा दिव्ववरपरक्कमा जाया ॥ ३३३ ॥
केई तेणेव भवेण निव्वुआ सव्वकम्मउम्मुक्का। अन्ने तइअभवेणं सिज्झिस्संति जिणसगासे ॥ ३३४ ॥

अक्षरगमनिका तु क्रियाऽध्याहारतः कार्या, यथा—गजपुरं नगरमासीत्, श्रेयांसस्तत्र राजा, तेनेक्षुरसदानं भगवन्तम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

धिकृत्य प्रवर्त्तितं, तत्रार्धत्रयोदशहिरण्यकोटीपरिमाणा वसुधारा निपतिता, पीठमिति–श्रेयांसेन यत्र भगवता पारितं तत्र तत्पादयोर्मा कश्चिदाक्रमणं करिष्यतीतिभक्त्या रत्नमयं पीठं कारितं । गुरुपूजेति–तदर्चनं चक्रे इति । अत्रान्तरे भगवतः तक्षशिलातले गमनं बभूव, भगवत्प्रवृत्तिनियुक्तपुरुषैर्बाहुबलेर्निवेदनं च कृतमित्यक्षरगमनिका । एवमन्यासामपि संग्रहगाथानां स्वबुद्ध्या गमनिका कार्येति गाथार्थः ॥ ३२२–३३४ ॥ इदानीं कथानकशेषम्—बाहुबलिणा चिंतिअं–कल्ले सविड्ढीए वंदिस्सामित्ति निग्गतो पभाए, सामी गतो विहरमाणो, अदिट्ठे अद्धितिं काऊण जहिं भगवं वुत्थो तत्थ धम्मचक्कं चिंधं कारियं, तं सव्वरयणामयं जोयणपरिमंडलं पंचजोयणूसियदंडं । सामीवि बहलीयडंबइल्लाजोणगविसयाइएसु निरुवसग्गं विहरंतो विणीअणगरीए उज्जाणत्थाणं पुरिमतालं नगरं संपत्तो । तत्थ य उत्तरपुरच्छिमे दिसिभागे सगडमुहं नाम उज्जाणं, तंमि णिग्गोहपायवस्स हेट्ठा अट्ठमेणं भत्तेणं पुव्वण्हदेसकाले फग्गुणबहुलेक्कारसीए उत्तरासाढणक्खत्ते पव्वज्जादिवसाओ आरब्भ वाससहस्संमि अतीते भगवओ तिहुअणेक्कबंधवस्स दिवमणंतं केवलनाणमुप्पण्णंति । अमुमेवार्थमुपसंहरन् गाथाषट्कमाह—

१ बाहुबलिना चिन्तितम्–कल्ये सर्वर्ध्या वन्दिष्य इति निर्गतः प्रभाते, स्वामी गतः विहरन् , अदृष्ट्वाऽधृतिं कृत्वा यत्र भगवानुषितस्तत्र धर्मचक्रं चिह्नं कारितं, तत् सर्वरत्नमयं योजनपरिमण्डलं पञ्चयोजनोच्छ्रितदण्डं । स्वाम्यपि बहुल्यडम्बइल्लायोनकविषयादिकेषु निरुपसर्गं विहरन् विनीतनगर्या उद्यानस्थानं पुरिमतालं नगरं संप्राप्तः । तत्र च उत्तरपूर्वदिग्भागे शकटमुखं नाम उद्यानं, तस्मिन् न्यग्रोधपादपस्याधः अष्टमेन भक्तेन पूर्वाह्णदेशकाले फाल्गुनकृष्णैकादश्यां उत्तराषाढानक्षत्रे प्रव्रज्यादिवसादारभ्य वर्षसहस्रेऽतीते भगवतस्त्रिभुवनैकबान्धवस्य दिव्यमनन्तं केवलज्ञानमुत्पन्नमिति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	

कल्लं सविड्ढीए पूएमहऽदट्ठु धम्मचक्कं तु। विहरइ सहस्समेगं छउमत्थो भारहे वासे ॥ ३३५ ॥
बहलीअडंबइल्लाजोणगविसओ सुवण्णभूमी अ। आहिंडिआ भगवआ उसभेण तवं चरंतेणं ॥ ३३६ ॥
बहली अ जोणगा पल्हगा य जे भगवया समणुसिट्ठा। अन्ने य मिच्छजाई ते तइआ भद्दया जाया ॥ ३३७॥
तित्थयराणं पढमो उसभरिसी विहरिओ निरुवसग्गो। अट्ठावओ णगवरो अग्ग (य) भूमी जिणवरस्स ॥३३८॥
छउमत्थप्परिआओ वाससहस्सं तओ पुरिमताले। णग्गोहस्स य हेट्ठा उप्पण्णं केवलं नाणं ॥ ३३९ ॥
फग्गुणबहुले एक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेणं। उप्पण्णंमि अणंते महव्वया पंच पण्णवए ॥ ३४० ॥

आसां भावार्थः सुगम एव, नवरम्–अनुरूपक्रियाऽध्याहारः कार्यः, यथा–कल्लं–प्रत्यूषसि सर्वर्ध्या पूजयामि भगवन्तम्–आदिकर्त्तारं अहमिति–आत्मनिर्देशः, अदृष्ट्वा भगवन्तं धर्मचक्रं तु चकारेत्यादि गाथाषट्काक्षरार्थः॥ ३३५–३४० ॥ महाव्रतानि पञ्च प्रज्ञापयतीत्युक्तं, तानि च त्रिदशकृतसमवसरणावस्थित एव, तथा चाह—

उप्पण्णंमि अणंते नाणे जरमरणविप्पमुक्कस्स। तो देवदाणविंदा करिंति महिमं जिणिंदस्स ॥ ३४१ ॥

गमनिका—उत्पन्ने–घातिकर्मचतुष्टयक्षयात् संजाते अनन्ते ज्ञाने केवल इत्यर्थः, जरा–वयोहानिलक्षणा मरणं–प्रतीतं जरामरणाभ्यां विप्रमुक्त इति समासः तस्य, विप्रमुक्तवद्विप्रमुक्त इति, ततो देवदानवेन्द्राः कुर्वन्ति महिमां–ज्ञानपूजां जिनवरेन्द्रस्य। देवेन्द्रग्रहणात् वैमानिकज्योतिष्कग्रहः, दानवेन्द्रग्रहणात् भवनवासिव्यन्तरेन्द्रग्रहणं। सर्वतीर्थकराणां च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक- ॥१४८॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

देवा अवस्थितानि नखलोमानि कुर्वन्ति, भगवतस्तु कनकावदाते शरीरे जटा एवाञ्जनरेखा इव राजन्त्य उपलभ्य धृता इति गाथार्थः ॥ ३४१ ॥ इदानीमुक्तानुक्तार्थसंग्रहपरां संग्रहगाथामाह—

उज्जाणपुरिमताले पुरी(इ) विणीआइ तत्थ नाणवरं । चक्कुप्पा*या य भरहे निवेअणं चेव दोण्हंपि ॥ ३४२ ॥

गमनिका—उद्यानं च तत्पुरिमतालं च उद्यानपुरिमतालं तस्मिन्, पुर्यां विनीतायां तत्र ज्ञानवरं भगवत उत्पन्नमिति वाक्यशेषः । तथा तस्मिन्नेवाहनि भरतस्य नृपतेरायुधशालायां चक्रोत्पादश्च बभूव । 'भरहे निवेअणं चेव दोण्हंपि' त्ति भरताय निवेदनं च द्वयोरपि–ज्ञानरत्नचक्ररत्नयोः तन्नियुक्तपुरुषैः कृतमित्यध्याहार इति गाथार्थः ॥ ३४२ ॥ अत्रान्तरे भरतश्चिन्तयामास–पूजा तावद्द्वयोरपि कार्या, कस्य प्रथमं कर्तुं युज्यते ? किं चक्ररत्नस्य उत तातस्येति, तत्र—

+तायंमि पूइए चक्क पूइअं पूअणारिहो ताओ । इहलोइअं तु चक्कं परलोअसुहावहो ताओ ॥ ३४३ ॥

गमनिका—'ताते'–त्रैलोक्यगुरौ पूजिते सति चक्रं पूजितमेव, तत्पूजानिबन्धनत्वाच्चक्रस्य । तथा पूजामर्हतीति पूजार्हः तातो वर्त्तते, देवेन्द्रादिनुतत्वात् । तथा इह लोके भवं चैहलौकिकं तु चक्रं, तुरेवकारार्थः, स चावधारणे, किमवधारयति ? ऐहिकमेव चक्रं, सांसारिकसुखहेतुत्वात् । परलोके सुखावहः परलोकसुखावहस्तातः, शिवसुखहेतुत्वाद् इति गाथार्थः ॥ ३४३ ॥ तस्मात् 'तिष्ठतु तावच्चक्रं, तातस्य पूजा कर्तुं युज्यते' इति संप्रधार्य तत्पूजाकरणसंदेशव्यापृतो बभूव । इदानीं कथानकम्— ॥१४८॥

* चक्कुपाओ य (स्यात्) + आउहवरसालाए उप्पण्णं चक्करयण भरहस्स । जक्खसहस्सपरिवुडं सव्वरयणामयं चक्कं ॥ १ ॥ (प्र० अध्या०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...........आगमसूत्र - [४०], मूलसूत्र - [०१] “आवश्यक” मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचित वृत्ति :

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भरहो सविड्डीए भगवंतं वंदिउं पयट्टो, मरुदेवीसामिणी य भगवंते पव्वइए भरहरज्जसिरिं पासिऊण भणियाइआ–मम पुत्तस्स एरिसी रज्जसिरी आसि, संपयं सो खुहापिवासापरिगओ नग्गओ हिंडइत्ति उव्वेयं करियाइआ, भरहस्स तित्थकरविभूइं वण्णेंतस्सवि न पत्तिज्जियाइआ, पुत्तसोगेण य से किल झामलं चक्खुं जायं रुयंतीए, तो भरहेण गच्छंतेण विण्णत्ता–अम्मो ! एहि, जेण भगवओ विभूइं दंसेमि। ताहे भरहो हत्थिखंधे पुरओ काऊण निग्गओ, समवसरणदेसे य गयणमंडलं सुरसमूहेण विमाणारूढेणोत्तरंतेण विरायंतधयवडं पहयदेवदुंदुहिनिनायपूरियदिसामंडलं पासिऊण भरहो भणियाइओ–पेच्छ जइ एरिसी रिद्धी मम कोडिसयसहस्सभागेणवि, ततो तीए भगवओ छत्ताइच्छत्तं पासंतीए चेव केवलमुप्पण्णं। अण्णे भणंति–भगवओ धम्मकहासद्दं सुणंतीए। तक्कालं च से खुट्टमाउगं, ततो सिद्धा, इह भारहोसप्पिणीए पढमसिद्धोत्तिकाऊण देवेहिं पूजा कया, सरीरं च खीरोदे छूढं, भगवं च समवसरणमज्झत्थो सदेवमणुयासुराए

---

१ भरतः सर्वर्ध्या भगवन्तं वन्दितुं प्रवृत्तः, मरुदेवीस्वामिनी च भगवति प्रव्रजिते भरतराज्यश्रियं दृष्ट्वा भणितवती–मम पुत्रस्येदृशी राज्यश्रीरभवत्, साम्प्रतं स क्षुत्पिपासापरिगतः नग्नो हिण्डत इत्युद्वेगं कृतवती, भरते तीर्थकरविभूतिं वर्णयत्यपि न प्रतीतवती, पुत्रशोकेन च तस्याः किल ध्यामलं चक्षुर्जातं रुदत्याः, तदा भरतेन गच्छता विज्ञप्ता–अम्ब ! एहि, येन भगवतो विभूतिं दर्शयामि। तदा भरतः हस्तिस्कन्धे पुरतः कृत्वा निर्गतः, समवसरणदेशे च गगनमण्डलं सुरसमूहेन विमानारूढेनोत्तरता विराजध्वजपटं प्रहतदेवदुन्दुभिनिनादापूरितदिग्मण्डलं दृष्ट्वा भरतो भणितवान्–पश्य यदि ईदृशी ऋद्धिर्मम कोटीशतसहस्रभागेनापि, ततस्तस्या भगवतश्छत्रातिच्छत्रं पश्यन्त्या एव केवलमुत्पन्नं। अन्ये भणन्ति–भगवतो धर्मकथाशब्दं शृण्वन्त्याः। तत्कालं च तस्याः त्रुटितमायुः, ततः सिद्धा, इह भरतावसर्पिण्यां प्रथमसिद्ध इतिकृत्वा देवैः पूजा कृता, शरीरं च क्षीरोदे क्षिप्तं, भगवांश्च समवसरणमध्यस्थः सदेवमनुजासुरायां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

मरुदेव्या: केवलज्ञान एवं निर्वाणस्य प्रबन्ध:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सभाए धम्मं कहेइ, तत्थ उसभसेणो नाम भरहपुत्तो पुव्वबद्धगणहरनामगोत्तो जायसंवेगो पव्वइओ, बंभी य पव्वइआ, भरहो सावगो जाओ, सुंदरी पवयंती भरहेण इत्थीरयणं भविस्सइत्ति निरुद्धा, सावि साविआ जाया, एस चउव्विहो समणसंघो। ते य तावसा भगवओ नाणमुप्पण्णंति कच्छमहाकच्छवज्जा भगवओ सगासमागंतूण भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणियदेवाइण्णं परिसं दट्ठूण भगवओ सगासे पव्वइआ, इत्थ समोसरणे मरीइमाइआ बहवे कुमारा पव्वइआ। साम्प्रतमभिहितार्थसंग्रहपरमिदं गाथाचतुष्टयमाह—

सह मरुदेवाइ निग्गओ कहणं पव्वज्ज उसभसेणस्स। बंभीमरीइदिक्खा सुंदरी ओरोहसु अदिक्खा ॥ ३४४॥
पंच य पुत्तसयाइं भरहस्स य सत्त नत्तूअसयाइं। सयराहं पव्वइआ तंमि कुमारा समोसरणे ॥ ३४५॥
भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी अ। सव्विड्ढिइ सपरिसा कासी नाणुप्पयामहिमं ॥ ३४६॥
दट्ठूण कीरमाणिं महिमं देवेहि खत्तिओ मरिई। सम्मत्तलद्धबुद्धी धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥ ३४७॥

व्याख्या—'कथनं' धर्मकथा परिगृह्यते, मरुदेव्यै भगवद्विभूतिकथनं वा। तथा 'नप्तृशतानीति' पौत्रकशतानि। तथा

---

१ सभायां धर्मं कथयति, तत्र ऋषभसेनो नाम भरतपुत्रः पूर्वबद्धगणधरनामगोत्रः जातसंवेगः प्रव्रजितः, ब्राह्मी च प्रव्रजिता, भरतः श्रावको जातः, सुन्दरी प्रव्रजन्ती भरतेन स्त्रीरत्नं भविष्यतीति निरुद्धा, सापि श्राविका जाता, एष चतुर्विधः श्रमणसङ्घः। ते च तापसा भगवतो ज्ञानमुत्पन्नमिति कच्छमहाकच्छवर्जा भगवतः सकाशमागत्य भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकदेवाकीर्णां पर्षदं दृष्ट्वा भगवतः सकाशे प्रव्रजिताः, अत्र समवसरणे मरीच्यादिका बहवः कुमाराः प्रव्रजिताः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

'सयराहमिति' देशीवचनं युगपदर्थाभिधायकं त्वरितार्थाभिधायकं वेति । 'मरीचिरिति' जातमात्रो मरीचीन्मुक्तवान् इत्यतो मरीचिमान्* मरीचिः, अभेदोपचारान्मतुब्लोपाद्वेति, अस्य च प्रकृतोपयोगित्वात्कुमारसामान्याभिधाने सत्यपि भेदेनोपन्यासः । सम्यक्त्वेन लब्धा–प्राप्ता बुद्धिर्यस्य स तथाविधः । शेषं सुगममिति गाथाचतुष्टयार्थः ॥ ३४४–३४७ ॥

कथानकम्—[1]भरहोऽवि भगवओ पूअं काऊण चक्करयणस्स अट्ठाहिआमहिमं करियाइओ, निवत्ताए अट्ठाहिआए तं चक्करयणं पुव्वा+हिमुहं पहाविअं, भरहो सव्वबलेण तमणुगच्छिआइओ, तं जोयणं गंतूण ठिअं, ततो सा जोअणसंखा जाआ, पुव्वेण य मागहतित्थं पाविऊण अट्ठमभत्तोसितो रहेण समुद्दमवगाहित्ता चक्कणाभिं जाव, ततो णामंकं सरं विसज्जियाइओ, सो दुवालसजोयणाणि गंतूण मागहतित्थकुमारस्स भवणे पडिओ, सो तं दट्ठूण परिकुविओ भणइ–केस णं एस अपत्थिअपत्थिए ?, अह नामयं पासइ, नायं जहा उप्पण्णो चक्कवट्टित्ति, सरं चूडामणिं च घेत्तूण उवट्ठिओ भणति–अहं ते पुव्विल्लो अंतेवालो, ताहे तस्स अट्ठाहिअं महामहिमं करेइ । एवं एएण कमेण दाहिणेण वरदामं, अवरेण पभासं, ताहे

---

१ भरतोऽपि भगवतः पूजां कृत्वा चक्ररत्नस्याष्टाहिकामहिमानं कृतवान्, निवृत्तेऽष्टाहिके तच्चक्ररत्नं पूर्वाभिमुखं प्रधावितं, भरतः सर्वबलेन तदनुगतवान् तद्योजनं गत्वा स्थितं, ततः सा योजनसंख्या जाता, पूर्वस्यां च मागधतीर्थं प्राप्याष्टमभक्तोषितो रथेन समुद्रमवगाह्य चक्रनाभिं यावत्, ततो नामाङ्कं शरं विसृष्टवान्, स द्वादश योजनानि गत्वा मागधतीर्थकुमारस्य भवने पतितः, स तं दृष्ट्वा परिकुपितो भणति–क एषोऽप्रार्थितप्रार्थकः ?, अथ नाम पश्यति, ज्ञातं यथा उत्पन्नश्चक्रवर्त्तीति, शरं चूडामणिं च गृहीत्वोपस्थितो भणति–अहं तव पौरस्त्योऽन्तपालः, तदा तस्याष्टाहिकं महामहिमानं करोति । एवमेतेन क्रमेण दक्षिणस्यां वरदामं अपरस्यां प्रभासं, तदा * मरीचिवान्. + पुव्वामुहं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भारतस्य दिग्विजय-साधनार्थं गमनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१५०॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

सिंधुदेविं ओयवेइ, ततो वेयड्ढगिरिकुमारं देवं, ततो तमिसगुहाए कयमालयं, तओ सुसेणो अद्धबलेण दाहिणिल्लं सिंधु-निक्खूडं ओयवेइ, ततो सुसेणो तिमिसगुहं *समुग्घाडेइ, ततो तिमिसगुहाए मणिरयणेण उज्जोअं काऊण उभओ पासिं पंचधणुसयायामविक्खंभाणि एगूणपण्णा+सं मंडलाणि आलिहमा†णे उज्जोअकरणा उम्मुग्गनिमुग्गाओ अ संकमेण उत्तरिऊण निग्गओ तिमिसगुहाओ, आवडिअं चिलातेहिं समं जुद्धं, ते पराजिआ मेहमुहे नाम कुमारे कुलदेवए आराहेंति, ते सत्तर‡त्तिं वासं वासेंति, भरहोऽवि चम्मरयणे खंधावारं ठवेऊण उवरिं छत्तरयणं ठवेइ, मणिरयणं छत्तर-यणस्स पडिच्छभा¶ए ठवेति, ततोपभिइ लोगेण अंडसंभवं जगं पणीअंति, तं ब्रह्माण्डपुराणं, तत्थ पुव्वण्हे साली वुप्पइ, अवरण्हे जिम्मइ, एवं सत्त दिवसे अच्छ§ति, ततो मेहमुहा आभिओगिएहिं धाडिआ, चिलाया तेसिं वयणेण उवणया भरहस्स, ततो चुल्लहिमवंतगिरिकुमारं देवं ओयवेति, तत्थ बावत्तरि जोयणाणि सरो उवरिहुत्तो गच्छति,

---

१ सिन्धुदेवीमुपैति, ततो वैताढ्यगिरिकुमारं देवं, ततस्तमिश्रगुहायाः कृतमाल्यं, ततः सुषेणोऽर्धबलेन दाक्षिणात्यं सिन्धुनिष्कूटं उपैति, ततः सुषेणस्तमिश्रगुहां समुद्घाटयति, ततस्तमिस्रगुहायां मणिरत्नेनोद्योतं कृत्वोभयपार्श्वयोः पञ्चधनुःशतायामविष्कम्भाणि मण्डलाणि एकोनपञ्चाशतमालिखन् उद्योतकरणादुन्मग्नानिमग्ने च संक्रमेणोत्तीर्य निर्गतस्तमिस्रगुहायाः, आपतितं किरातैः समं युद्धं, ते पराजिताः मेघमुखान् नाम कुमारान् कुलदेवता आराधयन्ति, ते सप्तरात्रं वर्षा वर्षयन्ति, भरतोऽपि चर्मरत्ने स्कन्धावारं स्थापयित्वोपरि छत्ररत्नं स्थापयति, मणिरत्नं छत्ररत्नस्य प्रतीक्ष्यभागे (मध्ये दण्डस्य) स्थापयति, ततःप्रभृति लोकेनाण्डप्रभवं जगत्प्रणीतमिति, तत्० तत्र पूर्वाह्णे शालय उप्यन्ते, अपराह्णे जिम्यते एवं सप्त दिनानि तिष्ठति, ततो मेघमुखा आभियोगिकैर्निर्धाटिताः, किरातास्तेषां वचनेनोपनता भरताय, ततः क्षुल्लकहिमवद्गिरिकुमारं देवमुपैति, तत्र द्वासप्ततिं योजनानि शर उपरि गच्छति, * ०गुहमुग्घा०. + ०ण्णासमं०. † ०माणो. ‡ सत्तरत्तं. ¶ पडिच्छिआ. § अच्छंति.

॥१५०॥

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ततो उसभकूडए नामं लिहइ, ततो सुसेणो उत्तरिल्लं सिंधुनिक्खूडं ओयवेइ, ततो भरहो गंगं ओयवेइ, पच्छा सेणावती उत्तरिल्लं गंगानिक्खूडं ओयवेइ, भरहोऽवि गंगाए सद्धिं वाससहस्सं भोगे भुंजइ, ततो वेयड्ढे पव्वए णमिविणमिहिं समं बारस संवच्छराणि जुद्धं, ते पराजिआ समाणा विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि गहाय उवट्ठिया, पच्छा खंडगप्पवायगुहाए नट्टमालयं देवं ओयवेइ, ततो खंडगप्पवायगुहाए नीति, गंगाकूलेए नव निहओ उवागच्छंति, पच्छा दक्खिणिल्लं गंगानिक्खूडं सेणावई ओयवेइ, एतेण कमेण सट्ठीए वाससहस्सेहिं भारहं वासं अभिजिणिऊण अतिगओ विणीयं रायहाणिंति, बारस वासाणि महारायाभिसेओ, जाहे बारस वासाणि महारायाभिसेओ वत्तो राइणो विसज्जिआ ताहे नियगवग्गं सरिउमारद्धो, ताहे दाइज्जंति सव्वे निइल्लिआ, एवं परिवाडीए सुंदरी दाइआ, सा पंडुलुंगितमुही, सा य जद्दिवसं रुद्धा तद्दिवसमारद्धा आयंबिलाणि करेति, तं पासित्ता रुट्ठो ते कुडुंबिए भणइ–किं मम नत्थि भोयणं ?, जं एसा एरिसी

१ तत ऋषभकूटे नाम लिखति, ततः सुषेण औत्तरीयं सिन्धुनिष्कूटं उपयाति, ततो भरतो गङ्गामुपयाति, पश्चात्सेनापतिरौत्तरं गङ्गानिष्कूटमुपयाति, भरतोऽपि गङ्गया सार्धं वर्षसहस्रं भोगान्भुनक्ति, ततो वैताढ्ये पर्वते नमिविनमिभ्यां समं द्वादश संवत्सराणि युद्धं, तौ पराजितौ सन्तौ विनमिः स्त्रीरत्नं नमिः रत्नानि गृहीत्वोपस्थितौ, पश्चात्खण्डप्रपातगुहाया नृत्यमाल्यं देवमुपयाति, ततः खण्डप्रपातगुहाया निर्याति, गङ्गाकूले नव निधय उपागच्छन्ति, पश्चात् दाक्षिणात्यं गङ्गानिष्कूटं सेनापतिरुपयाति, एतेन क्रमेण षष्ट्या वर्षसहस्रैः भारतं वर्षं अभिजित्यातिगतो विनीतां राजधानीमिति, द्वादश वर्षाणि महाराजाभिषेको, यदा द्वादश वर्षाणि महाराजाभिषेको वृत्तो राजानो विसृष्टाः तदा निजकवर्गं स्मर्तुमारब्धः, तदा दर्श्यन्ते सर्वे निजकाः, एवं परिपाट्या सुन्दरी दर्शिता, सा पाण्डुराङ्कितमुखी, सा च यद्दिवसे रुद्धा तस्माद्दिवसादारभ्याचाम्लानि करोति, तां दृष्ट्वा रुष्टस्तान् कौटुम्बिकान् भणति–किं मम नास्ति भोजनं, यदेषा ईदृशी

* नामयं. + गंगाकूलेण. † गच्छंतित्ति. ‡ महारज्जा०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

भगवत् पुत्री सुन्दरी एवं तस्या चारित्रराग:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रूवेण जाया, विज्जा वा नत्थि ?, तेहिं सिट्ठं जहा–आयंबिलाणि करेति, ताहे तस्स तस्सोवरिं पयणुओ रागो जाओ, सा य भणिया–जइ रुच्चइ तो मए समं भोगे भुंजाहि, णवि तो पव्वयाहित्ति, ताहे पाएसु पडिया विसज्जिया पव्वइआ। अन्नया भरहो तेसिं भाउयाणं दूयं पट्ठवेइ–जहा मम रज्जं आ*यणह, ते भणंति–अम्हवि रज्जं ताएण दिण्णं, तुज्झवि, एतु ताव ताओ पुच्छिज्जिहित्ति, जं भणिहिति तं करिहामो। ते णं समए णं भगवं अट्ठाव+यमागओ विहरमाणो, एत्थ सव्वे समोसरिआ कुमारा, ताहे भणंति–तुब्भेहिं दिण्णाइं रज्जाइं हरति भा†या, ता किं करे‡मो ? किं जुज्झामो उयाहु आयाणामो?, ताहे सामी भोगेसु निवत्तावेमाणो तेसिं धम्मं कहेइ–न मुत्तिसमं सुहमत्थि, ताहे इंगालदाहकदिट्ठंतं कहेइ–जहा एगो इंगालदाहओ एगं भाणं पाणिअस्स भरेऊ¶णं गओ, तं तेण उदगं णिट्ठविअं, उवरिं आइच्चो पासे अग्गी पुणो परिस्समो दारुगाणि कु§ट्टंतस्स, घरं गतो पाणं पीअं, मुच्छिओ सुमिणं पासइ, एवं असब्भावपट्ठवणाए कूवतलागनदिदहसमुद्दा य सव्वे

१ रूपेण जाता, वैद्या वा न सन्ति ?, तैः शिष्टं–यथाऽऽचाम्लानि करोति, तदा तस्य तस्या उपरि प्रतनुको रागो जातः, सा च भणिता–यदि रोचते तदा मया समं भोगान् भुङ्क्ष्व, नैव तर्हि प्रव्रज, तदा पादयोः पतिता विसृष्टा प्रव्रजिता। अन्यदा भरतस्तेषां भ्रातॄणां दूतान् प्रेषयति–यथा मम राज्यमाज्ञापयत, ते भणन्ति–अस्माकमपि राज्यं तातेन दत्तं, तवापि, एतु तावत्तातः पृच्छयते, यद्भणिष्यति तत्करिष्यामः। तस्मिन्समये भगवानष्टापदमागतो विहरन्, अत्र सर्वे समवसृताः कुमाराः, तदा भणन्ति–युष्माभिर्दत्तानि राज्यानि हरति भ्राता, तत्किं कुर्मः ? किं युध्यामह उताहो आज्ञप्स्यामहे, तदा स्वामी भोगेभ्यो निवर्त्तयमानः तेभ्यो धर्मं कथयति–न मुक्तिसमं सुखमस्ति, तदाऽङ्गारदाहकदृष्टान्तं कथयति–यथैकोऽङ्गारदाहक एकं भाजनं पानीयस्य भृत्वा गतः, तत्तेनोदकं निष्ठापितं, उपरि आदित्यः पार्श्वयोरग्निः पुनः परिश्रमो दारूणि कुट्टयतः, गृहं गतः पानं पीतं, मूर्च्छितः स्वप्नं पश्यति, एवमसद्भावप्रस्थापनया कूपतटाकनदीह्रदसमुद्राश्च सर्वे * ०याणह. + अट्ठावदे समागतो. † भरहो ता ताओ. ‡ करेमि. ¶ भरेउं. § कोणेंतस्स.

॥१५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पीआँ, न य छि[redacted]ताहे एगंमि जिण्णकूवे तणपूलिअं गहाय उस्सिंचइ, जं पडियसेसं तं जीहाए लिहइ । एवं तुब्भेहिंपि अणु[redacted]णो सद्दफरिसा सव्वट्ठसिद्धे अणुभूआ, तहवि तत्तिं न गया । एवं वियालिअं नाम अज्झयणं भासइ ‘संबुज्झह किं न बुज्झहा ?’ एवं अट्ठाणउए वित्तेहिं अट्ठाणउइ कुमारा पव्वइआ, कोइ पढमिल्लुएण संबुद्धो कोइ बितिएण कोइ ततिएण जाहे ते पव्वइआ । अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

मा†गहमाई विजयो सुंदरिप+व्वज्ज बारसभिसेओ । आणवण भाउगाणं समुसरणे पुच्छ दिट्ठंतो ॥ ३४८ ॥

गमनिका—मागधमादौ यस्य स मागधादिः, कोऽसौ ? विजयो भरतेन कृत इति । पुनरागतेन सुन्दर्यवरोधस्थिता दृष्टा, क्षीणत्वान्मुक्ता चेति । द्वादश वर्षाणि अभिषेकः कृतो भरताय, आज्ञापनं भ्रातॄणां चकार, तेऽपि च समवसरणे भगवन्तं पृष्टवन्तः, भगवता चाङ्गारदाहकदृष्टान्तो गदित इति गाथाक्षरार्थः ॥ ३४८ ॥ इदानीं कथानकशेषम्—कुमारेसु पव्वइएसु भरहेण बाहुबलिणो दूओ पेसिओ, सो ते पव्वइए सोउं आसुरुत्तो, ते बाला तुमए पव्वाविआ, अहं पुण जुद्धसमत्थो,

१ पीताः, न च छिद्यते तृष्णा, तदैकस्मिञ्जीर्णकूपे तृणपूलं गृहीत्वोत्सिञ्चति, यत्पतितशेषं तज्जिह्वया लेढि । एवं युष्माभिरपि अनुत्तराः सर्वलोके शब्द-स्पर्शाः सर्वार्थसिद्धेऽनुभूतास्तथापि तृप्तिं न गताः, एवं वैदारिकं नामाध्ययनं भाषते, संबुध्यत किं न बुध्यत? एवमष्टनवत्या वृत्तैरष्टनवतिः कुमाराः प्रव्रजिताः कश्चित् प्रथमेन संबुद्धः कश्चिद्द्वितीयेन कश्चित्तृतीयेन, यदा ते प्रव्रजिताः । २ कुमारेषु प्रव्रजितेषु भरतेन बाहुबलिने दूतः प्रेषितः, स तान्प्रव्रजितान् श्रुत्वा क्रुद्धः, ते बालास्त्वया प्रव्राजिताः, अहं पुनः युद्धसमर्थः * पीआ य. + पच्छिज्जइ. † मागहवरदामपभास सिंधुखंडप्पवायतमिसगुहा । सट्ठिं वाससहस्से, ओअविउं आगओ भरहो ॥ १ ॥ (प्र० अध्या०).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाहुबले: कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

[1]ता एहि, किं वा ममंमि अजिए भरहे तुमे जिं*अंति । ततो सव्वबलेण दोवि मिलिआ देसंते, बाहुबलिणा भणिअं–किं अणवराहिणा लोगेण मारिएणं ?, तुमं च अहं च दुवेऽवि जुज्झामो, एवं होउत्ति, तेसिं पढमं दिट्ठिजुद्धं जायं, तत्थ भरहो पराजिओ, पच्छा वायाए, तत्थवि भरहो पराइओ, एवं बाहाजुद्धेण पराजिओ मुट्ठिजुद्धेऽवि पराजिओ दंडजुद्धेऽवि जिप्पमाणो भरहो चिंतियाइओ–किं एसेव चक्की ? जेणाहं दुब्बलोत्ति, तस्स एवं चिंतंतस्स देवयाए आउहं दिण्णं चक्करयणं, ताहे सो तेणं गहिएणं पहाविओ । इओ बाहुबलिणा दिट्ठो गहियदिव्वरयणो आ†गओ, सगव्वं चिंतियं चाणेण–सममेएण भंजा‡मि एयं, किं पुण तुच्छाण कामभोगाण कारणा भट्ठनियपइण्णं एयं मम वावाइउं न जुत्तं, सोहणं मे भाउगेहिं अणुट्ठिअं, अहमवि तमणुट्ठामित्ति चिंतिऊण भणियं चाणेण–धिसि धिसि पुरिसत्तणं ते अहम्मजुद्धपवत्तस्स, अलं मे भोगेहिं, गेण्हाहि रज्जं, पव्वयामित्ति, मुक्कदंडो पव्वइओ, भरहेण बाहुबलिस्स पुत्तो रज्जे ठविओ । बाहुबली विचिंतेइ–तायसमीवे भाउणो मे

---

१ तत् एहि, किं वा मय्यजिते भरते त्वया जितमिति । ततः सर्वबलेन द्वावपि मिलितौ देशान्ते, बाहुबलिना भणितं–किमनपराधिना लोकेन मारितेन ?, त्वं चाहं च द्वावेव युध्यावहे, एवं भवत्विति, तयोः प्रथमं दृष्टियुद्धं जातं, तत्र भरतः पराजितः, पश्चाद्वाचा, तत्रापि भरतः पराजितः, एवं बाहुयुद्धेन पराजितो मुष्टियुद्धेऽपि पराजितो दण्डयुद्धेऽपि जीयमानो भरतश्चिन्तितवान्–किमेष एव चक्रवर्त्ती ? येनाहं दुर्बल इति । तस्यैवं चिन्तयतो देवतया आयुधं दत्तं चक्ररत्नं, तदा स तद् गृहीत्वा प्रधावितः । इतो बाहुबलिना दृष्टः गृहीतदिव्यरत्न आगतः, सगर्वं चिन्तितं चानेन–सममेतेन भनज्म्येनं, किं पुनस्तुच्छानां कामभोगानां कारणाद्भ्रष्टप्रतिज्ञमेनं व्यापादयितुं न युक्तं, शोभनं मे भ्रातृभिरनुष्ठितं, अहमपि तदनुतिष्ठामि इति चिन्तयित्वा भणितं चानेन–धिग्धिक् पुरुषत्वं तेऽधर्मयुद्धप्रवृत्तस्य, अलं मे भो[redacted]ज्यं, प्रव्रजामीति, मुक्तदण्डः प्रव्रजितः, भरतेन बाहुबलिनः पुत्रो राज्ये स्थापितः । बाहुबली विचिन्तयति–तातसमीपे भ्रातरो मे ॥१५२॥

* वि[redacted] † नेदम्. ‡ भुंजामि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

लहुयरा समुप्प[redacted] ते किह निरइसओ पिच्छामि?, एत्थेय ताव अच्छामि जाव केवलनाणं समुप्पण्णंति, एवं सो पडिमं ठिओ, मा[redacted]र, जाणइ सामी तहवि न पट्ठवेइ, अमूढलक्खा तित्थयरा, ताहे संवच्छरं अच्छइ काउस्सग्गेणं, वल्लीविताणेणं वेढिओ, पाया य वम्मीयनिग्गएहिं भुयंगेहिं, पुण्णे य संवच्छरे भगवं बंभीसुंदरीओ पट्ठवेइ, पुव्विं न पट्ठविआ*, जेण तया सम्मं न पडिवज्जइ+त्ति, ताहिं सो मग्गंतीहिं वल्लीतणवेढिओ दिट्ठो, परूढेणं महल्लेणं कुच्चेणंति, तं दट्ठूण वंदिओ, इमं च भणियं–†ताओ आणवेइ–न ‡किर हत्थिविलग्गस्स केवलनाणं समुप्पज्जइत्ति भणिऊणं गयाओ, ताहे पचिं¶तितो–कहिं एत्थ हत्थी ?, ताओ अ अलियं न भणति, ततो चिंतंतेण णायं–जहा माणहत्थित्ति, को य मम माणो?, वच्चामि भगवंतं वंदामि ते य साहुणोत्ति पादे उक्खित्ते केवलनाणं समुप्पण्णं, ताहे गंतूण केवलिपरिसाए ठिओ। ताहे भरहोऽवि रज्जं भुंजइ। मरीईवि सामाइयादि एक्कारस अंगाणि अहिज्जिओ। साम्प्रतमभिहितार्थोपसंहारायेदं गाथासप्तकमाह—

१ लघुतराः समुत्पन्नज्ञानातिशयाः, तान् कथं निरतिशयः पश्यामि?, अत्रैव तावत्तिष्ठामि यावत्केवलज्ञानं समुत्पन्नमिति (समुत्पद्यत इति), एवं स प्रतिमां स्थितः, मानपर्वतशिखरे, जानाति स्वामी तथापि न प्रस्थापयति, अमूढलक्ष्यास्तीर्थकराः, तदा संवत्सरं तिष्ठति कायोत्सर्गेण, वल्लीवितानेन वेष्टितः, पादौ च वल्मीकनिर्गतैर्भुजङ्गैः, पूर्णे च संवत्सरे भगवान् ब्राह्मीसुन्दर्यौ प्रस्थापयति, पूर्वं न प्रस्थापिते, येन तदा सम्यक् न प्रतिपद्यत इति, ताभ्यां मार्गयन्तीभ्यां स वल्लीतृणवेष्टितो दृष्टः, प्ररूढेन महता कूर्चेनेति, तं दृष्ट्वा वन्दितः, इदं च भणितम्–तात आज्ञापयति–न किल हस्तिविलग्नस्य केवलज्ञानं समुत्पद्यत-इति भणित्वा गते, तदा प्रचिन्तितः (चिन्तितुमारब्धवान्) क्वात्र हस्ती?, तातश्चालीकं न भणति, ततश्चिन्तयता ज्ञातं–यथा मानो हस्तीति, कश्च मम मानः, व्रजामि भगवन्तं (प्रति) वन्दे तांश्च साधूनिति पादे उत्क्षिप्ते केवलज्ञानं समुत्पन्नं, तदा गत्वा केवलिपर्षदि स्थितः। तदा भरतोऽपि राज्यं भुनक्ति। मरीचिरपि सामायिकादीन्येकादशाङ्गान्यधीतवान्. * पट्ठविआओ. + पडिवज्जिहित्ति. † जेट्ठज्ज! ताओ. ‡ किल. ¶ चिन्तितो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

बाहुबलिकोवकरणं निवेअणं चक्कि देवया कहणं । नाहम्मेणं जुज्झे दिक्खा पडिमा पइण्णा य ॥ ३४९ ॥
पढमं दिट्ठीजुद्धं वायाजुद्धं तहेव बाहाहिं । मुट्ठीहि अ दंडेहि अ सव्वत्थवि जिप्पए भरहो ॥ ३२ ॥
सो एव जिप्पमाणो विहुरो अह नरवई विचिंतेइ । किं मन्नि एस चक्की ? जह दाणि दुब्बलो अहयं ॥ ३३ ॥
संवच्छरेण धूअं अमूढलक्खो उ पेसए अरिहा । हत्थीओ ओयरत्ति अ वुत्ते चिन्ता पए नाणं ॥ ३४ ॥
उप्पण्णनाणरयणो तिण्णपइण्णो जिणस्स पामूले । गंतुं तित्थं नमिउं केवलिपरिसाइ आसीणो ॥ ३५ ॥
काऊण एगछत्तं भरहोऽवि अ भुंजए विउलभोए । मरिईवि सामिपासे विहरइ तवसंजमसमग्गो ॥ ३६ ॥
सामाइअमाईअं इक्कारसमाउ जाव अंगाउ। उज्जुत्तो भत्तिगतो अहिज्जिओ सो गुरुसगासे ॥ ३७॥ (भाष्यम्)

आसामभिहितार्थानामपि असंमोहार्थमक्षरगमनिका प्रदर्श्यते—भरतसंदेशाकर्णने सति बाहुबलिनः कोपकरणं, तन्निवेदनं चक्रवर्त्तिभरताय दूतेन कृतं, 'देवयत्ति' युद्धे जीयमानेन भरतेन किमयं चक्रवर्त्ती न त्वहमिति चिन्तिते देवता आगतेति, 'कहणंति' बाहुबलिना परिणामदारुणान् भोगान् पर्यालोच्य कथनं कृतं–अलं मम राज्येनेति, तथा चाह–नाधर्मेण युध्यामीति, दीक्षा तेन गृहीता, अनुत्पन्नज्ञानः कथमहं ज्यायान् लघीयसो द्रक्ष्यामीत्यभिसंधानात् प्रतिमा अङ्गीकृता प्रतिज्ञा च कृता–नास्मादनुत्पन्नज्ञानो यास्यामीति निर्युक्तिगाथा, शेषास्तु भाष्यगाथाः ॥ ३४९ ॥

* ताहे चक्कं [redacted] चक्करयणंमि । बाहुबलिणा य भणिभं धिरत्थु रज्जस्स तो तुज्झ ॥ १ ॥ चिंतेइ य सो मज्झं सहोअरा पुव्वदिक्खिया नाणी । अहयं केव [redacted] पडिमं ॥ २ ॥ (प्र० अध्या०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

तयोश्च भरत[redacted]थमं दृष्टियुद्धं पुनर्वाग्युद्धं तथैव बाहुभ्यां मुष्टिभिश्च दण्डैश्च, 'सर्वत्रापि' सर्वेषु युद्धेषु जीयते भरतः ॥ स एवं [redacted] विधुरोऽथ नरपतिर्विचिन्तितवान्–किं मन्ये एष चक्रवर्त्ती? यथेदानीं दुर्बलोऽहमिति ॥ कायोत्सर्गावस्थिते भगवति बाहुबलिनि संवत्सरेण 'धूतां' दुहितॄरं अमूढलक्षस्तु प्रेषितवान् 'अर्हन्' आदितीर्थकरः, 'हस्तिनः अवतर' इति चोक्ते चिन्ता तस्य जाता, यामीति संप्रधार्य 'पदे' इति पादोत्क्षेपे ज्ञानमुत्पन्नमिति ॥ उत्पन्नज्ञानरत्नस्तीर्णप्रतिज्ञो जिनस्य पादमूले केवलिपर्षदं गत्वा तीर्थं नत्वा आसीनः ॥ अत्रान्तरे कृत्वा एकच्छत्रं भुवनमिति वाक्यशेषः, भरतोऽपि च भुङ्क्ते विपुलभोगान् । मरीचिरपि स्वामिपार्श्वे विहरति तपःसंयमसमग्रः ॥ स च सामायिकादिकमेकादशमङ्गं यावत् उद्युक्तः क्रियायां, भक्तिगतो भगवति श्रुते वा, अधीतवान् स गुरुसकाश इत्युपन्यस्तगाथार्थः ॥ ३२–३७ ॥

अह अण्णया कयाई गिम्हे उण्हेण परिगयसरीरो । अण्हाणएण चइओ इमं कुलिंगं विचिंतेइ ॥ ३५० ॥

गमनिका—'अथ' इत्यानन्तर्ये 'कदाचिद्' एकस्मिन्काले ग्रीष्मे उष्णेन परिगतशरीरः 'अस्नानेनेति' अस्नानपरीषहेण त्याजितः संयमात् 'एतत्कुलिङ्गं' वक्ष्यमाणं विचिन्तयतीति गाथार्थः ॥ ३५० ॥

मेरुगिरीसमभारे न हुमि समत्थो मुहुत्तमवि वोढुं । सामण्णए गुणे गुणरहिओ संसारमणुकंखी ॥ ३५१ ॥

गमनिका—मेरुगिरिणा समो भारो येषां ते तथाविधास्तान् नैव समर्थो मुहूर्त्तमपि वोढुं, कान्?, श्रमणानामेते श्रामणाः,

* दुहितरौ. + पदो०. † परिषदं. ‡ तत्तीर्थं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरीचि कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

के ते ?, गुणाः विशिष्टक्षान्त्यादयस्तान्, कुतो ?, यतो धृत्यादिगुणरहितोऽहं संसारानुकाङ्क्षीति गाथार्थः ॥ ३५१ ॥ ततश्च किं मम युज्यते ?, गृहस्थत्वं तावदनुचितं, श्रमणगुणानुपालनमप्यशक्यं—

एवमणुचिंततस्स तस्स निअगा मई समुप्पण्णा । लद्धो मए उवाओ जाया मे सासया बुद्धी ॥ ३५२ ॥

व्याख्या—'एवं' उक्तेन प्रकारेण अनुचिन्तयतस्तस्य निजा मतिः समुत्पन्ना, न परोपदेशेन, स ह्येवं चिन्तयामास—लब्धो मया वर्त्तमानकालोचितः खलूपायः, जाता मम शाश्वता बुद्धिः, शाश्वतेति आकालिकी प्रायो निरवद्यजीविकाहेतुत्वात् इति गाथार्थः ॥ ३५२ ॥ यदुक्तं 'इदं कुलिङ्गं अचिन्तयत्' तत्प्रदर्शनायाह—

समणा तिदंडविरया भगवंतो निहुअसंकुइअअंगा । अजिइंदिअदंडस्स उ होउ तिदंडं महं चिंधं ॥ ३५३ ॥

गमनिका—श्रमणाः मनोवाक्कायलक्षणत्रिदण्डविरताः, ऐश्वर्यादिभगयोगाद्भगवन्तः, निभृतानि—अन्तःकरणाशुभव्यापारचिन्तनपरित्यागात् संकुचितानि—अशुभकायव्यापारपरित्यागात् अङ्गानि येषां ते तथोच्यन्ते, अहं तु नैवंविधो यतोऽतः—'अजितेन्दियेत्यादि' न जितानि इन्द्रियाणि—चक्षुरादीनि दण्डाश्च—मनोवाक्कायलक्षणा येन स तथोच्यते, तस्य अजितेन्द्रियदण्डस्य तु भवतु त्रिदण्डं मम चिह्नं, अविस्मरणार्थमिति गाथार्थः ॥ ३५३ ॥

॥१५४॥

लोइंदिअमुंड[redacted] अहयं खुरेण ससिहो अ । थूलगपाणिवहाओ वेरमणं मे सया होउ ॥ ३५४ ॥

गमनिका—[redacted]धो भवति—द्रव्यतो भावतश्च, तत्रैते श्रमणा द्रव्यभावमुण्डाः, कथम् ?, लोचेन इन्द्रियैश्च मुण्डाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संयतास्तु, अहं [redacted]ो यतः अतः अलं द्रव्यमुण्डतया, तस्मादहं क्षुरेण मुण्डः सशिखश्च भवामि, तथा सर्वप्राणिवधविरताः [redacted] अहं तु नैवंविधो यतः अतः स्थूलप्राणातिपाताद्विरमणं मे सदा भवत्विति गाथार्थः ॥ ३५४ ॥

निक्किंचणा य स[redacted] अकिंचणा मज्झ किंचणं होउ । सीलसुगंधा समणा अहयं सीलेण दुग्गंधो ॥ ३५५ ॥

गमनिका—निर्गतं किञ्चनं*–हिरण्यादि येभ्यस्ते निष्किञ्चनाश्च श्रमणाः तथा अविद्यमानं किञ्चनम्–अल्पमपि येषां तेऽकिञ्चना†—जिनकल्पिकादयः, अहं तु नैवंविधो यतः अतो मार्गाविस्मृत्यर्थं मम किञ्चनं भवतु पवित्रिकादि । तथा शीलेन शोभनो गन्धो येषां ते तथाविधाः, अहं तु शीलेन दुर्गन्धः अतो गन्धचन्दनग्रहणं मे युक्तमिति गाथार्थः ॥ ३५५ ॥ तथा—

ववगयमोहा समणा मोहच्छण्णस्स छत्तयं होउ । अणुवाहणा य समणा मज्झं तु उवाहणा होन्तु ॥ ३५६ ॥

गमनिका—व्यपगतो मोहो येषां ते व्यपगतमोहाः श्रमणाः, अहं तु नेत्थं यतः अतो मोहाच्छादितस्य छत्रकं भवतु । अनुपानत्काश्च श्रमणाः मम चोपानहौ भवत इति गा‡थाक्षरार्थः ॥ ३५६ ॥ तथा—

सुक्कंबरा य समणा निरंबरा मज्झ धाउरत्ताइं । हुंतुं इमे वत्थाइं अरिहो मि कसायकलुसमई ॥ ३५७ ॥

गमनिका—शुक्लान्यम्बराणि येषां ते शुक्लाम्बराः श्रमणाः, तथा निर्गतमम्बरं (ग्रन्थाग्रम् ४०००) येषां ते निरम्बरा

* काञ्चनं. + ०ञ्चन अ०. † ०नाश्च जि०. ‡ गाथार्थः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जिनकल्पिकादयः 'मज्झन्ति' मम च, एते श्रमणा इत्यनेन तत्कालोत्पन्नतापसश्रमणव्युदासः, धातुरक्तानि भवन्तु मम वस्त्राणि किमिति?, 'अर्होऽस्मि' योग्योऽस्मि तेषामेव, कषायैः कलुशा मतिर्यस्य सोऽहं कषायकलुषमतिरिति गाथार्थः ॥३५७॥तथा—

वज्जंतऽवज्जभीरू बहुजीवसमाउलं जलारंभं। होउ मम परिमिएणं जलेण ण्हाणं च पिअणं च ॥ ३५८ ॥

गमनिका—वर्जयन्ति अवद्यभीरवो बहुजीवसमाकुलं जलारम्भं, तत्रैव वनस्पतेरवस्थानात्, अवद्यं–पापं, अहं तु नेत्थं यतः अतो भवतु मे परिमितेन जलेन स्नानं च पानं चेति गाथार्थः ॥ ३५८ ॥

एवं सो रुइअमई निअगमइविगप्पिअं इमं लिंगं। तद्धितहेउसुजुत्तं पारिव्वज्जं पवत्तेइ ॥ ३५९ ॥

गमनिका—स्थूलमृषावादादिनिवृत्तः, एवमसौ रुचिता मतिर्यस्य असौ रुचितमतिः, *अतो निजमत्या विकल्पितं निजमतिविकल्पितं, इदं लिङ्गं, किंविशिष्टम्?–तस्य हितास्तद्धिताः तद्धिताश्च ते हेतवश्चेति समासः, तैः सुष्ठु युक्तं–श्लिष्टमित्यर्थः, परिव्राजामिदं पारिव्रज्यं, प्रवर्त्तयति, शास्त्रकारवचनात् वर्त्तमाननिर्देशोऽप्यविरुद्ध एव, पाठान्तरं वा 'पारिवज्जं ततो कासी' त्ति पारिव्राजं ततः कृतवानिति गाथार्थः ॥ ३५९ ॥ भगवता च सह विजहार, तं च साधुमध्ये विजातीयं दृष्ट्वा कौतुकाल्लोकः पृष्टवान्, तथा चाह—

अह तं पागडरूवं दट्ठुं पुच्छेइ बहुजणो धम्मं। कहइ जईणं तो सो विआलणे तस्स परिकहणा ॥ ३६० ॥

गमनिका—[redacted]रूपं–विजातीयत्वात् दृष्ट्वा पृच्छति बहुर्जनो धर्मं, कथयति यतीनां संबन्धिभूतं क्षान्त्यादि-

* यतो रुचि[redacted]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

लक्षणं ततोऽस[redacted]भणन्ति–यद्ययं श्रेष्ठो भवता किं नाङ्गीकृत इति विचारणे तस्य परि–समन्तात् कथना परिकथना 'श्रम[redacted]विरता इत्यादिलक्षणा', पृच्छतीति त्रिकालगोचरसूत्रप्रदर्शनार्थत्वादेवं निर्देशः, पाठान्तरं वा 'अह तं पागडरूवं दट्ठुं पुच्छिसु बहुजणो धम्मं । कहतींसु जतीणं सो वियालणे तस्स परिकहणा ॥ १ ॥' प्रवर्त्तत इति गाथार्थः ॥ ३६० ॥

'धम्मकहाअक्खित्ते उवट्ठिए देइ भगवओ सीसे । गामनगराइआइं विहरइ सो सामिणा सद्धिं ॥ ३६१ ॥

गमनिका—धर्मकथाक्षिप्तान् उपस्थितान् ददाति भगवतः शिष्यान्, ग्रामनगरादीन् विहरति स स्वामिना सार्धं, भावार्थः सुगमः, इत्थं निर्देशप्रयोजनं पूर्ववत्, ग्रन्थकारवचनत्वाद्वाऽदोष इति गाथार्थः ॥ ३६१ ॥ अन्यदा भगवान् विहरमाणोऽष्टापदमनुप्राप्तवान्, तत्र च समवसृतः, भरतोऽपि भ्रातृप्रव्रज्याकर्णनात् संजातमनस्तापोऽधृतिं चक्रे, कदाचिद्भोगान् दीयमानान् पुनरपि गृह्णन्तीत्यालोच्य भगवत्समीपं चागम्य निमन्त्रयंश्च तान् भोगैः निराकृतश्च चिन्तयामास–एतेषामेवेदानीं परित्यक्तसङ्गानां आहारदानेनापि तावद्धर्मानुष्ठानं करोमीति पञ्चभिः शकटशतैर्विचित्रमाहारमानाय्योपनिमन्त्र्य आधाकर्माहृतं च न कल्पते यतीनामिति प्रतिषिद्धः* अकृताकारितेनान्नेन निमन्त्रितवान्, राजपिण्डोऽप्यकल्पनीय इति प्रतिषिद्धः सर्वप्रकारैरहं भगवता परित्यक्त इति सुतरामुन्माथितो बभूव, तमुन्माथितं विज्ञाय देवराट् तच्छोकोपशान्तये भगवन्तमवग्रहं पप्रच्छ–कतिविधोऽवग्रह इति, भगवानाह–पञ्चविधोऽवग्रहः, तद्यथा–देवेन्द्रावग्रहः राजा-

* प्रतिषिद्धे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वग्रहः गृहपत्यवग्रहः सागारिकावग्रहः साधर्मिकावग्रहश्च, राजा–भरताधिपो गृह्यते, गृहपतिः–माण्डलिको राजा, सागारिकः–शय्यातरः, साधर्मिकः–संयत इति, एतेषां चोत्तरोत्तरेण पूर्वः पूर्वो बाधितो द्रष्टव्य इति, यथा राजाऽवग्रहेण देवेन्द्रावग्रहो बाधित इत्यादि प्ररूपिते देवराडाह–भगवन् ! य एते श्रमणा मदीयावग्रहे विहरन्ति, तेषां मयाऽवग्रहोऽनुज्ञात इत्येवमभिधाय अभिवन्द्य च भगवन्तं तस्थौ, भरतोऽचिन्तयत्–अहमपि स्वमवग्रहमनुजानामीति, एतावताऽपि नः कृतार्थता भवतु, भगवत्समीपेऽनुज्ञातावग्रहः शक्रं पृष्टवान्–भक्तपानमिदमानीतं अनेन किं कार्यमिति, देवराडाह–गुणोत्तरान् पूजयस्व, सोऽचिन्तयत्–के मम साधुव्यतिरेकेण जात्यादिभिरुत्तराः ?, पर्यालोचयता ज्ञातं–श्रावका विरताविरतत्वाद्गुणोत्तराः, तेभ्यो दत्तमिति । पुनर्भरतो देवेन्द्ररूपं भास्वरमाकृतिमद् दृष्ट्वा पृष्टवान्–किं यूयमेवंभूतेन रूपेण देवलोके तिष्ठत उत नेति, देवराज आह–नेति, तत् मानुषैर्द्रष्टुमपि न पार्यते, भास्वरत्वात्, पुनरप्याह भरतः–तस्याकृतिमात्रेणापि अस्माकं कौतुकं, तन्निदर्श्यतां, देवराज आह–त्वमुत्तमपुरुष इतिकृत्वा एकमङ्गावयवं दर्शयामीत्यभिधाय योग्यालङ्कारविभूषितां अङ्गुलीमत्यन्तभास्वरामदर्शयत्, दृष्ट्वा च तां भरतोऽतीव मुमुदे, शक्राङ्गुलीं च स्थापयित्वा महिमामष्टाहिकां चक्रे, ततःप्रभृति शक्रोत्सवप्रवृत्त इति । भरतश्च श्रावकानाहूय उक्तवान्–भवद्भिः प्रतिदिनं मदीयं भोक्तव्यं, कृष्यादि च न कार्यं, स्वाध्यायादिपरैरासितव्यं, भुक्ते च मदीयगृहद्वारासन्नव्यवस्थितैः वक्तव्यम्–जितो भवान्

१ इमनलाविति[redacted]णादिक इमनि रूपं, बाहुल्याद् अनुक्तान्महे:, तथा च ह्रजलिभ्यामिमश्चिति सूत्रेणेमन् , दीर्घादिस्वप्रस्तुत एव. *स्वाव ग्रह०. + ०मात्रे[redacted]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

वर्धते भयं तस्मा [illegible] हनेति, ते तथैव कृतवन्तः, भरतश्च रतिसागरावगाढत्वात् प्रमत्तत्वात् तच्छब्दाकर्णनोत्तरकालमेव केनाहं जित [illegible], आः ज्ञातं–कषायैः, तेभ्य एव च वर्धते भयमित्यालोचनापूर्वं संवेगं यातवान् इति। अत्रान्तरे लोकबाहुल्यात् सूपकाराः पाकं कर्त्तुमशक्नुवन्तो भरताय निवेदितवन्तः–नेह ज्ञायते–कः श्रावकः को वा नेति, लोकस्य प्रचुरत्वात्, आह भरतः–पृच्छापूर्वकं देयमिति। ततस्तान् पृष्टवन्तस्ते–को भवान् ?, श्रावकः, श्रावकाणां कति व्रतानि ?, स आह—श्रावकाणां न सन्ति व्रतानि, किन्त्वस्माकं पञ्चाणुव्रतानि, कति शिक्षाव्रतानि ?, ते उक्तवन्तः–सप्त शिक्षाव्रतानि, य एवंभूतास्ते राज्ञो निवेदिताः, स च काकिणीरत्नेन तान् लाञ्छितवान्, पुनः षण्मासेन येऽन्ये भवन्ति तानपि लाञ्छितवान्, षण्मासकालादनुयोगं कृतवान्, एवं ब्राह्मणाः संजाता इति। ते च स्वसुतान् साधुभ्यो दत्तवन्तः, ते च प्रव्रज्यां चक्रुः, परीषहभीरवस्तु श्रावका एवासन्निति। इयं च भरतराज्यस्थितिः, आदित्ययशसस्तु काकिणीरत्नं नासीत्, सुवर्णमयानि यज्ञोपवीतानि कृतवान्, महायशःप्रभृतयस्तु केचन रूप्यमयानि, केचन विचित्रपट्टसूत्रमयानि, इत्येवं यज्ञोपवीतप्रसिद्धिः। अमुमेवार्थं समोसरणेत्यादिगाथया प्रतिपादयति—

समुसरण भत्त उग्गह अंगुलि झय सक्क सावया अहिआ। जेआ वड्ढइ कागिणिलंछण अणुसज्जणा अट्ठ ॥ ३६२॥

गमनिका—समवसरणं भगवतोऽष्टापदे खल्वासीत्, भक्तं भरतेनानीतं, तदग्रहणोन्माथिते सति भरते देवेशो भगवन्तमवग्रहं पृष्टवान्, भगवांश्च तस्मै प्रतिपादितवान्। 'अंगुलि झय'त्ति भरतनृपतिना देवलोकनिवासिरूपपृच्छायां कृतायां इन्द्रेण अङ्गुलिः प्रदर्शिता, तत एवारभ्य ध्वजोत्सवः प्रवृत्तः। 'सक्क'त्ति भरतनृपतिना किमनेनाहारेण कार्यमिति पृष्टः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

शक्रोऽभिहितवान्-त्वदधिकेभ्यो दीयतामिति, पर्यालोचयता ज्ञातं-श्रावका अधिका इति । 'जेया वड्ढइत्ति' प्राकृतशैल्या 'जितो भवान् वर्धते भयं' भुक्तोत्तरकालं ते उक्तवन्तः, 'कागिणिलंछणत्ति' प्रचुरत्वात् काकिणीरत्नेन लाञ्छनं-चिह्नं तेषां कृतमासीत् 'अणुसज्जणा अट्ठ'त्ति अष्टौ पुरुषान् यावदयं धर्मः प्रवृत्तः, अष्टौ वा तीर्थकरान् यावदिति गाथार्थः ॥ तत ऊर्ध्वं मिथ्यात्वमुपगता इति ॥ ३६२ ॥

राया आइच्चजसो महाजसे अइबले अ बलभद्दे । बलविरिए कत्तविरिए जलविरिए दंडविरिए य ॥ ३६३ ॥

भावार्थः सुगम एवेति गाथार्थः ॥

एएहिं अद्धभरहं सयलं भुत्तं सिरेण धरिओ अ । पवरो जिणिंदमउडो सेसेहिँ न चाइओ वोढुं ॥ ३६४ ॥

गमनिका—एभिरर्धभरतं सकलं भुक्तं, शिरसा धृतश्च, कोऽसावित्याह—*प्रवरो जिनेन्द्रमुकुटो देवेन्द्रोपनीतः शेषैः—नरपतिभिः न शकितो वोढुं, महाप्रमाणत्वादिति गाथार्थः ॥ ३६४ ॥

अस्सावगपडिसेहो छट्ठे छट्ठे अ मासि अणुओगो । कालेण य मिच्छत्तं जिणंतरे साहुवोच्छेओ ॥ ३६५ ॥

गमनिका—अश्रावकाणां प्रतिषेधः कृतः, ऊर्ध्वमपि षष्ठे षष्ठे मासे अनुयोगो बभूव, अनुयोगः—परीक्षा, कालेन गच्छता मिथ्यात्वमुपगताः, कदा ?, नवमजिनान्तरे, किमिति ?, यतस्तत्र साधुव्यवच्छेद आसीदिति गाथार्थः ॥ ३६५ ॥ साम्प्रतमुक्तानुक्तार्थप्रतिपादनाय संग्रहगाथामाह—

* प्रथमो.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[illegible]माहणाणं १ वेए कासी अ २ पुच्छ ३ निव्वाणं ४।
कुं[illegible] ५ थूभ ६ जिणहरे ७ कविलो ८ भरहस्स दिक्खा य ९ ॥ ३६६ ॥ (मूलदारगाहा)

गमनिका—दानं च माहनानां लोको दातुं प्रवृत्तो, भरतपूजितत्वात्। 'वेदे कासी अ'त्ति आर्यान् वेदान् कृतवांश्च भरत एव, तत्स्वाध्यायनिमित्तमिति, तीर्थकृत्स्तुतिरूपान् श्रावकधर्मप्रतिपादकांश्च, अनार्यास्तु पश्चात् सुलसायाज्ञवल्क्यादिभिः कृता इति। 'पुच्छ'त्ति भरतो भगवन्तमष्टापदसमवसृतमेव पृष्टवान्–यादृग्भूता यूयं एवंविधास्तीर्थकृतः कियन्तः खल्विह भविष्यन्तीत्यादि। 'णिव्वाणं'ति भगवानष्टापदे निर्वाणं प्राप्तः, देवैरग्निकुण्डानि कृतानि, स्तूपाः कृताः, जिनगृहं भरतश्चकार, कपिलो मरीचिसकाशे निष्क्रान्तः, भरतस्य दीक्षा च संवृत्तेति समुदायार्थः ॥ ३६६ ॥ अवयवार्थं उच्यते—आद्यावयवद्वयं व्याख्यातमेव, पृच्छावयवार्थं तु 'पुणरवि' गाथेत्यादिना आह—

पुणरवि अ समोसरणे पुच्छीअ जिणं तु चक्किणो भरहे। अप्पुट्ठो अ दसारे तित्थयरो को इहं भरहे ?॥ ३६७॥

गमनिका—पुनरपि च समवसरणे पृष्टवांश्च जिनं तु चक्रवर्त्तिनः* भरतः, चक्रवर्त्तिन इत्युपलक्षणं तीर्थकृतश्चेति, भरतविशेषणं वा चक्री भरतस्तीर्थकरादीन् पृष्टवान्। पाठान्तरं वा 'पुच्छीय जिणे य चक्किणो भरहे' पृष्टवान् जिनान् चक्रवर्त्तिनश्च भरतः, चशब्दस्य व्यवहितः संबन्धः, भगवानपि तान् कथितवान्, तथा अपृष्टश्च दशारान्, तथा तीर्थकरः क इह भरतेऽस्यां परिषदीति पृष्टवान्, भगवानपि मरीचिं कथितवान् इति गाथाक्षरार्थः ॥ ३६७ ॥ तथा चाह निर्युक्तिकारः—

* चक्रवर्त्ती.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जिणचक्किदसाराणं वण्ण १ पमाणाइं २ नाम ३ गोत्ताइं ४।
आऊ ५ पुर ६ माइ ७ पियरो ८ परियाय ९ गई च १० साहीअ ॥ ३६८ ॥ (दारगाहा)

गमनिका—'जिनचक्रिदशाराणां' जिनचक्रवर्त्तिवासुदेवानामित्यर्थः, वर्णप्रमाणानि तथा नामगोत्राणि तथा आयुः-पुराणि मातापितरौ यथासंभवं पर्यायं गतिं च, चशब्दात् जिनानामन्तराणि च शिष्टवान् इति द्वारगाथासमासार्थः ॥ ३६८ ॥ अवयवार्थं तु वक्ष्यामः । तत्र प्रश्नावयवमधिकृत्य तावदाह भाष्यकारः—

जारिसया लोअगुरू भरहे वासंमि केवली तुब्भे ।
एरिसया कइ अन्ने ताया ! होहिंति तित्थयरा ? ॥ ३८ ॥ (भाष्यम्)

व्याख्या—यादृशा लोकगुरवो भारते वर्षे केवलिनो यूयं, ईदृशाः कियन्तोऽन्येऽत्रैव तात ! भविष्यन्ति तीर्थकराः ? इति गाथार्थः ॥ ३८ ॥

अह भणइ जिणवरिंदो भरहे वासंमि जारिसो अहयं। एरिसया तेवीसं अण्णे होहिंति तित्थयरा ॥ ३६९ ॥

निगदसिद्धा ॥ ते+ चैवं—

होही अजिओ संभव अभिणंदण सुमइ सुप्पभ सुपा+सो। ससि पुप्फदंत सीअल सिज्जंसो वासुपुज्जो अ ॥३७०॥

विमलमणंतइ धम्मो संती कुंथू अरो अ मल्ली अ। मुणिसुव्वय नमि नेमी पासो तह वद्धमाणो अ ॥ ३७१ ॥

* भरते. + चे[redacted]ासे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भावार्थः सुगम एव ॥ ॥

अह भणइ नरवरिंदो भरहे वासंमि जारिसो उ अहं। तारिसया कइ अण्णे ताया होहिंति रायाणो ? ॥ ३७२ ॥

गमनिका—अथ भणति नरवरेन्द्रो–भरतः, भारते वर्षे यादृशस्त्वहं तादृशाः* कत्यन्ये तात! भविष्यन्ति राजान इति गाथार्थः ॥ ३७२ ॥

अह भणइ जिणवरिंदो जारिसओ तं नरिंदसद्दूलो। एरिसया एक्कारस अण्णे होहिंति रायाणो ॥ ३७३ ॥

गमनिका—अथ भणति जिनवरेन्द्रो–यादृशस्त्वं नरेन्द्रशार्दूलः, शार्दूलः–सिंहपर्यायः, ईदृशा एकादश अन्ये भविष्यन्ति राजानः ॥ ३७३ ॥ ते चैते—

होही सगरो मघवं सणंकुमारो य रायसद्दूलो। संती कुंथू अ अरो होइ+ सुभूमो य कोरव्वो ॥ ३७४ ॥

णवमो अ महापउमो हरिसेणो चेव रायसद्दूलो। जयनामो अ नरवई बारसमो बंभदत्तो अ ॥ ३७५ ॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धमेव। यदुक्तम् ‘अपृष्टश्च दशारान् कथितवान्’ तदभिधित्सुरा†ह भाष्यकारः—

होहिंति वासुदेवा नव अण्णे नीलपीअकोसिज्जा। हलमुसलचक्कजोही सतालगरुडज्झया दो दो॥३९॥ (भाष्यम्)

व्याख्या—भविष्यन्ति वासुदेवा नव बलदेवाश्चानुक्ता अप्यत्र तत्सहचरत्वात् द्रष्टव्याः, यतो वक्ष्यति ‘सतालगरुडज्झया दो दो’, ते च सर्वे बलदेववासुदेवा यथासंख्यं नीलानि च पीतानि च कौशेयानि–वस्त्राणि येषां ते तथाविधाः,

* तादृशः. + हवइ. † ०त्सयाह.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेव-बलदेव आदीनाम् नाम-निर्देश:

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१५९॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

यथासंख्यमेव हलमुशलचक्रयोधिनः—हलमुशलयोधिनो बलदेवाः चक्रयोधिनो वासुदेवा इति, सह तालगरुडध्वजाभ्यां वर्त्तन्त इति सतालगरुडध्वजाः। एते च भवन्तो युगपद् द्वौ द्वौ भविष्यतः, बलदेववासुदेवाविति गाथार्थः॥ वासुदेवाभिधानप्रतिपादनायाह—

तिविट्ठू अ १ दिविट्ठू २ सयंभु ३ पुरिसुत्तमे ४ पुरिससीहे ५।
तह पुरिसपुंडरीए ६ दत्ते ७ नारायणे ८ कण्हे ९॥ ४०॥ (भाष्यम्)

निगदसिद्धा॥ अधुना बलदेवानामभिधानप्रतिपादनायाह—

अयले १ विजए २ भद्दे ३, सुप्पभे ४ अ सुदंसणे ५।
आणंदे ६ णंदणे ७ पउमे ८, रामे ९ आवि अपच्छिमे॥ ४१॥ (भाष्यम्)

निगदसिद्धा॥ वासुदेवशत्रुप्रतिपादनायाह—

आसग्गीवे १ तारय २ मेरय ३ महुकेढवे ४ निसुंभे ५ अ।
बलि ६ पहराए ७ तह रावणे ८ अ नवमे जरासिंधू॥ ४२॥ (भाष्यम्)

निगदसिद्धा एव॥

॥१५९॥

एए खलु पडिसत्तू कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं। सव्वे अ चक्कजोही सव्वे अ हया सचक्केहिं॥४३॥(भाष्यम्)

गमनिका—एते खलु प्रतिशत्रवः—एते एव खलुशब्दस्य अवधारणार्थत्वात् नान्ये, कीर्त्तिपुरुषाणां वासुदेवानां, सर्वे चक्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

योधिनः, सर्वे च हर्ताः स्वचक्रैरिति–यतस्तान्येव तच्चक्राणि वासुदेवव्यापत्तये क्षिप्तानि तैः, पुण्योदयात् वासुदेवं प्रणम्य तानेव व्यापादयन्ति इति गाथार्थः ॥ एवं तावत्प्रागुपन्यस्तगाथायां वर्णादिद्वारोपन्यासं परित्यज्य असंमोहार्थमुत्क्रमेण जिनादीनां नामद्वारमुक्तं, पारभविकं चैषां वर्णनामनगरमातृपितृपुरादिकं प्रथमानुयोगतोऽवसेयं, इह विस्तरभयान्नोक्तमिति ॥ साम्प्रतं तीर्थकरवर्णप्रतिपादनायाह—

पउमाभवासुपुज्जा रत्ता ससिपुप्फदंत ससिगोरा । सुव्वयनेमी काला पासो मल्ली पियंगाभा ॥ ३७६ ॥
वरकणगतविअगोरा सोलस तित्थंकरा मुणेयव्वा । एसो वण्णविभागो चउवीसाए जिणवराणं ॥ ३७७ ॥

गाथाद्वयं सूत्रसिद्धमेव ॥ साम्प्रतं तीर्थकराणामेव प्रमाणाभिधित्सयाह—

पंचेवं* १ अद्धपंचम २ चत्तार ३ द्धुट्ठ ४ तह तिगं ५ चेव ।
अड्ढाइज्जा ६ दुण्णि ७ अ दिवड्ढ ८ मेगं धणुसयं ९ च ॥ ३७८ ॥
नउई १० असीइ ११ सत्तरि १२ सट्ठी १३ पण्णास १४ होइ नायव्वा ।
पणयाल १५ चत्त १६ पणतीस १७ तीसा १८ पणवीस १९ वीसा २० य ॥ ३७९ ॥
पण्णरस २१ दस धणूणि य २२, नव पासो २३ सत्तरयणिओ वीरो ।
नामा पुव्वुत्ता खलु तित्थयराणं मुणेयव्वा ॥ ३८० ॥

* उसभो पंचधणुस्सय पासो नव सत्तरयणिओ वीरो । सेसट्ठ पंच अट्ठ य, पण्णा दस पंच परिहीणा ॥ १ ॥ (प्र० अव्या०).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१६०॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

एतास्तिस्रोऽपि पाठसिद्धा एव ॥ ३७८-३७९-३८० ॥ साम्प्रतं भगवतामेव गोत्राणि प्रतिपादयन्नाह—

मुणिसुव्वओ अ अरिहा अरिट्ठनेमी अ गोअमसगुत्ता। सेसा तित्थयरा खलु कासवगुत्ता मुणेयव्वा ॥ ३८१ ॥

निगदसिद्धा ॥ आयुष्कानि तु प्राक्प्रतिपादितान्येवेति न प्रतन्यन्ते, भगवतामेव पुरप्रतिपादनाय गाथात्रितयमाह—

इक्खाग भूमि १ उज्झा २ सावत्थि ३ विणिअ ४ कोसलपुरं ५ च ।
कोसंबी ६ वाणारसी ७ चंदाणण ८ तह य काकंदी ९ ॥ ३८२ ॥
भद्दिलपुर १० सीहपुरं ११ चंपा १२ कंपिल्ल १३ उज्झ १४ रयणपुरं १५ ।
तिण्णेव गयपुरंमी १८ मिहिला १९ तह चेव रायगिहं २० ॥ ३८३ ॥
मिहिला २१ सोरिअनयरं २२ वाणारसि २३ तह य होइ कुंडपुरं ।
उसभाईण जिणाणं जम्मणभूमी जहासंखं ॥ ३८४ ॥

निगदसिद्धाः ॥ भगवतामेव मातृप्रतिपादनायाह—

मरुदेवि १ विजय २ सेणा ३ सिद्धत्था ४ मंगला ५ सुसीमा ६ य ।
पुहवी ७ लक्खण ८ सामा ९ नंदा १० विण्हू ११ जया १२ रामा १३ ॥ ३८५ ॥
सुजसा १४ सुव्वया १५ अइरा १६, सिरी १७ देवी १८ पभावई १९ ।
पउमावई २० अ वप्पा २१ अ, सिव २२ वम्मा २३ तिसला २४ इअ ॥ ३८६ ॥

॥१६०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

भगवत: नगरी, माता, पिता आदिनाम् नाम-निर्देश:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गाथाद्वयं निगदसिद्धमेव ॥ भगवतामेव पितृप्रतिपादनायाह—

नाभी १ जिअसत्तू २ आ, जियारी ३ संवरे ४ इअ । मेहे ५ धरे ६ पइट्ठे ७ अ, महसेणे ८ अखत्तिए ॥३८७॥
सुग्गीवे ९ दढरहे १० विण्हू ११, वसुपूज्जे १२ अ अखत्तिए ।
कयवम्मा १३ सीहसेणे १४ अ, भाणू १५ विससेणे १६ इअ ॥ ३८८ ॥
सूरे १७ सुदंसणे १८ कुंभे १९ सुमित्तु २० विजए २१ समुद्दविजए २२ अ ।
राया अ अस्ससेणे २३ सिद्धत्थेऽवि य २४ खत्तिए ॥ ३८९ ॥

निगदसिद्धाः ॥ पर्यायो—गृहस्थादिपर्यायो भगवतामुक्त एव तथैव द्रष्टव्यः। साम्प्रतं भगवतामेव गतिप्रतिपादनायाह—

सव्वेऽवि गया मुक्खं जाइजरामरणबंधणविमुक्का । तित्थयरा भगवंतो सासयसुक्खं निराबाहं ॥ ३९० ॥

निगदसिद्धा ॥ एवं तावत्तीर्थकरान् अङ्गीकृत्य प्रतिद्वारगाथा व्याख्याता, इदानीं चक्रवर्त्तिनः अङ्गीकृत्य व्याख्यायते—एतेषामपि पूर्वभववक्तव्यतानिबद्धं च्यवनादि प्रथमानुयोगादवसेयं, साम्प्रतं चक्रवर्त्तिवर्णप्रमाणप्रतिपादनायाह—

सव्वेऽवि एगवण्णा निम्मलकणगप्पभा मुणेयव्वा । छक्खंडभरहसामी तेसिं पमाणं अओ वुच्छं ॥ ३९१ ॥
पंचसय १ अद्धपंचम २ बायालीसा य अद्धधणुअं च ३। इगयाल धणुस्सद्धं ४ च चउत्थे पंचमे चत्ता ५ ॥ ३९२॥
पणतीसा ६ तीसा ७ पुण अट्ठावीसा ८ य वीसइ ९ धणूणि ।
पण्णरस १० बारसेव य ११ अपच्छिमो सत्त य धणूणि १२॥ ३९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१६१॥

निगदसिद्धाः ॥ नामानि प्राक्प्रतिपादितान्येव, साम्प्रतं चक्रवर्त्तिगोत्रप्रतिपादनायाह—
कासवगुत्ता सव्वे चउदसरयणाहिवा समक्खाया । देविंदवंदिएहिं जिणेहिं जिअरागदोसेहिं ॥ ३९४ ॥
सूत्रसिद्धा ॥ साम्प्रतं चक्रवर्त्यायुष्कप्रतिपादनायाह—
चउरासीई १ बावत्तरी अ पुव्वाण सयसहस्साइं २ ।
पंच ३ य तिण्णि अ ४ एगं च ५ सयसहस्सा उ वासाणं ॥ ३९५ ॥
पंचाणउइ सहस्सा ६ चउरासीई अ ७ अट्ठमे सट्ठी ८ ।
तीसा ९ य दस १० य तिण्णि ११ अ अपच्छिमे सत्तवाससया १२ ॥ ३९६ ॥
गाथाद्वयं पठितसिद्धम् ॥ इदानीं चक्रवर्त्तिनां पुरप्रतिपादनायाह—
जम्मण विणीअ १ उज्झा २ सावत्थी ३ पंच हत्थिणपुरंमि ८ ।
वाणारसि ९ कंपिल्ले १० रायगिहे ११ चेव कंपिल्ले १२ ॥ ३९७ ॥
निगदसिद्धा एव ॥ साम्प्रतं चक्रवर्त्तिमातृप्रतिपादनायाह—
सुमंगला १ जसवई २ भद्दा ३ सहदेवि ४ अइर ५ सिरि ६ देवी ७ ।
तारा ८ जाला ९ मेरा १० य वप्पगा ११ तह य चूलणी अ ॥ ३९८ ॥
निगदसिद्धा ॥ साम्प्रतं चक्रवर्त्तिपितृप्रतिपादनायाह—

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १ ॥१६१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

चक्रवर्तिनां आयु:, नगरी, माता आदिनाम् नाम-निर्देश:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

उसभे १ सुमित्तविजए २ समुद्दविजए ३ अ अस्ससेणे अ ४।
तह वीससेण ५ सूरे ६ सुदंसणे ७ कत्तविरिए ८ अ ॥ ३९९॥
पउमुत्तरे ९ महाहरि १० विजए राया ११ तहेव बंभे १२ अ।
ओसप्पिणी इमीसे पिउनामा चक्कवट्टीणं ॥ ४०० ॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धमेव ॥ पर्यायः केषाञ्चित् प्रथमानुयोगतोऽवसेयः, केषाञ्चित् प्रव्रज्याऽभावात् न विद्यत एवेति ॥ साम्प्रतं चक्रवर्त्तिगतिप्रतिपादनायाह—

अट्ठेव गया मोक्खं सुभुमो बंभो अ सत्तमिं पुढविं। मघवं सणंकुमारो सणंकुमारं गया कप्पं ॥ ४०१ ॥

निगदसिद्धा ॥ एवं तावच्चक्रवर्त्तिनोऽप्यधिकृत्य व्याख्याता प्रतिद्वारगाथा, इदानीं वासुदेवबलदेवाङ्गीकरणतो व्याख्यायते—एतेषामपि च पूर्वभववक्तव्यतानिबद्धं च्यवनादि प्रथमानुयोगत एवावसेयं, साम्प्रतं वासुदेवादीनां वर्णप्रमाणप्रतिपादनायाह—

वण्णेण वासुदेवा सव्वे नीला बला य सुक्किलया। एएसि देहमाणं वुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥ ४०२ ॥

पढमो धणूणसीई १ सत्तरि २ सट्ठी ३ अ पण्ण ४ पणयाला ५।
अउणत्तीसं च धणू ६ छव्वीसा ७ सोलस ८ दसेव ९॥ ४०३ ॥

गाथाद्वयं निगदसिद्धं ॥ नामानि प्रागभिहितान्येव। साम्प्रतं वासुदेवादीनां गोत्रप्रतिपादनायाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१६२॥

बलदेववासुदेवा अडेव हवंति गोयमसगुत्ता । नारायणपउमा पुण कासवगुत्ता मुणेअव्वा ॥ ४०४ ॥
निगदसिद्धा ॥ वासुदेवबलदेवानां यथोपन्यासमायुःप्रतिपादनायाह—

चउरासीई १ बिसत्तरि २ सट्ठी ३ तीसा य ४ दस ५ य लक्खाइं ।
पण्णट्ठि सहस्साइं ६ छप्पण्णा ७ बारसे ८ गं च ९ ॥ ४०५ ॥

पंचासीई १ पण्णत्तरी अ २ पण्णट्ठि ३ पंचवण्णा ४ य । सत्तरस सयसहस्सा ५ पंचमए आउअं होइ ॥४०६॥
पंचासीइ सहस्सा ६ पण्णट्ठी ७ तह य चेव पण्णरस ८ । बारस सयाइं ९ आउं बलदेवाणं जहासंखं ॥ ४०७ ॥

निगदसिद्धाः ॥ साम्प्रतममीशामेव पुराणि प्रतिपाद्यन्ते—तत्र—

पोअण १ बारवइतिगं ४ अस्सपुरं ५ तह य होइ चक्कपुरं ६ ।
वाणारसि ७ रायगिहं ८ अपच्छिमो जाओ महुराए ९ ॥ ४०८ ॥

निगदसिद्धा ॥ एतेषां मातापितृप्रतिपादनायाह—

मिगावई १ उमा चेव २, पुहवी ३ सीआ य ४ अम्मया ५ ।
लच्छीमई ६ सेसमई ७, केगमई ८ देवई ९ इअ ॥ ४०९ ॥
भद्द १ सुभद्दा २ सुप्पभ ३ सुदंसणा ४ विजय ५ वेजयंती ६ अ ।
तह य जयंती ७ अपराजिआ ८ य तह रोहिणी ९ चेव ॥ ४१० ॥

हारिभद्री- यवृत्तिः विभागः १

॥१६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

वासुदेव-बलदेवादिनां आयु:, नगरी, माता आदिनाम् नाम-निर्देश:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

हवइ पयावइ १ बंभो २ रुद्दो ३ सोमो ४ सिवो ५ महसिवो ६ अ।
अग्गिसिहे ७ अ दसरहे ८ नवमे भणिए अ वसुदेवे ९ ॥ ४११ ॥

निगदसिद्धाः ॥ एतेषामेव पर्यायवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

परिआओ पव्वज्जाऽभावाओ नत्थि वासुदेवाणं। होइ बलाणं सो पुण पढमऽणुओगाओ णायव्वो ॥ ४१२ ॥

निगदसिद्धा एव ॥ एतेषामेव गतिं प्रतिपादयन्नाह—

एगो अ सत्तमाए पंच य छट्ठीएँ पंचमी एगो। एगो अ चउत्थीए कण्हो पुण तच्चपुढवीएँ ॥ ४१३ ॥

गमनिका—एकश्च सप्तम्यां पञ्च च षष्ठ्यां पञ्चम्यामेकः एकश्च चतुर्थ्यां कृष्णः पुनस्तृतीयपृथिव्यां यास्यति गतो वेति सर्वत्र क्रियाध्याहारः कार्यः, भावार्थः स्पष्ट एव ॥ ४१३ ॥ बलदेवगतिप्रतिपिपादयिषयाऽऽह—

* वीसभूई १ पव्वइए २ धणदत्त ३ समुद्ददत्त ४ सेवाले ५। पिअमित्त ६ ललिअमित्ते ७ पुणव्वसू ८ गंगदत्ते ९ अ ॥ १ ॥ एयाइं नामाइं पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं। इत्तो बलदेवाणं जहक्कमं कित्तइस्सामि ॥ २ ॥ विस्सनंदी १ सुबुद्धी २ अ सागरदत्ते ३ असोअ ४ ललिए ५ अ। वाराह ६ धणस्सेणे ७ अवराइअ ८ रायललिए य ॥ ३ ॥ संभूअ १ सुभद्द २ सुदंसणे ३ अ सिज्जंस ४ कण्ह ५ गंगे ६ अ। सागर ७ समुद्दनामे ८ दमसेणे ९ अ अपच्छिमे ॥ ४ ॥ एए धम्मायरिआ कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं। पुव्वभवे आसीआ जत्थ निआणाइ कासी अ ॥ ५ ॥ महुरा १ य कणगवत्थू २ सावत्थी ३ पोअणं ४ च रायगिहं ५। कायंदी ६ मिहिलावि य ७ वाणारसि ८ हत्थिणपुरं ९ च ॥ ६ ॥ गावी जूए संगामे इत्थी पाराइए अ रंगंमि। भज्जाणुरागगुट्ठी परइड्ढी माउगा इअ ॥ ७ ॥ महसुक्का पाणय लंतगाउ सहसारओ अ माहिंदा। बंभा सोहम्म सणंकुमार नवमो महासुक्का ॥ ८ ॥ तिण्णेवणुत्तरेहिं तिण्णेव भवे तहा महासुक्का। अवसेसा बलदेवा अणंतरं बंभलोगचुआ ॥ ९ ॥ (प्र० अध्या०).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१६३॥

अट्ठंतगडा रामा एगो पुण बंभलोगकप्पंमि । उववण्णु तओ चइउं सिज्झिस्सइ भारहे वासे ॥ ४१४ ॥

गमनिका—अष्ट अन्तकृतो रामाः, अन्तकृत इति ज्ञानावरणीयादिकर्मान्तकृतः, सिद्धिं गता इत्यर्थः । एकः पुनः ब्रह्मलोककल्पे उत्पत्स्यते उत्पन्नो वेति क्रिया । ततश्च ब्रह्मलोकाच्च्युत्वा सेत्स्यति मोक्षं यास्यति भारते वर्षे इति गाथार्थः ॥ ४१४ ॥ आह—किमिति सर्वे वासुदेवाः खल्वधोगामिनो रामाश्चोर्ध्वगामिन इति ?, आह—

अणिआणकडा रामा सव्वेऽवि अ केसवा निआणकडा । उड्ढंगामी रामा केसव सव्वे अहोगामी ॥ ४१५ ॥

गमनिका—अनिदानकृतो रामाः, सर्वे अपि च केशवा निदानकृतः, ऊर्ध्वगामिनो रामाः, केशवाः सर्वे अधोगामिनः । भावार्थः सुगमो, नवरं प्राकृतशैल्या पूर्वापरनिपातः ‘अनिदानकृता रामाः’ इति, अन्यथा अकृतनिदाना रामा इति द्रष्टव्यं, केशवास्तु कृतनिदाना इति गाथार्थः ॥४१५॥ एवं तावदधिकृतद्वारगाथा ‘जिणचक्किदसाराण’मित्यादिलक्षणा प्रपञ्चतो व्याख्यातेति । साम्प्रतं यश्चक्रवर्त्ती वासुदेवो वा यस्मिन् जिने जिनान्तरे वाऽऽसीत् स प्रतिपाद्यत इत्यनेन संबन्धेन जिनान्तरागमनं, तत्रापि तावत्प्रसङ्गत एव कालतो जिनान्तराणि निर्दिश्यन्ते—

उसभो वरवसभगई ततिअसमापच्छिमंमि कालंमि ।
उप्पण्णो पढमजिणो भरहपिआ भारहे वासे ॥ १ ॥

* ववच्चु तत्थ भोए, भोत्तुं अयरोवमा दस उ ॥ १ ॥ तत्तो अ चइत्ताणं इहेव उस्सप्पिणीइ भरहंमि । भवसिद्धिआ अ भयवं सिज्झिस्सइ कण्हतित्थंमि ॥ (सार्धा पाठान्तररूपा).

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १ ॥१६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

जिनानाम् अन्तराणि प्रदर्श्यते

पण्णासा लक्खेहिं कोडीणं सागराण उसभाओ।
उप्पण्णो अजिअजिणो ततिओ तीसाएँ लक्खेहिं ॥ २ ॥
जिणवसहसंभवाओ दसहि उ लक्खेहि अयरकोडीणं।
अभिनंदणो उ भगवं एवइकालेण उप्पण्णो ॥ ३ ॥
अभिणंदणाउ सुमती नवहि उ लक्खेहि अयरकोडीणं।
उप्पण्णो सुहपुण्णो सुप्पभनामस्स वोच्छामि ॥ ४ ॥
णउई य सहस्सेहिं कोडीणं सागराण पुण्णाणं। सुमइजिणाउ पउमो एवतिकालेण उप्पण्णो ॥ ५ ॥
पउमप्पहनामाओ नवहि सहस्सेहि अयरकोडीणं। कालेणेवइएणं सुपासनामो समुप्पण्णो ॥ ६ ॥
कोडीसएहि नवहि उ सुपासनामा जिणो समुप्पण्णो। चंदप्पभो पभाए पभासयंतो उ तेलोक्कं ॥ ७ ॥
णउईए कोडीहिं ससीउ सुविहीजिणो समुप्पण्णो। सुविहिजिणाओ नवहि उ कोडीहिं सीअलो जाओ ॥ ८ ॥
सीअलजिणाउ भगवं सिज्जंसो सागराण कोडीए। सागरसयऊणाए वरिसेहिं तहा इमेहिं तु ॥ ९ ॥
छव्वीसाएँ सहस्सेहिं चेव छावट्ठि सयसहस्सेहिं। एतेहिं ऊणिआ खलु कोडी मग्गिल्लिआ होइ ॥ १० ॥
चउपण्णा अयराणं सिज्जंसाओ जिणो उ वसुपुज्जो। वसुपुज्जाओ विमलो तीसहि अयरेहि उप्पण्णो ॥ ११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विमलजिणा उप्पण्णो नवहिँ अयरेहिणंतइजिणोऽवि । चउसागरनामेहिँ अणंतईतो जिणो धम्मो ॥ १२ ॥
धम्मजिणाओ संती तिहि उ तिचउभागपलिअऊणेहिं । अयरेहि समुप्पण्णो पलिअद्धेणं तु कुंथुजिणो ॥ १३ ॥
पलिअचउब्भाएणं कोडिसहस्सूणएण वासाणं । कुंथूओ अरनामो कोडिसहस्सेण मल्लिजिणो ॥ १४ ॥
मल्लिजिणाओ मुणिसुव्वओ य चउपण्णवासलक्खेहिं । सुव्वयनामाओं नमी लक्खेहिं छहि उ उप्पण्णो ॥१५॥
पंचहिँ लक्खेहिँ तओ अरिट्ठनेमी जिणो समुप्पण्णो । तेसीइसहस्सेहिं सएहि अद्धट्ठमेहिं च ॥ १६ ॥
नेमीओ पासजिणो पासजिणाओ य होइ वीरजिणो । अड्ढाइज्जसएहिं गएहिँ चरमो समुप्पण्णो ॥ १७ ॥

इयमत्र स्थापना—उसभाओ कोडिलक्ख ५० अजिओ, कोडिलक्ख ३० संभवो, कोडिलक्ख १० अभिनंदणो, कोडिलक्ख ५ सुमती, कोडीओ नउईओ सहस्सेहिं ९० पउमप्पहो, कोडीनवसहस्सेहिं ९ सुपासो, कोडीनवसएहिं ९ चंदप्पभो, कोडीओ णउइओ ९० पुप्फदंतो, कोडीओ णवहि उ ९ सीअलो, कोडीऊणा १०० सा० ६६२६००० वरिसाइं सेज्जंसो, सागरोपमा ५४ वासुपुज्जो, तीससागराइं ३० विमलो, सागरोवमाइं ९ अणंतो, सागरोवमाइं ४ धम्मो, सागरोवमाइं ३ ऊणाइं पलिओवमचउभागेहिं तिहिं संती, पलिअद्धं २ कुंथू, पलियचउब्भाओ ऊणओ वासकोडीसहस्सेण १ अरो, वासकोडीसहस्सं १ मल्ली, वरिसलक्खचउपण्णा मुणिसुव्वओ, वरिसलक्ख ६ नमी, वरिसलक्ख ५ अरिट्ठनेमी, वरिससहस्सा ८३७५० पासो, वाससयाइं २५० वद्धमाणो । जिणंतराइं ॥ साम्प्रतं चक्रवर्त्तिनोऽधिकृत्य जिनान्तराण्येव प्रतिपाद्यन्ते—तत्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

उसभे भरहो अजिए सगरो मघवं सणंकुमारो अ।
धम्मस्स य संतिस्स य जिणंतरे चक्कवट्टिदुगं ॥ ४१६ ॥
संती कुंथू अ अरो अरहंता चेव चक्कवट्टी अ।
अरमल्लीअंतरे उ हवइ सुभूमो अ कोरव्वो ॥ ४१७ ॥
मुणिसुव्वए नमिंमि अ हुंति दुवे पउमनाभहरिसेणा।
नमिनेमिसु जयनामो अरिट्ठपासंतरे बंभो ॥ ४१८ ॥

इह च असंमोहार्थं सर्वेषामेव जिनचक्रवर्त्तिवासुदेवानां यो यस्मिन् जिनकालेऽन्तरे वा चक्रवर्त्ती वा वासुदेवो वा भविष्यति बभूव वा तस्य अनन्तरव्यावर्णितप्रमाणायुःसमन्वितस्य सुखपरिज्ञानार्थमयं प्रतिपादनोपायः—

बत्तीसं घरयाइं काउं तिरियायताहिं रेहाहिं। उड्ढाययाहिं काउं पंच घराइं तओ पढमे ॥ १ ॥ पन्नरस जिण निरन्तर सुण्णदुगं ति जिण सुण्णतियगं च। दो जिण सुण्ण जिणिंदो सुण्ण जिणो सुण्ण दोण्णि जिणा ॥ २ ॥ बितियपंतिठवणा—दो चक्कि सुण्ण तेरस पण चक्कि सुण्ण चक्कि दो सुण्णा। चक्कि सुण्ण दु चक्की सुण्णं चक्की दु सुण्णं च ॥ ३ ॥ ततियपंतिठवणा—दस सुण्ण पंच केसव पण सुण्णं केसि सुण्ण केसी य। दो सुण्ण केसवोऽवि य सुण्णदुगं केसव ति सुण्णं ॥४॥ प्रमाणान्यायूंषि चामीषां प्रतिपादितान्येव। तानि पुनर्यथाक्रमं ऊर्ध्वायतरेखाभिरधोधोगृहद्वये स्थापनीयानीति। तत्र इयं स्थापना साम्प्रतं प्रदर्श्यते—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

ऋषभः	भरतः	०	धनूंषि ५००	पूर्वलक्षाः ८४०००००
अजितः	सगरः	०	४५०	७२
संभवः	०	०	४००	६०
अभिनन्दनः	०	०	३५०	५०
सुमतिः	०	०	३००	४०
पद्मप्रभः	०	०	२५०	३०
सुपार्श्वः	०	०	२००	२०
चन्द्रप्रभः	०	०	१५०	१०
सुविधिः	०	०	१००	२
शीतलः	०	०	९०	१
श्रेयांसः	०	त्रिपृष्ठः	८०	वर्षलक्षाः ८४०००००
वासुपूज्यः	०	द्विपृष्ठः	७०	७२
विमलः	०	स्वयम्भूः	६०	६०
अनन्तः	०	पुरुषोत्तमः	५०	३०
धर्मः	०	पुरुषसिंहः	४५	१०
०	मघवान्	०	४२॥	५
०	सनत्कुमारः	०	४१॥	३
शान्तिः	शान्तिः	०	४०	१
कुन्थुः	कुन्थुः	०	३५	९५०००
अरः	अरः	०	३०	८४०००
०	०	पुरुषपुण्डरीकः	२९	६५०००
०	सुभूमः	०	२८	६००००
०	०	दत्तः	२६	५६०००
मल्लिः	०	०	२५	५५०००
सुव्रतः	पद्मः	०	२०	३००००
०	०	नारायणः	१६	१२०००
नेमिः	हरिषेणः	०	१५	१००००
०	जयः	०	१२	३०००
नेमिः	०	कृष्णः	१०	१०००
०	ब्रह्मदत्तः	०	७	७००
पार्श्वः	०	०	९ हस्ताः	१००
वीरः	०	०	७ हस्ताः	७२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

उक्तसम्बन्धगाथात्रयगमनिका—ऋषभे तीर्थकरे भरतश्चक्रवर्त्ती, तथा अजिते तीर्थकरे सगरश्चक्रवर्त्ती भविष्यति एवं तीर्थकरोक्तानुवादः, सर्वत्र भविष्यत्कालानुरूपः क्रियाध्याहारः कार्यः, त्रिकालसूत्रप्रदर्शनार्थो वा भूतेनापि न दुष्यति, तथा चावोचत्—'मघवा सणंकुमारो सणंकुमारं गया कप्पं' इत्यादि । एवं सर्वत्र योज्यमिति । मघवान् सनत्कुमारश्च एतच्चक्रवर्त्तिद्वयं धर्मस्य शान्तेश्च अनयोरन्तरं तस्मिन् जिनान्तरे चक्रवर्त्तिद्वयं भविष्यत्यभवद्वेति गाथार्थः ॥ द्वितीयगाथागमनिका–शान्तिः कुन्थुश्चारः, एते त्रयोऽप्यशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तश्चैव चक्रवर्त्तिनश्च, तथा अरमल्ल्यन्तरे तु भवति सुभूमश्च कौरव्यः, तुशब्दोऽन्तरविशेषणे, नान्तरमात्रे, किन्तु पुरुषपुण्डरीकदत्तवासुदेवद्वयमध्य- इति गाथार्थः ॥ तृतीयगाथागमनिका—मुनिसुव्रते तीर्थकरे नमौ च भवतः द्वौ, कौ द्वौ ?, पद्मनाभहरिषेणौ 'नमिनेमिसु जयनामो अरिट्ठपासंतरे बंभो' त्ति नमिश्च नेमी च नमिनेमिनौ, अन्तरग्रहणमभिसंबध्यते, ततश्च नमिनेम्यन्तरे जयनामाऽभवत्, अरिष्टग्रहणाद् अरिष्टनेमिः, पार्श्वेति पार्श्वस्वामी, अनयोरन्तरे ब्रह्मदत्तो भविष्यत्यभवद्वेति गाथार्थः ॥ ४१६–४१७–४१८ ॥ इदानीं वासुदेवो यो यत्तीर्थकरकालेऽन्तरे वा खल्वासीत् असौ प्रतिपाद्यते—

पंचऽरहंते वंदंति केसवा पंच आणुपुव्वीए । सिज्जंस तिविट्ठाई धम्म पुरिससीहपेरंता ॥ ४१९ ॥
अरमल्लिअंतरे दुण्णि केसवा पुरिसपुंडरिअदत्ता । मुणिसुव्वयनमिअंतरि नारायण कण्हु नेमिंमि ॥ ४२० ॥

गमनिका—पञ्च अर्हतः वन्दन्ते केशवाः, एतदुक्तं भवति—पञ्च केशवा अर्हतो वन्दन्ते, वन्दन्त इत्येतेषां सम्यक्त्वख्यापनार्थमिति । कियन्तोऽर्हन्तः ? किमेकः द्वौ त्रयो वा ?, नेत्याह—'पंच' पञ्चेति पञ्चैव, किं यथाकथञ्चित् ?

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

नेत्याह—'आनुपूर्व्या' परिपाट्या 'सिज्जंस तिविट्ठाई धम्म पुरिससीहपेरंता' श्रेयांसादीन् त्रिपृष्ठादयः धर्मपर्यन्तान् पुरुषसिंहपर्यन्ता इति, वन्दन्त इति शास्त्रकारवचनत्वात् वर्त्तमाननिर्देशः, पाठान्तरं वा 'पंचऽरिहंते वंदिंसु केसवा' इत्यादि गाथार्थः ॥ द्वितीयगाथागमनिका—अरश्च मल्लिश्च अरमल्ली तयोरन्तरम्—अपान्तरालं तस्मिन्, द्वौ केशवौ भविष्यतः, कौ द्वौ इत्याह—पुरुषपुण्डरीकदत्तौ 'मुणिसुव्वयणमिअंतरे णारायणो' त्ति मुनिसुव्रतश्च नमिश्च मुनिसुव्रतनमी तयोरन्तरं मुनिसुव्रतनम्यन्तरं तस्मिन् नारायणो नाम वासुदेवो भविष्यति अभवद्वा । तथा 'कण्हो यँ नेमिंमि'त्ति कृष्णाभिधानश्चरमो वासुदेवो नेमितीर्थकरे भविष्यति बभूव वेति गाथार्थः ॥ ४१९–४२० ॥ एवं तावत् चक्रवर्त्तिनो वासुदेवाश्च यो यज्जिनकाले अन्तरे वा स उक्तः, साम्प्रतं चक्रवर्त्तिवासुदेवान्तराणि प्रतिपादयन्नाह—

चक्किदुगं हरिपणगं पणगं चक्कीण केसवो चक्की । केसव चक्की केसव दु चक्की केसी अ चक्की अ ॥ ४२१ ॥

गमनिका—प्रथममुक्तलक्षणकाले चक्रवर्त्तिद्वयं भविष्यति अभवद्वा, ततस्त्रिपृष्ठादिहरिपञ्चकं, पुनः पञ्चकं मघवादीनां चक्रवर्त्तिनां, पुनः पुरुषपुण्डरीकः केशवः, ततः सुभूमाभिधानश्चक्रवर्ती, पुनर्दत्ताभिधानः केशवः, पुनः पद्मनामा चक्रवर्त्त्येव, पुनर्नारायणाभिधानः केशवः, पुनः हरिषेणजयनामानौ द्वौ चक्रवर्त्तिनौ, पुनः कृष्णनामा केशवः, पुनर्ब्रह्मदत्ताभिधानश्चक्रवर्तीति, क्रियायोगः सर्वत्र प्रथमपदवद् द्रष्टव्य इति गाथार्थः ॥ ४२१ ॥ उक्तमानुषङ्गिकं, प्रकृतं प्रस्तुमः—तत्र यदुक्तम् 'तित्थगरो को इहं भरहे!' त्ति तद्याचिख्यासयाऽऽह—मूलभाष्यकारः—

* कण्ह (इति स्यात्).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

अह भणइ नरवरिंदो ताय ! इमीसित्तिआइ परिसाए।
अण्णोऽवि कोऽवि होही भरहे वासंमि तित्थयरो ? ॥ ४४ ॥ (मू० भा०)

गमनिका—अत्रान्तरे अथ भणति नरवरेन्द्रः–तात ! अस्या एतावत्याः परिषदः अन्योऽपि कश्चिद् भविष्यति तीर्थकरोऽस्मिन् भारते वर्षे ?, भावार्थस्तु सुगम एवेति गाथार्थः ॥

तत्थ मरीईनामा आइपरिव्वायगो उसभनत्ता । सज्झायझाणजुत्तो एगंते झायइ महप्पा ॥ ४२२ ॥

गमनिका—'तत्र' भगवतः प्रत्यासन्ने भूभागे मरीचिनामा आदौ परिव्राजक आदिपरिव्राजकः प्रवर्त्तकत्वात्, ऋषभनप्ता–पौत्रक इत्यर्थः । स्वाध्याय एव ध्यानं स्वाध्यायध्यानं तेन युक्तः, एकान्ते ध्यायति महात्मेति गाथार्थः ॥ ४२२ ॥

तं दाएइ जिणिंदो एव नरिंदेण पुच्छिओ संतो । धम्मवरचक्कवट्टी अपच्छिमो वीरनामुत्ति ॥ ४२३ ॥

गमनिका—भरतपृष्टो भगवान् 'तं' मरीचिं दर्शयति जिनेन्द्रः, एवं नरेन्द्रेण पृष्टः सन् धर्मवरचक्रवर्ती अपश्चिमो वीरनामा भविष्यति इति गाथार्थः ॥ ४२३ ॥

आइगरु दसाराणं तिविट्ठू नामेण पोअणाहिवई । पिअमित्तचक्कवट्टी मूआइ विदेहवासंमि ॥ ४२४ ॥

गमनिका—आदिकरो दशाराणां त्रिपृष्ठनामा पोतना नाम नगरी तस्या अधिपतिः भविष्यतीति क्रिया । तथा प्रियमित्रनामा चक्रवर्त्ती मूकायां नगर्यां 'विदेहवासंमि'त्ति महाविदेहे भविष्यतीति गाथार्थः ॥ ४२४ ॥

तं वयणं सोऊणं राया अंचियतणूरुहसरीरो । अभिवंदिऊण पिअरं मरीइमभिवंदओ जाइ ॥ ४२५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

मरीचि, तस्य कुलमद प्रसंगः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—'तद्वचनं' तीर्थकरवदनविनिर्गतं श्रुत्वा राजा अञ्चितानि तनूरुहाणि–रोमाणि शरीरे यस्य स तथाविधः अभिवन्द्य 'पितरं' तीर्थकरं मरीचिं अभिवन्दिष्यत इत्यभिवन्दको याति। पाठान्तरं वा 'मरीइमभिवंदिउं जाइत्ति' मरीचिं याति किमर्थम्?–अभिवन्दितुं–अभिवन्दनायेत्यर्थः, यातीति वर्त्तमानकालनिर्देशः त्रिकालगोचरसूत्रप्रदर्शनार्थ इति गाथार्थः ॥ ४२५ ॥

सो विणएण उवगओ काऊण पयाहिणं च तिक्खुत्तो। वंदइ अभित्थुणंतो इमाहि महुराहि वग्गूहिं ॥४२६॥

गमनिका—'सः' भरतः विनयेन–करणभूतेन मरीचिसकाशमुपागँतः सन् कृत्वा प्रदक्षिणं च 'तिक्खुत्तो'त्ति त्रिकृत्वः तिस्रो वारा इत्यर्थः, वन्दते अभिष्टुवन् एताभिः 'मधुराभिः' वल्गुभिः वाग्भिरिति गाथार्थः ॥ ४२६ ॥

लाहा हु ते सुलद्धा जंसि तुमं धम्मचक्कवट्टीणं। होहिसि दसचउदसमो अपच्छिमो वीरनामुत्ति ॥ ४२७ ॥

गमनिका—'लाभाः' अभ्युदयप्राप्तिविशेषाः, हुकारो निपातः, स चैवकारार्थः, तस्य च व्यवहितः संबन्धः, 'ते' तव सुलब्धा एव, यस्मात् त्वं धर्मचक्रवर्त्तिनां भविष्यसि 'दशचतुर्दशमः' चतुर्विंशतितम इत्यर्थः, अपश्चिमो वीरनामेति गाथार्थः ॥ ४२७ ॥ तथा—

आइगरु० (४२४) पूर्ववत् ज्ञेया। एकान्तसम्यग्दर्शनानुरञ्जितहृदयो भावितीर्थकरभक्त्या च तमभिवन्दनायोद्यतो भरत एवाह—

* ०मुपगतः-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

णावि अ पारिव्वज्जं वंदामि अहं इमं व ते जम्मं । जं होहिसि तित्थयरो अपच्छिमो तेण वंदामि ॥ ४२८ ॥

गमनिका—नापि च परिव्राजामिदं पारिव्राजं वन्दामि अहं इदं च ते जन्म, किन्तु यद्भविष्यसि तीर्थकरः अपश्चिमः तेन वन्दे इति गाथार्थः ॥ ४२८ ॥ तथा—

एवण्हं थोऊणं काऊण पयाहिणं च तिक्खुत्तो । आपुच्छिऊण पिअरं विणीअणगरिं अह पविट्ठो ॥ ४२९ ॥

गमनिका—एवं स्तुत्वा 'ण्हमि'ति निपातः पूरणार्थो वर्त्तते, कृत्वा प्रदक्षिणां च त्रिकृत्वः आपृच्छ्य 'पितरं' ऋषभदेवं 'विनीतनगरीं' अयोध्यां 'अथ' अनन्तरं प्रविष्टो भरत इति गाथार्थः ॥ ४२९ ॥ अत्रान्तरे—

तव्वयणं सोऊणं तिवइं आप्फोडिऊण तिक्खुत्तो । अब्भहिअजायहरिसो तत्थ मरीई इमं भणइ ॥ ४३० ॥

गमनिका—तस्य–भरतस्य वचनं तद्वचनं श्रुत्वा तत्र मरीचिः इदं भणतीति योगः, कथमित्यत आह—त्रिपदीं दत्त्वा, रङ्गमध्यगतमल्लवत्, तथा आस्फोट्य त्रिकृत्वः–तिस्रो वारा इत्यर्थः, किंविशिष्टः सन् इत्यत आह–अभ्यधिको जातो हर्षो यस्येति समासः, तत्र स्थाने मरीचिः 'इदं' वक्ष्यमाणलक्षणं भणति, वर्त्तमाननिर्देशप्रयोजनं प्राग्वदिति गाथार्थः ॥ ४३० ॥

जइ वासुदेवु पढमो मूआइ विदेहि चक्कवट्टित्तं । चरमो तित्थयराणं होउं अलं इत्तिअं मज्झ ॥ ४३१ ॥

गमनिका—यदि वासुदेवः प्रथमोऽहं मूकायां विदेहे चक्रवर्त्तित्वं प्राप्स्यामि, तथा 'चरमः' पश्चिमः तीर्थकराणां भविष्यामि, एवं तर्हि भवतु एतावन्मम, एतावतैव कृतार्थ इत्यर्थः, 'अलं' पर्याप्तं अन्येनेति । पाठान्तरं वा 'अहो मए एत्तिअं लद्धं' ति गाथार्थः ॥ ४३१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

अहयं च दसाराणं पिआ य मे चक्कवट्टिवंसस्स । अज्जो तित्थयराणं, अहो कुलं उत्तमं मज्झ *॥ ४३२ ॥

गमनिका—अहमेव, चशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, किम् ?, दशाराणां प्रथमो भविष्यामीति वाक्यशेषः, पिता च 'मे' मम चक्रवर्तिवंशस्य प्रथम इति क्रियाऽध्याहारः । तथा 'आर्यकः' पितामहः स तीर्थकराणां प्रथमः, यत एवं अतः 'अहो' विस्मये कुलमुत्तमं ममेति गाथार्थः ॥ ४३२ ॥ पृच्छाद्वारं गतम्, इदानीं निर्वाणद्वारावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

अह भगवं भवमहणो पुव्वाणमणूणगं सयसहस्सं । अणुपुव्वि विहरिऊणं पत्तो अट्ठावयं सेलं ॥ ४३३ ॥

गमनिका—अथ भगवान् भवमथनः पूर्वाणामन्यूनं शतसहस्रं आनुपूर्व्या विहृत्य प्राप्तोऽष्टापदं शैलं, भावार्थः सुगम एवेति गाथार्थः ॥ ४३३ ॥

अट्ठावयंमि सेले चउदसभत्तेण सो महरिसीणं । दसहि सहस्सेहि समं निव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥ ४३४ ॥

गमनिका—अष्टापदे शैले चतुर्दशभक्तेन स महर्षीणां दशभिः सहस्रैः समं निर्वाणमनुत्तरं प्राप्तः । अस्या अपि भावार्थः सुगम एव, नवरं चतुर्दशभक्तं–षड्रात्रोपवासः । भगवन्तं चाष्टापदप्राप्तं अपवर्गजिगमिषुं श्रुत्वा भरतो दुःखसंतप्तमानसः पद्भ्यामेव अष्टापदं ययौ, देवा अपि भगवन्तं मोक्षजिगमिषुं ज्ञात्वा अष्टापदं शैलं दिव्यविमानारूढाः खलु आगतवन्तः, उक्तं च 'भगवति मोक्षगमनायोद्यते–जाव य देवावासो जाव य अट्ठावओ नगवरिंदो । देवेहि य देवीहि य अविरहियं ॥१६८॥

* जारिसयेत्यत आरभ्य अन्तरा विहायैकादश सर्वा अपि भाष्यगाथा इति कस्यचिदभिप्रायः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

संचरंतेहिं ॥ १ ॥" तत्र भगवान् त्रिदशनरेन्द्रैः स्तूयमानो मोक्षं गत इति गाथार्थः ॥ ४३४ ॥ साम्प्रतं निर्वाणगमनविधिप्रतिपादनाय एनां द्वारगाथामाह—

निव्वाणं१चिइगागिई जिणस्स इक्खाग सेसयाणं च२। सकहा३थूभ जिणहरे४ जायग५तेणाहिअग्गित्ति ६ ४३५

व्याख्या—'निर्वाणमिति' भगवान् दशसहस्रपरिवारो निर्वाणं प्राप्तः, अत्रान्तरे च देवाः सर्व एवाष्टापदमागताः। 'चितिकाकृतिरिति' ते तिस्रः चिता वृत्तत्र्यस्रचतुरस्राकृतीः कृतवन्तः इति, एकां पूर्वेण अपरां दक्षिणेन तृतीयामपरेणेति, तत्र पूर्वा तीर्थकृतः दक्षिणा इक्ष्वाकूणां अपरा शेषाणामिति, ततः अग्निकुमाराः वदनैः खलु अग्निं प्रक्षिप्तवन्तः, तत एव निबन्धनाल्लोके 'अग्निमुखा वै देवाः' इति प्रसिद्धं, वायुकुमारास्तु वातं मुक्तवन्त इति, मांसशोणिते च ध्यामिते सति मेघकुमाराः सुरभिणा क्षीरोदजलेन निर्वापितवन्तः। 'सकथेति' सकथा—हनुमोच्यते, तत्र दक्षिणां हनुमां भगवतः संबन्धिनीं शक्रो जग्राह वामामीशानः आधस्त्यदक्षिणां पुनश्चमरः आधस्त्योत्तरां तु बलिः, अवशेषास्तु त्रिदशाः शेषाङ्गानि गृहीतवन्तः, नरेश्वरादयस्तु भस्म गृहीतवन्तः, शेषलोकास्तु तद्भस्मना पुण्ड्काणि चक्रुः, तत एव च प्रसिद्धिमुपागतानि। 'स्तूपा जिनगृहं चेति' भरतो भगवन्तमुद्दिश्य वर्धकीरत्नेन योजनायामं त्रिगव्यूतोच्छ्रितं सिंहनिषद्यायतनं कारितवान्, निजवर्णप्रमाणयुक्ताः चतुर्विंशतिं जीवाभिगमोक्तपरिवारयुक्ताः तीर्थकरप्रतिमाः तथा भ्रातृशतप्रतिमा आत्मप्रतिमां च स्तूपशतं च, मा कश्चिद् आक्रमणं करिष्यतीति, तत्रैकां भगवतः शेषान् एकोनशतस्य भ्रातृणामिति, तथा लोहमयान् यन्त्रपुरुषान् तद्द्वारपालांश्चकार, दण्डरत्नेन अष्टापदं च सर्वतश्छिन्नवान्, योजने योजने अष्टौ पदानि च कृतवान्, सगरसुतैस्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

जिनेश्वरस्य निर्वानगमनविधिः कथयते

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

स्ववंशानुरागाद्यथा परिखां कृत्वा गङ्गाऽवतारिता तथा ग्रन्थान्तरतो विज्ञेयमिति। 'याचकास्तेनाहिताग्नयः' इत्यस्य व्याख्या— देवैर्भगवत्सकथादौ गृहीते सति श्रावका देवान् अतिशयभक्त्या याचितवन्तः, देवा अपि तेषां प्रचुरत्वात् महता यत्नेन याचनाभिद्रुता आहुः—अहो याचका अहो याचका इति, तत एव हि याचका रूढाः, ततोऽग्निं गृहीत्वा स्वगृहेषु स्थापितवन्तः, तेन कारणेन आहिताग्नय इति तत एव च प्रसिद्धाः, तेषां चाग्नीनां परस्परतः कुण्डसंक्रान्तावयं विधिः— भगवतः संबन्धिभूतः सर्वकुण्डेषु संचरति, इक्ष्वाकुकुण्डाग्निस्तु शेषकुण्डाग्निषु संचरति, न भगवत्कुण्डाग्नौ इति, शेषानगारकुण्डाग्निस्तु नान्यत्र संक्रमत इति गाथार्थः ॥ ४३५ ॥ साम्प्रतमप्रतिहतद्वारगाथाया द्वारद्वयव्याचिख्यासया मूलभाष्यकार आह—

थूभसय भाउगाणं चउवीसं चेव जिणहरे कासी ।
सव्वजिणाणं पडिमा वण्णपमाणेहिँ निअएहिं ॥ ४५ ॥ (मू० भा०)

गमनिका—स्तूपशतं भ्रातॄणां भरतः कारितवान् इति, तथा चतुर्विंशतिं चैव जिनगृहे–जिनायतने (नानि) 'कासीति' कृतवान्, का इत्याह–सर्वजिनानां प्रतिमा वर्णप्रमाणैः 'निजैः' आत्मीयैरिति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं भरतवक्तव्यतानिबद्धां संग्रहगाथां प्रतिपादयन्नाह—

आयंसघरपवेसो भरहे पडणं च अंगुलीअस्स । सेसाणं उम्मुअणं संवेगो नाण दिक्खा य ॥ ४३६ ॥

अस्या भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—[1]भगवतो निव्वाणं गयस्स आययणं काराविय भरहो अउज्झमागओ, कालेण ॥१६९॥

१ भगवतो निर्वाणं गतस्य आयतनं कारयित्वा भरतोऽयोध्यामागतः, कालेन.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भरत चक्रेः केवलज्ञान-वक्तव्यता

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

यं अप्पसोगो जाओ, ताहे पुणरवि भोगे भुंजिउं पवत्तो, एवं तस्स पंच पुव्वसयसहस्सा अइक्कंता भोगे भुंजंतस्स, अन्नया कयाइ सव्वालंकारभूसिओ आयंसघरमतिगतो, तत्थ य सव्वंगिओ पुरिसो दीसइ, तस्स एवं पेच्छमाणस्स अंगुलिज्जयं पडियं, तं च तेण न नायं पडियं, एवं तस्स पलोयंतस्स जाहे सा अंगुली दिट्ठिंमि पडिया, ताहे असोभंतिआ दिट्ठा, ततो कडगंपि अवणेइ, एवमेक्केक्कमवणेंतेण सव्वमाभरणमवणीअं, ताहे अप्पाणं उच्चियपउमं व पउमसरं असोभंतं पेच्छिय संवेगावण्णो परिचिंतिउं पयत्तो–आगंतुगदव्वेहिं विभूसियं मे सरीरगंति न सहावसुंदरं, एवं चिन्तन्तस्स अपुव्वकरणज्झाणमुवट्ठिअस्स केवलनाणं समुप्पण्णंति । सक्को देवराया आगओ भणति–दव्वलिंगं पडिवज्जह, जाहे निक्खमणमहिमं करेमि, ततो तेण पंचमुट्ठिओ लोओ कओ, देवयाए रओहरणपडिग्गहमादि उवगरणमुवणीअं, दसहिं रायसहस्सेहिं समं पव्वइओ । सेसा नव चक्किणो सहस्सपरिवारा निक्खंता । सक्केणं वंदिओ, ताहे भगवं पुव्वसयसहस्सं केवलिपरियागं पाउ-

१ चाल्पशोको जातः , तदा पुनरपि भोगान् भोक्तुं प्रवृत्तः, एवं तस्य पञ्च पूर्वशतसहस्राणि अतिक्रान्तानि भोगान् भुञ्जानस्य, अन्यदा कदाचित् सर्वालङ्कारविभूषित आदर्शगृहमतिगतः, तत्र च सर्वाङ्गिकः पुरुषो दृश्यते, तस्यैवं प्रेक्षमाणस्याङ्गुलीयकं पतितं, तच्च तेन न ज्ञातं पतितं, एवं तस्य प्रलोकमानस्य यदा साऽङ्गुलिर्दृष्टौ पतिता, तदाऽशोभमाना दृष्टा, ततः कटकमपि अपनयति, एवमेकैकमपनयता सर्वमाभरणमपनीतं, तदाऽऽत्मानं उच्चितपद्मं इव पद्मसरः अशोभमानं प्रेक्ष्य संवेगापन्नः परिचिन्तितुं प्रवृत्तः–आगन्तुकद्रव्यैः विभूषितं मे शरीरकमिति न स्वभावसुन्दरम्, एवं चिन्तयतः अपूर्वकरणध्यानमुपस्थितस्य केवलज्ञानं समुत्पन्नमिति । शक्रो देवराज आगतो भणति–द्रव्यलिङ्गं प्रतिपद्यस्व, यतः निष्क्रमणमहिमानं करोमि, ततस्तेन पञ्चमुष्टिकः लोचः कृतः, देवतया रजोहरणप्रतिग्रहादि उपकरणमुपनीतं, दशभिः राजसहस्रैः समं प्रव्रजितः । शेषा नव चक्रिणः सहस्रपरिवारा निष्क्रान्ताः । शक्रेण वन्दितः, तदा भगवान् पूर्वशतसहस्रं केवलिपर्यायं पालयित्वा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१७०॥

णित्ता परिणिव्वुडो य । आइच्चजसो सक्केणाभिसित्तो, एवमट्ठपुरिसजुगाणि अभिसित्ताणि । उक्तो भावा(गाथा)र्थः, साम्प्रतमक्षरगमनिका—आदर्शकगृहे प्रवेशः, कस्य? 'भरहेत्ति' भरतस्य प्राकृतशैल्या षष्ठ्यर्थे सप्तमी, तथा पतनं चाङ्गुलीयस्य बभूव, शेषाणां कटकादीनां तून्मोचनं अनुष्ठितं, ततः संवेगः संजातः, तदुत्तरकालं ज्ञानमुत्पन्नमिति, दीक्षा च तेन गृहीता, चशब्दान्निर्वृत्तश्चेत्यक्षरार्थः ॥४३६॥ उक्तमानुषङ्गिकं इदानीं प्रकृतां मरीचिवक्तव्यतां पृच्छतां कथयतीत्यादिना प्रतिपादयति—तत्र—

पुच्छंताण कहेइ उवट्ठिए देइ साहुणो सीसे । गेलन्नि अपडिअरणं कविला इत्थंपि इहयंपि ॥ ४३७ ॥

गमनिका—पृच्छतां कथयति, उपस्थितान् ददाति साधुभ्यः शिष्यान्, ग्लानत्वे अप्रतिजागरणं कपिल ! अत्रापि इहापि । भावार्थः–स हि प्राग्व्यावर्णितस्वरूपो मरीचिः भगवति निर्वृत्ते साधुभिः सह विहरन् पृच्छतां लोकानां कथयति धर्मं जिनप्रणीतमेव, धर्माक्षिप्तांश्च प्राणिन उपस्थितान् ददाति साधुभ्यः शिष्यानिति । अन्यदा स ग्लानः संवृत्तः, साधवोऽप्यसंयतत्वान्न प्रतिजाग्रति, स चिन्तयति–निष्ठितार्थाः खलु एते, नासंयतस्य कुर्वन्ति, नापि ममैतान् कारयितुं युज्यते, तस्मात् कञ्चन प्रतिजागरकं दीक्षयामीति, अपगतरोगस्य च कपिलो नाम राजपुत्रो धर्मशुश्रूषया तदन्तिकमागत इति, कथिते साधुधर्मे स आह–यद्ययं मार्गः किमिति भवता एतदङ्गीकृतम् ?, मरीचिराह–पापोऽहं, 'लोएंदिये'त्यादिविभाषा पूर्ववत्, कपिलोऽपि कर्मोदयात् साधुधर्मानभिमुखः खल्वाह–तथापि किं भवद्दर्शने नास्त्येव धर्म इति, मरीचिरपि- प्रचुरकर्मा खल्वयं न तीर्थकरोक्तं प्रतिपद्यते, वरं मे सहायः संवृत्त इति संचिन्त्याह–'कविला एत्थंपित्ति' अपिशब्दस्यैवकारार्थत्वात् निरुपचरितः खल्वत्रैव साधुमार्गे 'इहयंपित्ति' स्वल्पस्तु अत्रापि विद्यते इति गाथार्थः ॥ ४३७ ॥ स ह्येवमा- ॥१७०॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

१ परिनिर्वृतश्च । आदित्ययशाः शक्रेणाभिषिक्तः, एवमष्टपुरुषयुगान्यभिषिक्तानि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

कर्ण्य तत्सकाश एव प्रव्रजितः, मरीचिनाऽप्यनेन दुर्वचनेन संसारोऽभिनिर्वर्त्तितः, त्रिपदीकाले च नीचैर्गोत्रं कर्म बद्धमिति ॥ अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

दुब्भासिएण इक्केण मरीई दुक्खसायरं पत्तो । भमिओ कोडाकोडिं सागरसरिनामधेज्जाणं ॥ ४३८ ॥
तम्मूलं संसारो नीआगोत्तं च कासि तिवइंमि । अपडिक्कंतो बंभे कविलो अंतद्धिओ कहए ॥ ४३९ ॥

प्रथमगाथागमनिका—'दुर्भाषितेनैकेन' उक्तलक्षणेन मरीचिर्दुःखसागरं प्राप्तः भ्रान्तः कोटीनां कोटी कोटीकोटी तां, केषामित्याह-'सागरसरिनामधेज्जाणंति' सागरसदृशनामधेयानां, सागरोपमाणामिति गाथार्थः। द्वितीयगाथागमनिका-'तन्मूलं' दुर्भाषितमूलं संसारः संजातः, तथा स एव नीचैर्गोत्रं च कृतवान्–निष्पादितवान्'त्रिपद्यां' प्राग्व्यावर्णितस्वरूपायामिति। 'अपडिक्कंतो बंभेत्ति' स मरीचिः चतुरशीतिपूर्वशतसहस्राणि सर्वायुष्कमनुपाल्य तस्मात् दुर्भाषितात् गर्वाच्च 'अप्रतिक्रान्तः' अनिवृत्तः ब्रह्मलोके दशसागरोपमस्थितिः देवः संजात इति। कपिलोऽपि ग्रन्थार्थपरिज्ञानशून्य एव तद्दर्शितक्रियारतो विजहार, आसुरिनामा च शिष्योऽनेन प्रव्राजित इति, तस्य स्वाचारमात्रं दिदेश, एवमन्यानपि शिष्यान् स गृहीत्वा शिष्यप्रवचनानुरागतत्परो मृत्वा ब्रह्मलोक एवोत्पन्नः, स ह्युत्पत्तिसमनन्तरमेव अवधिं प्रयुक्तवान्–किं मया हुतं वा ? इष्टं वा ? दानं वा दत्तं ? येनैषा दिव्या देवर्द्धिः प्राप्तेति, स्वं पूर्वभवं विज्ञाय चिन्तयामास–ममहि शिष्यो न किञ्चिद्वेत्ति, तत्तस्य उपदिशामि तत्त्वमिति, तस्मै आकाशस्थपञ्चवर्णमण्डलकस्थः तत्त्वं जगाद, आह च–'कपिलो अंतद्धिओ कहए' कपिलः अन्तर्हितः कथितवान्, किम् ?–अव्यक्तात् व्यक्तं प्रभवति, ततः षष्टितन्त्रं जातं, तथा चाहुस्तन्मतानुसारिणः–"प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कार-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

भगवत् महावीरस्य पूर्व-भावानाम् कथनं

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१७१॥

स्तस्माद्गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥ १ ॥" इत्यादि, अलं विस्तरेण, प्रकृतं प्रस्तुमः इति गाथार्थः ॥ ४३८–४३९ ॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

इक्खागेसु मरीई चउरासीई अ बंभलोगंमि। कोसिउ कुल्लागंमी (गेसुं) असीइमाउं च संसारे ॥ ४४० ॥

गमनिका—इक्ष्वाकुषु मरीचिरासीत्, चतुरशीतिं च पूर्वशतसहस्राण्यायुष्कं पालयित्वा 'बंभलोयंमि' ब्रह्मलोके कल्पे देवः संवृत्तः, ततश्चायुष्कक्षयाच्च्युत्वा 'कोसिओ कुल्लाएसुन्ति' कोल्लाकसंनिवेशे कौशिको नाम ब्राह्मणो बभूव, 'असीइमाउं च संसारेत्ति' स च तत्राशीतिं पूर्वशतसहस्राण्यायुष्कमनुपाल्य 'संसारेत्ति' तिर्यङ्नरनारकामरभवानुभूतिलक्षणे पर्यटित इति गाथार्थः ॥ ४४० ॥ संसारे कियन्तमपि कालमटित्वा स्थूणायां नगर्यां जात इति, अमुमेवार्थं 'थूणाई'त्यादिना प्रतिपादयति—

थूणाइ पूसमित्तो आउं बावत्तरिं च सोहम्मे। चेइअ अग्गिज्जोओ चोवट्ठीसाणकप्पंमि ॥ ४४१ ॥

व्याख्या—स्थूणायां नगर्यां पुष्पमित्रो नाम ब्राह्मणः संजातः 'आउं बावत्तरिं सोहम्मेत्ति' तस्यायुष्कं द्विसप्ततिः पूर्वशतसहस्राण्यासीत्, परिव्राजकदर्शने च प्रव्रज्यां गृहीत्वा तां पालयित्वा कियन्तमपि कालं स्थित्वा सौधर्मे कल्पे अजघन्योत्कृष्टस्थितिः समुत्पन्न इति। 'चेइअ अग्गिज्जोओ चोवट्ठीसाणकप्पंमीति' सौधर्माच्च्युतः चैत्यसन्निवेशे अग्निद्योतो ब्राह्मणः संजातः, तत्र चतुःषष्टिपूर्वशतसहस्राण्यायुष्कमासीत्, परिव्राट् च संजातो, मृत्वा चेशाने देवोऽजघन्योत्कृष्टस्थितिः संवृत्त इति गाथार्थः ॥ ४४१ ॥

॥१७१॥

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मंदिरे अग्गिभूई छप्पण्णा उ सणंकुमारंमि । सेअवि भारद्दाओ चोआलीसं च माहिंदे ॥ ४४२ ॥

गमनिका—ईशानाच्च्युतो 'मन्दिरेत्ति' मन्दिरसन्निवेशे अग्निभूतिनामा ब्राह्मणो बभूव, तत्र षट्पञ्चाशत् पूर्वशतसहस्राणि जीवितमासीत्, परिव्राजकश्च बभूव, मृत्वा 'सणंकुमारंमीति' सनत्कुमारकल्पे विमध्यमस्थितिर्देवः समुत्पन्न इति । 'सेअवि भारद्दाएँ* चोआलीसं च माहिंदेत्ति' सनत्कुमारात् च्युतः श्वेतव्यां नगर्यां भारद्वाजो नाम ब्राह्मण उत्पन्न इति, तत्र च चतुश्चत्वारिंशत् पूर्वशतसहस्राणि जीवितमासीत्, परिव्राजकश्चाभवत्, मृत्वा च माहेन्द्रे कल्पेऽजघन्योत्कृष्टस्थितिर्देवो बभूवेति गाथार्थः ॥ ४४२ ॥

संसरिअ थावरो रायगिहे चउतीस बंभलोगंमि । छस्सुवि पारिव्वज्जं भमिओ तत्तो अ संसारे ॥ ४४३ ॥

गमनिका—माहेन्द्रात् च्युत्वा संसृत्य कियन्तमपि कालं संसारे ततः स्थावरो नाम ब्राह्मणो राजगृहे उत्पन्न इति, तत्र च चतुस्त्रिंशत् पूर्वशतसहस्राण्यायुष्कं परिव्राजकश्चासीत्, मृत्वा च ब्रह्मलोकेऽजघन्योत्कृष्टस्थितिर्देवः संजातः, एवं षट्स्वपि वारासु परिव्राजकत्वमधिकृत्य दिवमासवान् । 'भमिओ तत्तो अ संसारे' ततो ब्रह्मलोकाच्च्युत्वा भ्रान्तः संसारे प्रभूतं कालमिति गाथार्थः ॥ ४४४ ॥

रायगिह विस्सनंदी विसाहभूई अ तस्स जुवराया । जुवरण्णो विस्सभूई बिसाहनंदी अ इअरस्स ॥ ४४४ ॥

रायगिह विस्सभूई विसाहभूइसुओ खत्तिए कोडी । वाससहस्सं दिक्खा संभूअजइस्स पासंमि ॥ ४४५ ॥

---

* ओ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भावार्थः खल्वस्य गाथाद्वयस्य कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—रायगिहे नयरे विस्सनंदी राया, तस्स भाया विसाहभूई, सो य जुवराया, तस्स जुवरण्णो धारिणीए देवीए विस्सभूई नाम पुत्तो जाओ, रण्णोऽवि पुत्तो विसाहनंदित्ति, तत्थ विस्सभूइस्स वासकोडी आऊ, तत्थ पुप्फकरंडकं नाम उज्जाणं, तत्थ सो विस्सभूती अंतेउरवरगतो सच्छंदसुहं पवियरइ, ततो जा सा विसाहनंदिस्स माया तीसे दासचेडीओ पुप्फकरंडए उज्जाणे पत्ताणि पुप्फाणि अ आणेंति, पिच्छंति अ विस्सभूतिं कीडंतं, तासिं अमरिसो जाओ, ताहे साहिंति जहा–एवं कुमारो ललइ, किं अम्ह रज्जेण वा बलेण वा ? जइ विसाहनंदी न भुंजइ एवंविहे भोए, अम्ह नामं चेव, रज्जं पुण जुवरण्णो पुत्तस्स जस्सेरिसं ललिअं, सा तासिं अंतिए सोउं देवी ईसाए कोवघरं पविट्ठा, जइ ताव रायाणए जीवंतए एसा अवत्था, जाहे राया मओ भविस्सइ ताहे एत्थ अम्हे को गणिहित्ति?, राया गमेइ, सा पसायं न गिण्हइ, किं मे रज्जेण तुमे वत्ति?, पच्छा तेण अमच्चस्स सिट्ठं, ताहे अमच्चोऽवि

---

१ राजगृहे नगरे विश्वनन्दी राजा, तस्य भ्राता विशाखभूतिः, स च युवराजः, तस्य युवराजस्य धारिण्यां देव्यां विश्वभूतिर्नाम पुत्रो जातः, राज्ञोऽपि पुत्रो विशाखनन्दीति, तस्य विश्वभूतेर्वर्षकोट्यायुः, तत्र पुष्पकरण्डकं नाम उद्यानं, तत्र स विश्वभूतिः वरान्तःपुरगतः स्वच्छन्देन सुखं प्रविचरति, ततो या सा विशाखनन्दिनो माता तस्या दासचेट्यः पुष्पकरण्डकादुद्यानात्पुष्पाणि पत्राणि चानयन्ति, प्रेक्षन्ते च विश्वभूतिं क्रीडन्तं, तासाममर्षो जातः, तदा साधयन्ति यथा–एवं कुमारो ललति (विलसति), किमस्माकं राज्येन वा बलेन वा ? यदि विशाखनन्दी न भुङ्क्ते एवंविधान् भोगान्, अस्माकं नामैव, राज्यं पुनर्युवराजस्य पुत्रस्य यस्येदृशं ललितं, सा तासामन्तिके श्रुत्वा देवीर्ष्यया कोपगृहं प्रविष्टा, यदि तावद्राज्ञि जीवति एषाऽवस्था, यदा राजा मृतो भविष्यति तदाऽस्मान् को गणिष्यति? राजा गमयति, सा प्रसादं न गृह्णाति, किं मे राज्येन त्वया चेति, पश्चात्तेनामात्याय शिष्टं, तदाऽमात्योऽपि.

॥१७२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

[1]तं गमेइ, तहवि न ठाति, ताहे अमच्चो भणइ–रायं! मा देवीए वयणातिकमो कीरउ, मा मारेहिइ अप्पाणं, राया भणइ–को उवाओ होज्जा?, ण य अम्हं वंसे अण्णंमि अतिगए उज्जाणे अण्णओ अतीति, तत्थ वसंतमासं[*] ठिओ, मासगेसु अच्छति, अमच्चो भणति–उवाओ किज्जउ जहा–अमुगो पच्चंतराया उक्कुट्ठो(वट्टो),अणज्जंता पुरिसा कूडलेहे उवणेंतु, एवमेएण कयगेण ते कूडलेहा रण्णो उवट्ठाविया, ताहे राया जत्तं गिण्हइ, तं विस्सभूइणा सुयं, ताहे भणति–मए जीवमाणे तुब्भे किं निग्गच्छह?, ताहे सो गओ, ताहे चेव इमो अइगओ, सो गतो तं पच्चंतं, जाव न किंचि पिच्छइ अहुमरेंतं[+], ताहे आहिंडित्ता जाहे नत्थि कोई जो आणं अइक्कमति, ताहे पुणरवि पुप्फकरंडयं उज्जाणमागओ, तत्थ दारवाला दंडगहियग्गहत्था भणंति–मा अईह सामी !, सो भणति–किं निमित्तं ?, एत्थ विसाहनन्दी कुमारो रमइ, ततो एयं सोऊण कुविओ विस्सभूई, तेण नायं–अहं कयगेण निग्गच्छाविओत्ति, तत्थ कविट्ठलता अणेगफलभरसमोणया, सा मुट्ठिपहारेण आहया, ताहे तेहिं कविट्ठेहिं भूमी अत्थुआ,

---

१ तां गमयति, तथापि न तिष्ठति, तदाऽमात्यो भणति–राजन् ! मा देव्या वचनातिक्रमं करोतु, मा मीमरदात्मानं, राजा भणति क उपायो भवेत् ?, न चास्माकं वंशेऽन्यस्मिन् अतिगते उद्याने अन्योऽतियाति, तत्र वसन्तमासं स्थितः मासोऽग्रे तिष्ठति, अमात्यो भणति–उपायः क्रियतां यथा–असुकः प्रत्यन्तराजः उत्कृष्टः (द्रुतः), अज्ञायमानाः पुरुषा कूटलेखानुपनयन्तु, एवमेतेन कृतकेन ते कूटलेखा राज्ञे उपस्थापिताः, तदा राजा यात्रां गृह्णाति, तत् विश्वभूतिना श्रुतं, तदा भणति–मयि जीवति यूयं किं निर्गच्छत, तदा स गतः, तदैवायं (विशाखनन्दी) अतिगतः,स गतः तं प्रत्यन्तं, यावन्न कञ्चित्पश्यति उपद्रवन्तं, तदाऽऽहिण्ड्य यदा नास्ति कोऽपि य आज्ञामतिक्रामति, तदा पुनरपि पुष्पकरण्डकमुद्यानमागतः, तत्र द्वारपाला गृहीतदण्डाग्रहस्ता भणन्ति–मा अतियासीः स्वामिन् !, स भणति–किंनिमित्तम् ?अत्र विशाखनन्दी कुमारो रमते, तत एतत् श्रुत्वा कुपितो विश्वभूतिः, तेन ज्ञातं–अहं कृतकेन निर्गमित इति, तत्र कपित्थलता अनेकफलभरसमवनता, सा मुष्टिप्रहारेणाहता, तदा तैः कपित्थैर्भूमिरास्तृता. * ०मासंतमासग्गे७. + उद्दमरेंतं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

ते[1] भणति–एवं अहं तुज्झं सीसाणि पाडिंतो जइ अहं महल्लपिउणो गोरवं न करेंतो, अहं भे छम्मेण नीणिओ, तम्हा अलाहि भोगेहिं, तओ निग्गओ भोगा अवमाणमूलन्ति, अज्जसंभूआणं थेराणं अंतिए पव्वइओ, तं पव्वइयं सोउं ताहे राया संते-उरपरियणो जुवराया य निग्गओ, ते तं खमावेंति, ण य तेसिं सो आणत्तिं गेण्हति । ततो बहूहिं छट्ठट्ठमादिएहिं अप्पाणं भावेमाणो विहरइ, एवं सो विहरमाणो महुरं नगरिं गतो । इओ य विसाहनंदी कुमारो तत्थ महुराए पिउच्छाए रण्णो अग्गमहिसीए धूआ लद्धेल्लिआ, तत्थ गतो, तत्थ से रायमग्गे आवासो दिण्णो । सो य विस्सभूती अणगारो मासखमण-पारणगे हिंडंतो तं पदेसमागओ जत्थ ठाणे विसाहणंदीकुमारी अच्छति, ताहे तस्स पुरिसेहिं कुमारो भण्णति–सामि ! तुब्भे एयं न जाणह?, सो भणति–न जाणामि, तेहिं भण्णति–एस सो विस्सभूती कुमारो, ततो तस्स तं दट्ठूण रोसो जाओ। एत्थंतरा सूतिआए गावीए पेल्लिओ पडिओ, ताहे तेहिं उक्किट्ठकलयलो कओ, इमं च णेहिं भणिअं–तं बलं तुज्झ

---

१ तान् भणति–एवमहं युष्माकं शिरांस्यपातयिष्यं यद्यहं पितृव्यस्य गौरवं नाकरिष्यम्, अहं भवद्भिश्छद्मना नीतः, तस्मादलं भोगैः, ततो निर्गतो भोगा अपमानमूलमिति, आर्यसंभूतानां स्थविराणामन्तिके प्रव्रजितः, तं प्रव्रजितं श्रुत्वा तदा राजा सान्तःपुरपरिजनो युवराजश्च निर्गतः, ते तं क्षमयन्ति, न च तेषां स आज्ञप्तिं (विज्ञप्तिं) गृह्णाति। ततो बहुभिः षष्ठाष्टमादिकैरात्मानं भावयन् विहरति, एवं स विहरन् मथुरां नगरीं गतः । इतश्च विशाखनन्दी कुमारस्तत्र मथु-रायां पितृष्वसू राज्ञोऽग्रमहिष्या दुहिता लब्धपूर्वा (इति) तत्र गतः, तत्र तस्य राजमार्गे आवासो दत्तः। स च विश्वभूतिरनगारः मासक्षपणपारणे हिण्डमानः तं प्रदेशमागतः यत्र स्थाने विशाख नन्दी कुमारः तिष्ठति, तदा तस्य पुरुषैः कुमारो भण्यते–स्वामिन्! त्वं एनं न जानीथ?, स भणति–न जानामि, तैर्भण्यते–एष स विश्वभूतिः कुमारः, ततस्तस्य तं दृष्ट्वा रोषो जातः । अत्रान्तरे प्रसूतया गवा प्रेरितः पतितः, तदा तैरुत्कृष्टकलकलः कृतः, इदं च तैर्भणितम्–तत् बलं तव

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कविट्ठपाडणं च कहिं गतं ?, ताहे णेण ततो पलोइयं, दिट्ठो य णेण सो पावो, ताहे अमरिसेणं तं गाविं अग्गसिंगेहिं गहाय उड्ढं उव्वहति, सुदुब्बलस्सवि सिंघस्स किं सियालेहिं बलं लंघिज्जइ?, ताहे चेव नियत्तो, इमो दुरप्पा अज्जवि मम रोसं वहति, ताहे सो नियाणं करेति–जइ इमस्स तवनियमस्स बंभचेरस्स फलमत्थि-तो आगमेसाणं अपरिमितबलो भवामि । तत्थ सो अणालोइयपडिक्कंतो महासुक्के उववन्नो, तत्थुक्कोसठितिओ देवो जातः । ततो चइऊण पोअणपुरे णगरे पुत्तो पयावइस्स मिगाईए देवीए कुच्छिंसि उववण्णो । तस्स कहं पयावई नामं, तस्स पुव्वं रिउपडिसत्तुत्ति णामं होत्था, तस्स य भद्दाए देवीए अत्तए अयले नामं कुमारे होत्था, तस्स य अयलस्स भगिणी मियावईनाम दारिया अतीव रूववती, सा य उम्मुक्कबालभावा सव्वालंकारविभूसिआ पिउपायवंदिया गया, तेण सा उच्छंगे निवेसिआ, सो तीसे रूवे जोव्वणे य अंगफासे य मुच्छिओ, तं विसज्जेत्ता पउरजणवयं वाहरति–जं एत्थं रयणं उप्पज्जइ तं कस्स होति ?, ते भणंति–तुब्भं, एवं तिण्णि

---

१ कपित्थपातनं च क्व गतं ?, तदाऽनेन ततः प्रलोकितं, दृष्टश्चानेन स पापः, तदाऽमर्षेण तां गां अग्रशृङ्गाभ्यां गृहीत्वोर्ध्वमुत्क्षिपति, सुदुर्बलस्यापि सिंहस्य किं शृगालैर्बलं लङ्घ्यते?, तदैव निवृत्तः, अयं दुरात्माऽद्यापि मयि रोषं वहति, तदा स निदानं करोति–यद्यस्य तपोनियमस्य ब्रह्मचर्यस्य फलमस्ति तर्हि आगमिष्यन्त्यां अपरिमितबलो भूयासं । तत्र सोऽनालोचितप्रतिक्रान्तो महाशुक्रे उत्पन्नः, तत्रोत्कृष्टस्थितिको देवो जातः । ततश्च्युत्वा पोतनपुरे नगरे पुत्रः प्रजापतेर्मृगावत्या देव्याः कुक्षौ उत्पन्नः । तस्य कथं प्रजापतिर्नाम ?, तस्य पूर्वं रिपुप्रतिशत्रुरिति नामाभवत्, तस्य च भद्राया देव्या आत्मजः अचलो नाम कुमारोऽभवत्, तस्य चाचलस्य भगिनी मृगावती नाम दारिकाऽतीव रूपवती, सा चोन्मुक्तबालभावा सर्वालङ्कारविभूषिता पितृपादवन्दिका गता, तेन सोत्सङ्गे निवेशिता, स तस्या रूपे यौवने चाङ्गस्पर्शे च मूर्छितः, तां विसृज्य पौरजनपदं व्याहरति–यदत्र रत्नमुत्पद्यते तत्कस्य भवति ?, ते भणन्ति–तव, एवं त्रीन्-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वारा साहिए सा चेडी उवट्ठविआ, ताहे लज्जिआ निग्गया, तेसिं सव्वेसिं कुव्वमाणाणं गंधव्वेण विवाहेण सयमेव विवाहिया, उप्पाइया णेणं भारिया, सा भद्दा पुत्तेण अयलेण समं दक्खिणावहे माहेस्सरिं पुरिं निवेसेति, महन्तीए इस्सरीए कारियत्ति माहेस्सरी, अयलो मायं ठविऊण पिउमूलमागओ, ताहे लोएण पयावई नामं कयं, पया अणेण पडिवण्णा पयावइत्ति, वेदेऽप्युक्तम्–"प्रजापतिः स्वां दुहितरमकामयत"। ताहे महासुक्काओ चइऊण तीए मियावईए कुच्छिंसि उववण्णो, सत्त सुमिणा दिट्ठा, सुविणपाढएहिं पढमवासुदेवो आदिट्ठो, कालेण जाओ, तिण्णि यसे पिट्ठकरंडगा तेण से तिविट्ठू णामं कयं, माताए परिमक्खितो उम्हतेल्लेणंति, जोव्वणगमणुपत्तो। इओ य महामंडलिओ आसग्गीवो राया, सोणेमित्तियं पुच्छति–कत्तो मम भयंति, तेण भणियं– जो चंडमेहं दूतं आधरिसेहिति, अवरं ते य महाबलगं सीहं मारेहिति, ततो ते भयंति, तेण सुयं जहा– पयावइपुत्ता महाबलवगा, ताहे तत्थ दूतं पेसेति, तत्थ य अंतेउरे पेच्छणयं वट्टति, तत्थ दूतो पविट्ठो, राया उट्ठिओ, पेच्छणयं

---

१ वारान् साधिते सा चेट्युपस्थापिता, तदा लज्जिता निर्गताः, सर्वेषां तेषां कूजतां गान्धर्वेण विवाहेन स्वयमेव विवाहिता, उत्पादिता तेन भार्या, सा भद्रा पुत्रेणाचलेन समं दक्षिणापथे माहेश्वरीं पुरीं निविशति, महत्या ईश्वर्या कारितेति माहेश्वरी, अचलो मातरं स्थापयित्वा पितृमूलमागतः, तदा लोकेन प्रजापतिः नाम कृतं, प्रजा अनेन प्रतिपन्ना प्रजापतिरिति। तदा महाशुक्रात् च्युत्वा तस्या मृगावत्याः कुक्षावुत्पन्नः, सप्त स्वप्ना दृष्टाः, स्वप्नपाठकैः प्रथमवासुदेव आदिष्टः, कालेन जातः, त्रीणि च तस्य पृष्ठकरण्डकानि तेन तस्य त्रिपृष्ठः नाम कृतं, मात्रा परिम्रक्षितः उष्णतैलेनेति, यौवनमनुप्राप्तः। इतश्च महामाण्डलिकः अश्वग्रीवो राजा, स नैमित्तिकं पृच्छति–कुतो मम भयमिति, तेन भणितम्–यश्चण्डमेघं दूतं आधर्षिष्यति, अपरं तव च महाबलिनं सिंहं मारयिष्यति, ततस्तव भयमिति, तेन श्रुतं यथा-प्रजापतिपुत्रौ महाबलिनौ, तदा तत्र दूतं प्रेषयति, तत्र चान्तःपुरे प्रेक्षणकं वर्त्तते, तत्र दूतः प्रविष्टः, राजोत्थितः, प्रेक्षणकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

भग्गं, कुमारा पेच्छणगेण अक्खित्ता भणंति–को एस?, तेहिं भणिअं–जहा आसग्गीवरण्णो दूतो, ते भणंति–जाहे एस वच्चेज्ज ताहे कहेज्जाह, सो राइणा पूएऊण विसज्जिओ पहाविओ अप्पणो विसयस्स, कहियं कुमाराणं, तेहिं गंतूण अद्धपहे हओ, तस्स जे सहाया ते सव्वे दिसोदिसिं पलाया, रण्णा सुयं जहा–आधरिसिओ दूओ, संभंतेण निअत्तिओ, ताहे रण्णा बिउणं तिगुणं दाऊण मा हु रण्णो साहिज्जसु जं कुमारेहिं कयं, तेण भणियं–न साहामि, ताहे जे ते पुरतो गता तेहिं सिट्ठं जहा–आधरिसिओ दूतो, ताहे सो राया कुविओ, तेण दूतेण णायं जहा–रण्णो पुव्वं कहितेल्लयं, जहावित्तं सिट्ठं, ततो आसग्गीवेण अण्णो दूतो पेसिओ, वच्च पयावइं गंतूण भणाहि–मम सालिं रक्खाहि भक्खिज्जमाणं, गतो दूतो, रण्णा कुमारा उवलद्धा–किह अकाले मच्चू खवलिओ?, तेण अम्हे अवारए चेव जत्ता आणत्ता, राया पहाविओ, ते भणंति–अम्हे वच्चामो, ते रुब्भंता मड्डाए गया, गंतूण खेत्तिए भणंति–किहऽण्णे रायाणो रक्खियाइया?, ते भणंति–आसहत्थिरहपुरिस-

---

१ भग्नं, कुमारौ प्रेक्षणकेनाक्षिप्तौ भणतः–क एषः?, तैर्भणितं यथा–अश्वग्रीवराजस्य दूतः, तौ भणतः–यदा एष व्रजेत् तदा कथयेत, स राज्ञा पूजयित्वा विसृष्टः प्रधावित आत्मनो विषयाय, कथितं कुमाराभ्यां, ताभ्यां गत्वाऽर्धपथे हतः, तस्य ये सहायाः ते सर्वे दिशोदिशि पलायिताः, राज्ञा श्रुतं यथा–आधर्षितो दूतः, संभ्रान्तेन निवर्त्तितः, तदा राज्ञा द्विगुणं त्रिगुणं दत्त्वा मैव चीकथः राज्ञे यत्कुमाराभ्यां कृतं, तेन भणितं–न साधयामि, तदा ये ते पुरतो गतास्तैः शिष्टं यथा–आधर्षितो दूतः, तदा स राजा कुपितः, तेन दूतेन ज्ञातं यथा–राज्ञे पूर्वं कथितं, यथावृत्तं शिष्टं, ततः अश्वग्रीवेणान्यो दूतः प्रेषितः, व्रज प्रजापतिं गत्वा भण–मम शालीन् भक्ष्यमाणान् रक्ष, गतो दूतः, राज्ञा कुमारावुपालब्धौ–किमकाले मृत्युरामन्त्रितः?, तेनास्माकमवारके एव यात्राऽऽज्ञप्ता, राजा प्रधावितः (गन्तुमारब्धः), तौ भणतः, आवां व्रजावः, तौ रुध्यमानौ बलाद्गतौ, गत्वा क्षेत्रिकान् भणतः–कथमन्ये राजानः रक्षितवन्तः?, ते भणन्ति–अश्वहस्तिरथपुरुषैः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पागारं काऊणं, केच्चिरं ?, जाव करिसणं पविट्ठं, तिविट्ठू भणति–को एच्चिरं अच्छति ?, मम तं पएसं दरिसह, तेहिं कहियं–एताए गुहाए, ताहे कुमारो रहेणं तं गुहं पविट्ठो, लोगेण दोहिवि पासेहि कलयलो कओ, सीहो वियंभंतो निग्गओ, कुमारो चिन्तेइ–एस पाएहिं अहं रहेण, विसरिसं जुद्धं, असिखेडगहत्थो रहाओ ओइण्णो, ताहे पुणोवि विचिन्तेइ–एस दाढानक्खाउहो अहं असिखेडएण, एवमवि असमंजसं, तंपि अणेण असिखेडगं छड्डियं, सीहस्स अमरिसो जातो–एगं ता रहेण गुहं अतिगतो एगागी, बितिअं भूमिं ओतिण्णो, ततिअं आउहाणि विमुक्काणि, अज्ज णं विणिवाएमित्ति महता अवदालिएण वयणेण उक्खंदं काऊण संपत्तो, ताहे कुमारेण एगेण हत्थेण उवरिल्लो होट्ठो एगेणं हेट्ठिल्लो गहिओ, ततो णेण जुण्णपडगोविव दुहाकाऊण मुक्को, ताहे लोएण उक्कुट्ठिकलयलो कओ, अहासन्निहिआए देवयाए आभरणवत्थकुसुमवरिसं, वरिसियं, ताहे सीहो तेण अमरिसेण फुरफुरेंतो अच्छति, एवं नाम अहं कुमारेण जुद्धेण मारिओत्ति, तं च किर कालं

---

१ प्राकारं कृत्वा, कियच्चिरं ?, यावत् कर्षणं प्रविष्टं (भवति), त्रिपृष्ठः भणति–क इयच्चिरं तिष्ठति ?, मह्यं तं प्रदेशं दर्शयत, तैः कथितं–एतस्यां गुहायां, तदा कुमारो रथेन तां गुहां प्रविष्टः, लोकेन कलकलो द्वयोरपि पार्श्वयोः कृतः, सिंहो विजृम्भमाणः निर्गतः, कुमारश्चिन्तयति–एष पादाभ्यामहं रथेन, विसदृशं युद्धं, असिखेटकहस्तः रथादवतीर्णः, तदा पुनरपि विचिन्तयति–एष दंष्ट्रानखायुधः अहमसिखेटकेन, एवमप्यसमञ्जसं, तदप्यसिखेटकमनेन त्यक्तं, सिंहस्यामर्षो जातः–एकं तावत् रथेन गुहामतिगतः एकाकी, द्वितीयं भूमिमवतीर्णः, तृतीयमायुधानि विमुक्तानि, अद्य एनं विनिपातयामीति महताऽवदारितेन वदनेनोत्कन्दं कृत्वा संप्राप्तः, तदा कुमारेणैकेन हस्तेनोपरितन ओष्ठ एकेनाधस्त्यो गृहीतः, ततस्तेन जीर्णपट इव द्विधाकृत्य मुक्तः, तदा लोकेनोत्कृष्टिकलकलः कृतः, यथासन्निहितया तद्देवतयाभरणवस्त्रकुसुमवर्षं वर्षितं, तदा सिंहस्तेनामर्षेण स्फुरंस्तिष्ठति, एवं नामाहं कुमारेण युद्धेन मारितः इति, तस्मिंश्च किल काले.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]भगवओ गोअमसामी रहसारही आसी, तेण भण्णति–मा तुमं अमरिसं वहाहि, एस नरसीहो तुमं मिथाहिवो, तो जइ सीहो सीहेण मारिओ को एत्थ अवमाणो?, ताणि सो वयणाणि महुमिव पिबति, सो मरित्ता नरएसु उववण्णो, सो कुमारो तच्चम्मं गहाय सनगरस्स पहावितो, ते* गामिलए भणति–गच्छह भो तस्स घोडयगीवस्स कहेह जहा अच्छसु वीसत्थो, तेहिं गंतूण सिट्ठं, रुट्ठो दूतं विसज्जेइ, एते पुत्ते तुमं मम ओलग्गए पट्ठवेहि, तुमं महल्लो, जाहे पेच्छामि सक्कारेमि रज्जाणि य देमि, तेण भणियं–अच्छंतु कुमारा, सयं चेव णं ओलग्गामित्ति, ताहे सो भणति–किं न पेसेसि ? अतो जुद्धसज्जो निग्गच्छा+सि, सो दूतो तेहिं आधरिसित्ता धाडिओ, ताहे सो आसग्गीवो सवबलेण उवट्ठिओ, इयरेवि देसंते ठिआ, सुबहुं कालं जुज्झेऊण हयगयरहनरादिक्खयं च पेच्छिऊण कुमारेण दूओ पेसिओ जहा–अहं च तुमं च दोण्णिवि जुद्धं संपलग्गामो, किंवा बहुएण अकारिजणेण मारिएण ? एवं होउत्ति, बीअदिवसे रहेहिं संपलग्गा, जाहे आउधाणि खीणाणि

---

१ भगवतो गौतमस्वामी रथसारथिरासीत्, तेन भण्यते–मा त्वममर्षं वाहीः, एष नरसिंहः त्वं मृगाधिपः, तद्यदि सिंहः सिंहेन मारितः कोऽत्रापमानः? तानि वचनानि स मध्विव पिबति, स मृत्वा नरके उत्पन्नः, स कुमारस्तच्चर्म गृहीत्वा स्वनगराय प्रधावितः, तांश्च ग्रामेयकान् भणति–गच्छत भोः तस्मै अश्वग्रीवाय कथयत यथा तिष्ठ विश्वस्तः, तैर्गत्वा शिष्टं, रुष्टो दूतं विसृजति, एतौ पुत्रौ ममावलगके प्रस्थापय, त्वं वृद्धः, यतः पश्यामि सत्कारयामि राज्यानि च ददामि, तेन भणितम्–तिष्ठतां कुमारौ स्वयमेवावलगामीति, तदा स भणति–किं न प्रेषयसि ? अतो युद्धसज्जो निर्गच्छ, स दूतस्तैराधृष्य धाटितः, तदा सोऽश्वग्रीवः सर्वबलेनोपस्थितः, इतरेऽपि देशान्ते स्थिताः, सुबहुं कालं युध्वा हयगजरथनरादिक्षयं च प्रेक्ष्य कुमारेण दूतः प्रेषितो यथा–अहं च त्वं च द्वावपि युद्धं संप्रलगावः, किंवा बहुनाऽकारिजनेन मारितेन?, एवं भवत्विति, द्वितीयदिवसे रथैः संप्रलग्नाः, यदाऽऽयुधानि क्षीणानि, * ते थ. + अहो. † निग्गच्छति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे चक्कं मुयइ, तं तिविठ्ठुस्स तुंबेण उरे पडिअं, तेणेव सीसं छिन्नं, देवेहिं उग्घुट्ठं–जहेस तिविट्ठू पढमो वासुदेवो उप्पण्णोत्ति। ततो सवे रायाणो पणिवायमुवगता, उयविअं अड्ढभरहं, कोडिसिला दंडबाहाहिं धारिआ, एवं रहावत्तपव्वयसमीवे जुद्धं आसी। एवं परिहायमाणे बले कण्हेण किल जाणुगाणि जाव किहवि पाविआ। तिविट्ठू चुलसीइवाससयसहस्साइं सवाउयं पालइत्ता कालं काऊण सत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणे नरए तेत्तीसं सागरोवमट्ठितीऔ नेरइओ उववण्णो। अयमासां भावार्थः, अक्षरार्थस्त्वभिधीयते—राजगृहे नगरे विश्वनन्+दी राजाऽभूत्, विशाखभूतिश्च तस्य युव†राजेति, तत्र '‡जुवरण्णो'त्ति युवराजस्य धारिणीदेव्या विश्वभूति¶नामा पुत्र आसीत्, विशाखनन्दिश्चेतरस्य राज्ञ इत्य$र्थः, तत्रेत्थमधिकृतो मरीचिजीवः 'रायगिहे विस्सभूति'त्ति राजगृहे नगरे विश्वभूतिर्नाम विशाखभूतिसुतः क्षत्रियोऽभवत्, तत्र च वर्षकोट्यायुष्कमासीत्, तस्मिंश्च भवे वर्षसहस्रं 'दीक्षा' प्रव्रज्या कृता संभूतियतेः पार्श्वे। तत्रैव—

गोत्तासिउ महुराए सनिआणो मासिएण भत्तेणं। महसुक्के उववण्णो तओ चुओ पोअणपुरंमि ॥ ४४६ ॥

---

१ तदा चक्रं मुञ्चति, तत् त्रिपृष्ठस्य तुम्बेनोरसि पतितं, तेनैव शिरश्छिन्नं, देवैरुद्घुष्टम्–यथैष त्रिपृष्ठः प्रथमो वासुदेव उत्पन्न इति। ततः सर्वे राजानः प्रणिपातमुपागताः, उपचितं (साधितं) अर्धभरतं, कोटीशिला दण्डबाहुभ्यां धारिता, एवं रथावर्त्तपर्वतसमीपे युद्धमासीत्। एवं परिहीयमाणे बले कृष्णेन किल जानुनी यावत् कथमपि प्रापिता। त्रिपृष्ठश्चतुरशीतिवर्षशतसहस्राणि सर्वायुः पालयित्वा कालं कृत्वा सप्तम्यां पृथिव्यामप्रतिष्ठाने नरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकः नैरयिक उत्पन्नः। * द्वितीए. + ०न्दिर्नामा रा०. † नेदम्. ‡ नेदम्. ¶ भूतिर्नाम. $ इति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

गमनिका—पारणके प्रविष्टो गोत्रासितो मथुरायां निदानं चकार, मृत्वा च सनिदानोऽनालोचिताप्रतिक्रान्तो मासिकेन भक्तेन महाशुक्रे कल्पे उपपन्न उत्कृष्टस्थितिर्देव इति, 'ततो' महाशुक्राच्युतः पोतनपुरे नगरे—

पुत्तो पयावइस्सा मिआवईदेविकुच्छिसंभूओ । नामेण तिविट्ठुत्ती आइं आसी दसाराणं ॥ ४४७ ॥

गमनिका—पुत्रः प्रजापते राज्ञः मृगावतीदेवीकुक्षिसंभूतः नाम्ना त्रिपृष्ठः 'आदिः' प्रथमः आसीद् दसाराणां, तत्र वासुदेवत्वं चतुरशीतिवर्षशतसहस्राणि पालयित्वा अधः सप्तमनरकपृथिव्यामप्रतिष्ठाने नरके त्रयस्त्रिंश (ग्रन्थाग्रम् ४५००) त्सागरोपमस्थितिर्नारकः संजात इति ॥ ४४७ ॥ अमुमर्थं प्रतिपादयन्नाह—

चुलसीईमप्पइट्ठे सीहो नरएसु तिरियमणुएसु । पिअमित्त चक्कवट्टी मूआइ विदेहि चुलसीई ॥ ४४८ ॥

गमनिका—चतुरशीतिवर्षशतसहस्राणि वासुदेवभवे खल्वायुष्कमासीत्, तदनुभूय अप्रतिष्ठाने नरके समुत्पन्नः, तस्मादप्युद्वर्त्य सिंहो बभूव, मृत्वा च पुनरपि नरक एवोत्पन्न इति, 'तिरियमणुएसुत्ति' पुनः कतिचित् भवग्रहणानि तिर्यग्मनुष्येषूत्पद्य 'पिअमित्त चक्कवट्टी मूआइ विदेहि चुलसीइ'त्ति अपरविदेहे मूकायां राजधान्यां धनञ्जयनृपतेः धारिणीदेव्यां प्रियमित्राभिधानः चक्रवर्ती समुत्पन्नः, तत्र चतुरशीतिपूर्वशतसहस्राण्यायुष्कमासीदिति गाथार्थः ॥ ४४८ ॥

पुत्तो धणंजयस्सा पुट्टिल परिआउ कोडि सव्वट्ठे । णंदण* छत्तग्गाए पणवीसाउं सयसहस्सा ॥ ४४९ ॥

गमनिका—तत्रासौ प्रियमित्रः पुत्रो धनञ्जयस्य धारिणीदेव्याश्च भूत्वा चक्रवर्त्तिभोगान् भुक्त्वा कथञ्चित् संजातसं-

* णंदणो छत्तगाए.

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

वेगः सन् 'पोट्टिल* इति' प्रोष्ठिलाचार्यसमीपे प्रव्रजितः 'परिआओ कोडि सव्वहे' त्ति प्रव्रज्यापर्यायो वर्षकोटी बभूव, मृत्वा महाशुक्रे कल्पे सर्वार्थे विमाने सप्तदशसागरोपमस्थितिर्देवोऽभवत् 'णंदण छत्तग्गाए पणवीसाउं सयसहस्सेति' ततः सर्वार्थसिद्धाच्च्युत्वा छत्राग्रायां नगर्यां जितशत्रुनृपतेर्भद्रादेव्या नन्दनो नाम कुमार उत्पन्न इति, पञ्चविंशतिवर्षशतसहस्राण्यायुष्कमासीदितिगाथार्थः ॥ ४४९ ॥ तत्र च बाल एव राज्यं चकार, चतुर्विंशतिवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा ततः—

पव्वज्ज पुट्टिले सयसहस्स सव्वत्थ मासभत्तेणं । पुप्फुत्तरि उववण्णो तओ चुओ माहणकुलंमि ॥ ४५० ॥

गमनिका—राज्यं विहाय प्रव्रज्यां कृतवान् 'पोट्टिलत्ति' प्रोष्ठिलाचार्यान्तिके 'सयसहस्सं'ति वर्षशतसहस्रं यावदिति, कथम् ?, सर्वत्र मासभक्तेन–अनवरतमासोपवासेनेति भावार्थः, अस्मिन् भवे विंशति+भिः कारणैः तीर्थकरनामगोत्रं कर्म निका†चयित्वा मासिकया संलेखनयाऽऽत्मानं क्षपयित्वा षष्टिभक्तानि विहाय आलोचितप्रतिक्रान्तो मृत्वा 'पुप्फोत्तरे उववण्णोत्ति' प्राणतकल्पे पुष्पोत्तरावतंसके विमाने विंशतिसागरोपमस्थितिर्देव उत्पन्न इति । 'ततो चुओ माहणकुलंमित्ति' ततः पुष्पोत्तराच्च्युतः ब्राह्मणकुण्डग्रामनगरे ऋसभदत्तस्य ब्राह्मणस्य देवानन्दायाः पत्न्याः कुक्षौ समुत्पन्न इति गाथार्थः ॥ ४५० ॥ कानि पुनर्विंशतिः कारणानि ? यैस्तीर्थकरनामगोत्रं कर्म तेनोपनिबद्धमित्यत आह—

अरिहंतसिद्धपवयण०॥४५१॥दंसण०॥४५२॥अप्पुव्व०॥४५३॥पुरिमेण०॥४५४॥तं च कहं॥४५५॥निअमा० ॥४५६॥

* पोठिल इति. + विंशत्या (स्यात्). † निकाच्य (स्यात्).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

एता ऋषभदेवाधिकारे व्याख्यातत्वान्न विव्रियन्ते ।

माहणकुंडग्गामे कोडालसगुत्तमाहणो अत्थि । तस्स घरे उववण्णो देवाणंदाइ कुच्छिसि ॥ ४५७ ॥

अस्या व्याख्या—पुष्पोत्तराच्युतो ब्राह्मणकुण्डग्रामे नगरे कोडालसगोत्रो ब्राह्मणः ऋषभदत्ताभिधानोऽस्ति, तस्य गृहे उत्पन्नः, देवानन्दायाः कुक्षाविति गाथार्थः॥ ४५७॥ साम्प्रतं वर्धमानस्वामिवक्तव्यतानिबद्धां द्वारगाथामाह निर्युक्तिकारः—

सुमिण १ मवहार २ ऽभिग्गह ३ जम्मण ४ मभिसेअ ५ वुड्डि ६ सरणं ७ च ।
भेसण ८ विवाह ९ वच्चे १० दाणे ११ संबोह १२ निक्खमणे १३ ॥ ४५८ ॥

गमनिका—'सुमिणेति' महास्वप्ना वक्तव्याः, यान् तीर्थकरजनन्यः पश्यन्ति, यथा च देवानन्दया प्रविशन्तो निष्कामन्तश्च दृष्टाः, त्रिशलया च प्रविशन्त इति । 'अवहारत्ति' अपहरणमपहारः स वक्तव्यो यथा भगवानपहृत इति । 'अभिग्गहेत्ति' अभिग्रहो वक्तव्यः, यथा भगवता गर्भस्थेनैव गृहीत इति । 'जम्मणेति' जन्मविधिर्वक्तव्यः । 'अभिसेउत्ति' अभिषेको वक्तव्यः, यथा विबुधनाथाः कुर्वन्ति, 'वुड्डित्ति' वृद्धिर्वक्तव्या भगवतो यथाऽसौ वृद्धिं जगाम । 'सरणंति' जातिस्मरणं च वक्तव्यं । 'भेसणेति' यथा देवेन भेषितः तथा वक्तव्यं । 'विवाहेति' विवाहविधिर्वक्तव्यः । 'अवच्चेत्ति' अपत्यं–पुत्रभाण्डं वक्तव्यं । 'दाणेत्ति' निष्क्रमणकाले दानं वाच्यं । 'संबोहेति' संबोधनविधिर्वक्तव्यः यथा लोकान्तिकाः संबोधयन्ति । 'निक्खमणेत्ति' निष्क्रमणे च यो विधिरसौ वक्तव्य इति गाथासमुदायार्थः ॥ ४५८ ॥ अवयवार्थं तु प्रतिद्वारं वक्ष्यति भाष्यकार एव, तत्र स्वप्नद्वारावयवार्थमभिधित्सुराह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

भगवत् महावीर (वर्धमान)स्य संबंधे स्वप्न, अपहार, अभिग्रह आदि द्वाराणाम् कथनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१७८॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

गय १ वसह २ सीह ३ अभिसेअ ४ दाम ५ ससि ६ दिणयरं ७ झयं ८ कुम्भं ९।
पउमसर १० सागर ११ विमाणभवण १२ रयणुच्चय १३ सिहिं च १४॥ ४६॥ (भाष्यम्)

गमनिका—गजं वृषभं सिंहं अभिषेकं दाम शशिनं दिनकरं ध्वजं कुम्भं पद्मसरः सागरं विमानभवनं रत्नोच्चयं शिखिनं च, भावार्थः स्पष्ट एव, नवरं अभिषेकः–श्रियः परिगृह्यते, दाम–पुष्पदाम रत्नविचित्रं, विमानं च तद्भवनं च विमानभवनं–वैमानिकदेवनिवास इत्यर्थः, अथवा वैमानिकदेवप्रच्युतेभ्यः विमानं पश्यति, अधोलोकोद्वृत्तेभ्यस्तु भवनमिति, न तूभयमिति ॥

एए चउदस सुमिणे पासइ सा माहणी सुहपसुत्ता। जं रयणिं उववण्णो कुच्छिसि महायसो वीरो॥४७॥ (भा०)

गमनिका—एतान् चतुर्दश महास्वप्नान् पश्यति सा ब्राह्मणी सुखप्रसुप्ता, यस्यां रजन्यामुत्पन्नः कुक्षौ महायशा वीर इति। पश्यतीति निर्देशः पूर्ववत्, पाठान्तरं वा 'एए चोद्दस सुमिणे पेच्छिआ माहणी' ततश्च दृष्टवतीति गाथार्थः ॥

अह दिवसे बासीई वसइ तहिं माहणीइ कुच्छिसि। चिंतइ सोहम्मवई, साहरिउं जे जिणं कालो॥४८॥ (भा०)

गमनिका—अथ दिवसान् द्व्यशीतिं वसति तस्या ब्राह्मण्याः कुक्षाविति। अथानन्तरं एतावत्सु दिवसेषु अतिक्रान्तेषु चिन्तयति सौधर्मपतिः संहर्त्तुं 'जे' निपातः पादपूरणार्थः, जिनं कालो वर्त्तते इति गाथार्थः ॥ किमिति संह्रियत इत्याह— ॥१७८॥

अरहंत चक्कवट्टी बलदेवा चेव वासुदेवा य। एए उत्तमपुरिसा न हु तुच्छकुलेसु जायंति ॥ ४९॥ (भाष्यम्)

भावार्थः स्पष्ट एव, नवरं 'तुच्छकुलेषु' असारकुलेषु इति। केषु पुनः कुलेषु जायन्ते इत्याह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

उग्गकुलभोगखत्तिअकुलेसु इक्खागनायकोरव्वे । हरिवंसे अ विसाले आयंति तहिं पुरिससीहा ॥५०॥(भा०)

गमनिका—उग्रकुलभोजक्षत्रियकुलेषु इक्ष्वाकुज्ञातकौरव्येषु पुनः कुलेषु हरिवंशे च विशाले 'आयंति' आगच्छन्ति उत्पद्यन्त इत्यर्थः 'तत्र' उग्रकुलादौ 'पुरुषसिंहाः' तीर्थकरादय इति गाथार्थः॥ यस्मादेवं तस्माद् भुवनगुरुभक्त्या चोदितो देवराजो हरिणेगमेषिमभिहितवान्—एष भरतक्षेत्रे चरमतीर्थकृत् प्रागुपात्तकर्मशेषपरिणतिवशात् तुच्छकुले जातः, तदयमितः संहृत्य क्षत्रियकुले स्थाप्यतामिति। स हि तदादेशात्तथैव चक्रे। भाष्यकारस्तु अमुमेवार्थं 'अह भणती' त्यादिना प्रतिपादयति—

अह भणइ णेगमेसिं देविंदो एस इत्थ तित्थयरो। लोगुत्तमो महप्पा उववण्णो माहणकुलंमि ॥५१॥ (भा०)

गमनिका—'अथ' अनन्तरं भणति 'णेगमेसिं' ति प्राकृतशैल्या हरिणेगमेषिं देवेन्द्रः 'एष' भगवान् 'अत्र' ब्राह्मणकुले 'लोकोत्तमो' महात्मा उत्पन्न इति गाथार्थः ॥ इदं चासाधु, ततश्चेदं कुरु—

खत्तिअकुंडग्गामे सिद्धत्थो नाम खत्तिओ अत्थि। सिद्धत्थभारिआए साहर तिसलाइ कुच्छिंसि॥५२॥ (भा०)

गमनिका—क्षत्रियकुण्डग्रामे सिद्धार्थो नाम क्षत्रियोऽस्ति, तत्र सिद्धार्थभार्यायाः संहर त्रिशलायाः कुक्षाविति गाथार्थः ॥

बाढंति भाणिऊणं वासारत्तस्स पंचमे पक्खे । साहरइ पुव्वरत्ते हत्थुत्तर तेरसी दिवसे ॥ ५३ ॥ (भाष्यम्)

गमनिका–स हरिणेगमेषिः 'बाढंति भाणिऊणं'ति बाढमित्यभिधाय, अत्यर्थं करोमि आदेशं, शिरसि स्वाम्यादेशमिति, वर्षारात्रस्य पञ्चमे पक्षे मासद्वयेऽतिक्रान्ते अश्वयुग्बहुलत्रयोदश्यां संहरति पूर्वरात्रे–प्रथमप्रहरद्वयान्त इति भावार्थः, हस्तोत्तरायां त्रयोदशीदिवसे इति गाथार्थः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

गयगाहा ॥ ५४ ॥

एए चोद्दससुमिणे पासइ सा माहणी पडिनिअत्ते। जं रयणी अवहरिओ कुच्छीऑ महायसो वीरो॥५५॥(भा०)

पूर्ववत्। इदं नानात्वं—पश्यति सा ब्राह्मणी प्रतिनिवृत्तान् यस्यां रजन्याम् अपहृतः कुक्षितः महायशा वीर इति गाथार्थः ॥

गयगाहा ॥ ५६ ॥ (भाष्यम्)

एए चोद्दस सुमिणे पासइ सा तिसलया सुहपसुत्ता। जं रयणिं साहरिओ कुच्छिंसि महायसो वीरो॥५७॥ भा०

इदं गाथाद्वयं त्रिशलामधिकृत्य पूर्ववद्वाच्यम् ॥ गतमपहारद्वारम् , साम्प्रतमभिग्रहद्वारव्याचिख्यासयाऽऽह—

तिहि नाणेहि समग्गो देवी तिसलाइ सो अ कुच्छिंसि। अह वसइ सण्णिगब्भो छम्मासे अद्धमासं च॥५८॥भा०

गमनिका—'अथ' अपहारानन्तरं वसति संज्ञी चासौ गर्भश्चेति समासः, क ?–देव्याः त्रिशलायाः स तु* कुक्षौ, आह–सर्वो गर्भस्थः संज्ञ्येव भवतीति विशेषणवैफल्यं, न, दृष्टिवादोपदेशेन विशेषणत्वात्, स च ज्ञानद्वयवानपि भवत्यत आह–त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिभिः समग्रः। कियन्तं कालमित्याह–षण्मासान् अर्धमासं चेति गाथार्थः ॥

अह सत्तमंमि मासे गब्भत्थो चेवऽभिग्गहं गिण्हे। नाहं समणो होहं अम्मापिअरंमि जीवंते ॥ ५९ ॥ (भा०)

गमनिका—अथ सप्तमे मासे गर्भादारभ्य तयोर्मातापित्रोर्गर्भप्रयत्नकरणेनात्यन्तस्नेहं विज्ञाय अहो ममोपर्यतीव अनयोः स्नेह इति यद्यहमनयोः जीवतोः प्रव्रज्यां गृह्णामि नूनं न भवत एतावित्यतो गर्भस्थ एव अभिग्रहं गृह्णाति, ॥१७९॥

* अ (मूले)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ज्ञानत्रयोपेतत्वात् । किंविशिष्टमित्याह–नाहं श्रमणो भविष्यामि मातापित्रोर्जीवतोरिति गाथार्थः ॥ एवं—

दोण्हं वरमहिलाणं गब्भे वसिऊण गब्भसुकुमालो । नवमासे पडिपुण्णे सत्त य दिवसे समइरेगे ॥६०॥(भा०)

गमनिका—द्वयोर्वरमहिलयोः गर्भे उषित्वा गर्भे सुकुमारः गर्भसुकुमारः, प्रायः अप्राप्तदुःख इत्यर्थः । कियन्तं कालम् ? नव मासान् प्रतिपूर्णान् सप्त दिवसान् 'सातिरेकान्' समधिकान् इति गाथार्थः ॥

अह चित्तसुद्धपक्खस्स तेरसीपुव्वरत्तकालंमि । हत्थुत्तराहिं जाओ कुण्डग्गामे महावीरो ॥ ६१ ॥ (भाष्यम्)

गमनिका—'अथ' अनन्तरं चैत्रस्य शुद्धपक्षः चैत्रशुद्धपक्षः तस्य चैत्रशुद्धपक्षस्य त्रयोदश्यां पूर्वरात्रकाले–प्रथमप्रहरद्वयान्त इति भावार्थः । हस्तोत्तरायां जातः हस्त उत्तरो यासां ता हस्तोत्तराः–उत्तराफाल्गुन्य इत्यर्थः । कुण्डग्रामे महावीर इति ॥ जातकर्म दिक्कुमार्यादिभिर्निर्वर्त्तितं पूर्ववदवसेयं, किञ्चित्प्रतिपादयन्नाह—

आभरणरयणवासं वुट्ठं तित्थंकरंमि जायंमि । सक्को अ देवराया उवागओ आगया निहओ ॥ ६२ ॥ (भा०)

गमनिका—आभरणानि–कटककेयूरादीनि रत्नानि–इन्द्रनीलादीनि तद्वर्षं–वृष्टिं तीर्थकरे जाते सति, शक्रश्च देवराज उपागतस्तत्रैव, तथा आगताः पद्मादयो निधय इति गाथार्थः ॥

तुट्ठाओ देवीओ देवा आणंदिआ सपरिसागा । भयवंमि वद्धमाणे तेलुक्कसुहावहे जाए ॥ ६३ ॥ (भाष्यम्)

व्याख्या—तुष्टा देव्यः देवा आनन्दिताः सह परिषद्भिः वर्त्तन्त इति सपरिषदः भगवति वर्धमाने त्रैलोक्यसुखावहे जाते सतीति गाथार्थः ॥ गतं जन्मद्वारं, अभिषेकद्वारावयवार्थं प्रतिपादयन्नाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१८०॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी अ।सव्विड्ढीइ सपरिसा चउव्विहा आगया देवा ॥ ६४॥ (भा०)

गमनिका—भवनपतयश्च व्यन्तराश्च ज्योतिर्वासिनश्चेति समासः, विमानवासिनश्च सर्वर्ध्या सपरिषदः चतुर्विधा आगता देवा इति गाथार्थः ॥

देवेहिं संपरिवुडो देविंदो गिण्हिऊण तित्थयरं।नेऊण मंदरगिरिं अभिसेअं तत्थ कासीअ ॥ ६५॥ (भाष्यम्)

व्याख्या—देवैः संपरिवृतो देवेन्द्रो गृहीत्वा तीर्थकरं नीत्वा मन्दरगिरिं 'अभिसेअं' ति अभिषेकं तत्र कृतवांश्चेति गाथार्थः ॥

काऊण य अभिसेअं देविंदो देवदाणवेहि समं । जणणीइ समप्पित्ता जम्मणमहिमं च कासीअ ॥६६॥ (भा०)

गमनिका—कृत्वा चाभिषेकं देवेन्द्रो देवदानवैः सार्धं, देवग्रहणात् ज्योतिष्कवैमानिकग्रहणं, दानवग्रहणात् व्यन्तरभवनपतिग्रहणमिति । ततो जनन्याः समर्प्य जन्ममहिमां च कृतवान् स्वर्गे नन्दीश्वरे द्वीपे चेति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं यदिन्द्रादयो भुवननाथेभ्यो भक्त्या प्रयच्छन्ति तद्दर्शनायाह—

खोमं कुंडलजुअलं सिरिदामं चेव देइ सक्को से।मणिकणगरयणवासं उवच्छुभे जंभगा देवा ॥ ६७॥ (भा०)

गमनिका—'क्षौमं' देववस्त्रं 'कुण्डलयुगलं' कर्णाभरणं 'श्रीदाम' अनेकरत्नखचितं दर्शनसुभगं भगवतो ददाति शक्रः 'से' तस्य । इत्थं निर्देशस्त्रिकालगोचरसूत्रप्रदर्शनार्थः । 'जृम्भकाः' व्यन्तरा देवाः, शेषं सुगममिति गाथार्थः ॥ ॥१८०॥

वेसमणवयणसंचोइआ उ ते तिरिअजंभगा देवा।कोडिग्गसो हिरण्णं रयणाणि अ तत्थ उवणिंति ॥६८॥ (भा०)

गमनिका—वैश्रमणवचनसंचोदितास्तु ते तिर्यग्जृम्भका देवाः । तिर्यगिति तिर्यग्लोकजृम्भकाः 'कोट्यग्रशः' कोटीप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

रिमाणतः 'हिरण्यम्' अघटितरूपं 'रत्नानि च' इन्द्रनीलादीनि तत्रोपनयन्तीति गाथार्थः ॥ गतमभिषेकद्वारं, इदानीं वृद्धिद्वारावयवार्थमाह—

अह वड्ढइ सो भयवं दिअलोअचुओ अणोवमसिरीओ। दासीदासपरिवुडो परिकिण्णो पीढमद्देहिं ॥६९॥(भा०)

अस्य व्याख्या—अथ वर्धते स भगवान् देवलोकच्युतः अनुपमश्रीको दासीदासपरिवृतः 'परिकीर्णः पीठमर्दैः' महानृपतिभिः परिवृत इति गाथार्थः ॥ द्वारम् ।

असिअसिरओ सुनयणो० ॥ ७० ॥ जाईसरो अ भयवं० ॥ ७१ ॥ (भाष्यम्)

गाथाद्वयमिदं ऋषभदेवाधिकार इव द्रष्टव्यम् ॥ भेषणद्वारावयवार्थमाह—

अह ऊणअट्ठवासस्स भगवओ सुरवराण मज्झंमि । संतगुणुं*कित्तणयं करेइ सक्को सुहम्माए ॥ ७२ ॥ (भा०)

गमनिका—'अथ' अनन्तरं न्यूनाष्टवर्षस्य भगवतः सतः सुरवराणां मध्ये सन्तश्च ते गुणाश्च सद्गुणाः तेषां कीर्त्तनं—शब्दनमिति समासः, करोति 'शक्रो' देवराजः 'सुधर्मायां' सभायां व्यवस्थित इति गाथार्थः ॥ किंभूतमित्यत आह—

बालो अबालभावो अबालपरक्कमो महावीरो । न हु सक्कइ भेसेउं अमरेहिं सइंदएहिंपि ॥७३॥ (भाष्यम्)

गमनिका—बालः न बालभावोऽबालभावः, भावः—स्वरूपं, न बालपराक्रमोऽबालपराक्रमः, पराक्रमः—चेष्टा, 'शूर वीर

* गुणकित्तणयं (वृत्तौ).

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

विक्रान्ता' विति कषायादिशत्रुजयाद् विक्रान्तो वीरः, महांश्चासौ वीरश्चेति महावीरः, नैव शक्यते भेषयितुं 'अमरैः' देवैः सेन्द्रैरपीति गाथार्थः ॥

तं वयणं सोऊणं अह एगु सुरो असद्दहंतो उ। एइ जिणसण्णिगासं तुरिअं सो भेसणट्ठाए ॥ ७४॥ (भाष्यम्)

गमनिका—तद्वचनं श्रुत्वा अथैकः 'सुरो' देवः अश्रद्धानस्तु–अश्रद्दधान इत्यर्थः, 'एति' आगच्छति 'जिनसन्निकाशं' जिनसमीपं त्वरितमसौ, किमर्थम् ?–'भेषणार्थम्' भेषणनिमित्तमिति गाथार्थः ॥ स चागत्य इदं चक्रे—

सप्पं च तरुवरंमी काउं तिंदूसएण डिंभं च। पिट्ठी मुट्ठीइ हओ वंदिअ वीरं पडिनिअत्तो ॥ ७५ ॥ (भा०)

अस्या भावार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—देवो[1] भगवओ सकाशमागओ, भगवं पुण चेडरूवेहिं समं रुक्खखेड्डेण कीलइ, तेसु रुक्खेसु जो पढमं विलग्गति जो य पढमं ओलुहति सो चेडरूवाणि वाहेइ, सो अ देवो आगंतूण हेट्ठओ रुक्खस्स सप्परूवं विउवित्ता अच्छइ उप्परामुहो, सामिणा अमूढेण वामहत्थेण सत्ततिलमित्तत्ते छूढो, ताहे देवो चिंतेइ–एत्थ ताव न छलिओ। अह पुणरवि सामी तेंदूसएण रमइ, सो य देवो चेडरूवं विउविऊण सामिणा समं अभिरमइ, तत्थ सामिणा

१ देवो भगवतः सकाशमागतः, भगवान्पुनः चेटरूपैः समं वृक्षक्रीडया क्रीडति, तेषु वृक्षेषु यः प्रथममारोहति यश्च प्रथममवरोहति स चेटरूपाणि वाहयति, स च देव आगत्याधो वृक्षस्य सर्परूपं विकुर्व्य तिष्ठति उपरिमुखः, स्वामिना अमूढेन वामहस्तेन सप्ततालमात्रतस्त्यक्तः, तदा देवश्चिन्तयति–अत्र तावन्न छलितः। अथ पुनरपि स्वामी तिन्दूसकेन रमते, स च देवश्चेटरूपं विकुर्व्य स्वामिना सममभिरमते, तत्र स्वामिना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

सो जिओ, तस्स उवरिं विलग्गो, सो य वड्डिउं पवत्तो पिसायरूवं विउव्वित्ता, तं सामिणा अभीएण तलप्पहारेण पहओ जहा तत्थेव णिब्बुड्डो, एत्थवि न तिण्णो छलिउं, देवो वंदित्ता गओ। अयं पुनरक्षरार्थः—सर्पं च तरुवरे कृत्वा 'तेन्दूसकेन' क्रीडाविशेषेण हेतुभूतेन 'डिम्भं च' बालरूपं च, कृत्वेत्यनुवर्त्तते । पृष्ठौ मुष्टिना हतः वन्दित्वा वीरं प्रतिनिवृत्त इत्यक्षरार्थः ॥ अन्यदा भगवन्तमधिकाष्टवर्षं कलाग्रहणयोग्यं विज्ञाय मातापितरौ लेखाचार्याय उपनीतवन्तौ । आह च—

अह तं अम्मापिअरो जाणित्ता अहिअअट्ठवासं तु । कयकोउअलंकारं लेहायरिअस्स उवणिंति ॥७६॥ (भा०)

गमनिका—'अथ' अनन्तरं भगवन्तं मातापितरौ ज्ञात्वा अधिकाष्टवर्षं तु कृतानि रक्षादीनि कौतुकानि केयूरादयोऽलङ्काराश्च यस्येति समासः, तं 'लेखाचार्याय' उपाध्यायायेत्यर्थः । 'उवणेंति' त्ति प्राकृतशैल्या उपनयतः, पाठान्तरं वा 'उवणेंसु' तदा उपनीतवन्त इति गाथार्थः ॥ अत्रान्तरे देवराजस्य खल्वासनकम्पो बभूव, अवधिना च विज्ञायेदं प्रयोजनं अहो खल्वपत्यस्नेहविलसितं भुवनगुरुमातापित्रोः येन भगवन्तमपि लेखाचार्याय उपनेतुमभ्युद्यतौ इति संप्रधार्य आगत्य चोपाध्यायतीर्थकरयोः परिकल्पितयोः बृहदल्पयोरासनयोः उपाध्यायपरिकल्पिते बृहदासने भगवन्तं निवेश्य शब्दलक्षणं पृष्टवान् ॥ अमुमेवार्थं प्रतिपादयति भाष्यकारः 'सक्को अ०' इत्यादिनेति ।

सक्को अ तस्समक्खं भगवंतं आसणे निवेसित्ता । सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं ॥७७॥ (भा०)

१ स जितः तस्योपरि विलग्नः, स च वर्धितुं प्रवृत्तः पिशाचरूपं विकुर्व्य, तथा स्वामिनाऽभीतेन तलप्रहारेण प्रहतः यथा तत्रैव निमग्नः, अत्रापि न शक्तश्छलितुं, देवो वन्दित्वा गतः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—शक्रश्च 'तत्समक्षं' लेखाचार्यसमक्षं 'भगवंतं' तीर्थकरं आसने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति । पाठान्तरं वा 'पुच्छिसु सद्दलक्खणं, वागरणं अवयवा इंदं' पृष्टवान् शब्दलक्षणं, भगवता च व्याकरणमभ्यधायि, व्याक्रियन्ते लौकिकसामयिकाः शब्दा अनेनेति व्याकरणं–शब्दशास्त्रं, तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातमिति गाथार्थः ॥ द्वारम् । विवाहद्वारावयवार्थमभिधित्सयाऽऽह—

उम्मुक्कबालभावो कमेण अह जोव्वणं अणुप्पत्तो । भोगसमत्थं णाउं अम्मापिअरो उ वीरस्स ॥ ७८ ॥ (भा०)

गमनिका—एवं उन्मुक्तो बालभावो येनेति समासः, 'क्रमेण' उक्तप्रकारेण 'अथ' अनन्तरं 'यौवनं' वयोविशेषलक्षणं बालादिभावात् पश्चात् प्राप्तः अनुप्राप्तः । अत्रान्तरे भुज्यन्त इति भोगाः–शब्दादयः तेषां समर्थो भोगसमर्थः तं ज्ञात्वा भगवन्तं, कौ ?–मातापितरौ तु वीरस्येति गाथार्थः ॥ किम् ?—

तिहिरिक्खंमि पसत्थे महन्तसामन्तकुलपसूआए । कारंति पाणिगहणं जसोअवररायकण्णाए ॥ ७९ ॥ (भा०)

गमनिका—तिथिश्च ऋक्षं च तिथिऋक्षं, ऋक्षं–नक्षत्रं, तस्मिन् तिथिऋक्षे, 'प्रशस्ते' शोभने, महच्च तत्सामन्तकुलं च महासामन्तकुलं तस्मिन् प्रसूतेति समासः तया, कारयतः मातापितरौ, पाणेर्ग्रहणं पाणिग्रहणं, कया ?–यशोदा चासौ वरराजकन्या चेति विग्रहः तया, तत्र 'महासामन्तकुलप्रसूतया' इत्यनेनान्वयमहत्त्वमाह, 'वरराजकन्यया' इत्यनेन तु तत्कालराज्यसंपद्युक्ततामाहेति गाथार्थः ॥ द्वारम् । अपत्यद्वारावयवार्थं व्याचिख्यासुराह— ॥१८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पंचविहे माणुस्से भोगे भुंजितु सह जसोआए । तेयसिरिंव सुरूवं जणेइ पिअदंसणं धूअं ॥८०॥ (भा०)

गमनिका—'पञ्चविधान्' पञ्चप्रकारान् शब्दादीन् मनुष्याणामेते मानुष्यास्तान् भोगान् भुक्त्वा 'ततो' यशोदायाः, तेजसः श्रीः तेजःश्रीः तां तेजःश्रियमिव सुरूपां, अथवा तस्याः श्रियमिवेति पाठान्तरं वा । जनयति प्रियदर्शनां 'धुतां' दुहितरं, 'जणिंसु' वा पाठः, जनितवानिति गाथार्थः॥ द्वारम् । अत्रान्तरे च भगवतः मातापितरौ कालगतौ, भगवानपि तीर्णप्रतिज्ञः प्रव्रज्याग्रहणाहितमतिः नन्दिवर्धनपुरस्सरं स्वजनमापृच्छति स्म, स पुनराह–भगवन् ! क्षारं क्षते मा क्षिपस्व, कियन्तमपि कालं तिष्ठ, भगवानाह–कियन्तम् ?, स्वजन आह–वर्षद्वयं, भगवानाह–भोजनादौ मम व्यापारो न वोढव्य इति, प्रतिपन्ने भगवान् समधिकं वर्षद्वयं प्रासुकैषणीयाहारः शीतोदकमप्यपिबन् तस्थौ, अत्रान्तर एव महादानं दत्तवान्, लोकान्तिकैश्च प्रतिबोधितः पुनः पूर्णावधिः प्रव्रजित इति॥ अमुमेवार्थं संक्षेपतः प्रतिपादयन् आह निर्युक्तिकृत्—

हत्थुत्तरजोएणं कुंडग्गामंमि खत्तिओ जच्चो । वज्जरिसहसंघयणो भविअजणविबोहओ वीरो ॥ ४५९ ॥
सो देवपरिग्गहिओ तीसं वासाइ वसइ गिहवासे । अम्मापिईहिँ भयवं देवत्तगएहिँ पव्वइओ ॥ ४६० ॥

गमनिका—'हस्तोत्तरायोगेन' उत्तराफाल्गुनीयोगेनेत्यर्थः, कुण्डग्रामे नगरे क्षत्रियो 'जात्यः' उत्कृष्ट इत्यर्थः, वज्रऋषभसंहननो भव्यजनविबोधको वीरः, किम् ?–मातापितृभ्यां भगवान् देवत्वगताभ्यां प्रव्रजित इति योगः । द्वितीयगाथाग-

* तओ वृत्तौ प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मनिका–'सः' भगवान् देवपरिगृहीतः त्रिंशद्वर्षाणि वसति, उषित्वा वा पाठान्तरं, गृहवासे शेषं व्याख्यातमेव ॥ ४५९–४६० ॥ साम्प्रतं भाष्यकारः प्रतिद्वारं अवयवार्थं व्याख्यानयति–'संवच्छरेण०' गाथेत्यादिना—

संवच्छरेण० ॥८१॥ एगा हिरण्ण० ॥८२॥ सिंघाडय० ॥८३॥ वरवरिआ० ॥८४॥ तिण्णेव य० ॥८५॥ (भा०)

इदं गाथापञ्चकं ऋषभदेवाधिकारे व्याख्यातत्वान्न विव्रियते ॥ द्वारम् । संबोधनद्वारावयवार्थमाह—

सारस्सयमाइच्चा० ॥ ८६ ॥ एए देवनिकाया० ॥ ८७ ॥ (भा०)

एवं अभिथुव्वंतो बुद्धो बुद्धारविंदसरिसमुहो । लोगंतिगदेवेहिं कुंडग्गामे महावीरो ॥ ८८ ॥ (भा०)

इदमपि गाथात्रयं व्याख्यातत्वात् न प्रतन्यते । आह–ऋषभदेवाधिकारे 'संबोहणपरिच्चाएत्ति' इत्यादिद्वारगाथायां संबोधनोत्तरकालं परित्यागद्वारमुक्तं, तथा मूलभाष्यकृता व्याख्या कृतेति, अधिकृतद्वारगाथायां तु 'दाणे संबोध निक्खमणे' इत्यभिहितं, इत्थं व्याख्या (च) कृतेति । ततश्च इह दानद्वारस्य संबोधनद्वारात् पूर्वमुपन्यासः तत्र वा संबोधनद्वारादुत्तरं परित्यागद्वारस्य विरुध्यत इति, उच्यते, न सर्वतीर्थकराणामयं नियमो यदुत–संबोधनोत्तरकालभाविनी महादानप्रवृत्तिरिति, अधिकृतग्रन्थोपन्यासान्यथानुपपत्तेः, नियमेऽपीह दानद्वारस्य बहुतरवक्तव्यत्वात् संबोधनद्वारात् प्रागुपन्यासो न्यायप्रदर्शनार्थोऽविरुद्ध एव, अधिकृतद्वारगाथानियमे तु व्यत्ययेन परिहारः–तत्राल्पवक्तव्यत्वात् संबोधनद्वारस्य प्रागुपन्यासः, इत्येतावन्तः संभविनः पक्षाः, तत्त्वं तु विशिष्टश्रुतविदो जानन्तीति अलं प्रसङ्गेन ॥ द्वारम् । साम्प्रतं निष्क्रमणद्वारावयवार्थं व्याचिख्यासुराह— ॥१८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मणपरिणामो अ कओ अभिनिक्खमणंमि जिणवरिंदेण।देवेहिँ य देवीहिँ य समंतओ उच्छयं गयणं॥८९॥ (भा०)

गमनिका—मनःपरिणामश्च कृतः 'अभिनिष्क्रमणे' इति अभिनिष्क्रमणविषयो जिनवरेन्द्रेण, तावत् ;किं संजातमित्याह–देवैर्देवीभिश्च 'समन्ततः' सर्वासु दिक्षु 'उच्छयं गयणं' ति व्याप्तं गगनमिति गाथार्थः ॥

भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी अ। धरणियले गयणयले विज्जुज्जोओ कओ खिप्पं ॥९०॥ (भा०)

गमनिका—यैर्देवैः गगनतलं व्याप्तं ते खल्वमी वर्त्तन्ते–भवनपतयश्च व्यन्तराश्च ज्योतिर्वासिनश्चेति समासः, ज्योतिः–शब्देन इह तदालया एवोच्यन्ते, विमानवासिनश्च । अमीभिरागच्छद्भिः धरणितले गगनतले विद्युतामिवोद्योतो विद्युदुद्योतः कृतः 'क्षिप्रं' शीघ्रमिति गाथार्थः ॥

जाव य कुंडग्गामो जाव य देवाण भवणआवासा। देवेहिँ य देवीहिँ य अविरहिअं संचरंतेहिं ॥ ९१ ॥ (भा०)

गमनिका—यावत् कुण्डग्रामो यावच्च देवानां भवनावासां अत्रान्तरे धरणितलं गगनतलं च देवैः देवीभिश्च 'अविरहितं' व्याप्तं संचरद्भिरिति गाथार्थः ॥ अत्रान्तरे देवैरेव भगवतः शिबिकोपनीता, तामारुह्य भगवान् सिद्धार्थवनमगमत्, अमुमेवार्थं प्रतिपादयति–'चंदप्पभा येत्यादिना'—

चन्दप्पभा य सीआ उवणीआ जम्मजरणमुक्कस्स। आसत्तमल्लदामा जलयथलयदिव्वकुसुमेहिं ॥९२॥ (भा०)

व्याख्या—चन्द्रप्रभा शिबिकेत्यभिधानं 'उपनीता' आनीता, कस्मै ?–जरामरणाभ्यां मुक्तवत् मुक्तः तस्मै–वर्धमानाये-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

त्यर्थः, षष्ठी चतुर्थ्यर्थे द्रष्टव्या । किंभूता सेत्याह–आसक्तानि माल्यदामानि यस्यां सा तथोच्यते, तथा जलजस्थलजदिव्यकुसुमैः, चर्चितेति वाक्यशेषः इति गाथार्थः ॥ शिबिकाप्रमाणदर्शनायाह—

पंचासइ आयामा धणूणि विच्छिण्ण पण्णवीसं तु । छत्तीसइमुव्विद्धा सीया चंदप्पभा भणिआ ॥९३॥ (भा०)

व्याख्या—पञ्चाशत् धनूंषि आयामो–दैर्घ्यं यस्याः सा पञ्चाशदायामा धनूंषि, विस्तीर्णा पञ्चविंशत्येव, षट्त्रिंशद्धनूंषि 'उविद्धत्ति' उच्चा, उच्चैस्त्वेन षट्त्रिंशद्धनूंषीति भावार्थः, शिबिका चन्द्रप्रभाभिधाना 'भणिता' प्रतिपादिता तीर्थकरगणधरैरिति, अनेन शास्त्रपारतन्त्र्यमाहेति गाथार्थः ॥

सीआइ मज्झयारे दिव्वं मणिकणगरयणचिंचइअं। सीहासणं महरिहं सपायवीढं जिणवरस्स ॥९४॥ (भा०)

व्याख्या—शिबिकाया मध्य एव मध्यकारस्तस्मिन् 'दिव्यं' सुरनिर्मितं मणिकनकरत्नखचितं सिंहासनं महार्हं, तत्र मणयः–चन्द्रकान्ताद्याः कनकं–देवकाञ्चनं रत्नानि–मरकतेन्द्रनीलादीनि 'चिंचइअं' ति देशीवचनतः खचितमित्युच्यते । सिंहप्रधानमासनं सिंहासनं, महान्तं–भुवनगुरुमर्हतीति महार्हं, सह पादपीठेनेति सपादपीठं, जिनवरस्य, कृतमिति वाक्यशेषः इति गाथार्थः ॥

आलइअमालमउडो भासुरबोंदी पलंबवणमालो । सेययवत्थनियत्थो जस्स य मोल्लं सयसहस्सं ॥ ९५ ॥ ॥१८४॥

छट्ठेणं भत्तेणं अज्झवसाणेण सोहँणेण जिणो । लेसाहिँ विसुज्झंतो आरुहई उत्तमं सीअं ॥ ९६ ॥ (भा०)

* सुंदरेण वृत्तौ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

व्याख्या—आलइअं आविद्धमुच्यते, माला-अनेकसुरकुसुमग्रथिता, मुकुटस्तु प्रसिद्ध एव, माला च मुकुटश्च मालामुकुटौ आविद्धौ मालामुकुटौ यस्येति विग्रहः । भास्वरा-छायायुक्ता बोन्दी-तनुः यस्य स तथाविधः, प्रलम्बा वनमाला-प्रागभिहिता अन्या वा यस्येति समासः । 'सेययवत्थनियत्थो' त्ति नियत्थं-परिहितं भण्णइ, निवसितं श्वेतं वस्त्रं येन स निवसितश्वेतवस्त्रः, बन्धानुलोम्यात् निवसितशब्दस्य सूत्रान्ते प्रयोगः, लक्षणतस्तु बहुव्रीहौ निष्ठान्तं पूर्वं निपततीति पूर्वं द्रष्टव्यः, श्वेतवस्त्रपरिधान इत्यर्थः । यस्य च मूल्यं शतसहस्रं दीनाराणामिति गाथार्थः ॥ स एवंभूतो भगवान् मार्गशीर्षबहुलदशम्यां हस्तोत्तरानक्षत्रयोगेन 'छट्ठेणं भत्तेणं' इत्यादि, षष्ठेन भक्तेन, दिनद्वयमुपोषित इत्यर्थः । अध्यवसानं-अन्तःकरणसव्यपेक्षं विज्ञानं तेन 'सुन्दरेण' शोभनेन 'जिनः' पूर्वोक्तः, तथा लेश्याभिर्विशुध्यमानः मनोवाक्कायपूर्विकाः कृष्णादिद्रव्यसंबन्धजनिताः खलु आत्मपरिणामाः लेश्या इति, उक्तं च-"कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः। स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रयुज्यते ॥१॥" ताभिः विशुध्यमानः, किम् ?-आरोहति 'उत्तमां' प्रधानां शिबिकामिति गाथार्थः ॥

सीहासणे निसण्णो सक्कीसाणा य दोहि पासेहिं । वीअंति चामरेहिं मणिकणगविचित्तदंडेहिं ॥९७॥ (भा०)

व्याख्या—तत्र भगवान् सिंहासने निषण्णः शक्रेशानौ च देवनाथौ द्वयोः पार्श्वयोः व्यवस्थितौ, किम् ?-वीजयतः, काभ्याम् ?-चामराभ्यां, किंभूताभ्याम् ?-मणिरत्नविचित्रदण्डाभ्यामिति गाथार्थः ॥ एवं भगवति शिबिकान्तर्वर्तिनि सिंहासनारूढे सति सा शिबिका सिद्धार्थोद्यानानयनाय उत्क्षिप्ता ॥ कैरित्याह—

* ०रयण० वृत्तौ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१८५॥ हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

पुव्विं उक्खित्ता माणुसेहिँ सा हट्ठरोमकूवेहिं। पच्छा वहंति सीअं असुरिंदसुरिंदनागिंदा ॥ ९८ ॥ (भा०)

व्याख्या—'पूर्वं' प्रथमं 'उत्क्षिप्ता' उत्पाटिता, कैः?—मानुषैः, सा शिबिका, किंविशिष्टैः?—हृष्टानि रोमकूपानि येषामितिसमासः, तैः। पश्चाद्वहन्ति शिबिकां, के?—असुरेन्द्रसुरेन्द्रनागेन्द्रा इति गाथार्थः॥ असुरादिस्वरूपव्यावर्णनायाह—

चलचवलभूसणधरा सच्छंदविउव्विआभरणधारी। देविंददाणविंदा वहंति सीअं जिणिंदस्स ॥ ९९ ॥ (भा०)

गमनिका—चलाश्च ते चपलभूषणधराश्चेति समासः। चलाः—गमनक्रियायोगात् हारादिचपलभूषणधराश्च। स्वच्छन्देन—स्वाभिप्रायेण विकुर्वितानि—देवशक्त्या कृतानि आभरणानि—कुण्डलादीनि धारयितुं शीलं येषामिति समासः। अथवा चलचपलभूषणधरा इत्युक्तं, तानि च भूषणानि किं ते परनिर्मितानि धारयन्ति उत नेति विकल्पसंभवे व्यवच्छेदार्थमाह—'स्वच्छन्दविकुर्विताभरणधारिणः', क एते?-देवेन्द्रा दानवेन्द्राः, किम्?-वहन्ति शिबिकां जिनेन्द्रस्येति गाथार्थः॥ अत्रान्तरे—

कुसुमाणि पंचवण्णाणि मुयंता दुंदुही य ताडंता। देवगणा य पहट्ठा समंतओ उच्छयं गयणं ॥ १०० ॥ (भा०)

व्याख्या—भगवति शिबिकारूढे गच्छति सति नभःस्थलस्थाः कुसुमानि शुक्लादिपञ्चवर्णानि मुञ्चन्तः तथा दुदुम्भींस्ताडयन्तश्च, के?—'देवगणाः' देवसंघाताः, चशब्दस्य प्राक्संबन्धो व्यवहितः प्रदर्शित एव, प्रकर्षेण हृष्टाः प्रहृष्टाः, किम्?—भगवन्तमेव स्तुवन्तीति क्रियाऽध्याहारः। एवं स्तुवद्भिर्देवैः किमित्याह—'समन्ततः' सर्वासु दिक्षु सर्वं 'उच्छयं गगणं' ॥१८५॥
व्याप्तं गगनमिति गाथार्थः॥

वणसंडोव्व कुसुमिओ पउमसरो वा जहा सरयकाले। सोहइ कुसुमभरेणं इय गगणयलं सुरगणेहिं ।१०१। भा०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

भगवतः दीक्षा (अभिनिष्क्रमण) स्य वर्णनम्

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गमनिका—वनखण्डमिव कुसुमितं पद्मसरो वा यथा शरत्काले शोभते कुसुमभरेण–हेतुभूतेन, 'इय' एवं गगनतलं सुरगणैः शुशुभे इति गाथार्थः ॥

सिद्धत्थवणं च(व)जहा असणवणं सणवणं असोगव णं।चूअवणंव कुसुमिअं इअगयणयलं सुरगणेहिं१०२(भा०)

व्याख्या—सिद्धार्थकवनमिव यथा असनवनं, अशनाः–बीजकाः, सणवनं अशोकवनं चूतवनमिव कुसुमितं, 'इअ' एवं गगनतलं सुरगणै रराजेति गाथार्थः ॥

अयसिवणं व कुसुमिअं कणिआरवणं व चंपयवणं व ।
तिलयवणं व कुसुमिअं इअ गयणतलं सुरगणेहिं ॥ १०३ ॥ (भा०)

व्याख्या—अतसीवनमिव कुसुमितं, अतसी–मालवदेशप्रसिद्धा, कर्णिकारवनमिव चम्पकवनमिव तथा तिलकवनमिव कुसुमितं यथा राजते, 'इअ' एवं गगनतलं सुरगणैः क्रियायोगः पूर्ववदिति गाथार्थः ॥

वरपडहभेरिझल्लरिदुंदुहिसंखसहिएहिँ तूरेहिं। धरणियले गयणयले तूरनिनाओ परमरम्मो ॥ १०४ ॥ (भा०)

व्याख्या—वरपटहभेरिझल्लरिदुन्दुभिशङ्खसहितैस्तूर्यैः करणभूतैः, किम् ?–धरणितले गगनतले 'तूर्यनिनादः' तूर्यनिर्घोषः परमरम्योऽभवदिति गाथार्थः ॥

एवं सदेवमणुआसुराएँ परिसाएँ परिवुडो भयवं। अभिथुव्वंतो गिराहिं संपत्तो नायसंडवणं ॥१०५॥ (भा०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१८६॥ गमनिका—'एवं' उक्तेन विधिना, सह देवमनुष्यासुरैर्वर्त्तत इति सदेवमनुष्यासुरा तया, कयेत्याह—परिषदा परि- हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १
वृतो भगवान् अभिस्तूयमानो 'गीर्भिः' वाग्भिरित्यर्थः, संप्राप्तः ज्ञातखण्डवनमिति गाथार्थः ॥

उज्जाणं संपत्तो ओरुभइ उत्तमाउ सीआओ । सयमेव कुणइ लोअं सक्को से पडिच्छए केसे ॥ १०६ ॥ (भा०)

गमनिका—उद्यानं संप्राप्तः, 'ओरुहइत्ति' अवतरति उत्तमायाः शिबिकायाः, तथा स्वयमेव करोति लोचं, 'शक्रो' देवराजा 'से' तस्य प्रतीच्छति केशानिति, एवं वृत्तानुवादेन ग्रन्थकारवचनत्वात् वर्त्तमाननिर्देशः सर्वत्र अविरुद्ध एवेति गाथार्थः ॥

' जिणवरमणुण्णवित्ता अंजणघणरुयगविमलसंकासा ।
केसा खणेण नीआ खीरसरिसनामयं उदहिं ॥ १०७ ॥ (भा०)

गमनिका—शक्रेण—जिनवरमनुज्ञाप्य अञ्जनं—प्रसिद्धं घनो—मेघः रुक्—दीप्तिः, अञ्जनघनयो रुक् अञ्जनघनरुक् अञ्जनघनरुग्वत् विमलः संकाशः—छायाविशेषो येषां ते तथोच्यन्ते । अथवा अञ्जनघनरुचकविमलानामिव संकाशो येषामिति समासः 'रुचकः' कृष्णमणिविशेष एव, क एते ?—केशाः, किम् ?—क्षणेन नीताः, कम् ?—'क्षीरसदृशनामानमुदधिं' क्षीरोदधिमिति गाथार्थः ॥ अत्रान्तरे च चारित्रं प्रतिपत्तुकामे भगवति सुरासुरमनुजवृन्दसमुद्भवो ध्वनिस्तूर्यनिनादश्च शक्रादेशाद् विरराम, अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह— ॥१८६॥

दिव्वो मणूसघोसो तूरनिनाओ अ सक्कवयणेणं। खिप्पामेव निलुक्को जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ॥ १०८॥ (भा०)

गमनिका—'दिव्यो' देवसमुत्थो मनुष्यघोषश्च, चशब्दस्य व्यवहितः संबन्धः, तथा तूर्यनिनादश्च शक्रवचनेन 'क्षिप्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

मेव' शीघ्रमेव 'निलुक्कोत्ति' देशीवचनतो विरतः 'यदा' यस्मिन् काले प्रतिपद्यते चारित्रमिति गाथार्थः ॥ स यथा चारित्रं प्रतिपद्यते तथा प्रतिपिपादयिषुराह—

काऊण नमोक्कारं सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे। सव्वं मे अकरणिज्जं पावंति चरित्तमारूढो ॥ १०९॥ (भा०)

व्याख्या—कृत्वा नमस्कारं सिद्धेभ्यः अभिग्रहमसौ गृह्णाति, किंविशिष्टमित्याह–सर्वं 'मे' मम 'अकरणीयं' न कर्त्तव्यं, किं तदित्याह–पापमिति, किमित्याह–चारित्रमारूढ इतिकृत्वा, स च भदन्तशब्दरहितं सामायिकमुच्चारयतीति गाथार्थः ॥ चारित्रप्रतिपत्तिकाले च स्वभावतो भुवनभूषणस्य भगवतो निर्भूषणस्य सत इन्द्रो देवदूष्यवस्त्रमुपनीतवान् इति । अत्रान्तरे कथानकम्—[1]एगेण देवदूसेण पव्वएइ, एतं जाहे अंसे करेइ एत्थंतरा पिउवयंसो धिज्जाइओ उवट्ठिओ, सो अ दाणकाले कहिंपि पवसिओ आसी, आगओ भज्जाए अंबाडिओ, सामिणा एवं परिच्चत्तं, तुमं च पुण वणाइ हिंडसि, जाहि जइ इत्थंतरेऽवि लभिज्जासि । सो भणइ–सामि ! तुब्भेहिं मम न किंचि दिण्णं, इदाणिंपि मे देहि । ताहे सामिणा तस्स दूसस्स अद्धं दिण्णं, अन्नं मे नत्थि परिच्चत्तंति । तं तेण तुण्णागस्स उवणीअं जहा एअस्स दसिआओ बंधाहि । कत्तोत्ति

---

१ एकेन देवदूष्येण प्रव्रजति, एतद् यदाऽंसे करोति, अत्रान्तरे पितृवयस्यो धिग्जातीयः उपस्थितः, स च दानकाले कुत्रापि प्रोषितोऽभवत्, आगतो भार्यया तर्जितः–स्वामिना एवं परित्यक्तं, त्वं च पुनर्वनानि हिण्डसे, याहि यद्यत्रान्तरेऽपि लभेथाः । स भणति–स्वामिन् ! युष्माभिर्मम न किञ्चिद्दत्तं, इदानीमपि मह्यं देहि । तदा स्वामिना तस्मै दूष्यस्यार्धं दत्तं, अन्यन्मे नास्ति परित्यक्तमिति । तत्तेन तुन्नवायायोपनीतं यथैतस्य दशा बधान । कुत इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥१८७॥

हारिभद्री- यवृत्तिः विभागः १

पुच्छिएं भणति–सामिणा दिण्णं, तुण्णाओ भणति–तंपि से अद्धं आणेहि, जया पडिहिति भगवओ अंसाओ, ततो अहं तुण्णामि ताहे लक्खमोल्लं भविस्सइत्ति तो तुज्झवि अद्धं मज्झवि अद्धं, पडिवण्णो ताहे पओलग्गिओ, सेसमुवरि भणिहामि । अलं प्रसङ्गेन ॥ तस्य भगवतश्चारित्रप्रतिपत्तिसमनन्तरमेव मनःपर्यायज्ञानमुदपादि, सर्वतीर्थकृतां चायं क्रमो, यत आह—

तिहिँ नाणेहिँ समग्गा तित्थयरा जाव हुंति गिहवासे ।
पडिवण्णंमि चरित्ते चउनाणी जाव छउमत्था ॥ ११० ॥ (भा०)

व्याख्या—'त्रिभिर्ज्ञानैः' मतिश्रुतावधिभिः संपूर्णाः तीर्थकरणशीलास्तीर्थकरा भवन्तीति योगः । किं सर्वमेव कालम् ?, नेत्याह—यावद्गृहवासे भवन्तीति वाक्यशेषः । प्रतिपन्ने चारित्रे चतुर्ज्ञानिनो, भवन्तीत्यनुवर्त्तते । कियन्तं कालमित्याह–यावत् छद्मस्थाः तावदपि चतुर्ज्ञानिन इति गाथार्थः ॥ एवमसौ भगवान् प्रतिपन्नचारित्रः समासादितमनःपर्यवज्ञानो ज्ञातखण्डादापृच्छ्य स्वजनान् कर्मारग्राममगमत् । आह च भाष्यकारः—

बहिआ य णायसंडे आपुच्छित्ताण नायए सव्वे। दिवसे मुहुत्तसेसे कुमारगामं समणुपत्तो ॥ १११ ॥ (भा०)

व्याख्या—बहिर्धा च कुण्डपुरात् ज्ञातखण्ड उद्याने, आपृच्छ्य 'ज्ञातकान्' स्वजनान् 'सर्वान्' यथासन्निहितान्, ॥१८७॥

---

१ पृष्टे भणति–स्वामिना दत्तं, तुन्नवायः भणति–तदपि तस्यार्धं आनय, यदा पतति भगवतोंऽसात्, ततोऽहं वयामि । तदा लक्षमूल्यं भविष्यतीति, ततस्तवाप्यर्धं ममाप्यर्धं, प्रतिपन्नस्तदा प्रावलग्नः । शेषमुपरिष्टात् भणिष्यामि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

भगवत् महावीरस्य विहार एवं उपसर्गानां वर्णनं

तस्मात् निर्गतः, कर्मारग्रामगमनायेति वाक्यशेषः । तत्र च पथद्वयं–एको जलेन अपरः स्थल्यां, तत्र भगवान् स्थल्यां गतवान्, गच्छंश्च दिवसे मुहूर्त्तशेषे कर्मारग्राममनुप्राप्त इति गाथार्थः ॥ तत्र प्रतिमया स्थित इति । अत्रान्तरे—तत्थेगो गोवो, सो दिवसं बइल्ले वाहित्ता गामसमीवं पत्तो, ताहे चिंतेइ–एए गामसमीवे चरंतु, अहंपि ता गावीओ दुहामि, सोऽवि ताव अन्तो परिकम्मं करेइ, तेऽवि बइल्ला अडविं चरन्ता पविट्ठा, सो गोवो निग्गओ, ताहे सामिं पुच्छइ–कहिं बइल्ला ?, ताहे सामी तुण्हिक्को अच्छइ, सो चिंतेइ–एस न याणइ, तो मग्गिउं पवत्तो सवरत्तिंपि, तेऽवि बइल्ला सुचिरं भमित्ता गामसमीवमागया माणुसं दट्ठूण रोमंथंता अच्छंति, ताहे सो आगओ, ते पेच्छइ तत्थेव निविट्ठे, ताहे आसुरुत्तो एएण दामएण आहणामि, एएण मम एए हरिआ, पभाए घेत्तूण वच्चिहामित्ति । ताहे सक्को देवराया चिंतेइ–किं अज्ज सामी पढमदिवसे करेइ ?, जाव पेच्छइ गोवं धावंतं, ताहे सो तेण थंभिओ, पच्छा आगओ तं तज्जेति–दुरप्पा ! न याणसि सिद्धत्थरायपुत्तो एस पव्वइओ । एयंमि अंतरे सिद्धत्थो सामिस्स माउसियाउत्तो बालतवोकम्मेणं वाणमन्तरो जाएल्लओ,

---

१ पादाभ्याम् प्र० २ तत्रैको गोपः स दिवसं बलीवर्दौ वाहयित्वा ग्रामसमीपं प्राप्तः, तदा चिन्तयति–एतौ ग्रामसमीपे चरतां, अहमपि तावद् गा दोह्मि, सोऽपि तावदन्तः परिकर्म करोति, तावपि बलीवर्दौ चरन्तावटवीं प्रविष्टौ, स गोपो निर्गतः, तदा स्वामिनं पृच्छति–क्व बलीवर्दौ !, तदा स्वामी तूष्णीकस्तिष्ठति, स चिन्तयति–एष न जानाति, ततः मार्गयितुं प्रवृत्तः सर्वरात्रिमपि, तावपि बलीवर्दौ सुचिरं भ्रान्त्वा ग्रामसमीपमागतौ मानुषं दृष्ट्वा रोमन्थायमानौ तिष्ठतः, तदा स आगतः, तौ पश्यति तत्रैव निविष्टौ, तदा क्रुद्ध एतेन दाम्नाऽऽहन्मि, एतेन मम एतौ हृतौ, प्रभाते गृहीत्वा व्रजिष्यामीति । तदा शक्रो देवराजश्चिन्तयति– किमद्य स्वामी प्रथमदिवसे करोति, यावत्पश्यति गोपं धावन्तं, तदा स तेन स्तम्भितः, पश्चादागतस्तं तर्जयति–दुरात्मन् ! न जानीषे सिद्धार्थराजपुत्र एष प्रव्रजितः । एतस्मिन्नन्तरे सिद्धार्थः स्वामिनः मातृष्वस्रेयः बालतपःकर्मणा वानमन्तरो जातोऽभवत्.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सो आगओ। ताहे सक्को भणइ–भगवं! तुब्भ उवसग्गबहुलं, अहं बारस वरिसाणि तुब्भं वेयावच्चं करेमि, ताहे सामिणा भणिअं–न खलु देविंदा! एयं भूअं वा (भवं वा भविस्सं वा) जण्णं अरहंता देविंदाण वा असुरिंदाण वा निस्साए कट्टु केवलनाणं उप्पाडेंति, सिद्धिं वा वच्चंति, अरहंता सएण उट्ठाणबलविरियपुरिसकारपरक्कमेणं केवलनाणं उप्पाडेंति। ताहे सक्केण सिद्धत्थो भण्णइ–एस तव नियल्लओ, पुणो य मम वयणं–सामिस्स जो परं मारणंतिअं उवसग्गं करेइ तं वारेज्जसु, एवमस्तु तेण पडिस्सुअं, सक्को पडिगओ, सिद्धत्थो ठिओ। तद्दिवसं सामिस्स छट्ठपारणयं, तओ भगवं विहरमाणो गओ कोल्लागसण्णिवेसे, तत्थ य भिक्खट्ठा पविट्ठो बहुलमाहणगेहं, जेणामेव कुल्लाए सन्निवेसे बहुले माहणे, तेण महुघयसंजुत्तेण परमण्णेण पडिलाभिओ, तत्थ पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं। अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

गोवनिमित्तं सक्कस्स आगमो वागरेइ देविंदो। कोल्लाबहुले छट्ठस्स पारणे पयस वसुहारा॥ ४६१॥

व्याख्या—ताडनायोद्यतगोपनिमित्तं प्रयुक्तावधेः 'शक्रस्य' देवराजस्य, किम्?, आगमनं आगमः अभवत्, विनिवार्य

---

१ स आगतः। तदा शक्रो भणति–भगवन्! तव उपसर्गबहुलं (श्रामण्यं) अहं द्वादश वर्षाणि तव वैयावृत्त्यं करोमि, तदा स्वामिना भणितम्–न खलु देवेन्द्र! एतद्भूतं वा ३ (भवति वा भविष्यति वा) यद् अर्हन्तः देवेन्द्राणां वा असुरेन्द्राणां वा निश्रया कृत्वा केवलज्ञानमुत्पादयन्ति, सिद्धिं वा व्रजन्ति, अर्हन्तः स्वकेन उत्थानबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमेण केवलज्ञानमुत्पादयन्ति। तदा शक्रेण सिद्धार्थो भण्यते–एष तव निजकः, पुनश्च मम वचनं–स्वामिनः यः परं मारणान्तिकमुपसर्गं करोति तं वारयेः। तेन प्रतिश्रुतं, शक्रः प्रतिगतः, सिद्धार्थः स्थितः। तद्दिवसं स्वामिनः षष्ठपारणकं, ततो भगवान् विहरन् गतः कोल्लाकसन्निवेशे, तत्र च भिक्षार्थं प्रविष्टः बहुलब्राह्मणगृहं, यत्रैव कुल्लाकसन्निवेशे बहुलो ब्राह्मणः, तेन मधुघृतसंयुक्तेन परमान्नेन प्रतिलम्भितः, तत्र च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

च गोपं 'वागरेइ देविंदो' त्ति भगवन्तमभिवन्द्य 'व्याकरोति' अभिधत्ते देवेन्द्रो-भगवन् ! तवाहं द्वादश वर्षाणि वैयावृत्त्यं करोमीत्यादि, 'वागरिंसु' वा पाठान्तरं, व्याकृतवानिति भावार्थः, सिद्धार्थ वा तत्कालप्राप्तं व्याकृतवान् देवेन्द्रः-भगवान् त्वया न मोक्तव्य इत्यादि। गते देवराजे भगवतोऽपि कोल्लाकसन्निवेशे बहुलो नाम ब्राह्मणः 'षष्ठस्य' तपोविशेषस्य पारणके, किम्?, 'पयस' इति पायसं समुपनीतवान्, 'वसुधारे'ति तद्गृहे वसुधारा पतितेति गाथाक्षरार्थः॥ कथानकम्—तओ सामी विहरमाणो गओ मोरागं सन्निवेसं, तत्थ मोराए दुइज्जंता नाम पासंडिगिहत्था, तेसिं तत्थ आवासो, तेसिं च कुलवती भगवओ पिउमित्तो, ताहे सो सामिस्स सागएण उवट्ठिओ, ताहे सामिणा पुव्वपओगेण बाहा पसारिआ, सो भणति-अत्थि घरा, एत्थ कुमारवर ! अच्छाहि, तत्थ सामी एगराइअं वसित्ता पच्छा गतो, विहरति, तेण य भणियं-विवित्ताओ वसहीओ, जइ वासारत्तो कीरइ, आगच्छेज्जह अणुग्गहीया होज्जामो। ताहे सामी अट्ठ उउबद्धिए मासे विहरेत्ता वासावासे *उवागते तं चेव दूइज्जंतयगामं एति, तत्थेगंमि उडवे वासावासं ठिओ। पढमपाउसे य गोरूवाणि चारिं अलभंताणि जुण्णाणि तणाणि खायंति, ताणि य घराणि उव्वेलेंति, पच्छा ते वारेंति, सामी न वारेइ, पच्छा दूइज्जंतगा

१ ततः स्वामी विहरन् गतो मोराकं सन्निवेशं, तत्र मोराके दूइज्जन्ता (द्वितीयान्ता) नाम पाषण्डिनो गृहस्थाः, तेषां तत्रावासः, तेषां च कुलपतिः भगवतः पितुः मित्रम्, तदा स स्वामिनं स्वागतेन उपस्थितः, तदा स्वामिना पूर्वप्रयोगेण बाहुः प्रसारितः, स भणति-सन्ति गृहाणि, अत्र कुमारवर ! तिष्ठ, तत्र स्वामी एकां रात्रिं उषित्वा पश्चाद्गतः, विहरति, तेन च भणितम्-विविक्ता वसतयः, यदि वर्षारात्रः क्रियते, आगमिष्यः अनुगृहीता अभविष्याम। तदा स्वामी अष्टौ ऋतुबद्धान् मासान् विहृत्य वर्षावासे उपागते तमेव द्वितीयान्तकग्राममेति, तत्रैकस्मिन् उटजे वर्षावासं स्थितः। प्रथमप्रावृषि च गावः चारिमलभमाना जीर्णानि तृणानि खादन्ति, तानि च गृहाणि उद्वेलयन्ति, पश्चात्ते वारयन्ति, स्वामी न वारयति, पश्चाद् द्वितीयान्तकाः.* उवगे प्र०. २ मढे प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

[1]तस्स कुलवइस्स साहेंति जहा एस एताणि न णिवारेति, ताहे सो कुलवती अणुसासति, भणति–कुमारवर ! सउणीवि ताव अप्पणिअं णेड्डुं रक्खैंति, तुमं वारेज्जासि, सप्पिवासं भणति । ताहे सामी अचियत्तोग्गहोत्तिकाउं निग्गओ, इमे य तेण पंच अभिग्गहा गहीआ, तंजहा–अचियत्तोग्गहे न वसियवं १ निच्चं वोसट्ठकाएण २ मोणेणं ३ पाणीसु भोत्तवं ४ गिहत्थो न वंदियवो नऽब्भुट्ठेतवो ५, एते पंच अभिग्गहा । तत्थ भगवं अद्धमासं अच्छित्ता तओ पच्छा अट्ठितगामं गतो । तस्स पुण अट्ठिअगामस्स पढमं वद्धमाणगं नाम आसी, सो य किह अट्ठियग्गामो जाओ ?, धणदेवो नाम वाणिअओ पंचहिं धुरसएहिं गणिमधरिममेज्जस्स भरिएहिं तेणंतेण आगओ, तस्स समीवे य वेगवती नाम नदी, तं सगडाणि उत्तरंति, तस्स एगो बइल्लो सो मूलधुरे जुप्पति, तावच्चएण ताओ गड्डिओ उत्तीण्णाओ, पच्छा सो पडिओ छिन्नो, सो वाणिअओ तस्स तणपाणिअं पुरओ छड्डेऊण तं अवहाय गओ । सोऽवि तत्थ वालुगाए जेट्ठामूलमासे अतीव उण्हेण तण्हाए छुहाए य परिताविज्जइ,

१ तस्मै कुलपतये कथयन्ति–यथा एष एता न निवारयति, तदा स कुलपतिरनुशास्ति, भणति–कुमारवर ! शकुनिरपि तावदात्मीयं नीडं रक्षति, त्वं वारयेः, सपिपासं भणति । तदा स्वामी अप्रीतिकावग्रह इतिकृत्वा निर्गतः, इमे च तेन पञ्च अभिग्रहा गृहीताः, तद्यथा–अप्रीतिकावग्रहे न वसनीयं, नित्यं व्युत्सृष्टकायेन, मौनेन, पाण्योर्भोक्तव्यं, गृहस्थो न वन्दयितव्यः, नाभ्युत्थातव्यः, एते पञ्च अभिग्रहाः । तत्र भगवान् अर्धमासं स्थित्वा ततः पश्चात् अस्थिकग्रामं गतः, तस्य पुनरस्थिकग्रामस्य प्रथमं वर्धमानकं नामासीत्, स च कथमस्थिकग्रामो जातः?, धनदेवो नाम वणिक् पञ्चभिर्धूःशतैः गणिमधरिममेयैर्भृतैस्तेन मार्गेण आगतः, तस्य समीपे च वेगवती नाम नदी, तां शकटानि उत्तरन्ति, तस्य एको बलीवर्दः स मूलधुरि योज्यते, तदीयेन (वीर्येण) ता गन्त्र्य उत्तीर्णाः, पश्चात्स छिन्नः पतितः, स वणिक् तस्य तृणपानीयं पुरतस्त्यक्त्वा तं अपहाय गतः । सोऽपि तत्र वालुकायां ज्येष्ठामूलमासे अतीवोष्णेन तृषया क्षुधा च परिताप्यते. * रक्खंति प्र०.

॥१८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[१]वद्धमाणओ य लोगो तेणंतेण पाणिअं तणं च वहति, न य तस्स कोइवि देइ, सो गोणो तस्स पओसमावण्णो, अकामतण्हाछुहाए य मरिऊणं तत्थेव गामे अग्गुज्जाणे सूलपाणीजक्खो उप्पण्णो, उवउत्तो पासति तं बलीवद्दसरीरं, तम्हे रुसिओ मारिं विउव्वति, सो गामो मरिउमारद्धो, ततो अद्दण्णा कोउगसयाणि करेंति, तहवि ण ठ्ठाति, ताहे भिण्णो गामो अण्णगामेसु संकंतो, तत्थावि न मुंचति, ताहे तेसिं चिंता जाता–अम्हेहिं तत्थ न नज्जइ–कोऽवि देवो वा दाणवो वा विराहिओ, तम्हा तहिं चेव वच्चामो, आगया समाणा नगरदेवयाए विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, बलिउवहारे करेंता समंतओ उद्धमुहा सरणं सरणंति, जं अम्हेहिं सम्मं न चेट्ठिअं तस्स खमह, ताहे अंतलिक्खपडिवण्णो सो देवो भणति–तुम्हे दुरप्पा निरणुकंपा, तेणंतेण य एह जाह य, तस्स गोणस्स तणं वा पाणिअं वा न दिण्णं, अतो नत्थि भे मोक्खो, ततो ण्हाया पुप्फबलिहत्थगया भणंति–दिट्ठो कोवो पसादमिच्छामो, ताहे भणति–एताणि माणुसअट्ठिआणि

---

१ वर्धमानकश्च लोकः तेन मार्गेण पानीयं तृणं च वहति, न च तस्मै कश्चिदपि ददाति, स गौस्तस्य प्रद्वेषमापन्नः, अकामतृषा क्षुधा च मृत्वा तत्रैव ग्रामे अग्रोद्याने (अग्र्युद्याने) शूलपाणिर्यक्ष उत्पन्नः, उपयुक्तः पश्यति तत् बलीवर्दशरीरं, तदा रुष्टो मारिं विकुर्वति, स ग्रामो मर्तुमारब्धः, ततोऽधृतिमुपगताः कौतुकशतानि कुर्वन्ति, तथापि न तिष्ठति (न विरमति), तदा भिन्नो ग्रामः अन्यग्रामेषु संक्रान्तः, तत्रापि न मुञ्चति, तदा तेषां चिन्ता जाता, अस्माभिस्तत्र न ज्ञायते–कोऽपि देवो वा दानवो वा विराद्धः, तस्मात् तत्रैव व्रजामः, आगताः सन्तः नगरदेवतायै विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं उपस्कुर्वन्ति, बल्युपहारान् कुर्वन्तः समन्तत ऊर्ध्वमुखाः शरणं शरणमिति, यदस्माभिः सम्यग् न चेष्टितं तत् क्षमस्व, तदा अन्तरिक्षप्रतिपन्नः स देवो भणति–यूयं दुरात्मानो निरनुकम्पाः, तेन मार्गेणैव आगच्छत यात च, तस्मै गवे तृणं वा पानीयं वा न दत्तं, अतो नास्ति भवतां मोक्षः, ततः, स्नाताः हस्तगतपुष्पबलिकाः भणन्ति–दृष्टः कोपः प्रसादमिच्छामः, तदा भणति–एतानि मानुषास्थीनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]पुंजं काऊण उवरि देवउलं करेह, सूलपाणिं च तत्थ जक्खं बलिवद्दं च एगपासे ठवेह, अण्णे भणंति–तं बइल्लरूवं करेह, तस्स य हेट्ठा ताणि से अट्ठिआणि निहणह, तेहिं अचिरेण कयं, तत्थ इंदसम्मो नाम पडियरगो कओ। ताहे लोगो पंथिगादि पेच्छइ पंडरट्ठिअगामं देवउलं च ताहे पुच्छंति अण्णे–कयराओ गामाओ आगता जाह वत्ति, ताहे भणंति– जत्थ ताणि अट्ठियाणि, एवं अट्ठिअगामो जाओ। तत्थ पुण वाणमंतरघरे जो रत्तिं परिवसति सो तेण सूलपाणिणा जक्खेण वाहेत्ता पच्छा रत्तिं मारिज्जइ, ताहे तत्थ दिवसं लोगो अच्छति, पच्छा अण्णत्थ गच्छति, इंदसम्मोऽवि धूवं दीवगं च दाउं दिवसओ जाति। इतो य तत्थ सामी आगतो, दूतिज्जंतगामपासाओ, तत्थ य सव्वो लोगो एगत्थ पिंडिओ अच्छइ, सामिणा देवकुलिगो अणुण्णविओ, सो भणति–गामो जाणति, सामिणा गामो मिलिओ चेवाणुण्णविओ, गामो भणति–एत्थ न सक्का वसिउं, सामी भणइ–नवरं तुम्हे अणुजाणह, ते भणंति–ठाह, तत्थेक्को वसहिं देइ, सामी णेच्छति,

---

१ पुञ्जं कृत्वा उपरि देवकुलं कुरुत, शूलपाणिं च तत्र यक्षं बलीवर्दं चैकपार्श्वे स्थापयत, अन्ये भणन्ति–तं बलीवर्दरूपं कुरुत, तस्याधस्तात् तानि तस्यास्थीनि निहत, तैरचिरात् कृतं, तत्र इन्द्रशर्मा नाम प्रतिचरकः कृतः। तदा लोकः पान्थादि पश्यति, पाण्डुरास्थिकग्रामं देवकुलं च तदा पृच्छन्ति अन्ये- कतरस्मात् ग्रामादागताः ? यात वेति, तदा भणन्ति–यत्र तानि अस्थीनि, एवमस्थिकग्रामो जातः। तत्र पुनर्व्यन्तरगृहे यो रात्रौ परिवसति स तेन शूलपाणिना यक्षेण वाहयित्वा पश्चाद् रात्रौ मार्यते, ततस्तत्र दिवसं (यावत्) लोकस्तिष्ठति, पश्चात् अन्यत्र गच्छति, इन्द्रशर्मापि धूपं दीपकं च दत्त्वा दिवसे याति। इतश्च तत्र स्वामी आगतः, द्वितीयान्तग्रामपार्श्वात्, तत्र च सर्वो लोक एकत्र पिण्डितस्तिष्ठति, स्वामिना देवकुलिकोऽनुज्ञापितः, स भणति–ग्रामो जानाति, स्वामिना ग्रामो मिलित एवानुज्ञापितः, ग्रामो भणति–अत्र न शक्या वसितुं, स्वामी भणति–परं यूयमनुजानीत, ते भणन्ति–तिष्ठत, तत्रैकैको वसतिं दत्ते, स्वामी नेच्छति. ॥१९०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जाणति[1]–जहेसो संबुज्झिहितित्ति, ततो एगकूणे पडिमं ठिओ, ताहे सो इंदसम्मो सूरे धरेंते चेव धूवपुप्फं दाउं कप्पडियकारोडिय सवे पलोइत्ता भणति–जाह मा विणस्सिहिह, तंपि देवज्जयं भणति–तुब्भेवि णीध, मा मारिहिज्जिहिध, भगवं तुसिणीओ, सो वंतरो चिंतेइ–देवकुलिएण गामेण य भण्णंतोऽवि न जाति, पेच्छ जं से करेमि, ताहे संझाए चेव भीमं अट्टट्टहासं मुअंतो बीहावेति ॥ अभिहितार्थोपसंहारायेदं गाथाद्वयमाह—

दूइज्जंतगा पिउणो वयंस तिव्वा अभिग्गहा पंच। अचियत्तुग्गहि न वसण १ णिचं वोसट्ठ २ मोणेणं ३ ॥४६२॥
पाणीपत्तं ४ गिहिवंदणं च ५ तओ वद्धमाणवेगवई। घणदेव सूलपाणिंदसम्म वासऽट्ठिअग्गामे ॥ ४६३ ॥

व्याख्या—विहरतो मोराकसन्निवेशं प्राप्तस्य भगवतः तन्निवासी दूइज्जन्तकाभिधानपाषण्डस्थो दूतिज्जंतक एवोच्यते, 'पितुः' सिद्धार्थस्य 'वयस्यः' स्निग्धकः, सोऽभिवाद्य भगवन्तं वसतिं दत्तवान् इति वाक्यशेषः। विहृत्य च अन्यत्र वर्षाकालगमनाय पुनस्तत्रैवागतेन विदितकुलपत्यभिप्रायेण, किम् ?, 'तिव्वा अभिग्गहा पंच' त्ति 'तीव्राः' रौद्राः अभिग्रहाः पञ्च गृहीता इति वाक्यशेषः। ते चामी 'अचियत्तुग्गहि न वसणं ति' 'अचियत्तं' देशीवचनं अप्रीत्यभिधायकं, ततश्च तत्स्वामिनो न प्रीतिर्यस्मिन्नवग्रहे सोऽप्रीत्यवग्रहः तस्मिन् 'न वसनं' न तत्र मया वसितव्यमित्यर्थः, 'णिचं वोसट्ठ मोणे-

१ जानाति–यथैष संभोत्स्यत इति, तत एकस्मिन् कोणे प्रतिमां स्थितः, तदा स इन्द्रशर्मा सूर्ये ध्रियमाणे (सति) एव धूपपुष्पं दत्त्वा कार्पटिककरोटिकान् सर्वान् प्रलोक्य भणति–यात मा विनेशत, तमपि देवार्यं भणति–यूयमपि निर्गच्छत, मा मारिध्वं (मृध्वं), भगवान् तूष्णीकः, स व्यन्तरश्चिन्तयति–देवकुलिकेन ग्रामेण च भण्यमानोऽपि न याति, पश्य यत्तस्य करोमि, तदा सन्ध्यायामेव भीममट्टाट्टहासं मुञ्चन् भापयति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

णंति' नित्यं सदा व्युत्सृष्टकायेन सता मौनेन विहर्त्तव्यं 'पाणिपत्तं'ति पाणिपात्रभोजिना भवितव्यं, 'गिहिवंदणं चेत्ति' गृहस्थस्य वन्दनं, चशब्दादभ्युत्थानं च न कर्त्तव्यमिति । एतान् अभिग्रहान् गृहीत्वा तथा तस्मान्निर्गत्य 'वासऽट्ठिअग्गामेत्ति' वर्षाकालं अस्थिग्रामे स्थित इति अध्याहारः, स चास्थिग्रामः पूर्वं वर्धमानाभिधः खल्वासीत्, पश्चात् अस्थिग्रामसंज्ञामित्थं प्राप्तः, तत्र हि वेगवतीनदी, तां धनदेवाभिधानः सार्थवाहः तं प्रधानेन गवाऽनेकशकटसहितः समुत्तीर्णः, तस्य च गोरनेकशकटसमुत्तारणतो हृदयच्छेदो बभूव, सार्थवाहः तं तत्रैव परित्यज्य गतः, स वर्धमाननिवासिलोकाप्रतिजागरितो मृत्वा तत्रैव शूलपाणिनामा यक्षोऽभवत्, दृष्टभयलोककारितायतने स प्रतिष्ठितः, इन्द्रशर्मनामा प्रतिजागरको निरूपित इत्यक्षरार्थः ॥ एवमन्यासामपि गाथानामक्षरगमनिका स्वबुद्ध्या कार्येति । कथानकशेषम्—[1]जाहे सो अट्टट्टहासादिणा भगवंतं खोभेउं पवत्तो ताहे सो सव्वो लोगो तं सद्दं सोऊण भीओ, अज्ज सो देवज्जओ मारिज्जइ, तत्थ उप्पलो नाम पच्छाकडओ पासावच्चिज्जओ परिव्वायगो अट्ठंगमहानिमित्तजाणगो जणपासाओ तं सोऊण मा तित्थंकरो होज्ज अधितिं करेइ, बीहेइ य रत्तिं गंतुं, ताहे सो वाणमंतरो जाहे सद्देण न बीहेति ताहे हत्थिरूवेणुवसग्गं करेति, पिसायरूवेणं नागरूवेण य,

---

१ यदा सोऽट्टाट्टहास्यादिना भगवन्तं क्षोभयितुं प्रवृत्तस्तदा स सर्वलोकस्तं शब्दं श्रुत्वा भीतः, अद्य स देवार्यः मार्यते, तत्रोत्पलो नाम पश्चात्कृतकः पार्श्वापत्यः परिव्राजकोऽष्टाङ्गमहानिमित्तज्ञायकः जनपार्श्वात् तत् श्रुत्वा मा तीर्थकरो भवेत् (इति) अधृतिं करोति, बिभेति च रात्रौ गन्तुं, ततः स व्यन्तरः यदा शब्देन न बिभेति तदा हस्तिरूपेणोपसर्गं करोति, पिशाचरूपेण नागरूपेण च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

एतेहिंपि जाहे न तरति खोभेउं ताहे सत्तविहं वेदणं उदीरेइ, तंजहा–सीसवेयणं कण्ण अच्छि नासा दंत नह पट्ठिवेदणं च एक्केका वेअणा समत्था पागतस्स जीवितं संकामेउं, किं पुण सत्तवि समेताओ उज्जलाओ?, अहियासेति, ताहे सो देवो जाहे न तरति चालेउं वा खोभेउं वा, ताहे परितंतो पायवडितो खामेति, खमह भट्टारगत्ति। ताहे सिद्धत्थो उद्धाइओ भणति–हंभो सूलपाणी ! अपत्थिअपत्थिआ न जाणसि सिद्धत्थरायपुत्तं भगवंतं तित्थयरं, जइ एयं सक्को जाणइ तो ते निव्विसयं करेइ, ताहे सो भीओ दुगुणं खामेइ, सिद्धत्थो से धम्मं कहेइ, तत्थ उवसंतो महिमं करेइ सामिस्स, तत्थ लोगो चिंतेइ–सो तं देवज्जयं मारित्ता इदाणिं कीलइ, तत्थ सामी देसूणे चत्तारि जामे अतीव परियाविओ पहायकाले मुहुत्तमेत्तं निद्दापमादं गओ, तत्थ इमे दस महासुमिणे पासित्ता पडिबुद्धो, तंजहा–तालपिसाओ हओ, सेअसउणो चित्तकोइलो अ दोऽवि एते पज्जुवासंता दिट्ठा, दामदुगं च सुरहिकुसुममयं, गोवग्गो अ पज्जुवासेंतो, पउमसरो विबुद्धपंकओ,

---

१ एतैरपि यदा न शक्नोति क्षोभयितुं तदा सप्तविधां वेदनामुदीरयते, तद्यथा–शीर्षवेदनां कर्ण० अक्षि० नासा० दन्त० नख० पृष्ठिवेदनां च, एकैका वेदना समर्था प्राकृतस्य जीवितं संक्रमितुं, किं पुनः सप्तापि समेता उज्ज्वलाः?, अध्यास्ते, तदा स देवो यदा न शक्नोति चालयितुं वा क्षोभयितुं वा, तदा परिश्रान्तः पादपतितः क्षमयति–क्षमस्व भट्टारकेति। तदा सिद्धार्थ उद्धावितो भणति–हंहो शूलपाणे !, अप्रार्थितप्रार्थक ! न जानासि सिद्धार्थराजपुत्रं भगवन्तं तीर्थंकरं, यद्येतत् शक्रो जानाति तदा त्वां निर्विषयं करोति, तदा स भीतो द्विगुणं क्षमयति, सिद्धार्थः तस्मै धर्मं कथयति, तत्रोपशान्तो महिमानं करोति स्वामिनः, तत्र लोकश्चिन्तयति–स तं देवार्यं मारयित्वेदानीं क्रीडति, तत्र स्वामी देशोनान् चतुरो यामान् अतीव परितापितः प्रभातकाले मुहूर्त्तमात्रं निद्राप्रमादं गतः, तत्रेमान् दश महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तद्यथा–तालपिशाचो हतः, श्वेतशकुनः चित्रकोकिलश्च द्वावपि एतौ पर्युपासमानौ दृष्टौ, दामद्विकं च सुरभिकुसुममयं, गोवर्गश्च पर्युपासमानः, पद्मसरः विबुद्धपङ्कजं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सागरो अ मे निरिथण्णोत्ति, सूरो अ पइण्णरस्सीमंडलो उग्गमंतो, अंतेहि य मे माणुसुत्तरो वेढिओत्ति, मंदरं चारूढोमित्ति । लोगो पभाए आगओ, उप्पलो अ, इन्दसम्मो अ, ते अ अच्चणिअं दिव्वगंधचुण्णपुप्फवासं च पासंति, भट्टारगं च अक्खयसव्वंगं, ताहे सो लोगो सव्वो सामिस्स उक्किट्ठसिंहणायं करेंतो पाएसु पडिओ भणति–जहा देवज्जएणं देवो उवसामिओ, महिमं पगओ, उप्पलोऽवि सामिं दट्ठुं वंदिअ भणियाइओ–सामी ! तुब्भेहिं अंतिमरातीए दस सुमिणा दिट्ठा, तेसिमं फलंति–जो तालपिसाओ हओ तमचिरेण मोहणिज्जं उम्मूलेहिसि, जो अ सेअसउणो तं सुक्कज्झाणं काहिसि, जो विचित्तो कोइलो तं दुवालसंगं पण्णवेहिसि, गोवग्गफलं च ते चउव्विहो समणसमणीसावगसाविगासंघो भविस्सइ, पउमसरा चउविहदेवसंघाओ भविस्सइ, जं च सागरं तिण्णो तं संसारमुत्तारिहिसि, जो अ सूरो तमचिरा केवलनाणं ते उप्पज्जिहित्ति, जं चंतेहिं माणुसुत्तरो वेढिओ तं ते निम्मलो जसकीत्तिपयावो सयलतिहुअणे भविस्सइत्ति, जं च मंदरमारूढोऽसि

१ सागरश्च मया निस्तीर्ण इति, सूर्यश्च प्रकीर्णरश्मिमण्डल उद्गच्छन्, अन्त्रैश्च मया मानुषोत्तरो वेष्टित इति, मन्दरं चारूढोऽस्मीति । लोकः प्रभाते आगतः, उत्पलश्च, इन्द्रशर्मा च, ते चार्चनिकां दिव्यगन्धचूर्णपुष्पवर्षं च पश्यन्ति, भट्टारकं चाक्षतसर्वाङ्गं, तदा स लोकः सर्वः स्वामिनः उत्कृष्टं सिंहनादं कुर्वन् पादयोः पतितो भणति–यथा–देवार्येण देव उपशमितः, महिमानं प्रगतः, उत्पलोऽपि स्वामिनं दृष्ट्वा वन्दित्वा भणितवान्–स्वामिन् ! त्वया अन्त्यरात्रौ दश स्वप्ना दृष्टाः, तेषामिदं फलमिति–यस्तालपिशाचो हतः तदचिरेण मोहनीयमुन्मूलयिष्यसि, यश्च श्वेतशकुनः तत् शुक्लध्यानं करिष्यसि, यो विचित्रः कोकिलः तत् द्वादशाङ्गीं प्रज्ञापयिष्यसि, गोवर्गफलं च तव चतुर्विधः श्रमणश्रमणीश्रावकश्राविकासङ्घः भविष्यसि, पद्मसरसः चतुर्विधदेवसंघातो भविष्यति, यच्च सागरस्तीर्णस्तत् संसारमुत्तरिष्यसि, यश्च सूर्यस्तत् अचिरात् केवलज्ञानं ते उत्पत्स्यत इति, यच्चान्त्रैर्मानुषोत्तरो वेष्टितस्तत्ते निर्मलः यशःकीर्त्तिप्रतापस्त्रिभुवने सकले भविष्यतीति, यच्च मन्दरमारूढोऽसि.

॥१९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

[1]तं सीहासणत्थो सदेवमणुआसुराए परिसाए धम्मं पण्णवेहिसित्ति, दामदुगं पुण न याणामि, सामी भणति–हे उप्पल ! जण्णं तुमं न जाणासि तण्णं अहं दुविहं सागाराणगारिअं धम्मं पण्णवेहामित्ति, ततो उप्पलो वंदित्ता गओ, तत्थ सामी अद्धमासेण खमति । एसो पढमो वासारत्तो १ । ततो सरए निग्गंतूण मोरागं नाम सण्णिवेसं गओ, तत्थ सामी बाहिं उज्जाणे ठिओ, तत्थ मोराए सण्णिवेसे अच्छंदा नाम पासंडत्था, तत्थेगो अच्छंदओ तंमि सण्णिवेसे कोंटलवेंटलेण जीवति, सिद्धत्थओ अ एक्कलओ दुक्खं अच्छति बहुसंमोइओ पूअं च भगवओ अपिच्छंतो, ताहे सो वोलेंतयं गोवं सद्दावेत्ता भणति–जहिं पधावितो जहिं जिमिओ पंथे य जं दिट्ठं, दिट्ठो य एवंगुणविसिट्ठो सुमिणो, तं वागरेइ, सो आउट्टो गंतुं गामे मित्तपरिच्चिताणं कहेति, सव्वेहिं गामे य पगासिअं–एस देवज्जओ उज्जाणे तीताणागयवट्टमाणं जाणइ, ताहे अण्णोऽवि लोओ आगओ, सव्वस्स वागरेइ, लोगो आउट्टो महिमं करेइ, लोगेण अविरहिओ अच्छइ, ताहे सो लोगो

१ तत्सिंहासनस्थः सदेवमनुजासुरायां पर्षदि धर्मं प्रज्ञापयिष्यसि इति, दामद्विकं पुनर्न जानामि, स्वामी भणति–हे उत्पल ! यत् त्वं न जानीषे तदहं द्विविधं सागारिकानगारिकं धर्मं प्रज्ञापयिष्यामीति, तत उत्पलो वन्दित्वा गतः, तत्र स्वामी अर्धमासेन क्षपयति । एष प्रथमो वर्षारात्रः १ । ततः शरदि निर्गत्य मोराकं नाम सन्निवेशं गतः, तत्र स्वामी बहिरुद्याने स्थितः, तत्र मोराके सन्निवेशे यथाच्छन्दा नाम पाषण्डस्थाः, तत्रैकः यथाछन्दकः तस्मिन् सन्निवेशे कार्मणवशीकरणादिना जीवति, सिद्धार्थकश्च एकाकी दुःखं तिष्ठति बहुसंमुदितः पूजां च भगवतः अपश्यन् , तदा स व्रजन्तं गोपं शब्दयित्वा भणति–यत्र गतः यत्र जिमितः पथि च यद्दृष्टं, दृष्टश्चैवंगुणविशिष्टः स्वप्नः, तद्व्याकरोति, स आवर्जितो ग्रामे गत्वा मित्रपरिचितेभ्यः कथयति, सर्वैर्ग्रामे च प्रकाशितं–एष देवार्य उद्याने अतीतानागतवर्त्तमानं जानाति, तदा अन्योऽपि लोक आगतः, (तस्मा अपि) सर्वस्मै व्याकरोति, लोक आवर्जितो महिमानं करोति, लोकेनाविरहितः तिष्ठति, तदा स लोको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

भणइ–एत्थ अच्छंदओ नाम जाणओ,सिद्धत्थो भणति–सो ण किंचि जाणइ, ताहे लोगो गंतुं भणइ–तुमं न किंचि जाणसि, देवज्जओ जाणइ, सो लोयमज्झे अप्पाणं ठावेउकामो भणति–एह जामो, जइ मज्झ पुरओ जाणइ तो जाणइ, ताहे लोगेण परिवारिओ एइ, भगवओ पुरओ ठिओ तणं गहाय भणति–एयं तणं किं छिंदिहिति नवत्ति, सो चिंतेइ–जइ भणति–न छिज्जिहि इति ता णं छिंदिस्सं, अह भणइ–छिज्जिहित्ति, तो न छिंदिस्सं, ततो सिद्धत्थेण भणिअं–न छिज्जिहित्ति, सो छिंदिउमाढत्तो, सक्केण य उवओगो दिण्णो, वज्जं पक्खित्तं, अच्छंदगस्स अंगुलीओ दसवि भूमीए पडिआओ, ताहे लोगेण खिंसिओ, सिद्धत्थो य से रुट्ठो । अमुमेवार्थं समासतोऽभिधित्सुराह—

रोद्दा य सत्त वेयण थुइ दस सुमिणुप्पलऽद्धमासे य । मोराए सक्कारं सक्को अच्छंदए कुविओ ॥ ४६४ ॥

समासव्याख्या—रौद्राश्च सप्त वेदना यक्षेण कृताः, स्तुतिश्च तेनैव कृता, दश स्वप्ना भगवता दृष्टाः, उत्पलः फलं जगाद, 'अद्धमासे यत्ति' अर्धमासमर्धमासं च क्षपणमकार्षीत् , मोरायां लोकः सत्कारं चकार, शक्रः अच्छन्दके तीर्थकरहीलनात् परिकुपित इत्यक्षरार्थः ॥ इयं निर्युक्तिगाथा, एतास्तु मूलभाष्यकारगाथाः—

१ भणति–अत्र यथाच्छन्दको नाम ज्ञायकः, सिद्धार्थो भणति–स न किञ्चिद् जानाति, तदा लोको गत्वा भणति–त्वं न किञ्चित् जानासि, देवार्यको जानाति, स लोकमध्ये आत्मानं स्थापयितुकामो भणति–एत यामः, यदि मम पुरतो जानाति तदा जानाति, तदा लोकेन परिवारित एति, भगवतः पुरतः स्थितः तृणं गृहीत्वा भणति–एतत् तृणं किं छेत्स्यते नवेति, स चिन्तयति–यदि भणति–न छेत्स्यते इति तदैतत् छेत्स्यामि, अथ भणति–छेत्स्यते इति तदा न छेत्स्यामि, ततः सिद्धार्थेन भणितम्–न छेत्स्यतीति, स छेत्तुमारब्धः, शक्रेण च उपयोगो दत्तः, वज्रं प्रक्षिप्तं, अच्छन्दकस्याङ्गुल्यो दशापि भूमौ पतिताः, तदा लोकेन हीलितः, सिद्धार्थश्च तस्मै रुष्टः । ॥१९३॥

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

भीमट्टहास हत्थी पिसाय नागे य वेदणा सत्त ।
सिरकण्णनासदन्ते नहऽच्छी पट्ठीय सत्तमिआ ॥ ११२ ॥ (मू० भा०)
तालपिसायं १ दो कोइला य ३ दामदुगमेव ४ गोवग्गं ५ ।
सर ६ सागर ७ सूरं ८ ते ९ मन्दर १० सुविणुप्पले चेव ॥ ११३ ॥ (मू० भा०)
मोहे १ य झाण २ पवयण ३ धम्मे ४ संघे ५ य देवलोए ६ य ।
संसारं ७ णाण ८ जसे ९ धम्मं परिसाएँ मज्झंमि ॥ ११४ ॥ (मू० भा०)

व्याख्या—भीमाट्टहासः हस्ती पिशाचो नागश्च वेदनाः सप्त शिरःकर्णनासादन्तनखाक्षि पृष्ठी च सप्तमी, एतद्यन्तरेण कृतं । तालपिशाचं द्वौ कोकिलौ च दामद्वयमेव गोवर्गं सरः सागरं सूर्यं अन्त्रं मन्दरं 'सुविणुप्पले चेवत्ति' एतान् स्वप्नान् दृष्टवान्, उत्पलश्चैव फलं कथितवान् इति । तच्चेदम्—मोहं च ध्यानं प्रवचनं धर्मः सङ्घश्च 'देवलोकश्च' देवजनश्चेत्यर्थः, संसारं ज्ञानं यशः धर्मं पर्षदो मध्ये, मोहं च निराकरिष्यसीत्यादिक्रियायोगः स्वबुद्ध्या कार्यः ॥

मोरागसण्णिवेसे बाहिं सिद्धत्थ तीतमाईणि । साहइ जणस्स अच्छंद पओसो छेअणे सक्को ॥ १ ॥

अर्थोऽस्याः कथानकोक्त एव वेदितव्य इति । इयं गाथा सर्वपुस्तकेषु नास्ति, सोपयोगा च । कथानकशेषम्—तओ सिद्धत्थो तस्स पओसमावण्णो तं लोगं भणति–एस चोरो, कस्स णेण चोरियंति भणह, अत्थेत्थ वीरघोसो णाम

१ ततः सिद्धार्थः तस्मिन् प्रद्वेषमापन्नस्तं लोकं भणति–एष चौरः, कस्यानेन चोरितं इति भण, अस्त्यत्र वीरघोषो नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कम्मकरो?, सो पादेसु पडिओ अहंति, अत्थि तुब्भ अमुककाले दसपलयं वट्टयं णट्ठपुव्वं ?, आमं अत्थि, तं एएण हरियं, तं पुण कहिं ?, एयस्स पुरोहडे महिसिंदुरुक्खस्स पुरत्थिमेणं हत्थमित्तं गंतूणं तत्थ खणिउं गेण्हह । ताहे गता, दिट्ठं, आगया कलकलं करेमाणा । अण्णंपि सुणह–अत्थि एत्थं इंदसम्मो नाम गिहवई ?, ताहे भणति–अत्थि, ताहे सो सयमेव उवट्ठिओ, जहा अहं, आणवेह, अत्थि तुब्भ ओरणओ अमुयकालंमि नट्ठिलओ ?, स आह—आमं अत्थि, सो एएण मारित्ता खइओ, अट्ठियाणि य से बदरीए दक्खिणे पासे उक्कुरुडियाए निहयाणि, गया, दिट्ठाणि, उक्किट्ठकलयलं करेंता आगया, ताहे भणंति–एयं बितिअं । अमुमेवार्थं प्रतिपादयन्नाह निर्युक्तिकृत्—

तण छेयंगुलि कम्मार वीरघोस महिसिंदु दसपलिअं । बिइइंदसम्म ऊरण बयरीए दाहिणुकुरुडे ॥ ४६५ ॥

व्याख्या—अच्छन्दकः तृणं जग्राह, छेदः अङ्गुलीनां कृतः खल्विन्द्रेण, 'कम्मार वीरघोसत्ति' कर्मकरो वीरघोषः, तत्संबन्ध्यनेन 'महिसिंदु दसपलियं' दशपलिकं करोटकं गृहीत्वा महिसेन्दुवृक्षाधः स्थापितं, एकं तावदिदं, द्वितीयं–इन्द्रशर्मण ऊरणकोऽनेन भक्षितः, तदस्थीनि चाद्यापि तिष्ठन्त्येव बदर्या अध दक्षिणोत्कुरुट इति गाथार्थः ॥४६५॥ ततियं पुण अवत्तं,

१ कर्मकर?, स पादयोः पतितः अहमिति, अस्ति तव अमुककाले दशपलमानं वर्तुलं नष्टपूर्वम् ?, ओमस्ति, तदनेन हृतं, तत्पुनः क ?, एतस्य गृहपुरतः खर्जूरीवृक्षस्य पूर्वस्यां हस्तमात्रं गत्वा तत्र खात्वा गृह्णीत । तदा गताः, दृष्टं, आगताः कलकलं कुर्वन्तः । अन्यदपि शृणुत–अस्त्यत्र इन्द्रशर्मा नाम गृहपतिः, तदा भणति–अस्ति, तदा स स्वयमेवोपस्थितः, यथाऽहं, आज्ञापयत, अस्ति तवोर्णायुः अमुककाले नष्टः, स आह–ओमस्ति, स एतेन मारयित्वा खादितः, अस्थीनि च तस्य बदर्यां दक्षिणे पार्श्वे उत्कुरुटके निखातानि, गताः, दृष्टानि, उत्कृष्टकलकलं कुर्वन्त आगताः, तदा भणन्ति–एतद्द्वितीयम् २ तृतीयं पुनरवाच्यं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]अलाहि भणितेण, ते निबंधं करेंति, पच्छा भणति–वच्चह भज्जा से कहेहिइ, सा पुण तस्स चेव छिड्डाणि मग्गमाणी अच्छति, ताए सुयं–जहा सो विडंबिओत्ति, अंगुलीओ से छिन्नाओ, सा य तेण तद्दिवसं पिट्टिया, सा चिंतेति–नवरि एउ गामो, ताहे साहेमि, ते आगया पुच्छंति, सा भणइ–मा से नामं गेण्हह, भगिणीए पती ममं नेच्छति, ते उक्किट्ठिं करेमाणा तं भणंति–एस पावो, एवं तस्स उड्डाहो जाओ, एस पावो, जहा न कोइ भिक्खंपि देइ, ताहे अप्पसागारियं आगओ भणइ–भगवं ! तुब्भे अन्नत्थवि पुज्जिज्जह, अहं कहिं जामि ?, ताहे अचियत्तोग्गहोत्तिकाउं सामी निग्गओ। ततो वच्चमाणस्स अंतरा दो वाचालाओ–दाहिणा उत्तरा य, तासिं दोण्हवि अंतरा दो नईओ–सुवण्णवालुगा रुप्पवालुगा य, ताहे सामी दक्खिणवाचालाओ सन्निवेसाओ उत्तरवाचालं वच्चइ, तत्थ सुवण्णवालुयाए नदीए पुलिणे कंटियाए तं वत्थं विलग्गं, सामी गतो, पुणोऽवि अवलोइअं, किं निमित्तं ?, केई भणंति–ममत्तीए, अवरे–किं थंडिले पडिअं अथंडिलेत्ति,

---

१ अलं भणितेन, ते निर्बन्धं कुर्वन्ति, पश्चाद् भणति–व्रजत भार्या तस्य कथयिष्यति, सा पुनस्तस्य छिद्राण्येव मृगयमाणा तिष्ठति, तया श्रुतम्–यथा स विडम्बित इति, अङ्गुलयस्तस्य छिन्नाः, सा च तेन तद्दिवसे पिट्टिता, सा चिन्तयति–परमायातु ग्रामः, तदा साधयामि, त आगताः पृच्छन्ति, सा भणति–मा तस्य नाम ग्रहीष्ट, भगिन्याः पतिर्मां नेच्छति, त उत्कृष्टिं कुर्वन्तस्तं भणन्ति–एष पापः, एवं तस्योड्डाहो जातः, एष पापः, यथा (यदा) न कश्चिद् भिक्षामपि ददाति, तदाऽल्पसागारिक आगतो भणति–भगवन्तः! यूयमन्यत्रापि पूज्यिष्यध्वं, अहं क्व यामि ?, तदा अप्रीतिकावग्रह इतिकृत्वा स्वामी निर्गतः। ततो व्रजतः अन्तरा द्वे वाचाले–दक्षिणा उत्तरा च, तयोर्द्वयोरपि अन्तरा द्वे नद्यौ–सुवर्णवालुका रूप्यवालुका च, तदा स्वामी दक्षिणवाचालात् सन्निवेशात् उत्तरवाचालं व्रजति, तत्र सुवर्णवालुकाया नद्याः पुलिने कण्टिकायां तद्वस्त्रं विलग्नं, स्वामी गतः, पुनरप्यवलोकितं, किं निमित्तम् ?, केचिद् भणन्ति–ममत्वेन, अपरे–किं स्थण्डिले पतितमस्थण्डिले इति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]केई–सहसागारेणं, केई–वरं सिस्साणं वत्थपत्तं सुलभं भविस्सइ?, तं च तेण धिज्जाइएण गहिअं, तुण्णागस्स उवणीअं, सयसहस्समोल्लं जायं, एक्केकस्स पण्णासं सहस्साणि जायाणि। अमुमेवार्थमभिधित्सुराह—

तइअमवच्चं भज्जा कहिही नाहं तओ पिउवयंसो। दाहिणवायालसुवण्णवालुगाकंटए वत्थं ॥ ४६६ ॥

पदानि—तृतीयमवाच्यं भार्या कथयिष्यति। ततः पितुर्वयस्यस्तु दक्षिणवाचालसुवर्णवालुकाकण्टके वस्त्रं, क्रियाऽध्याहारतोऽक्षरगमनिका स्वबुद्ध्या कार्येति। [2]ताहे सामी वच्चइ उत्तरवाचालं, तत्थ अंतरा कणगखलं नाम आसमपयं, तत्थ दो पंथा–उज्जुगो वंको य, जो सो उज्जुओ सो कणगखलंमज्झेण वच्चइ, वंको परिहरंतो, सामी उज्जुगेण पहाविओ, तत्थ गोवालेहिं वारिओ, एत्थ दिट्ठिविसो सप्पो, मा एएण वच्चह, सामी जाणति–जहेसो भविओ संबुज्झिहिति, तओ गतो जक्खघरमंडवियाए पडिमं ठिओ। सो पुण को पुव्वभवे आसी?, खमगो, पारणए गओ वासिगभत्तस्स, तेण मंडुक्कलिया विराहिआ, खुड्डुएण परिचोइओ, ताहे सो भणति–किं इमाओऽवि मए मारिआओ लोयमारिआओ दरिसेइ, ताहे खुड्डुएण

---

१ केचित्–सहसाकारेण, केचित्–परं शिष्याणां वस्त्रपात्रं सुलभं भविष्यति?, तच्च तेन धिग्जातीयेन गृहीतं, तुन्नाकस्य उपनीतं, शतसहस्रमूल्यं जातं, एकैकस्य पञ्चाशत् सहस्राणि जातानि। २ तदा स्वामी व्रजति उत्तरवाचालं, तत्रान्तरा कनकखलनामाश्रमपदं तत्र द्वौ पन्थानौ–ऋजुर्वक्रश्च, योऽसौ ऋजुः स कनकखलमध्येन व्रजति, वक्रः परिहरन्, स्वामी ऋजुना प्रधावितः, तत्र गोपालैर्वारितः, अत्र दृष्टिविषः सर्पः, मैतेन व्राजीः, स्वामी जानाति–यथैष भव्यः संभोत्स्यत इति, ततो गतो यक्षगृहमण्डपिकायां प्रतिमां स्थितः। स पुनः कः पूर्वभवे आसीत्?, क्षपकः, पारणके गतः पर्युषितभक्ताय, तेन मण्डूकी विराद्धा, क्षुल्लकेन परिचोदितः, तदा स भणति–किमिमा अपि मया मारिताः लोकमारिता दर्शयति, तदा क्षुल्लकेन.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नायं–वियाले आलोहिइत्ति, सो आवस्सए आलोएत्ता उवविठ्ठो, खुड्डुओ चिंतेइ–नूणं से विस्सरियं, ताहे सारिअं, रुट्ठो आहणामित्ति उद्धाइओ खुड्डुगस्स, तत्थ थंभे आवडिओ मओ विराहियसामण्णो जोइसिएसु उववण्णो, ततो चुओ कणगखले पंचण्हं तावससयाणं कुलवइस्स तावसीए उदरे आयाओ, ताहे दारगो जाओ, तत्थ से कोसिओत्ति नामं कयं, सो य अतीव तेण सभावेण चंडकोधो, तत्थ अन्नेऽवि अत्थि कोसिया, तस्स चंडकोसिओत्ति नामं कयं, सो कुलवती मओ, ततो य सो कुलवई जाओ, सो तत्थ वणसंडे मुच्छिओ, तेसिं तावसाण ताणि फलाणि न देइ, ते अलभंता गया दिसोदिसं, जोऽवि तत्थ गोवालादी एति तंपि हंतुं धाडेइ, तस्स अदूरे सेयंबियानाम नयरी, ततो रायपुत्तेहिं आगंतूणं विरहिए पडिनिवेसेण भग्गो विणासिओ य, तस्स गोवालएहिं कहियं, सो कंटियाणं गओ, ताओ छड्डेत्ता परसुहत्थो गओ रोसेण धमधमंतो, कुमारेहिं दिठ्ठो एंतओ, तं दठ्ठूण पलाया, सोऽवि कुहाडहत्थो पहावेत्ता खड्डे आवडिऊण पडिओ, सो

---

१ ज्ञातं–विकाले आलोचयिष्यतीति, स आवश्यके आलोचयित्वा उपविष्टः, क्षुल्लकश्चिन्तयति–नूनमस्य विस्मृतं, ततः स्मारितं, रुष्ट आहन्मीत्युद्धावितः क्षुल्लकाय, तत्र स्तम्भे आस्फलितो मृतो विराधितश्रामण्यः ज्योतिष्केषु उत्पन्नः, ततश्च्युतः कनकखले पञ्चानां तापसशतानां कुलपतेः तापस्या उदरे आयातः, तदा दारको जातः, तत्र तस्य कौशिक इति नाम कृतं, स चातीव तेन स्वभावेन चण्डक्रोधः, तत्र अन्येऽपि सन्ति कौशिकाः, तस्य चण्डकौशिक इति नाम कृतं, स कुलपतिर्मृतः, ततश्च स कुलपतिर्जातः, स तत्र वनखण्डे मूर्छितः, तेभ्यः तापसेभ्यः तानि फलानि न ददाति, तेऽलभमाना गता दिशि दिशि, योऽपि तत्र गोपालादिक आयाति तमपि हत्वा धाटयति, तस्यादूरे श्वेतम्बीकानामनगरी, ततो राजपुत्रैरागत्य विरहिते प्रतिनिवेशेन भग्नो विनाशितश्च, तस्मै गोपालकैः कथितं, स कण्टकेभ्यो गतः, तांस्त्यक्त्वा परशुहस्तो गतो रोषेण धमधमायमानः, कुमारैर्दृष्टः आगच्छन् तं दृष्ट्वा पलायिताः, सोऽपि कुठारहस्तः प्रधाव्य गर्ते आपत्य पतितः, स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

कुहाडो अभिमुहो ठिओ, तत्थ से सिरं दो भाए कयं, तत्थ मओ तंमि चेव वणसंडे दिट्ठीविसो सप्पो जाओ, तेण रोसेण लोभेण य तं रक्खइ वणसंडं, तओ ते तावसा सबे दड्ढा, जे अदड्ढगा ते नट्ठा, सो तिसंझं वणसंडं परियंचिऊणं जं सउणगमवि पासइ तं डहइ, ताहे सामी तेण दिट्ठो, ततो आसुरुत्तो, ममं न याणसि ?, सूरं णिज्झाइत्ता पच्छा सामिं पलोएइ, सो न डज्झइ जहा अण्णे, एवं दो तिण्णि वारा, ताहे गंतूण डसइ, डसित्ता अवक्कमइ–मा मे उवरिं पडिहित्ति, तहवि न मरइ, एवं तिण्णि वारे, ताहे पलोएंतो अच्छति अमरिसेणं, तस्स भगवओ रूवं पेच्छंतस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि विज्झाइयाणि सामिणो कंतिसोम्मयाए, ताहे सामिणा भणिअं–उवसम भो चंडकोसिया !, ताहे तस्स ईहापोहमग्गणगवेसणं करेंतस्स जातीसरणं समुप्पण्णं, ताहे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेत्ता भत्तं पच्चक्खाइ मणसा, तित्थगरो जाणइ, ताहे सो बिले तुंडं छोढुं ठिओ, माऽहं रुट्ठो संतो लोगं मारेहं, सामी तस्स अणुकंपाए अच्छइ, सामिं दट्ठूण गोवा-

१ कुठारः अभिमुखः स्थितः, तत्र तस्य शिरो द्विभागीकृतं, तत्र मृतस्तस्मिन्नेव वनखण्डे दृष्टिविषः सर्पो जातः, तेन रोषेण लोभेन च तं रक्षति वनखण्डं, ततस्ते तापसाः सर्वे दग्धाः, ये अदग्धास्ते नष्टाः, स त्रिसन्ध्यं वनखण्डं परीत्य यं कञ्चन शकुनमपि पश्यति तं दहति, तदा स्वामी तेन दृष्टः, ततः क्रुद्धः, मां न जानासि ?, सूर्यं निध्याय पश्चात्स्वामिनं प्रलोकयति, स न दह्यते यथाऽन्ये, एवं द्वौ त्रीन् वारान्, तदा गत्वा दशति, दष्ट्वाऽपक्रामति–मा ममोपरि पप्तत् इति तथापि न म्रियते, एवं त्रीन् वारान्, तदा प्रलोकमानस्तिष्ठति अमर्षेण, तस्य भगवतो रूपं प्रेक्षमाणस्य ते विषभृते अक्षिणी विध्याते स्वामिनः कान्तिसौम्येन, तदा स्वामिना भणितम्–उपशाम्य भोः चण्डकौशिक !, तदा तस्य ईहापोहमार्गणगवेषणां कुर्वतः जातिस्मरणं समुत्पन्नं, तदा त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणं कृत्वा भक्तं प्रत्याख्याति मनसा, तीर्थंकरो जानाति, तदा स बिले तुण्डं स्थापयित्वा स्थितः, माऽहं रुष्टः सन् लोकं मीमरम्, स्वामी तस्यानुकम्पया तिष्ठति, स्वामिनं दृष्ट्वा.

॥१९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

लवच्छवाला अल्लियंति, रुक्खेहिं आवरेत्ता अप्पाणं तस्स सप्पस्स पाहाणे खिवंति, न चलतित्ति अल्लीणो कट्ठेहिं घट्टिओ, तहवि न फंदतित्ति तेहिं लोगस्स सिट्ठं, तो लोगो आगंतूण सामिं वंदित्ता तंपि य सप्पं महेइ, अण्णाओ य घयविक्किणियाओ तं सप्पं मक्खेंति, फरुसिंति, सो पिवीलियाहिं गहिओ, तं वेयणं अहियासेत्ता अद्धमासस्स मओ सहस्सारे उववण्णो। अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

उत्तरवाचालंतरवणसंडे चंडकोसिओ सप्पो। न डहे चिंता सरणं जोइस कोवा ऽहि जाओऽहं ॥ ४६७ ॥

गमनिका—उत्तरवाचालान्तरवनखण्डे चण्डकौशिकः सर्पः न ददाह चिन्ता स्मरणं ज्योतिष्कः क्रोधाद् अहिर्जातोऽहमिति, अक्षरगमनिका स्वबुद्ध्या कार्येति ॥ ४६७ ॥ अनुक्तार्थं प्रतिपादयन्नाह—

उत्तरवायाला नागसेण खीरेण भोयणं दिव्वा। सेयवियाय पएसी पंचरहे निज्जरायाणो ॥ ४६८ ॥

गमनिका—उत्तरवाचाला नागसेनः क्षीरेण भोजनं दिव्यानि श्वेतम्ब्यां प्रदेशी पञ्चरथैः नैयका राजानः–नैयका गोत्रतः, प्रदेशे निजा इत्यपरे । शेषो भावार्थः कथानकादवसेयः तच्चेदम्—तओ सामी उत्तरवाचालं गओ, तत्थ

---

१ गोपालवत्सपाला आगच्छन्ति, वृक्षैरावार्यात्मानं तस्य सर्पस्य (उपरि) पाषाणान् क्षिपन्ति, न चलतीति ईषल्लीनः काष्ठैर्घट्टितः, तथाऽपि न स्पन्दत इति तैर्लोकाय शिष्टं, ततो लोक आगत्य स्वामिनं वन्दित्वा तमपि च सर्पं महति,अन्याश्च घृतविक्रायिकास्तं सर्पं म्रक्षयन्ति स्पृशन्ति, स पिपीलिकाभिर्गृहीतः तां वेदनामध्यास्य अर्धमासेन मृतः सहस्रारे उत्पन्नः । २ ततः स्वाम्युत्तरवाचालं गतः, तत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पंक्खक्खमणपारणते अतिगओ, तत्थ नागसेणेण गिहवइणा खीरभोयणेण पडिलाभिओ, पंच दिव्वाणि पाउब्भूयाणि, ततो सेयवियं गओ, तत्थ पदेसी राया समणोवासओ भगवओ महिमं करेइ, तओ भगवं सुरभिपुरं वच्चइ, तत्थंतराए णेज्जगा रायाणो पंचहिं रथेहिं एन्ति पएसिरण्णो पासे,तेहिं तत्थ सामी वंदिओ पूइओ य,ततो सामी सुरभिपुरं गओ, तत्थ गंगा उत्तरियव्वा, तत्थ सिद्धजत्तो नाम नाविओ, खेमल्लो नाम सउणजाणओ, तत्थ य णावाए लोगो विलग्गइ, कोसिएण महासउणेण वासियं, कोसिओ नाम उलूको, ततो खेमिलेण भणियं–जारिसं सउणेण भणियं तारिसं अम्हेहिं मारणंतियं पावियव्वं, किं पुण ? इमस्स महरिसिस्स पभावेण मुच्चिहामो, सा य णावा पहाविया, सुदाढेण य णागकुमारराइणा दिट्ठो भयवं णावाए ठिओ, तस्स कोवो जाओ, सो य किर जो सो सीहो वासुदेवत्तणे मारिओ सो संसारं भमिऊण सुदाढो नागो जाओ, सो संवट्टगवायं विउव्वेत्ता णावं ओबोलेउं इच्छइ । इओ य कंवलसंबलाणं आसणं चलियं, का पुण

१ पक्षक्षपणपारणकेऽतिगतः, तत्र नागसेनेन गृहपतिना क्षीरभोजनेन प्रतिलम्भितः, पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, ततः श्वेतम्बीं गतः, तत्र प्रदेशी राजा श्रमणोपासको भगवतो महिमानं करोति, ततो भगवान् सुरभिपुरं व्रजति, तत्रान्तरा नैयका राजानः पञ्चभी रथैरायान्ति प्रदेशिराज्ञः पार्श्वे, तैस्तत्र स्वामी वन्दितः पूजितश्च, ततः स्वामी सुरभिपुरं गतः, तत्र गङ्गा उत्तरीतव्या, तत्र सिद्धयात्रो नाम नाविकः, क्षेमिलो नाम शकुनज्ञाता, तत्र च नावि लोको विलगति, कौशिकेन महाशकुनेन वासितं, कौशिको नाम उलूकः, ततः क्षेमिलेन भणितं–यादृशं शकुनेन भणितं तादृशमस्माभिर्मारणान्तिकं प्राप्तव्यं, किं पुनः! अस्य महर्षेः प्रभावेण मोक्ष्यामहे, सा च नौः प्रधाविता, सुदंष्ट्रेण च नागकुमारराजेन दृष्टो भगवान् नावि स्थितः, तस्य कोपो जातः, स च किल यः स सिंहः वासुदेवत्वे मारितः स संसारं भ्रान्त्वा सुदंष्ट्रो नागो जातः, स संवर्त्तकवातं विकुर्व्य नावमुद्बुडयितुं इच्छति । इतश्च कम्बलसम्बलयोरासनं चलितं, का पुनः

||१९७||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]कंबलसंबलाण उप्पत्ती ?—महुराए नगरीए जिणदासो वाणियओ सड्ढो, सोमदासी साविया, दोऽवि अभिगयाणि परिमाणकडाणि, तेहिं चउप्पयस्स पच्चक्खायं, ततो दिवसदेवसिअं गोरसं गिण्हंति, तत्थ य आभीरी गोरसं गहाय आगया, सा ताए सावियाए भण्णइ–मा तुमं अण्णत्थ भमाहि, जत्तिअं आणेसि तत्तिअं गेण्हामि, एवं तासिं संगयं जायं, इमावि गंधपुडियाइ देइ, इमावि कूइगादि दुद्धं दहियं वा देइ, एवं तासिं दढं सोहियं जायं। अण्णया तासिं गोवाणं विवाहो जाओ, ताहे ताणि निमंतेंति, ताणि भणन्ति–अम्हे वाउलाणि ण तरामो गंतुं, जं तत्थ उवउज्जति भोयणे कडुगभंडादी वत्थाणि आभरणाणि धूवपुप्फगंधमल्लादि वधूवरस्स तं तेहिं दिण्णं, तेहिं अतीव सोभावियं, (५०००) लोगेण य सलाहियाणि, तेहिं तुट्ठेहिं दो तिवरिसा गोणपोतलया हट्ठसरीरा उवट्ठिया कंबलसंबलत्ति नामेणं, ताणि नेच्छंति, बला बंधिउं गयाणि, ताहे तेण सावएण चिंतियं–जइ मुच्चिहिंति ताहे लोगो वाहेहित्ति, ता एत्थ चेव अच्छंतु, फासुगचारी किणिऊणं

---

१ कम्बलशम्बलयोरुत्पत्तिः ?–मथुरायां नगर्यां जिनदासो वणिग् श्राद्धः, सोमदासी श्राविका, द्वे अपि अभिगतौ (जीवादिज्ञातारौ) कृतपरिमाणौ, ताभ्यां चतुष्पदं प्रत्याख्यातं, ततो दिवसदैवसिकं गोरसं गृह्णीतः, तत्र चाभीरी गोरसं गृहीत्वा आगता, सा तया श्राविकया भण्यते–मा त्वमन्यत्र भ्रमीः, यावदानयसि तावद्गृह्णामि, एवं तयोः संगतं जातं, इयमपि गन्धपुटिकादि ददाति, इयमपि कूचिकादि दुग्धं दधि वा ददाति, एवं तयोर्दृढं सौहृदं जातं। अन्यदा तेषां गोपानां विवाहो जातः, तदा तौ निमन्त्रयतः, तौ भणतः–आवां व्याकुलौ न शक्नुव आगन्तुं, यत्तत्रोपयुज्यते भोजने कटाहभाण्डादि वस्त्राण्याभरणानि धूपपुष्पगन्धमाल्यादि वधूवरयोः तत्तैर्दत्तं, तैरतीव शोभितं, लोकेन च श्लाघितौ, ताभ्यां तुष्टाभ्यां द्वौ त्रिवर्षौ गोपोतौ हृष्टशरीरौ उपस्थापितौ कम्बलशम्बलाविति नाम्ना, तौ नेच्छतः, बलाद्बध्वा गतौ, तदा तेन श्रावकेण चिन्तितं–यदि मुच्येते तदा लोको वाहयिष्यति इति, तद् अत्रैव तिष्ठतां, प्रासुकचारिः क्रीत्वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कंबल-शंबल कथानक

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

दिज्जइ, एवं पोसिज्जंति, सोऽवि सावओ अट्ठमीचउद्दसीसु उववासं करेइ पोत्थयं च वाएइ, तेऽवि तं सोऊण भद्दया जाया सण्णिणो य, जद्दिवसं सावगो न जेमेइ तद्दिवसं तेऽवि न जेमंति, तस्स सावगस्स भावो जाओ–जहा इमे भविया उवसंता, अब्भहिओ य नेहो जाओ, ते रुवस्सिणो, तस्स य सावगस्स मित्तो, तत्थ भंडीरमणजत्ता, तारिसा नत्थि अण्णस्स बइल्ला, ताहे तेण ते भंडीए जोएत्ता णीआ अणापुच्छाए, तत्थ अण्णेण अण्णेणवि समं धावं कारिया, ताहे ते छिन्ना, तेण ते आणेउं बद्धा, न चरंति न य पाणियं पिबंति, जाहे सव्वहा नेच्छंति ताहे सो सावओ तेसिं भत्तं पच्चक्खाइ, नमुक्कारं च देइ, ते कालगया णागकुमारेसु उववण्णा, ओहिं पउंजंति, जाव पेच्छंति तित्थगरस्स उवसग्गं कीरमाणं, ताहे तेहिं चिंतियं–अलाहि ता अण्णेणं, सामिं मोएमो, आगया, एगेण णावा गहिया, एगो सुदाढेण समं जुज्झइ, सो महिड्ढिगो, तस्स पुण चवणकालो, इमे य अहुणोववण्णया, सो तेहिं पराइओ, ताहे ते नागकुमारा तित्थगरस्स महिमं करेंति

१ दीयते, एवं पोष्येते, सोऽपि श्रावकोऽष्टमीचतुर्दश्योरुपवासं करोति पुस्तकं च वाचयति, तावपि तत् श्रुत्वा भद्रकौ जातौ संज्ञिनौ च, यद्दिवसे श्रावको न जेमति तद्दिवसे तावपि न जेमतः, तस्य श्रावकस्य भावो जातः–यथेमौ भव्यावुपशान्तौ, अभ्यधिकश्च स्नेहो जातः, तौ रूपवन्तौ, तस्य च श्रावकस्य मित्रं, तत्र भण्डीरमणयात्रा, तादृशौ न स्तोऽन्यस्य बलीवर्दौ, तदा तेन भण्ड्यां योजयित्वा नीतौ अनापृच्छया, तत्रान्येनान्येनापि समं धावनं कारितौ, तदा तौ छिन्नौ, तेन तावानीय बद्धौ, न चरतो न च पानीयं पिबतः, यदा सर्वथा नेच्छतस्तदा स श्रावकस्तौ भक्तं प्रत्याख्यापयति, नमस्कारं च ददाति, तौ कालगतौ नागकुमारेषूत्पन्नौ, अवधिं प्रायुङ्क्तां यावत्पश्यतः तीर्थकरस्योपसर्गं क्रियमाणं, तदा ताभ्यां चिन्तितम्–अलं तावदन्येन, स्वामिनं मोचयावः, आगतौ, एकेन नौर्गृहीता, एकः सुदंष्ट्रेन समं युध्यते, स महर्द्धिकः, तस्य पुनश्च्यवनकालः, इमौ चाधुनोत्पन्नौ, स ताभ्यां पराजितः, तदा तौ नागकुमारौ तीर्थकरस्य महिमानं कुरुतः.

॥१९८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

सत्तं रूवं च गायंति, एवं लोगोऽवि, ततो सामी उत्तिण्णो, तत्थ देवेहिं सुरहिगंधोदयवासं पुप्फवासं च वुट्ठं, तेऽवि पडिगया। अमुमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

सुरहिपुर सिद्धजत्तो गंगा कोसिअ विऊ य खेमिलओ। नाग सुदाढे सीहे कंबलसबला य जिणमहिमा॥ ४६९॥

महुराए जिणदासो आहीर विवाह गोण उववासे। भंडीर मित्त अवच्चे भत्ते णागोहि आगमणं॥ ४७०॥

वीरवरस्स भगवओ नावारूढस्स कासि उवसग्गं। मिच्छादिट्ठि परद्धं कंबलसबला समुत्तारे॥ ४७१॥

पदानि—सुरभिपुरं सिद्धयात्रः गङ्गा कौशिकः विद्वांश्च खेमिलकः नागः सुदंष्ट्रः सिंहः कम्बलसबलौ च जिनमहिमा, मथुरायां जिनदासः आभीरविवाहः गोः उपवासः भण्डीरः मित्रं अपत्ये भक्तं नागौ अवधिः आगमनं वीरवरस्य भगवतः नावमारूढस्य कृतवान् उपसर्गं मिथ्यादृष्टिः 'परद्धं' विक्षिप्तं भगवन्तं कम्बलसबलौ समुत्तारितवन्तौ। अक्षरगमनिका स्वबुद्ध्या कार्या। ततो भगवं दगतीराए इरियावहियं पडिक्कमइ, पत्थिओ ततो, णदीपुलिणे भगवओ पादेसु लक्खणाणि दीसंति महुसित्थचिक्खल्ले, तत्थ पूसो नाम सामुद्दिओ, सो ताणि पासिऊण चिंतेइ–एस चक्कवट्टी गतो एगागी, वच्चामि णं वागरेमि, तो मम एत्तो भोगा भविस्संति, सेवामि णं कुमारत्तणे, सामीऽवि थूणागस्स सण्णिवेसस्स बाहिं पडिमं

---

१ सत्त्वं रूपं च गायतः, एवं लोकोऽपि, ततः स्वाम्युत्तीर्णः, तत्र देवैः सुरभिगन्धोदकवर्षा पुष्पवर्षा च वृष्टा, तावपि प्रतिगतौ। २ ततो भगवान् दकतीरे ईर्यापथिकीं प्रतिक्राम्यति, प्रस्थितस्ततः, नदीपुलिने भगवतः पादयोर्लक्षणानि दृश्यन्ते मधुसिक्थकर्दमे, तत्र पुष्पो नाम सामुद्रिकः, स तानि दृष्ट्वा चिन्तयति–एष चक्रवर्ती गत एकाकी, व्रजामि तं व्याकरोमि, ततः ममास्माद्भोगा भविष्यन्ति, सेवे तं कुमारत्वे, स्वाम्यपि स्थूणाकस्य सन्निवेशस्य बहिर्भागे प्रतिमां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

ठिओ, तत्थ सो सामिं पिच्छिऊण चिंतेइ–अहो मए पलालं अहिज्जिअं, एएहिं लक्खणेहिं जुत्तं, एएण समणेण न होउं। इओ य सक्को देवराया ओहिणा पलोएइ–कहिं अज्ज सामी ?, ताहे सामिं पेच्छइ, तं च पूसं, आगओ सामिं वन्दित्ता भणति–भो पूस ! तुमं लक्खणं न याणसि, एसो अपरिमिअलक्खणो, ताहे वण्णेइ लक्खणं अब्भिंतरगं–गोखीरगोरं रुहिरं पसत्थं, सत्थं न होइ अलिअं, एस धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी देविंदनरिंदपूइओ भवियजणकुमुयाणंदकारओ भविस्सइ, ततो सामी रायगिहं गओ, तत्थ णालंदाए बाहिरियाए तंतुवागसालाए एगदेसंमि अहापडिरूवं उग्गहं अणुण्णवेत्ता पढमं मासक्खमणं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं मंखली नाम मंखो, तस्स भद्दा भारिया गुव्विणी सरवणे नाम सण्णिवेसे गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए पसूआ, गोण्णं नामं कयं गोसालोत्ति, संवड्ढिओ, मंखसिप्पं अहिज्जिओ, चित्तफलयं करेइ, एक्कल्लओ विहरंतओ रायगिहे तंतुवायसालाए ठिओ, जत्थ सामी ठिओ, तत्थ वासावासं उवागओ।

---

१ स्थितः, तत्र स स्वामिनं प्रेक्ष्य चिन्तयति–अहो मया पलालमधीतं, एतैर्लक्षणैर्युक्तः, एतेन श्रमणेन न भाव्यं। इतश्च शक्रो देवराजोऽवधिना प्रलोकयति–क्वाद्य स्वामी?, तदा स्वामिनं प्रेक्षते, तं च पुष्पं, आगतः स्वामिनं वन्दित्वा भणति–भोः पुष्प! त्वं लक्षणं न जानासि, एषोऽपरिमितलक्षणः, तदा वर्णयति लक्षणमभ्यन्तरं–गोक्षीरगौरं रुधिरं प्रशस्तं, शास्त्रं न भवति अलीकं, एष धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती देवेन्द्रनरेन्द्रपूजितः भव्यजनकुमुदानन्दकारकः भविष्यति, ततः स्वामी राजगृहं गतः, तत्र नालन्दाख्यशाखापुरे तन्तुवायशालायां एकदेशे यथाप्रतिरूपमवग्रहमनुज्ञाप्य प्रथमं मासक्षपणमुपसंपद्य विहरति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये मङ्खलिर्नाम मङ्खः, तस्य भद्रा भार्या गुर्विणी शरवणे नाम सन्निवेशे गोबहुलस्य ब्राह्मणस्य गोशालायां प्रसूता, गौणं नाम कृतं गोशाल इति, संवर्धितः, मङ्खशिल्पमध्यापितः, चित्रफलकं करोति, एकाकी विहरन् राजगृहे तन्तुवायशालायां स्थितः, यत्र स्वामी स्थितः, तत्र वर्षावासमुपागतः-

॥१९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [-]

दीप अनुक्रम [-]

भगवं मासखमणपारणए अब्भितरियाए विजयस्स घरे विउलाए भोयणविहीए पडिलाभिओ, पंच दिव्वाणि पाउब्भूयाणि, गोसालो सुणेत्ता आगओ, पंच दिव्वाणि पासिऊण भणति-भगवं! तुज्झं अहं सीसोत्ति, सामी तुसिणीओ निग्गओ, बितिअमासखमणं ठिओ, बितिए आणंदस्स घरे खज्जगविहीए ततिए सुणंदस्स घरे सव्वकामगुणिएणं, ततो चउत्थं मासखमणं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। अभिहितार्थोपसंग्रहायेदमाह—

थूणाएँ बहिं पूसो लक्खणमब्भंतरं च देविंदो। रायगिहि तंतुसाला मासक्खमणं च गोसालो ॥ ४७२ ॥

मंखलि मंख सुभद्दा सरवण गोबहुलमेव गोसालो। विजयाणंदसुणंदे भोअण खज्जे अ कामगुणे ॥ ४७३ ॥

पदानि—स्थूणायां बहिः पुष्यो लक्षणमभ्यन्तरं च देवेन्द्रः राजगृहे तन्तुवायकशाला मासक्षपणं च गोशालः मङ्खली मङ्खः सुभद्रा शरवणं गोबहुल एव गोशालो विजय आनन्दः सुनन्दः भोजनं खाद्यानि च कामगुणं। शरवणं-गोशालोत्पत्तिस्थानं। शेषाऽक्षरगमनिका स्वधिया कार्या। गोसालो कत्तियदिवसपुण्णिमाए पुच्छइ-किमहं अज्ज भत्तं लभिस्सामि?, सिद्धत्थेण भणियं-कोद्दवकूरं अंबिलेण कूडरूवगं च दक्खिणं, सो णयरिं सव्वादरेण पहिंडिओ, जहा भंडीसुणए, न कहिंचिवि संभाइयं,

---

१ भगवान् मासक्षपणपारणके अभ्यन्तरिकायां विजयस्य गृहे विपुलेन भोजनविधिना प्रतिलम्भितः, पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, गोशालः श्रुत्वाऽऽगतः, पञ्च दिव्यानि दृष्ट्वा भणति-भगवन्! तवाहं शिष्य इति, स्वामी तूष्णीको निर्गतः, द्वितीयमासक्षपणं स्थितः, द्वितीयस्मिन् आनन्दस्य गृहे खाद्यकविधिना तृतीये सुनन्दस्य गृहे सर्वकामगुणितेन, ततश्चतुर्थं मासक्षपणमुपसंपद्य विहरति। २ गोशालः कार्त्तिकपूर्णिमादिवसे पृच्छति-किमहमद्य भक्तं लप्स्ये?, सिद्धार्थेन भणितम्—कोद्रवतन्दुलान् अम्लेन कूटरूप्यं च दक्षिणायां, स नगर्यां सर्वादरेण प्रहिण्डितः, यथा गन्त्रीश्वा, न कस्मिंश्चिदपि संभाजितः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

ताहे अवरण्हे एक्केणं कम्मकरेण अंबिलेण कूरो दिण्णो, ताहे जिमिओ, एगो रूवगो दिण्णो, रूवगो परिक्खाविओ जाव कूडओ, ताहे भणति–जेण जहा भवियव्वं ण तं भवति अण्णहा, लज्जिओ आगतो। तओ भगवं चउत्थमासखमणपारणए नालिंदाओ निग्गओ, कोल्लाकसन्निवेसं गओ, तत्थ बहुलो माहणो माहणे भोयावेति घयमहुसंजुत्तेणं परमण्णेणं, ताहे तेण सामी पडिलाभिओ, तत्थ पंच दिव्वाणि। गोसालोऽवि तंतुवागसालाए सामिं अपिच्छमाणो रायगिहं सब्भंतरबाहिरिअं गवेसति, जाहे न पेच्छइ ताहे नियगोवगरणं धीयाराणं दाउं सउत्तरोट्ठं मुंडं काउं गतो कोल्लागं, तत्थ भगवतो मिलिओ, तओ भगवं गोसालेण समं सुवण्णखलगं वच्चइ, एत्थंतरा गोवा गावीहिंतो खीरं गहाय महल्लिए थालीए णवएहिं तंदुलेहिं पायसं उवक्खडेंति, ततो गोसालो भणति–एह भगवं ! एत्थ भुंजामो, सिद्धत्थो भणति–एस निम्माणं चेव न वच्चइ, एस भज्जिहिति उल्लहिज्जंती, ताहे सो असद्दहंतो ते गोवे भणति–एस देवज्जगो तीताणागतजाणओ

१ तदाऽपराह्णे एकेन कर्मकरेण अम्लेन तन्दुला दत्ताः, तदा जिमितः, एको रूप्यको दत्तः, रूप्यकः परीक्षितः यावत् कूटः, तदा भणति–येन यथा भवितव्यं न तद्भवत्यन्यथा, लज्जित आगतः। ततो भगवान् चतुर्थमासक्षपणपारणके नालन्दाया निर्गतः, कोल्लाकसन्निवेशं गतः, तत्र बहुलो ब्राह्मणो ब्राह्मणान् भोजयति घृतमधुसंयुक्तेन परमान्नेन, तदा तेन स्वामी प्रतिलम्भितः, तत्र पञ्च दिव्यानि। गोशालोऽपि तन्तुवायशालायां स्वामिनमप्रेक्षमाणः राजगृहं साभ्यन्तरबाह्यं गवेषयति, यदा न प्रेक्षते तदा निजकोपकरणं धिक्कारेभ्यो दत्त्वा सोत्तरौष्ठं मुण्डनं कृत्वा गतः कोल्लाकं, तत्र भगवता मिलितः, ततो भगवान् गोशालेन समं सुवर्णखलं व्रजति, तत्रान्तरा गोपा गोभ्यः क्षीरं गृहीत्वा महत्यां स्थाल्यां नवैस्तन्दुलैः पायसमुपस्कुर्वन्ति, ततो गोशालो भणति–याव भगवन् ! अत्र भुञ्जावः, सिद्धार्थो भणति–एषा निर्माणमेव न व्रजिष्यति, एषा भङ्क्ष्यति उल्लिख्यमाना, तदा सोऽश्रद्दधानः तान् गोपान् भणति–एष देवार्यकः तीतानागतज्ञायकः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]भणति–एस थाली भज्जिहिति, तो पयत्तेण सारक्खह, ताहे पयत्तं करेंति–वंसविदलेहिं सा बद्धा थाली, तेहिं अतीव बहुला तंदुला छूढा, सा फुट्टा, पच्छा गोवालाणं जेणं जं करुलं आसाइयं सो तत्थ पजिमिओ, तेण न लद्धं, ताहे सुट्ठुतरं नियतिं गेण्हइ। अमुमेवार्थं कथानकोक्तमुपसंजिहीर्षुराह—

कुल्लाग बहुल पायस दिव्वा गोसाल दट्ठु पव्वज्जा। बाहिं सुवण्णखलए पायसथाली नियइगहणं॥ ४७४॥

पदानि—कोल्लाकः बहुलः पायसं दिव्यानि गोशालः दृष्ट्वा प्रव्रज्या बहिः सुवर्णखलात् पायसस्थाली नियतेर्ग्रहणं च। पदार्थ उक्त एव।

[2]बंभणगामे नंदोवनंद उवणंद तेय पचद्धे। चंपा दुमासखमणे वासावासं मुणी खमइ॥ ४७५॥

पदानि—ब्राह्मणग्रामे नन्दोपनन्दौ उपनन्दः तेजः प्रत्यर्धे चम्पा द्विमासक्षपणे वर्षावासं मुनिः क्षपयतीति। अस्याः पदार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—[2]ततो सामी बंभणगामं गतो, तत्थ नंदो उवणंदो य भायरो, गामस्स दो पाडगा, एक्को नन्दस्स बितिओ उवणंदस्स, ततो सामी नंदस्स पाडगं पविठ्ठो नंदघरं च, तत्थ दोसीणेणं पडिलाभिओ नंदेण

---

१ भणति–एषा स्थाली भङ्क्ष्यति, ततः प्रयत्नेन संरक्षत, तदा प्रयत्नं कुर्वन्ति, वंशविदलैः सा बद्धा स्थाली, तैरतीव बहवस्तन्दुलाः क्षिप्ताः, सा स्फुटिता, पश्चात् गोपालानां येन यत्कपालमासादितं स तत्र प्रजिमितः, तेन न लब्धं, तदा सुष्ठुतरं नियतिं गृह्णाति। २ ततः स्वामी ब्राह्मणग्रामं गतः, तत्र नन्द उपनन्दश्च भ्रातरौ, ग्रामस्य द्वौ पाटकौ, एको नन्दस्य द्वितीय उपनन्दस्य, ततः स्वामी नन्दस्य पाटकं प्रविष्टः नन्दगृहं च, तत्र पर्युषितान्नेन प्रतिलम्भितः नन्देन,
* ०खल पायसथाली नियइए गहणं च. प्र.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गोसालो उवनंदस्स, तेण उवणंदेण संदिट्ठं–देहि भिक्खं, तत्थ न ताव वेला, ताहे सीअलकूरो णीणिओ, सो तं णेच्छइ, पच्छा सा तेणवि भण्णति–दासी ! एयस्स उवरि छुभसुत्ति, तीए छूढो, अपत्तिएण भणति–जइ मज्झ धम्मायरिअस्स अत्थि तवो तेए वा एयस्स घरं डज्झउ, तत्थ अहासण्णिहितेहिं वाणमंतरेहिं मा भगवतो अलियं भवउत्ति तेण तं दड्ढं घरं । ततो सामी चंपं गओ, तत्थ वासावासं ठाइ, तत्थ दोमासिएण खमणेण खमइ, विचित्तं च तवोकम्मं, ठाणादीए पडिमं ठाइ, ठाणुक्कुडुगो एवमादीणि करेइ, एस ततिओ वासारत्तो ।

कालाएँ सुण्णगारे सीहो विज्जुमई गोट्ठिदासी य । खंदो दन्तिलियाए पत्तालग सुण्णगारंमि ॥ ४७६ ॥

पदानि—कालायां शून्यागारे सिंहः विद्युन्मती गोष्ठीदासी च स्कन्दः दन्तिलिकया पात्रालके शून्यागारे । अक्षरगमनिका क्रियाऽध्याहारतः स्वधिया कार्या । पदार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—ततो चरिमं दोमासियपारणयं बाहिं पारेत्ता कालायं नाम सण्णिवेसं गओ गोसालेण समं, तत्थ भगवं सुण्णघरे पडिमं ठिओ, गोसालोऽवि तस्स दारपहे ठिओ,

---

१ गोशाल उपनन्दस्य, तेनोपनन्देन संदिष्टम्–देहि भिक्षां, तत्र न तावद्वेला, तदा शीतलकूरो नीतः, स तं नेच्छति, पश्चात् सा तेनापि भण्यते–दासि ! एतस्योपरि क्षिपेति, तया क्षिप्तः, अप्रीत्या भणति–यदि मम धर्माचार्यस्य अस्ति तपस्तेजो वा एतस्य गृहं दह्यतां, तत्र यथासन्निहितैर्वानमन्तरैः मा भगवान् अलीको भवत्विति तैस्तद् दग्धं गृहं । ततः स्वामी चम्पां गतः, तत्र वर्षावासं तिष्ठति, तत्र द्विमासक्षपणेन तपस्यति, विचित्रं च तपःकर्म, स्थानादिना प्रतिमां (कायोत्सर्गं) करोति, स्थानमुत्कटुकः एवमादीनि करोति, एष तृतीयो वर्षारात्रः । २ ततश्चरमं द्विमासिकपारणकं बहिष्कृत्वा कालाकं नाम सन्निवेशं गतः गोशालेन समं, तत्र भगवान् शून्यगृहे प्रतिमां स्थितः, गोशालोऽपि तस्य द्वारपथे स्थितः.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

तत्थ सीहो नाम गामउडपुत्तो विज्जुमईए गोट्ठीदासीए समं तं चेव सुण्णघरं पविठ्ठो, तत्थ तेण भण्णइ–जइ इत्थ समणो वा माहणो वा पहिको वा कोइ ठिओ सो साहउ जा अन्नत्थ वच्चामो, सामी तुण्हिक्कओ अच्छइ, गोसालोऽवि तुण्हिक्कओ, ताणि अच्छित्ता णिग्गयाणि, गोसालेण सा महिला छिक्का, सा भणति–एस एत्थ कोइ, तेण अभिगंतूण पिट्टिओ, एस धुत्तो अणायारं करेंताणि पेच्छंतो अच्छइ, ताहे सामिं भणइ–अहं एक्किल्लओ पिट्टिज्जामि, तुब्भे ण वारेह, सिद्धत्थो भणइ–कीस सीलं न रक्खसि ?, किं अम्हेऽवि आहण्णामो ?, कीस वा अंतो न अच्छसि, ता दारे ठिओ। ततो निग्गंतूण सामी पत्तकालयं गओ, तत्थवि तहेव सुण्णघरे ठिओ, गोसालो तेण भएणं अंतो ठिओ, तत्थ खंदओ नाम गामउडपुत्तो अप्पिणिच्चियादासीए दत्तिलियाए समं महिलाए लज्जंतो तमेव सुण्णघरं गओ, तेऽवि तहेव पुच्छंति, तहेव तुण्हिक्का

---

१ तत्र सिंहो नाम ग्रामकूटपुत्रः विद्युन्मत्या गोष्ठीदास्या समं तदेव शून्यगृहं प्रविष्टः, तत्र तेन भण्यते–यद्यत्र श्रमणो वा ब्राह्मणो वा पथिको वा कश्चित् स्थितः स साधयतु यतः अन्यत्र व्रजावः, स्वामी तूष्णीकस्तिष्ठति, गोशालोऽपि तूष्णीकः, तौ स्थित्वा निर्गतौ, गोशालेन सा महेला स्पृष्टा, सा भणति–एषोऽत्र कश्चित्, तेनाभिगम्य पिट्टितः, एष धूर्त्तः अनाचारं कुर्वन्तौ पश्यन् तिष्ठति, तदा स्वामिनं भणति–अहमेकाकी पिट्ये, यूयं न वारयत, सिद्धार्थो भणति–कुतः शीलं न रक्षसि?, किं वयमपि आहन्यामहे ?, कुतो वाऽन्तः न तिष्ठसि?, ततो द्वारे स्थितः। ततो निर्गत्य स्वामी पात्रालके गतः, तत्रापि तथैव शून्यगृहे स्थितः गोशालस्तेन भयेनान्तः स्थितः, तत्र स्कन्दको नाम ग्रामकूटपुत्रः आत्मीयया दास्या दन्तिलिकया समं महिलायाः लज्जमानः तदेव शून्यगृहं गतः, तावपि तथैव पृच्छतः, तथैव तूष्णीकौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अच्छंति, जाहे ताणि निग्गच्छंति ताहे गोसालेण हसियं, ताहे पुणोऽवि पिट्टिओ, ताहे सामिं खिंसइ–अम्हे हम्मामो, तुब्भे न वारेह, किं अम्हे तुम्हे ओलग्गामो ?, ताहे सिद्धत्थो भणति–तुमं अप्पदोसेण हम्मसि, कीस तुंडं न रक्खेसि ?—

• मुणिचंद कुमाराए कूवणय चंपरमणिज्जउज्जाणे। चोराय चारि अगडे सोमजयंती उवसमेइ ॥ ४७७॥

पदानि—मुनिचन्द्रः कुमारायां कूपनयः चम्परमणीयोद्याने चौरायां चारिकोऽगडे सोमा जयन्ती उपशामयतः। पदार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—ततो भगवं कुमारायं नाम सण्णिवेसं गओ, तत्थ चम्परमणिज्जे उज्जाणे भगवं पडिमं ठिओ। इओ य पासावच्चिज्जो मुणिचंदो नाम थेरो बहुस्सुओ बहुसीसपरिवारो तंमि सन्निवेसे कूवणयस्स कुंभगारस्स सालाए ठिओ, सो य जिणकप्पपडिमं करेइ सीसं गच्छे ठवेत्ता, सो य सत्तभावणाए अप्पाणं भावेति, तवेण सत्तेण सुत्तेण एगत्तेण बलेण य। तुलहा पंचहा वुत्ता, जिणकप्पं पडिवज्जओ ॥ १ ॥ एआओ भावणाओ, ते पुण सत्तभावणाए भावेंति, सा पुण “पढमा उवस्सयंमि, बितिया बाहिं ततिय चउक्कंमि। सुण्णघरंमि चउत्थी, तह पंचमिआ मसाणंमि ॥१॥”

१ तिष्ठतः, यदा तौ निर्गच्छतः तदा गोशालेन हसितं, तदा पुनरपि पिट्टितः, तदा स्वामिनं जुगुप्सते–अहं हन्ये, यूयं न वारयत, किं युष्मान् वयमवलगामः तदा सिद्धार्थो भणति–त्वमात्मदोषेण हन्यसे, कुतस्तुण्डं न रक्षसि ?। २ ततो भगवान् कुमाराकं नाम सन्निवेशं गतः, तत्र चम्परमणीये उद्याने प्रतिमां भगवान् स्थितः। इतश्च पार्श्वापत्यः मुनिचन्द्रो नाम स्थविरः बहुश्रुतः बहुशिष्यपरिवारः तस्मिन् संन्निवेशे कूपनयस्य कुम्भकारस्य शालायां स्थितः, स च जिनकल्पप्रतिमां करोति शिष्यं गच्छे स्थापयित्वा। ते च सत्त्वभावनयाऽऽत्मानं भावयन्ति–तपसा सत्त्वेन सूत्रेणैकत्वेन बलेन च। तुलना पञ्चधोक्ता जिनकल्पं प्रतिपित्सोः ॥ १ ॥ एताः भावनाः, ते पुनः सत्त्वभावनया भावयन्ति, सा पुनः–प्रथमा उपाश्रये द्वितीया बहिः तृतीया चतुष्के। शून्यगृहे चतुर्थी तथा पञ्चमी श्मशाने ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सो बितियाए भावेइ । गोसालो सामिं भणइ–एस देसकालो हिंडामो, सिद्धत्थो भणइ–अज्ज अम्ह अन्तरं,पच्छा सो हिंडंतो ते पासावच्चिज्जे पासति, भणति य–के तुब्भे ?, ते भणंति–अम्हे समणा निग्गंथा, सो भणति–अहो निग्गंथा, इमो भे एत्तिओ गंथो, कहिं तुब्भे निग्गंथा ?, सो अप्पणो आयरियं वण्णेइ–एरिसो महप्पा, तुब्भे एत्थ के ?, ताहे तेहिं भण्णइ–जारिसो तुमं तारिसो धम्मायरिओऽवि ते सयंगहीयलिंगो, ताहे सो रुट्ठो–अम्ह धम्मायरियं सवहत्ति जइ मम धम्मायरियस्स अत्थि तवो ताहे तुब्भं पडिस्सओ डज्झउ, ते भणंति—तुम्हाणं भणिएण अम्हे न डज्झामो, ताहे सो गतो साहइ सामिस्स–अज्ज मए सारंभा सपरिग्गहा समणा दिट्ठा, तं सव्वं साहइ, ताहे सिद्धत्थेण भणियं–ते पासावच्चिज्जा साहवो, न ते डज्झंति, ताहे रत्ती जाया, ते मुणिचंदा आयरिया बाहिं उवस्सगस्स पडिमं ठिआ, सो कूवणओ तद्दिवसं सेणीए भत्ते पाऊण वियाले एइ मत्तेल्लओ, जाव पासेइ ते मुणिचंदे आयरिए, सो चिंतेइ–एस चोरोत्ति, तेण ते गलए गहीया, ते

---

१ स द्वितीयया भावयति । गोशालः स्वामिनं भणति–एष देशकालः हिण्डावहे, सिद्धार्थो भणति–अद्यास्माकमन्तरं (उपवासः), पश्चात्स हिण्डमानः तान् पार्श्वापत्यान् पश्यति, भणति च–के यूयम् ?, ते भणन्ति–वयं श्रमणा निर्ग्रन्थाः, स भणति–अहो निर्ग्रन्थाः, अयं भवतामियान् ग्रन्थः, क्व यूयं निर्ग्रन्थाः ?, स आत्मन आचार्यं वर्णयति–ईदृशो महात्मा, यूयमत्र के ?, तदा तैर्भण्यते–यादृशस्त्वं तादृशो धर्माचार्योऽपि तव स्वयंगृहीतलिङ्गः, तदा स रुष्टः–मम धर्माचार्यं शपथ इति यदि मम धर्माचार्यस्यास्ति तपः तदा युष्माकं प्रतिश्रयो दह्यतां, ते भणन्ति–युष्माकं भणितेन वयं न दह्यामहे, तदा स गतः कथयति स्वामिने, अद्य मया सारम्भाः सपरिग्रहा श्रमणा दृष्टाः, तत् सर्वं कथयति, तदा सिद्धार्थेन भणितम्–ते पार्श्वापत्याः साधवो, न ते दह्यन्ते, तदा रात्रिर्जाता, ते मुनिचन्द्राचार्या बहिरुपाश्रयस्य प्रतिमां स्थिताः, स कूपनतो भक्ते तद्दिवसे श्रेणौ पीत्वा विकाले आयाति मत्तः, यावत्पश्यति तान् मुनिचन्द्रान् आचार्यान्, स चिन्तयति–एष चौर इति, तेन ते ग्रीवायां गृहीताः, ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

निरुस्सासा कया, न य झाणाओ कंपिआ, ओहिणाणं उप्पण्णं आउं च णिट्ठिअं, देवलोअं गया, तत्थ अहासन्निहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं महिमा कया, ताहे गोसालो बाहिं ठिओ पेच्छइ, देवे उवइंते निवयंते अ, सो, जाणइ–एस डज्झइ सो तेसिं उवस्सगो, साहेइ सामिस्स, एस तेसिं पडिणीयाणं उवस्सओ डज्झइ, सिद्धत्थो भणइ–न तेसिं उवस्सओ डज्झइ, तेसिं आयरियाणं ओहिणाणं उप्पण्णं, आउयं च णिट्ठियं, देवलोगं गया, तत्थ अहासन्निहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं महिमा कया, ताहे गोसालो बाहिंठिओ पिच्छइ, ताहे गओ तं पदेसं, जाव देवा महिमं काऊण पडिगया, ताहे तस्स तं गंधोदगवासं पुप्फवासं च दट्ठूण अब्भहियं हरिसो जाओ, ते साहुणो उट्ठवेइ–अरे तुब्भे न याणह, एरिसगा चेव बोडिया हिंडह, उट्ठेह, आयरियं कालगयंपि न याणह ?, सुवह रत्तिं सव्वं, ताहे ते जाणंति–सच्चिलओ पिसाओ, रत्तिंपि हिंडइ, ताहे तेऽवि तस्स सद्देण उट्ठिआ, गया आयरियस्स सगासं, जाव पेच्छंति–कालगयं, ताहे ते अद्धितिं करेइ–अम्हेहिं ण णाया

---

१ निरुच्छ्वासाः कृताः, न च ध्यानात्कम्पिताः, अवधिज्ञानं उत्पन्नं आयुश्च निष्ठितं, देवलोकं गताः, तत्र यथासन्निहितैर्व्यन्तरैर्देवैर्महिमा कृतः, तदा गोशालो बहिःस्थितः पश्यति–देवानवपतत उत्पततश्च, स जानाति–एष दह्यते स तेषामुपाश्रयः, कथयति स्वामिने–एष तेषां प्रत्यनीकानामुपाश्रयो दह्यते, सिद्धार्थो भणति–न तेषामुपाश्रयो दह्यते, तेषामाचार्याणामवधिज्ञानमुत्पन्नं, आयुश्च निष्ठितं, देवलोकं गताः, तत्र यथासन्निहितैर्व्यन्तरैर्देवैर्महिमा कृतः, तदा गोशालो बहिःस्थितः प्रेक्षते, तदा गतस्तं प्रदेशं, यावद्देवा महिमानं कृत्वा प्रतिगताः, तदा तस्य तां गन्धोदकवर्षां पुष्पवर्षां च दृष्ट्वाऽभ्यधिको हर्षो जातः, तान् साधूनुत्थापयति–अरे यूयं न जानीथ, ईदृशा एव मुण्डका हिण्डध्वे, उत्तिष्ठत, आचार्यं कालगतमपि न जानीथ, स्वपिथ रात्रिं सर्वां, तदा ते जानन्ति–सत्यः पिशाचः, रात्रावपि हिण्डते, तदा तेऽपि तस्य शब्देन उत्थिताः, गता आचार्यस्य सकाशं, यावत्प्रेक्षन्ते कालगतं, तदा तेऽधृतिं कुर्वन्ति–अस्माभिर्न ज्ञाता ||२०३||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आयरिया कालं करेंता, सोऽवि चमढेत्ता गओ। ततो भगवं चोरागं सन्निवेसं गओ, तत्थ चारियत्तिकाऊण उड्डुंबालगा अगडे पक्खिविज्जंति, पुणो य उत्तारिज्जंति, तत्थ पढमं गोसालो सामी न, ताव तत्थ सोमाजयन्तीओ नाम दुवे उप्पलस्स भगिणीओ पासावच्चिज्जाओ जाहे न तरंति संजमं काउं ताहे परिव्वाइयत्तं करेंति, ताहिं सुयं–एरिसा केऽवि दो जणा उड्डुंबालएहिं पक्खिविज्जंति, ताओ पुण जाणंति–जहा चरिमतित्थगरो पव्वइओ, ताहे गयाओ, जाव पेच्छंति, ताहिं मोइओ, ते उज्झंसिआ अहो विणस्सिउकामेति, तेहिं भएण खमाविया महिया य।—

पिट्ठीचंपा वासं तत्थं* चउम्मासिएण खमणेणं। कयंगल देउलवरिसे दरिद्दथेरा य गोसालो ॥ ४७८ ॥

ततो भगवं पिट्ठीचंपं गओ, तत्थ चउत्थं वासारत्तं करेइ, तत्थ सो चउम्मासियं खवणं करेंतो विचित्तं पडिमादीहिं करेइ, ततो बाहिं पारित्ता कयंगलं गओ, तत्थ दरिद्दथेरा नाम पासंडत्था समहिला सारंभा सपरिग्गहा, ताण वाडगस्स

१ आचार्याः कालं कुर्वन्तः, सोऽपि तिरस्कृत्य गतः। ततो भगवान् चोराकं सन्निवेशं गतः, तत्र चारिकावितिकृत्वा कोट्टपालकैः अगडे प्रक्षिप्येते, पुनश्चोत्तार्येते, तत्र प्रथमो गोशालो न स्वामी, तावत्तत्र सोमाजयन्तीनाम्न्यौ द्वे उत्पलस्य भगिन्यौ पार्श्वापत्ये यदा न तरतः (शकुतः) संयमं कर्तुं तदा परिव्राजिकात्वं कुरुतः, ताभिः श्रुतम्–ईदृशौ कौचिदपि द्वौ जनौ आरक्षकैः प्रक्षिप्येते, ते पुनर्जानीतः–यथा चरमतीर्थंकरः प्रव्रजितः, तदा गते, यावत्पश्यतः ताभ्यां मोचितः, ते तिरस्कृताः अहो विनंष्टुकामा इति, तैर्भयेन क्षामितः महितश्च। २ (पृष्ठचम्पा वर्षारात्रः तत्र चातुर्मासिकेन क्षपणेन। कृताङ्गलायां देवकुलं वर्षा दरिद्रस्थविराश्च गोशालः ॥ ४७८ ॥) ३ ततो भगवान् पृष्ठचम्पां गतः, तत्र चतुर्थं वर्षारात्रं करोति, तत्र स चतुर्मासक्षपणं कुर्वन् विचित्रं कायोत्सर्गादिभिः करोति, ततो बहिः पारयित्वा कृताङ्गलां गतः, तत्र दरिद्रस्थविरा नाम पाषण्डस्थाः समहेलाः सारम्भाः सपरिग्रहाः, तेषां वाटकस्य. *मुणी चाउम्मासिखमणेणं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]मज्झे देवउलं, तत्थ सामी पडिमं ठिओ, तद्दिवसं च फुसिअं सीयं पडति, तेणं च तद्दिवसं जागरओ, ते समहिला गायंति, तत्थ गोसालो भणति–एरिसोऽवि नाम पासंडो भण्णइ सारंभो समहिलो य, सव्वाणि य एगट्ठाणि गायंति वायंति य, ताहे सो तेहिं णिच्छूढो, सो तहिं माहमासे तेण सीएण सतुसारेण अच्छइ संकुइओ, तेहिं अणुकंपंतेहिं पुणोऽवि आणिओ, पुणोऽवि भणति, पुणोऽवि णीणिओ, एवं तिण्णि वारा णिच्छूढो अतिणिओ य, ततो भणइ–जइ अम्हे फुडं भणामो तो णिच्छुभामो, तत्थऽण्णेहिं भण्णइ–एस देवज्जयस्स कोऽवि पढिआवाहो छत्तधारो वा आसी तो तुण्हिक्काणि अच्छह, सव्वाउज्जाणि य खडखडावेह जहा से सद्दो न सुव्वति,—

[2]सावत्थी सिरिभद्दा निंदू पिउदत्त पयस सिवदत्ते। दारगणी नखवालो हलिद्द पडिमाऽगणी पहिआ ॥४७९॥

[3]ततो सामी सावत्थिं गओ, तत्थ सामी बाहिं पडिमं ठिओ, तत्थ गोसालो पुच्छति–तुब्भे अतीह ?, सिद्धत्थो भणति—

---

१ मध्ये देवकुलं, तत्र स्वामी प्रतिमां स्थितः,तद्दिवसे च स्वल्पबिन्दु शीतं पतति, तेषां च तद्दिवसे जागरणं, ते समहिला गायन्ति, तत्र गोशालो भणति–ईदृशोऽपि नाम पाषण्डो भण्यते सारम्भः समहिलश्च, सर्वे चैकत्र गायन्ति वादयन्ति च, तदा स तैर्निक्षिप्तः, स तत्र माघमासे तेन शीतेन सतुषारेण तिष्ठति संकुचितः, तैरनुकम्पयद्भिः पुनरप्यानीतः, पुनरपि भणति–पुनरपि नीतः, एवं त्रीन् वारान् बहिर्निक्षिप्त आनीतश्च, ततो भणति–यदि वयं स्फुटं भणामः तदा निष्काश्यामहे,तत्रान्यैर्भण्यते–एष देवार्यस्य कोऽपि पीठमर्दवाहकश्छत्रधरो वा भविष्यति ततः तूष्णीकास्तिष्ठत, सर्वातोद्यानि वादयत यथा तस्य शब्दो न श्रूयते २ (श्रावस्ती श्रीभद्रा निन्दुः पितृदत्तः पायसं शिवदत्तः । द्वारमग्निः नखा वाला हरिद्रः प्रतिमा अग्निः पथिकाः ॥४७९॥) ३ ततः स्वामी श्रावस्तीं गतः, तत्र स्वामी बहिः प्रतिमां स्थितः, तत्र गोशालः पृच्छति–यूयं चलत ?, सिद्धार्थो भणति—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अज्ज अम्हं अंतरं, सो भणति–अज्ज अहं किं लभिहामि आहारं?, ताहे सिद्धत्थो भणइ-तुमे अज्ज माणुसमंसं खाइअव्वंति, सो भणति–तं अज्ज जेमेमि जत्थ मंससंभवो नत्थि, किमंग पुण माणुसमंसं?, सो पहिंडिओ । तत्थ य सावत्थीए नयरीए पिउदत्तो णाम गाहावई, तस्स सिरिभद्दा नाम भारिआ, सा य णिंदू, णिंदू नाम मरंतवियाइणी, सा सिवदत्तं नेमित्तिअं पुच्छइ-किहवि मम पुत्तभंडं जीविज्जा ?, सो भणति–जो सुतवस्सी तस्स तं गब्भं सुसोधितं रंधिऊण पायसं करेत्ता ताहे देह, तस्स य घरस्स अण्णओ हुत्तं दारं करेज्जासि, मा सो जाणित्ता डहिहित्ति, एवं ते थिरा पया भविस्सइ, ताए तहा कयं, गोसालो य हिंडंतो तं घरं पविट्ठो, तस्स सो पायसो महुघयसंजुत्तो दिण्णो, तेण चिंतिअं–एत्थ मंसं कओ भविस्सइत्ति ? ताहे तुट्ठेण भुत्तं, गंतुं भणति–चिरं ते णेमित्तियत्तणं करेंतस्स अज्जंसि णवरि फिडिओ, सिद्धत्थो भणइ–न विसंवयति, जइ न पत्तियसि वमाहि, वमियं दिट्ठा नक्खा विकूइए अवयवा य, ताहे रुट्ठो तं घरं मग्गइ, तेहिवि तं बारं ओहाडियं, तं तेण

---

१ अद्यास्माकमभक्तार्थः, स भणति–अद्याहं किं लप्स्ये आहारम्?, तदा सिद्धार्थो भणति–त्वयाऽद्य मनुष्यमांसं खादितव्यमिति, स भणति–तद् अद्य जेमामि यत्र मांससंभवो नास्ति, किमङ्ग पुनर्मनुष्यमांसं ?, स प्रहिण्डितः । तत्र च श्रावस्त्यां नगर्यां पितृदत्तो नाम गाथापतिः, तस्य श्रीभद्रा भार्या नाम, सा च निन्दुः, निन्दुर्नाम म्रियमाणप्रजनिका, सा शिवदत्तं नैमित्तिकं पृच्छति–कथमपि मम पुत्रभाण्डं जीवेत्?, स भणति–यः सुतपस्वी तस्मै तं गर्भं सुशोधितं रन्धयित्वा पायसं कृत्वा तदा देहि, तस्य च गृहस्यान्यतो भूतं द्वारं कुर्याः, मा सञ्ज्ञात्वा धाक्षीत् इति, एवं तव स्थिरा प्रजा भविष्यति, तया तथा कृतं, गोशालश्च हिण्डमानः तद्गृहं प्रविष्टः, तस्मै तत्पायसं मधुघृतसंयुक्तं दत्तं, तेन चिन्तितम्–अत्र मांसं कुतो भविष्यति इति, तदा तुष्टेन भुक्तं, गत्वा भणति–चिरं तव नैमित्तिकत्वं कुर्वतोऽद्यासि परं स्फिटितः, सिद्धार्थो भणति–न विसंवदति, यदि न प्रत्येषि वम, वान्तं दृष्टा नखा विकिरता अवयवाश्च, तदा रुष्टस्तद्गृहं मार्गयति, ताभ्यां अपि तद्द्वारं स्फेटितं, तत्तेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

नं जाणति, आहाडिओ करेइ, जाहे न लभइ ताहे भणति–जइ मम धम्मायरियस्स तवतेओ अत्थि तओ डज्झउ, ताहे सव्वा दड्ढा बाहिरिआ। ताहे सामी हलिद्दुगो नाम गामो तं गओ, तत्थ महप्पमाणो हलिद्दुगरुक्खो, तत्थ सावत्थीओ णगरीओ निग्गच्छंतो पविसंतो य तत्थ वसइ जणवओ सत्थनिवेसो, सामी तत्थ पडिमं ठिओ, तेहिं सत्थेहिं रत्तिं सीयकालए अग्गी जालिओ, ते वड्डे पभाए उट्ठेत्ता गया, सो अग्गी तेहिं न विज्झाविओ, सो डहंतो सामिस्स पासं गओ, सो सामी परितावेइ, गोसालो भणति–भगवं! नासह, एस अग्गी एइ, सामिस्स पाया दड्ढा, गोसालो नट्ठो—

तत्तो य णंगलाए डिंभ मुणी अच्छिकड्ढणं चेव। आवत्ते मुहतासे मुणिओत्ति अ बाहि बलदेवो ॥ ४८० ॥

ततो सामी नंगला नाम गामो, तत्थ गतो, सामी वासुदेवघरे पडिमं ठिओ, तत्थ गोसालोऽवि ठिओ, तत्थ य चेडरूवाणि खेलंति, सोऽवि कंदप्पिओ ताणि चेडरूवाणि अच्छीणि कड्ढिऊण बीहावेइ, ताहे ताणि धावंताणि पडंति, जाणूणि

---

१ न जानाति, आधाटीः करोति, यदा न लभते तदा भणति–यदि मम धर्माचार्यस्य तपस्तेजोऽस्ति तदा दह्यतां, तदा सर्वा दग्धा बाहिरिका। तदा स्वामी हरिद्राको नाम ग्रामः तं गतः, तत्र महत्प्रमाणो हरिद्रको वृक्षः, तत्र श्रावस्तीतो नगर्या निर्गच्छन् प्रविशंश्च तत्र वसति जानपदः सार्थनिवेशः, स्वामी तत्र प्रतिमां स्थितः, तैः सार्थिकै रात्रौ शीतकालेऽग्निर्ज्वालितः, ते बृहति प्रभाते उत्थाय गताः, सोऽग्निस्तैर्न विध्यातः, स दहन् स्वामिनः पार्श्वं गतः, स स्वामिनं परितापयति, गोशालो भणति–भगवन्तः! नश्यत एषोऽग्निरायाति, स्वामिनः पादौ दग्धौ, गोशालो नष्टः। ततश्च नङ्गलायां डिम्भाः मुनिः अक्षिकर्षणं (विकृतिः) चैव। आवर्त्ते मुखत्रासः मुणितः (पिशाचः) इति च बहिर्बलदेवः ॥ ४८० ॥ ततः स्वामी नङ्गला नाम ग्रामस्तत्र गतः, स्वामी वासुदेवगृहे प्रतिमां स्थितः, तत्र गोशालोऽपि स्थितः, तत्र च चेटरूपाणि क्रीडन्ति, सोऽपि कान्दर्पिकः तानि चेटरूपाणि अक्षिणी कर्षयित्वा (विकृत्य) भापयति, तदा तानि धावन्ति पतन्ति जानूनि

॥२०५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

य फोडिज्जंति, अप्पेगइयाणं खुंखुणगा भज्जंति, पच्छा तेसिं अम्मापियरो आगंतूण तं पिट्टंति, पच्छा भणंति–देवज्जगस्स एसो दासो नूणं न ठाति ठाणे, अण्णे वारेंति–अलाहि, देवज्जयस्स खमियव्वं। पच्छा सो भणति–अहं हम्मामि, तुब्भे न वारेह, सिद्धत्थो भणति–न ठासि तुमं एक्कलो अवस्स पिट्टिज्जसि, ततो सामी आवत्तानाम गामो तत्थ गतो, तत्थवि सामी पडिमं ठिओ बलदेवघरे, तत्थ मुहमक्कडिआहिं भेसवेइ, पिट्टेतिवि, ततो ताणि चेडरूवाणि रूवंताणि अम्मापिऊणं साहंति, तेहिं गंतूण घेच्चिओ, मुणिओत्तिकाउं मुक्को, मुणिओ–पिसाओ, भणंति य–किं एएण हएणं ?, एयं से सामिं हणामो जो एयं न वारेइ, ततो सा बलदेवपडिमा हलं बाहुणाऽहिक्खिविऊणं उट्ठिआ, तत्तो ताणि य पायपडियाणि सामिं खामेंति—

चोरा मंडव भोज्जं गोसालो वहण तेय झामणया। मेहो य कालहत्थी कलंबुयाए उ उवसग्गा ॥ ४८१ ॥

ततो सामी चोरायं नाम संणिवेसं गओ, तत्थ गोट्ठिअभत्तं रज्झइ पच्चति य, तत्थ य भगवं पडिमं ठिओ, गोसालो

---

१ च स्फुटन्ति, घुर्घुरका (गुल्फा) अप्येककानां भज्यन्ते, पश्चात् तेषां मातापितरौ आगत्य तं पिट्टतः, पश्चात् भणतः–देवार्यस्य एष दासो नूनं न तिष्ठति स्थाने, अन्ये वारयन्ति, अलं, देवार्यस्य क्षमितव्यं। पश्चात्स भणति–अहं हन्ये यूयं न वारयत, सिद्धार्थो भणति–न तिष्ठसि त्वमेकाकी अवश्यं पिट्टिष्यसे, ततः स्वामी आवर्त्ता नाम ग्रामस्तत्र गतः, तत्रापि स्वामी प्रतिमां स्थितः बलदेवगृहे, तत्र मुखमर्कटिकाभिर्भापयति, पिट्टयतेऽपि, ततस्तानि चेटरूपाणि रुदन्ति अम्बापित्रोः कथयन्ति, ताभ्यां गत्वा पिट्टितः, मुणित इतिकृत्वा मुक्तः, मुणितः–पिशाचः, भणतश्च–किमेतेन हतेन ? पुनमस्य स्वामिनं हन्वः य एनं न वारयति, ततः सा बलदेवप्रतिमा हलं बाहुनाऽभिक्षिप्योत्थिता, ततः ते पादपतिताः स्वामिनं क्षमयन्ति (चोराकः मण्डपः भोज्यं गोशालो हननं तेजः दाहः। मेघश्च कालहस्ती कलम्बुकायां तूपसर्गाः ॥ ४८१ ॥) ततः स्वामी चोराकं नाम सन्निवेशं गतः, तत्र गोष्ठिकभक्तं राध्यते पच्यते च, तत्र च भगवान् प्रतिमां स्थितः, गोशालो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

भणति–अज्ज एत्थ चरियव्वं, सिद्धत्थो भणइ–अज्ज अम्हे अच्छामो, सोऽवि तत्थ णिउडुकुंडियाए पलोएइ–किं देसकालो न वत्ति, तत्थ य चोरभयं, ताहे ते जाणंति–एस पुणो पुणो पलोएइ, मण्णे–एस चारिओ होज्जत्ति, ताहे सो घेत्तूण निसट्ठं हम्मइ, सामी पच्छण्णे अच्छइ, ताहे गोसालो भणति–मम धम्मायरियस्स जइ तवो अत्थि तो एस मंडवो डज्झउ, डड्ढो। ततो सामी कलंबुगा नाम सण्णिवेसो तत्थ गओ, तत्थ पच्चंतिआ दो भायरो-मेहो कालहत्थी य, सो कालहत्थी चोरेहिं समं उद्धाइओ, इमे य पुव्वे अग्गे पेच्छइ, ते भणंति–के तुब्भे?, सामी तुसिणीओ अच्छइ, ते तत्थ हम्मंति, न य साहंति, तेण ते बंधिऊण महल्लस्स भाउअस्स पेसिआ, तेण जं भगवं दिट्ठो तं उट्ठित्ता पूइओ खामिओ य, तेण कुंडग्गामे सामी दिट्ठपुव्वो—

लाढेसु य उवसग्गा घोरा पुण्णाकलसा य दो तेणा। वज्जहया सक्केणं भद्दिअ वासासु चउमासं ॥ ४८२ ॥

ततो सामी चिंतेइ—बहुं कम्मं निज्जरेयव्वं, लाढाविसयं वच्चामि, ते अणारिया, तत्थ निज्जरेमि, तत्थ भगवं

---

१ भणति–अथात्र चरितव्यं, सिद्धार्थो भणति–अद्य वयं तिष्ठामः, सोऽपि तत्र निकुत्युत्कटतया प्रलोकयति–किं देशकालो न वेति, तत्र च चौरभयं, तदा ते जानन्ति–एष पुनः पुनः प्रलोकयति, मन्ये एष चौरो भवेत् इति, तदा स गृहीत्वाऽत्यन्तं हन्यते, स्वामी प्रच्छन्ने तिष्ठति, तदा गोशालो भणति–मम धर्माचार्यस्य यदि तपोऽस्ति तदैष मण्डपो दह्यतां, दग्धः। ततः स्वामी कलम्बुका नाम संनिवेशः तत्र गतः, तत्र प्रत्यन्तिकौ द्वौ भ्रातरौ-मेघः कालहस्ती च, स कालहस्ती चौरैः समभुद्धावितः, इमौ चाग्रतःपूर्वं प्रेक्षते, ते भणन्ति–कौ युवां?, स्वामी तूष्णीकस्तिष्ठति, तौ तत्र हन्येते, न च कथयतः, तेन तौ बध्वा महते भ्रात्रे प्रेषितौ, तेन च यद् भगवान् दृष्टः तदुत्थाय पूजितः क्षमितश्च, तेन कुण्डग्रामे स्वामी दृष्टपूर्वः (लाढेषु च उपसर्गाः घोराः पूर्णकलशश्च द्वौ स्तेनौ। वज्रहतौ शक्रेण भद्रिका वर्षायां चतुर्मासी ॥ ४८२ ॥) ततः स्वामी चिन्तयति–बहु कर्म निर्जरयितव्यं, लाढाविषयं व्रजामि, तेऽनार्याः, तत्र निर्जरयामि, तत्र भगवान्

Jain Education International
For Personal & Private Use Only
www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

अच्छारियादिट्ठंतं हियए करेइ । ततो पविट्ठो लाढाविसयं कम्मनिज्जरातुरिओ, तत्थ हीलणनिंदणाहिं बहुं कम्मं निज्जरेइ, पच्छा ततो णीइ । तत्थ पुण्णकलसो नाम अणारियग्गामो, तत्थंतरा दो तेणा लाढाविसयं पविसिउकामा, अवसउणो एयस्स वहाए भवउत्तिकट्टु आसिं कड्ढिऊण सीसं छिंदामत्ति पहाविआ, सक्केण ओहिणा आभोइत्ता दोऽवि वज्जेण हया । एवं विहरंता भद्दिलनयरिं पत्ता, तत्थ पंचमो वासारत्तो, तत्थ चाउम्मासियखमणेणं अच्छति, विचित्तं च तवोकम्मं ठाणादीहिं ।

कयलिसमागम भोयण मंखलि दहिकूर भगवओ पडिमा । जंबूसंडे गोट्ठी य भोयणं भगवओ पडिमा ॥४८३॥

ततो बाहिं पारेत्ता विहरंतो गओ, कयलिसमागमो नाम गामो, तत्थ सरयकाले अच्छारियभत्ताणि दहिकूरेण निसट्ठं दिज्जंति, तत्थ गोसालो भणति–वच्चामो, सिद्धत्थो भणति–अम्ह अंतरं, सो तहिं गओ, भुंजइ दहिकूरं सो, बहिफोडो न चेव धाइ, तेहिं भणियं–वड्डं भायणं करंबेह, करंबियं, पच्छा न नित्थरइ, ताहे से उवरि छूढं, ताहे

---

१ लावकदृष्टान्तं हृदये करोति । ततः प्रविष्टो लाढाविषयं कर्मनिर्जरात्वरितः, तत्र हीलननिन्दनाभिर्बहु कर्म निर्जरयति, ततः पश्चात् निर्गच्छति । तत्र पूर्णकलशो नामानार्यग्रामः, तत्रान्तरा द्वौ स्तेनौ लाढाविषयं प्रवेष्टुकामौ, अपशकुन एतस्य बधाय भवत्विति कृत्वाऽसिं कृष्ट्वा शीर्षं छिन्द्म इति प्रधावितौ, शक्रेणावधिनाभोग्य द्वावपि वज्रेण हतौ । एवं विहरन्तौ भद्रिकानगरीं प्राप्तौ, तत्र पञ्चमो वर्षारात्रः, तत्र चतुर्मासक्षपणेन तिष्ठति, विचित्रं च तपःकर्म स्थानादिभिः । कदलीसमागमः भोजनं मङ्खलिर्दधिकूरः भगवतः प्रतिमा । जम्बूषण्डः गोष्ठी च (गोष्ठीकः) भोजनं भगवतः प्रतिमा ॥ ४८३ ॥) ततो बहिः पारयित्वा विहरन् गतः, कदलीसमागमो नाम ग्रामः, तत्र शरत्काले लावकभक्तं दधिकूरेणात्यन्तं दीयते, तत्र गोशालो भणति–व्रजावः, सिद्धार्थो भणति–अस्माकमभक्तार्थः, स तत्र गतः, भुङ्क्ते दधिकूरं, सोपधिस्फोटः न चैव ध्रायते, तैर्भणितं बृहद्भाजनं करम्बय, करम्बितं, पश्चान्न निस्तरति, तदा तस्योपरि क्षिप्तं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

उंक्किलंतो गच्छइ। ततो भगवं जंबूसंडं नाम गामं गओ, तत्थवि अच्छारियाभत्तं तहेव नवरं तत्थ खीरकूरे, तेहिवि तहेव धरिसिओ जिमिओ अ—

तंबाए नंदिसेणो पडिमा आरक्खि वहण भय डहणं। कूविय चारिय मोक्खे विजय पगब्भा य पत्तेअं ॥ ४८४॥

ततो भगवं तंबायं णाम गामं एइ, तत्थ नंदिसेणा नाम थेरा बहुस्सुआ बहुपरिवारा पासावच्चिज्जा, तेऽवि जिणकप्पस्स परिकम्मं करेंति, इमोऽवि बाहिं पडिमं ठिओ, गोसालो अतिगओ, तहेव पुच्छइ, खिंसति य, ते आयरिआ तद्दिवसं चउक्के पडिमं ठायंति, पच्छा तहिं आरक्खियपुत्तेण चोरोत्तिकाउं भल्लएण आहओ, ओहिणाणं, सेसं जहा मुणिचंदस्स, जाव गोसालो बोहेत्ता आगतो। ततो सामी कूपिअं नाम सण्णिवेसं गओ, तत्थ तेहिं चारियत्तिकाउं घिप्पंति बज्झंति पिट्टिज्जंति य। तत्थ लोगसमुल्लावो–अहो देवज्जओ रूवेण जोव्वणेण य अप्पतिमो चारिउत्तिकाउं गहिओ। तत्थ विजया

---

१ तदोत्कलन् गच्छति। ततो भगवान् जम्बूषण्डं नाम ग्रामं गतः, तत्रापि लावकभक्तं तथैव नवरं तत्र क्षीरकूरौ, तैरपि तथैव धर्षितो जेमितश्च (ताम्रायां नन्दिषेणः प्रतिमा आरक्षकः हननं भयं दहनं। कूपिका चारिकः मोक्षः विजया प्रगल्भा च प्रत्येकम् ॥४८४॥) ततो भगवान् तम्बाकं नाम ग्राममागात्, तत्र नन्दिषेणा नाम स्थविरा बहुश्रुता बहुपरिवाराः पार्श्वापत्याः, तेऽपि जिनकल्पस्य परिकर्म कुर्वन्ति, अयमपि बहिः प्रतिमया स्थितः, गोशालोऽतिगतः, तथैव पृच्छति, खिंसति च, ते आचार्यास्तद्दिवसे चतुष्के प्रतिमया अस्थुः, पश्चात्तत्रारक्षकपुत्रेण चौर इतिकृत्वा भल्लेनाहतः, अवधिज्ञानं, शेषं यथा मुनिचन्द्रस्य, यावद्गोशालो बोधयित्वाऽऽगतः। ततः स्वामी कूपिकासन्निवेशं गतः, तत्र तैश्चारिका वितिकृत्वा गृह्येते बध्येते पिट्येते च। तत्र लोकसमुल्लापः–अहो देवार्यः रूपेण यौवनेन चाप्रतिमश्चारिक इतिकृत्वा गृहीतः। तत्र विजया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

पंगब्भा य दोण्णि पासंतेवासिणीओ परिव्वाइयाओ लोयस्स मूले सोऊण–तित्थकरो पव्वइओ, वच्चामो ता पलोएमो, को जाणति ? होज्जा, ताहे ताहिं मोइओ–दुरप्पा ! ण याणह चरमतित्थकरं सिद्धत्थरायपुत्तं, अज्ज भे सक्को उवालभहिइ, ताहे मुक्को खामिओ य । 'पत्तेयं' ति पिहिपीहीभूता सामी गोसालो य, कहं पुण?, तेसिं वच्चंताणं दो पंथा, ताहे गोसालो भणति–अहं तुब्भेहिं समं न वच्चामि, तुब्भे ममं हम्ममाणं न वारेह, अविय–तुब्भेहिं समं बहूवसग्गं, अण्णं च–अहं चेव पढमं हम्मामि, तओ एक्कलओ विहरामि, सिद्धत्थो भणति–तुमं जाणसि। ताहे सामी वेसालीमुहो पयाओ, इमो य भग-वओ फिडिओ अण्णओ पट्ठिओ, अंतरा य छिण्णद्धाणं, तत्थ चोरो रुक्खविलग्गो ओलोएति, तेण दिट्ठो, भणति–एक्को नग्गओ समणओ एइ, ते य भणंति–एसो न य बीहेइ नत्थि हरियव्वंति, अज्ज से नत्थि फेडओ, जं अम्हे परिभवति—

तेणेहि पहे गहिओ गोसालो माउलोत्ति वाहणया । भगवं वेसालीए कम्मार घणेण देविंदो ॥ ४८५ ॥

---

१ प्रगल्भा च द्वे पार्श्वान्तेवासिन्यौ परिव्राजिके लोकस्य पार्श्वे श्रुत्वा–तीर्थकरः प्रव्रजितः, व्रजावस्तावत् प्रलोकयावः, को जानाति? भवेत् (सः), तदा ताभ्यां मोचितः–दुरात्मन् ! न जानीषे (दुरात्मानः ! न जानीध्वं) चरमतीर्थकरं सिद्धार्थराजपुत्रं, अद्य भवद्वयः शक्र उपालप्स्यति, तदा मुक्तः क्षमितश्च । 'प्रत्येक' मिति पृथक् पृथग्भूतौ स्वामी गोशालश्च, कथं पुनः ?, तयोर्व्रजतोः द्वौ पन्थानौ, तदा गोशालो भणति–अहं भवद्भिः समं न व्रजामि, यूयं मां हन्यमानं न वारयत, अपिच–भवद्भिः समं बहूपसर्गं, अन्यच्च अहमेव प्रथमं हन्ये, तत एकाकी विहरामि, सिद्धार्थो भणति– त्वं जानीषे । तदा स्वामी विशाला-मुखः प्रस्थितः (प्रयातः), अयं च भगवतः स्फिटितोऽन्यतः प्रस्थितः, अन्तरा च छिन्नाध्वा, तत्र चौरो वृक्षविलग्नोऽवलोकयति, तेन दृष्टो, भणति–एको नग्नः श्रमणक एति, ते च भणन्ति–एष नैव बिभेति नास्ति हर्त्तव्यमिति, अद्य तस्य नास्ति स्फेटकः, यदस्मान् परिभवति । (स्तेनैः पथि गृहीतो गोशालो मातुल इतिकृत्वा वाहनम् । भगवान् विशालायां कर्मकारः घनेन देवेन्द्रः ॥ ४८५ ॥)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

आगओ पंचहिवि सएहिं वाहिओ माउलत्तिकाऊणं, पच्छा चिंतेइ–वरं सामिणा समं, अविय–कोइ मोएइ सामिं, तस्स निस्साए मोयणं भवइ, ताहे सामिं मग्गिउमारद्धो । सामीवि वेसालिं गओ, तत्थ कम्मकरसालाए अणुण्णवेत्ता पडिमं ठिओ, सा साहारणा, जे साहीणा तत्थ ते अणुण्णविआ । अण्णदा तत्थेगो कम्मकरो छम्मासपडिलग्गओ आढत्तो सोहणतिहिकरणे, आउहाणि गहाय आगओ, सामिं च पासइ, अमंगलंति सामिं आहणामित्ति पहाविओ घणं उग्गिरिऊणं, सक्केण य ओही पउत्तो, जाव पेच्छइ, तहेव निमिसंतरेण आगओ, तस्सेव उवरिं सो घणो साहिओ, तह चेव मओ, सक्कोऽवि वंदित्ता गओ—

गामाग विहेलग जक्ख तावसी उवसमावसाण थुई । छट्टेण सालिसीसे विसुज्झमाणस्स लोगोही ॥ ४८६ ॥

ततो सामी गामायं नाम सण्णिवेसं गओ, तत्थुज्जाणे विहेलए बिभेलयजक्खो नाम, सो भगवओ पडिमं ठियस्स

---

१ आगतः पञ्चभिरपि शतैर्वाहितः मातुल इतिकृत्वा, पश्चाच्चिन्तयति–वरं स्वामिना समं, अपिच–कोऽपि मोचयति स्वामिनं, तस्य निश्रया मोचनं भवति, तदा स्वामिनं मार्गयितुमारब्धः । स्वाम्यपि विशालां गतः, तत्र कर्मकरशालायां अनुज्ञाप्य प्रतिमां स्थितः, सा साधारणा, ये स्वाधीनास्तत्र तेऽनुज्ञापिताः । अन्यदा तत्रैकः कर्मकरः षण्मासान् प्रतिलग्नः (भग्नः) आरब्धः शोभनतिथिकरणे, आयुधानि गृहीत्वाऽऽगतः, स्वामिनं पश्यति च, अमङ्गलमिति स्वामिनमाहन्मीति प्रधावितो घनमुद्गीर्य, शक्रेण चावधिः प्रयुक्तः, यावत्पश्यति, तथैव निमेषान्तरेणागतः, तस्यैवोपरि स घनः साधितः, तथैव मृतः, शक्रोऽपि वन्दित्वा गतः । (ग्रामाकः बिभेलकः यक्षः तापसी उपशमावसाने स्तुतिः । षष्ठेन शालिशीर्षे विशुध्यमानस्य लोकावधिः ॥ ४८६ ॥ ततः स्वामी ग्रामाकं नाम सन्निवेशं गतः, तत्रोद्याने बिभेलके बिभेलक यक्षो नाम, स भगवतः प्रतिमां स्थितस्य

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

महिमं करेइ। ततो भगवं सालिसीसयं नाम गामो तहिं गतो, तत्थुज्जाणे पडिमं ठिओ माहमासो य वट्टइ, तत्थ कडपूयणा नाम वाणमंतरी सामिं दट्ठूण तेयं असहमाणी पच्छा तावसीरूवं विउव्वित्ता वक्कलनियत्था जडाभारेण य सव्वं सरीरं पाणिएण ओलेत्ता देहंमि उवरिं सामिस्स ठाउं धुणति वातं च विउव्वइ, जइ अन्नो होन्तो तो फुट्टो होन्तो, तं तिव्वं वेअणं अहियासिंतस्स भगवओ ओही विअसिउव्व लोगं पासिउमारद्धो, सेसं कालं गब्भाओ आढवेत्ता जाव सालिसीसं ताव एक्कारस अंगा सुरलोयप्पमाणमेत्तो य ओही, जावतियं देवलोएसु पेच्छिताइओ। साऽवि वंतरी पराजिआ, पच्छा सा उवसंता पूअं करेइ—

पुणरवि भद्दिअनगरे तवं विचित्तं च छट्ठवासंमि। मगहाए निरुवसग्गं मुणि उउबद्धंमि विहरित्था ॥ ४८७ ॥

ततो भगवं भद्दियं नाम नगरिं गतो, तत्थ छट्ठं वासं उवागओ, तत्थ वरिसारत्ते गोसालेण समं समागमो, छट्ठे मासे गोसालो

---

१ महिमानं करोति। ततो भगवान् शालिशीर्षो नाम ग्रामः तत्र गतः, तत्रोद्याने प्रतिमां स्थितो माघमासश्च वर्त्तते, तत्र कटपूतना नाम व्यन्तरी स्वामिनं दृष्ट्वा तेजोऽसहमाना पश्चात्तापसीरूपं विकुर्व्य वल्कलवस्त्रा जटाभारेण च सर्वं शरीरं पानीयेनार्द्रयित्वा देहस्य उपरि स्वामिनः स्थित्वा धूनाति वातं च विकुर्वति, यद्यन्योऽभविष्यत्तदा स्फुटितोऽभविष्यत्, तां तीव्रां वेदनामध्यासयतो भगवतोऽवधिर्विकशित इव लोकं द्रष्टुमारब्धः, शेषे काले गर्भादारभ्य यावच्छालिशीर्षं तावदेकादशाङ्गानि सुरलोकप्रमाणमात्रश्चावधिः, यावत् देवलोकेऽदर्शत्। साऽपि व्यन्तरी पराजिता पश्चात्सोपशान्ता पूजां करोति। (पुनरपि भद्रिकानगर्यां तपो विचित्रं च षष्ठवर्षायाम्। मगधेषु निरुपसर्गं मुनिः ऋतुबद्धे व्यहार्षीत् ॥ ४८७ ॥) ततो भगवान् भद्रिकां नाम नगरीं गतः, तत्र षष्ठीं वर्षामुपागतः। तत्र वर्षारात्रे गोशालेन समं समागमः, षष्ठे मासे गोशालो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]मिलिओ भगवओ। तत्थ चउमासखमणं विचित्ते य अभिग्गहे कुणइ भगवं ठाणादीहिं, बाहिं पारेत्ता ततो पच्छा मगहा विसए विहरइ निरुवसग्गं अट्ठ उडुबद्धिए मासे, विहरिऊणं—

आलभिआए वासं कुंडागे तह देउले पराहुत्तो। मद्दण देउलसारिअ मुहमूले दोसुवि मुणित्ति ॥ ४८८ ॥

आलंभिअं नयरिं एइ, तत्थ सत्तमं वासं उवागओ, चउमासखमणेणं तवो, बाहिं पारेत्ता कुंडागं नाम सन्निवेसं तत्थ एति। तत्थ वासुदेवघरे सामी पडिमं ठिओ कोणे, गोसालोऽवि वासुदेवपडिमाए अहिट्ठाणं मुहे काऊण ठिओ, सो य से पडिचारगो आगओ, तं पेच्छइ तहाठियं, ताहे सो चिंतेइ–मा भणिहिइ रागदोसिओ धम्मिओ, गामे जाइत्तु कहेइ, एह पेच्छह भणिहिह 'राइतओ'त्ति, ते आगया दिट्ठो पिट्टिओ य, पच्छा बंधिज्जइ, अन्ने भणंति–एस पिसाओ, ताहे मुक्को।

---

1 मीलितः भगवता। तत्र चतुर्मासक्षपणं विचित्रांश्चाभिग्रहान् करोति भगवान् स्थानादिभिः, बहिः पारयित्वा ततः पश्चात् मगधविषये विहरति निरुपसर्गमष्ट ऋतुबद्धिकान् (द्धान्) मासान्, विहृत्य (आलभिकायां वर्षा कुण्डागे तथा देवकुले पराङ्मुखः। मर्दनं देवकुलसारकः मुखमूले द्वयोरपि मुनिरिति ॥ ४८८ ॥) आलम्भिकां नगरीमेति, तत्र सप्तमं वर्षारात्रमुपागतः, चतुर्मासक्षपणेन तपः, बहिः पारयित्वा कुण्डाकनामा सन्निवेशः तत्रैति। तत्र वासुदेवगृहे स्वामी कोणे प्रतिमां स्थितः, गोशालोऽपि वासुदेवप्रतिमाया मुखे अधिष्ठानं कृत्वा स्थितः, स च तस्याः प्रतिचारक आगतः, तं प्रेक्षते तथास्थितं, तदा स चिन्तयति–मा भाणिषुः रागद्वेषवान् धार्मिकः, ग्रामे गत्वा कथयति–एत प्रेक्षध्वं भणिष्यथ रागवान् इति, ते आगता दृष्टः पिट्टितश्च, पश्चात् बध्यते, अन्ये भणन्ति– एष पिशाचः, तदा मुक्तः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

तओ निग्गया समाणा मद्दणा नाम गामो, तत्थ बलदेवस्स घरे सामी अन्तोकोणे पडिमं ठिओ, गोसालो मुहे तस्स सागारिअं दाउं ठिओ, तत्थवि तहेव हओ, मुणिओत्तिकाऊण मुक्को। मुणिओ नाम पिसाओ।—

बहुसालगसालवणे कडपूअण पडिम विग्घणोवसमे। लोहग्गलंमि चारिय जिअसत्तू उप्पले मोक्खो ॥ ४८९ ॥

तत्तो सामी बहुसालगनाम गामो तत्थ गओ,[1] तत्थ सालवणं नाम उज्जाणं, तत्थ सालज्जा वाणमंतरी, सा भगवओ पूअं करेइ, अण्णे भणंति–जहा सा कडपूअणा वाणमंतरी भगवओ पडिमागयस्स उवसग्गं करेइ, ताहे उवसंता महिमं करेइ। ततो णिग्गया गया लोहग्गलं रायहाणिं, तत्थ जियसत्तू राया, सो य अण्णेण राइणा समं विरुद्धो, तस्स चारपुरिसेहिं गहिआ, पुच्छिज्जंता न साहंति, तत्थ चारियत्तिकाऊण रण्णो अत्थाणीत्थगयस्स उवट्ठविआ, तत्थ य उप्पलो

---

१ ततो निर्गतौ सन्तौ मर्दना नाम ग्रामः, तत्र बलदेवस्य गृहे स्वामी अन्तःकोणं प्रतिमां स्थितः, गोशालो मुखे तस्य सागारिकं (मेहनं) दत्त्वा स्थितः, तत्रापि तथैव हतः, मुणित इतिकृत्वा मुक्तः। मुणितो नाम पिशाचः। (बहुशालकशालवने कटपूतना (वत्) प्रतिमा विघ्नकरणमुपशमः। लोहार्गले चारिकः जितशत्रुः उत्पलः मोक्षः ॥ ४८९ ॥) ततः स्वामी बहुशालकनामा ग्रामः तत्र गतः, तत्र शालवनं नामोद्यानं, तत्र सालज्जा (शालार्या) व्यन्तरी, सा भगवतः पूजां करोति, अन्ये भणन्ति–यथा सा कटपूतना व्यन्तरी भगवतः प्रतिमागतस्योपसर्गं करोति, तदोपशान्ता महिमानं करोति। ततो निर्गतौ गतौ लोहार्गलां राजधानीं, तत्र जितशत्रू राजा, स चान्येन राज्ञा समं विरुद्धः, तस्य चारपुरुषैर्गृहीतौ पृच्छ्यमानौ न कथयतः, तत्र चारिकाविति्कृत्वा राज्ञे आस्थानिकावरगतायोपस्थापितौ, तत्र चोत्पलो–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक- ॥२१०॥

हारिभद्रीयवृत्तिः विभागः १

अंट्ठिअगामाओ सो पुव्वमेव अतिगतो, सो य ते आणिज्जंते दट्ठूण उट्ठिओ, तिक्खुत्तो वंदइ, पच्छा सो भणइ–ण एस चारिओ, एस सिद्धत्थरायपुत्तो धम्मवरचक्कवट्टी एस भगवं, लक्खणाणि य से पेच्छह, तत्थ सक्कारिऊण मुक्को ।

तत्तो य पुरिमताले वग्गुर ईसाण अच्चए पडिमा । मल्लीजिणायण पडिमा उण्णाए वंसि बहुगोट्ठी ॥ ४९० ॥

ततो सामी पुरिमतालं एइ, तत्थ वग्गुरो नाम सेट्ठी, तस्स भद्दा भारिआ, वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया, बहूणि देवस्स उवादिगाणि काउं परिसंता । अण्णया सगडमुहे उज्जाणे उज्जेणियाए गया, तत्थ पासंति जुण्णं देवउलं सडियपडियं, तत्थ मल्लिसामिणो पडिमा, तं णमंसंति, जइ अम्ह दारओ दारिआ वा जायति तो एवं चेवं देउलं करेस्सामो, एयभत्ताणि य होहामो, एवं नमंसित्ता गयाणि । तत्थ अहासन्निहिआए वाणमंतरीए देवयाए पाडिहेरं कयं, आहूओ गब्भो, जं, चेव आहूओ तं चेव देवउलं काउमारद्धाणि, अतीव तिसंझं पूअं करेंति, पव्वतियगे य अल्लियंति, एवं सो सावओ

१. ऽस्थिकग्रामात्स पूर्वमेवातिगतः, स च तावानीयमानौ दृष्ट्वोत्थितः, त्रिकृत्वः वन्दते, पश्चात्स भणति–एष न चारिकः, एष सिद्धार्थराजपुत्रः धर्मवरचक्रवर्त्ती एष भगवान्, लक्षणानि चास्य प्रेक्षध्वं, तत्र सत्कारयित्वा मुक्तः (ततश्च पुरिमताले वग्गुरः ईशानः अर्चति प्रतिमाम् । मल्लीजिनायतनं प्रतिमा उण्णाके वंशी बहुगोष्ठी ॥ ४९० ॥) ततः स्वामी पुरिमतालमेति, तत्र वग्गुरो नाम श्रेष्ठी, तस्य भद्रा भार्या, वन्ध्या अप्रसविनी जानुकूर्परमाता, बहूनि देवस्योपयाचितानि कृत्वा परिश्रान्ता । अन्यदा शकटमुखे उद्याने उद्यानिकायै गतौ, तत्र पश्यतः जीर्णं देवकुलं शटितपतितं, तत्र मल्लीस्वामिनः प्रतिमा, तां नमस्यतः, यद्यावयोर्दारको दारिका वा जायते तदैवमेवं देवकुलं करिष्यावः, एतद्भक्तौ च भविष्यावः, एवं नमस्यित्वा गतौ । तत्र यथासन्निहितया व्यन्तर्या देवतया प्रातिहार्यं कृतं उत्पन्नो गर्भः, यदैवाहूतस्तदैव देवकुलं कर्तुमारब्धौ, अतीव त्रिसन्ध्यं पूजां कुरुतः, पर्वत्रिके चाश्रयतः, एवं स श्रावको

॥२१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जाओ। इओ य सामी विहरमाणो सगडमुहस्स उज्जाणस्स नगरस्स य अंतरा पडिमं ठिओ, वग्गुरो य ण्हाओ उल्लपडसाडओ सपरिजणो महया इड्ढीए विविहकुसुमहत्थगओ तं आययणं अच्चओ जाइ। ईसाणो य देविंदो पुव्वागयओ सामिं वंदित्ता पज्जुवासति, वग्गुरं च वीतीवंतं पासइ, भणति य–भो वग्गुरा! तुमं पच्चक्खतित्थगरस्स महिमं न करेसि तो पडिमं अच्चओ जासि, एस महावीरो वद्धमाणोत्ति, तो आगओ मिच्छादुक्कडं काउं खामेति महिमं च करेइ। ततो सामी उण्णागं वच्चइ, एत्थंतरा वधूवरं सपडिहुत्तं एइ, ताणि पुण दोण्णिवि विरुवाणि दंतिलगाणि य, तत्थ गोसालो भणति–अहो इमो सुसंजोगो—“तत्तिल्लो विहिराया, जाणति दूरेवि जो जहिं वसइ। जं जस्स होइ सरिसं, तं तस्स बिइज्जयं देइ॥१॥” जाहे न ठाइ ताहे तेहिं पिट्टिओ, पिट्टित्ता वंसीकुडंगे छूढो, तत्थ पडिओ *अत्ताणओ अच्छइ, वाहरइ सामिं, ताहे

---

१ जातः। इतश्च स्वामी विहरन् शकटमुखस्योद्यानस्य नगरस्य च मध्ये प्रतिमां स्थितः, वग्गुरश्च स्नात आर्द्रपटशाटकः सपरिजनः महत्यर्ध्या विविधकुसुमहस्तकः (हस्तगतविविधकुसुमः) तदायतनमर्चको याति। ईशानश्च देवेन्द्रः पूर्वागतः स्वामिनं वन्दित्वा पर्युपास्ते, वग्गुरं च व्यतिव्रजन्तं पश्यति, भणति च–भो वग्गुर! त्वं प्रत्यक्षतीर्थकरस्य महिमानं न करोषि ततः प्रतिमामर्चितुं यासि, एष महावीरो वर्धमान इति, तत आगतो मिथ्यादुष्कृतं कृत्वा क्षमयति महिमानं च करोति। ततः स्वामी उर्णाकं व्रजति, अत्रान्तरा वधूवरौ सप्रतिपक्षं (संमुखं) आयातः, तौ पुन द्वावपि विरूपौ दन्तुरौ च, तत्र गोशालो भणति–अहो अयं सुसंयोगः! ‘दक्षो विधिराजः जानाति दूरेऽपि यो यत्र वसति। यद्यस्य भवति योग्यं, तत्तस्य द्वितीयं ददाति॥ १॥’ यदा न तिष्ठति तदा ताभ्यां पिट्टितः, पिट्टयित्वा वंशीकुडङ्गे क्षिप्तः, तत्र पतितोऽत्राणस्तिष्ठति, व्याहरति स्वामिनं, तदा * उत्ताणओ (तत्परः)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सिंद्धत्थो भणति–सयंकयं ते, ताहे सामी अदूरे गंतुं पडिच्छइ, पच्छा ते भणंति–नूणं एस एयरस देवज्जगस्स पीढिया-वाहगो वा छत्तधरो वा आसि तेण अवट्ठिओ, ता णं मुयह, ततो मुक्को । अण्णे भणंति–पहिएहिं उत्तारिओ सामिं अच्छंतं दट्ठूण ।—

गोभूमि वज्जलाढे गोवक्कोवे य वंसि जिणुवसमे । रायगिहऽट्ठमवासा वज्जभूमी बहुवसग्गा ॥ ४९१ ॥

ततो सामी गोभूमिं वच्चइ । एत्थंतरा अडवी घणा, सदा गावीओ चरंति तेण गोभूमी, तत्थ गोसालो गोवालए भणइ–अरे वज्जलाढा ! एस पंथो कहिं वच्चइ ? । वज्जलाढा नाम मेच्छा । ताहे ते गोवा भणंति–कीस अक्कोससि?, ताहे सो भणइ–*असूयपुत्ता खउरपुत्ता ! सुट्ठु अक्कोसामि, ताहे तेहिं मिलित्ता पिट्टित्ता बंधित्ता वंसीए छूढो, तत्थ अण्णेहिं पुणो मोइओ जिणुवसमेणं । ततो रायगिहं गया, तत्थ अट्ठमं वासारत्तं, तत्थ चाउम्मासखवणं विचित्ते अभिग्गहे बाहिं पारेत्ता सरए

१ सिद्धार्थो भणति–स्वयंकृतं त्वया, तदा स्वामी अदूरं गत्वा प्रतीच्छति, पश्चात्ते भणन्ति–नूनमेष एतस्य देवार्यस्य पीठिकावाहको वा छत्रधरो वाऽऽसीत् तेनावस्थितः, तत् एनं मुञ्चत, ततो मुक्तः । अन्ये भणन्ति–पथिकैरुत्तारितः स्वामिनं तिष्ठन्तं दृष्ट्वा ॥ (गोभूमिः वज्रलाढा गोपकोपश्च वंशी जिनोपशमः । राजगृहेऽष्टमवर्षारात्रः वज्रभूमिः बहूपसर्गाः ॥ ४९१ ॥) ततः स्वामी गोभूमिं व्रजति । अत्रान्तराऽटवी घना, सदा गावश्चरन्ति तेन गोभूमिः, तत्र गोशालो गोपालकान् भणति–अरे वज्रलाढाः ! एष पन्थाः क्व व्रजति? । वज्रलाढा नाम म्लेच्छाः । तदा ते गोपा भणन्ति–कुत आक्रोशसि?, तदा स भणति–असूयपुत्राः क्षौरपुत्राः ! सुष्ठु आक्रोशामि, तदा तैर्मिलित्वा पिट्टयित्वा बद्ध्वा वंश्यां क्षिप्तः, तत्रान्यैः पुनः मोचितो जिनोपशमेन । ततो राजगृहं गतौ, तत्राष्टमं वर्षारात्रं तत्र चातुर्मासक्षपणं विचित्रा अभिग्रहाः बहिः पारयित्वा शरदि * असुयपुत्ता पसुयपुत्ता । असुदपियपुत्ता (असुत्पुत्राः प्रासुत्पुत्राः । अश्रुतपितृपुत्राः ।)

॥२११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

[1]दिट्ठंतं करेति समतीए, जहा–एगस्स कुडुंबियस्स बहुसाली जाओ, ताहे सो पंथिए भणति–तुब्भं हियइच्छिअं भत्तं देमि मम लूणह, एवं सो उवाएण लूणावेइ, एवं चेव ममवि बहुं कम्मं अच्छइ, एतं अच्छारिएहिं निज्जरावेयव्वं। तेण अणारियदेसेसु लाढावज्जभूमी सुद्धभूमी तत्थ विहरिओ, सो अणारिओ हीलइ निंदइ, जहा बंभचेरेसु–'छुछु करेंति आहंसु समणं कुक्कुरा डसंतु'त्ति एवमादि, तत्थ नवमो वासारत्तो कओ, सो य अलेभडो आसी, वसतीवि न लब्भइ, तत्थ छम्मासे अणिच्चजागरियं विहरति। एस नवमो वासारत्तो।—

अनिअयवासं सिद्धत्थपुरं तिलत्थंब पुच्छ निप्फत्ती। उप्पाडेइ अणज्जो गोसालो वास बहुलाए ॥ ४९२ ॥

ततो निग्गया पढमसरए सिद्धत्थपुरं गया। तओ सिद्धत्थपुराओ कुम्मगामं संपट्ठिआ, तत्थंतरा तिलत्थंबओ, तं दट्ठूण गोसालो भणइ–भगवं! एस तिलत्थंबओ किं निप्फज्जिहिति नवत्ति?, सामी भणति–निप्फज्जिहिति, एए य सत्त

---

1 दृष्टान्तं करोति स्वमत्या यथा–एकस्य कौटुम्बिकस्य बहुशालिर्जातः, तदा स पथिकान् भणति–युष्मभ्यं हृदयेष्टं भक्तं ददामि मम लुनीत, एवं स उपायेन लावयति, एवमेव ममापि बहु कर्म तिष्ठति, एतत् लावकैर्निर्जरणीयं। तेनानार्यदेशेषु लाढावज्रभूमिः शुद्धभूमिस्तत्र विहृतः सोऽनार्यो हीलति निन्दति, यथा ब्रह्मचर्ये–'छुछुकुर्वन्ति अब्रुवन् श्रमणं कुक्कुरा! दशन्तु' इति एवमादि। तत्र नवमो वर्षारात्रः कृतः, स चास्थिर आसीत्, वसतिरपि न लभ्यते, तत्र षण्मासान् अनित्यजागरिकं विहरति। एष नवमो वर्षारात्रः। (अनियतवासः सिद्धार्थपुरं तिलस्तम्बः पृच्छा निष्पत्तिः। उत्पाटयत्यनार्यो गोशालो वर्षा बहुलायाः ॥४९२॥) ततो निर्गतौ प्रथमशरदि सिद्धार्थपुरं गतौ, ततः सिद्धार्थपुरात् कूर्मग्रामं संप्रस्थितौः, तत्रान्तरा तिलस्तम्बः, तं दृष्ट्वा गोशालो भणति–भगवन्! एष तिलस्तम्बः किं निष्पत्स्यते नवेति, स्वामी भणति–निष्पत्स्यते, एते च सप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

आवश्यक-
॥२१२॥

हारिभद्री-
यवृत्तिः
विभागः १

तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता एगाए तिलसंगलियाए वच्चायाहिंति' ततो गोसालेण असद्दहंतेण ओसरिऊण सलेट्ठुगो उप्पाडिओ एगंते पडिओ, अहासन्निहिएहि य वाणमंतरेहिं मा भगवं मिच्छावादी भवउ, वासं वासितं, आसत्थो, बहुलिआ य गावी आगया, ताए खुरेण निक्खित्तो पइट्ठिओ, पुप्फा य पच्चाजाया—

मगहा गोब्बरगामो गोसंखी वेसियाण पाणामा । कुम्मग्गामायावण गोसाले गोवण पउट्ठे ॥ ४९३ ॥

ताहे कुम्मगामं संपत्ता, तस्स बाहिं वेसायणो बालतवस्सी आयावेति, तस्स का उप्पत्ती ?, चंपाए नयरीए रायगिहस्स य अंतरा गोब्बरगामो, तत्थ गोसंखी नाम कुटुंबिओ, जो तेसिं अधिपती आभीराणं, तस्स बन्धुमती नाम भज्जा अवियाउरी । इओ य तस्स अदूरसामंते गामो चोरेहिं हओ, तं हंतूण बंदिग्गहं च काऊण पहाविया । एगाऽचिरपसूइया पतिंमि मारिते चेडेण समं गहिया, सा तं चेडं छड्डाविया, सो चेडओ तेण गोसंखिणा गोरूवाणं गएण दिट्ठो गहिओ य अप्पणियाए महिलियाए दिण्णो, तत्थ पगासियं—जहा मम महिला गूढगब्भा आसी, तत्थ य छगलयं मारेत्ता

१ तिलपुष्पजीवा उपद्रुत्य एकस्यां तिलशिम्बायां प्रत्यायास्यन्ति, ततो गोशालेनाश्रद्दधताऽपसृत्य समूल उत्पादित एकान्ते पतितः, यथासन्निहितैर्व्यन्तरैश्च मा भगवान् मृषावादी भूः, वर्षा वर्षिता, आश्वस्तः, बहुलिका च गौरागता, तस्याः खुरेण निक्षिप्तः प्रतिष्ठितः, पुष्पाणि च प्रत्याजातानि । (मगधो गोबरग्रामः गोशङ्खी वैशिकानां प्राणामिकी । कूर्मग्राम आतापना गोशालः गोवनं प्रद्विष्टः ॥४९३॥) तदा कूर्मग्रामं संप्राप्तौ, तस्माद्बहिः वैश्यायनो बालतपस्वी आतपति, तस्य कोत्पत्तिः ?, चम्पाया नगर्या राजगृहस्य चान्तराले गोबरग्रामः, तत्र गोशङ्खी नाम कौटुम्बिकः, यस्तेषामधिपतिराभीराणां, तस्य बन्धुमतिर्नाम भार्याऽप्रसविनी । इतश्च तस्यादूरसामन्ते ग्रामश्चौरैर्हतः, तं हत्वा बन्दीग्राहं च कृत्वा प्रधाविताः । एकाऽचिरप्रसूता पत्यौ मारिते दारकेण समं गृहीता, सा तं दारकं त्याजिता, स दारकस्तेन गोशङ्खिना गोरूपेभ्यो गतेन दृष्टो गृहीतश्चात्मीयायै महेलायै दत्तः, तत्र प्रकाशितं यथा—मम महेला गूढगर्भाऽऽसीत्, तत्र च छगलकं मारयित्वा

॥२१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

लोहिअगंधं करेत्ता सूइयानेवत्था ठिया, सव्वं जं तस्स इतिकत्तव्वं तं कीरइ, सोऽवि ताव संवड्ढइ, सावि से माया चंपाए विक्किया, वेसियाथेरीए गहिया एस मम धूयत्ति, ताहे जो गणियाणं उवयारो तं सिक्खाविया, सा तत्थ नामनिग्गया गणिया जाया। सो य गोसंखियस्स पुत्तो तरुणो जाओ, घियसगडेणं चंपं गओ सवयंसो, सो तत्थ पेच्छइ नागरजणं जहिच्छिअं अभिरमंतं, तस्सवि इच्छा जाया–अहमवि ताव रमामि, सो तत्थ गतो वेसावाडयं, तत्थ सा चेव माया अभिरुइया, मोल्लं देइ विआले ण्हायविलित्तो वच्चइ। तत्थ वच्चंतस्स अंतरा पादो अमेज्झेण लित्तो, सो न याणइ केणावि लित्तो। एत्थंतरा तस्स कुलदेवया मा अकिच्चमायरउ बोहेमित्ति तत्थ गोट्ठए गाविं सवच्छियं विउव्विऊण ठिया, ताहे सो तं पायं तस्स उवरि फुसति, ताहे सो वच्छओ भणइ–किं अम्मो! एस ममं उवरि अमेज्झलित्तयं पादं फुसइ?, ताहे सा गावी माणुसियाए वायाए भणइ–'किं तुमं पुत्ता! अद्धितिं करेसि?, एसो अज्ज मायाए समं संवासं गच्छइ, तं एस एरिसं अकिच्चं

१ रुधिरगन्धं कृत्वा प्रसूतिनेपथ्या स्थिता, सर्वं यत्तस्येतिकर्त्तव्यं तत्करोति, सोऽपि तावत् संवर्धते, साऽपि तस्य माता चम्पायां विक्रीता, वेश्यास्थविरया गृहीतैषा मम दुहितेति, तदा यो गणिकानामुपचारस्तं शिक्षिता, सा तत्र निर्गतनामा गणिका जाता। स च गोशङ्खिनः पुत्रस्तरुणो जातो, घृतशकटेन चम्पां गतः सवयस्यः, स तत्र प्रेक्षते नागरजनं याद्दच्छिकमभिरममाणं, तस्यापीच्छा जाता–अहमपि तावद् रमे, स तत्र गतो वेश्यापाटके, तत्र सैव माताभिरुचिता, मूल्यं ददाति विकाले स्नातविलिप्तो व्रजति। तत्र व्रजतः अन्तरा पादोऽमेध्येन लिप्तः, स न जानाति केनापि लिप्तः। अत्रान्तरे तस्य कुलदेवता मा अकृत्यमाचारीत् बोधयामीति तत्र गोष्ठे गां सवत्सां विकुर्व्य स्थिता, तदा स तं पादं तस्योपरि स्पृशति, तदा स वत्सो भणति–किमम्ब! एष ममोपरि अमेध्यलिप्तं पादं स्पृशति?, तदा सा गौर्मानुष्या वाचा भणति–किं त्वं पुत्राधृतिं करोषि!, एषोऽद्य मात्रा समं संवासं गच्छति, तदेष ईदृशमकृत्यं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वेवसइ अन्नंपि किं न काहितित्ति'। ताहे तं सोऊणं तस्स चिंता समुप्पण्णा–'गतो पुच्छिहामि', ताहे पविट्ठो पुच्छइ–'का तुज्झ उप्पत्ती ?', ताहे सा भणति–किं तव उप्पत्तीए ?, महिलाभावं दाएइ सा, ताहे सो भणति 'अन्नंपि एत्तिअं मोल्लं देमि, साह सब्भावं'ति सवहसावियाए सव्वं सिट्ठंति, ताहे सो निग्गओ सग्गामं गओ, अम्मापियरो य पुच्छइ, ताणि न साहेंति, ताहे ताव अणसिओ ठिओ जाव कहियं, ताहे सो तं मायरं मोयावेत्ता वेसाओ पच्छा विरागं गओ, एयावत्था विसयत्ति पाणामाए पवज्जाए पव्वइओ, एस उप्पत्ती। विहरंतो य तं कालं कुम्मग्गामे आयावेइ, तस्स य जडाहिंतो छप्पयाओ आइच्चकिरणताविआओ पडंति, जीवहियाए पडियाओ चेव सीसे छुभइ, तं गोसालो दट्ठूण ओसरित्ता तत्थ गओ भणइ–किं भवं मुणी मुणिओ उयाहु जूआसेज्जातरो ?, कोऽर्थः ? 'मन् ज्ञाने' ज्ञात्वा प्रव्रजितो नेति, अथवा किं इत्थी पुरिसे वा ?, एक्कसिं दो तिण्णि वारे, ताहे वेसिआयणो रुट्ठो तेयं निसिरइ, ताहे तस्स अणुकंपणट्ठाए वेसियायणस्स य उसिणतेय-

१ व्यवस्यति अन्यदपि किं न करिष्यतीति ?। तदा तत् श्रुत्वा तस्य चिन्ता समुत्पन्ना 'गतः प्रक्ष्यामि' तदा प्रविष्टः पृच्छति–का तवोत्पत्तिः ?, तदा सा भणति किं तवोत्पत्त्या ?, महिलाभावं दर्शयति सा, तदा स भणति–अन्यदपि एतावन्मूल्यं ददामि कथय सद्भावमिति शपथशापितया सर्वं शिष्टमिति, तदा स निर्गतः स्वग्रामं गतः, मातापितरौ च पृच्छति, तौ न कथयतः, तदा तावदनशितः स्थितो यावत्कथितं, तदा स तां मातरं मोचयित्वा वेश्यायाः पश्चाद्वैराग्यं गतः, एतदवस्था विषया इति प्राणामिक्या प्रव्रज्यया प्रव्रजितः, एषोत्पत्तिः। विहरंश्च तत्काले कूर्मग्रामे आतापयति, तस्य च जटायाः षट्पदिका आदित्यकिरणतापिताः पतन्ति, जीवहिताय पतिता एव शीर्षे क्षिपति, तद्गोशालो दृष्ट्वाऽपसृत्य तत्र गतो भणति–किं भवान् मुनिर्मुणित आहोस्वित् यूकाशय्यातरः?, अथवा किं स्त्री पुरुषो वा ?, एकशः द्वौ त्रीन्वारान्, तदा वैश्यायनो रुष्टस्तेजो निसृजति, तदा तस्यानुकम्पनार्थाय वैश्यायनस्य चोष्णतेजः-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पडिसाहरणट्ठाए एत्थंतरा सीयलिया तेयलेस्सा निस्सारिया, सा जंबूदीवं भगवओ सीयलिया तेयलेसा अब्भिंतरओ वेढेति, इतरा तं परियंचति, सा तत्थेव सीयलियाए विज्झाविया, ताहे सो सामिस्स रिद्धिं पासित्ता भणति–से गयमेवं भगवं ! से गयमेवं भयवं ?, कोऽर्थः ?–न याणामि जहा तुब्भं सीसो, खमह, गोसालो पुच्छइ–सामी ! किं एस जूआसेज्जातरो भणति ?, सामिणा कहियं, ताहे भीओ पुच्छइ–किह संखित्तविउलतेयलेस्सो भवति?, भगवं भणति–ज़े णं गोसाला ! छट्ठं छट्ठेण अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं आयावेति, पारणए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासणेण जावेइ जाव छम्मासा, से णं संखित्तविउलतेयलेस्सो भवति । अण्णया सामी कुम्मगामाओ सिद्धत्थपुरं पत्थिओ, पुणरवि तिलथंबगस्स अदूरसामंतेण वीतीवयइ, पुच्छइ सामिं जहा–न निप्फण्णो, कहियं जहा निप्फण्णो, तं एवं वणस्सईणं पउट्ट परिहारो, [पउट्ट-परिहारो नाम परावर्त्त्य परावर्त्य तस्मिन्नेव सरीरके उववज्जंति] तं असद्दहमाणो गंतूण तिलसंगलियं हत्थेण फोडित्ता ते तिले

---

१ प्रतिसंहरणार्थं अत्रान्तरे शीतला तेजोलेश्या निस्सारिता, सा जम्बूद्वीपं भगवतः शीतला तेजोलेश्याऽभ्यन्तरतो वेष्टयति, इतरा तां पर्येञ्चति, सा तत्रैव शीतलया विध्यापिता, तदा स स्वामिन ऋद्धिं दृष्ट्वा भणति–असौ गत एवं भगवन् ! असौ गत एवं भगवन् !, न जानामि यथा तव शिष्यः, क्षमस्व, गोशालः पृच्छति–स्वामिन् ! किमेष यूकाशय्यातरो भणति ?, स्वामिना कथितं, तदा भीतः पृच्छति–कथं संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यो भवति ?, भगवान् भणति–यो गोशाल ! षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणाऽऽतापयति, पारणके सनखया कुल्माषपिण्डिकया एकेन च प्रासुकजलचुलुकेन यापयति यावत्षण्मासाः, स संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यो भवति । अन्यदा स्वामी कूर्मग्रामात्सिद्धार्थपुरं प्रस्थितः, पुनरपि तिलस्तम्बस्यादूरसामन्तेन व्यतिव्रजति, पृच्छति स्वामिनं यथा न निष्पन्नः, कथितं यथा निष्पन्नः, तदेवं वनस्पतिजीवानां परावर्त्य परिहारः,–शरीरके उत्पद्यन्ते, तदश्रद्दधानो गत्वा तिलशम्बां विदार्य हस्तेन तांस्तिलान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गणेमाणो भणति–एवं सव्वजीवावि पउट्टं परियंट्टंति, णियइवादं धणियमवलंबेत्ता तं करेइ जं उवदिट्ठं सामिणा जहा संखित्तविउलतेयलेस्सो भवति, ताहे सो सामिस्स पासाओ फिट्टो सावत्थीए कुंभकारसालाए ठिओ तेयनिसग्गं आयावेइ, छहिं मासेहिं जाओ, कूवतडे दासीओ विण्णासिओ,* पच्छा छदिसाअरा आगया, तेहिं निमित्तउल्लोगो कहिओ, एवं सो अजिणो जिणप्पलावी विहरइ, एसा से विभूती संजाया ।

वेसालीए पडिमं डिंभमुणिउत्ति तत्थ गणराया । पूएइ संखनामो चित्तो नावाए भगिणिसुओ ॥ ४९४ ॥

भगवंपि वेसालिं नगरिं पत्तो, तत्थ पडिमं ठिओ, डिंभेहिं मुणिउत्तिकाऊण खलयारिओ, तत्थ संखो नाम गणराया, सिद्धत्थस्स रण्णो मित्तो, सो तं पूएति। पच्छा वाणियग्गामं पहाविओ, तत्थंतरा गंडइया नदी, तं सामी णावाए उत्तिण्णो, ते णाविआ सामिं भणंति–देहि मोल्लं, एवं वाहंति, तत्थ संखरण्णो भाइणिज्जो चित्तो नाम दूएक्काए गएल्लओ, णावाकडएण एइ, ताहे तेण मोइओ महिओ य ।

१ गणयन् भणति–एवं सर्वे जीवा अपि परावर्त्य परिवर्त्तन्ते, नियतिवादं बाढमवलम्ब्य तत्करोति यदुपदिष्टं स्वामिना यथा संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यो भवति, तदा स स्वामिनः पार्श्वात्स्फिटितः श्रावस्त्यां कुम्भकारशालायां स्थितस्तेजोनिसर्गमातापयति, षड्भिर्मासैर्जातः, कूपतटे दास्यां विन्यासितः, पश्चात् षड् दिशाचरा आगतास्तैर्निमित्तावलोकः कथितः, एवं सोऽजिनो जिनप्रलापी विहरति, एषा तस्य विभूतिः संजाता । (वेसालीए पूअं संखो गणराय पिउवयंसो उ । गंडइया तर रण्णं चित्तो नावाए भगिणिसुओ इति प्र०) भगवानपि वैशालीं नगरीं प्राप्तः, तत्र प्रतिमां स्थितः, डिम्भैः पिशाच इतिकृत्वा स्खलीकृतः, तत्र शङ्खो नाम गणराजः, सिद्धार्थस्य राज्ञो मित्रं, स तं पूजयति । पश्चाद्वाणिजग्रामं प्रधावितः, तत्रान्तरा गण्डिका नदी, तां स्वामी नावोत्तीर्णः, ते नाविकाः स्वामिनं भणन्ति–देहि मूल्यं, एवं व्यथयन्ति, तत्र शङ्खराज्ञो भागिनेयः चित्रो नाम दूतकार्ये गतवानभूत्, नावाकटकेनैति, तदा तेन मोचितः महितश्च ।
* तस्स घडो केहुएण आहओ भग्गो, सा रुसिआ अक्कोसइ, तओ मुक्का तेउलेसा, सा दड्ढा, जाओ तस्स पच्चओ, जहा सिद्धा मे तेउलेसा इति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

वाणियगामायावण आनंदो ओहि परीसह सहिंति । सावत्थीए वासं चित्ततवो साणुलट्ठि बहिं ॥ ४९५ ॥

तत्तो वाणियग्गामं गओ, तस्स बाहिं पडिमं ठिओ । तत्थ आणंदो नाम सावओ, छट्ठं छट्ठेण आयावेइ, तस्स ओहिनाणं समुप्पण्णं, जाव पेच्छइ तित्थंकरं, वंदति भणति य–अहो सामिणा परीसहा अहियासेज्जंति, एच्चिरेण कालेण तुज्झं केवलनाणं उप्पज्जिहिति पूएति य । ततो सामी सावत्थिं गओ, तत्थ दसमं वासारत्तं, विचित्तं च तवोकम्मं ठाणादिहिं । ततो साणुलट्ठियं नाम गामं गओ ।

पडिमा भद्द महाभद्द सव्वओभद्द पढमिआ चउरो । अट्ठयवीसाणंदे बहुलिय तह उज्झिए दिव्वा ॥ ४९६ ॥

तत्थ भद्दं पडिमं ठाइ, केरिसा भद्दा ? पुव्वाहुत्तो दिवसं अच्छइ, पच्छा रत्तिं दाहिणहुत्तो, अवरेण दिवसं, उत्तरेण रत्तिं, एवं छट्ठभत्तेण निट्ठिआ, पच्छा न चेव पारेइ, अपारिओ चेव महाभद्दं पडिमं ठाइ, सा पुण पुव्वाए दिसाए अहोरत्तं, एवं चउसुवि दिसासु चत्तारि अहोरत्ताणि, एवं सा दसमेणं निट्ठाइ, ताहे अपारिओ चेव सव्वओभद्दं पडिमं ठाइ, सा पुण

---

१ ततो वाणिज्यग्रामं गतः, तस्मात् बहिः प्रतिमां स्थितः । तत्रानन्दो नाम श्रावकः, षष्ठषष्ठेनातापयति, तस्यावधिज्ञानं समुत्पन्नं, यावत्पश्यति तीर्थङ्करं, वन्दते भणति च–अहो स्वामिना परीषहा अध्यास्यन्ते, इयच्चिरेण कालेन तव केवलज्ञानमुत्पत्स्यते पूजयति च । ततः स्वामी श्रावस्तीं गतः, तत्र दशमं वर्षारात्रं, विचित्रं च तपःकर्म स्थानादिभिः । ततः सानुलष्टं नाम ग्रामं गतः । तत्र भद्रप्रतिमां करोति, कीदृशी भद्रा ?, पूर्वमुखो दिवसं तिष्ठति, पश्चाद्रात्रौ दक्षिणमुखः, अपरेण दिवसमुत्तरेण रात्रौ, एवं षष्ठभक्तेन निष्ठिता, पश्चात् नैव पारयति, अपारित एव महाभद्रप्रतिमां करोति, सा पुनः पूर्वस्यां दिश्यहोरात्रमेवं चतसृष्वपि दिक्षु चत्वार्यहोरात्राणि, एवं सा दशमेन निस्तिष्ठति, तदाऽपारित एव सर्वतोभद्रां प्रतिमां करोति, सा पुनः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सवतोभद्दा इंदाए अहोरत्तं एवं अग्गेईए जामाए नेरईए वारुणीए वायव्वाए सोम्माए ईसाणीए, विमलाए जाइं उड्ढलोइयाइं दव्वाणि ताणि निज्झायति, तमाए हेट्ठिलाइं, एवमेवेसा दसहिंवि दिसाहिं बावीसइमेणं समप्पइ ।

'पढमिआ चउरो' त्ति पुव्वाए दिसाए चत्तारि जामा, दाहिणाएवि ४ अवराएवि ४ उत्तराएवि ४ । बितीयाए अट्ठ, पुव्वाए बेचउरो जामाणं एवं दाहिणाए उत्तराएवि अट्ठ, एए अट्ठ । ततीयाए वीसं, पुव्वाए दिसाए बेचउक्कं जामाणं जाव अहो बेचउक्का, एए वीसं । पच्छा तासु समत्तासु आणंदस्स गाहावइस्स घरे बहुलियाए दासीए महाणसिणीए भायणाणि खणीकरेंतीए दोसीणं छड्डेउकामाए सामी पविट्ठो, ताए भण्णति–किं भगवं! अट्ठो ?, सामिणा पाणी पसारिओ, ताए परमाए सद्धाए दिण्णं, पंच दिव्वाणि पाउब्भूआणि ।

दढभूमीए *बहिआ पेढालं नाम होइ उज्जाणं । पोलास चेइयंमी ठिएगराईमहापडिमं ॥ ४९७ ॥

---

१ सर्वतोभद्रा ऐन्द्यामहोरात्रमेवमाग्नेय्यां याम्यां नैर्ऋत्यां वारुण्यां वायव्यां सोमायामैशान्यां विमलायां यानि ऊर्ध्वलौकिकानि द्रव्याणि तानि निध्यायति, तमायामधस्तनानि, एवमेषा दशभिरपि दिग्भिर्द्वाविंशतितमेन समाप्यते । प्रथमा चत्वार इति पूर्वस्यां दिशि चत्वारो यामा, दक्षिणस्यामपि ४ अपरस्यामपि ४ उत्तरस्यामपि ४ । द्वितीयायामष्ट पूर्वस्यां द्विचत्वारो यामा एवं दक्षिणस्यामुत्तरस्यामप्यष्ट एतेऽष्टौ । तृतीयस्यां विंशतिः, पूर्वस्यां दिशि द्विचतुष्कं यामानां यावदधो द्विचतुष्कमेते विंशतिः । पश्चात्तासु समाप्तासु आनन्दस्य गाथापतेर्गृहे बहुलिकायां दास्यां महानसिन्यां भाजनानि प्रक्षालयन्त्यां पर्युषितं त्यक्तुकामायां स्वामी प्रविष्टः, तया भण्यते–किं भगवन् ! अर्थः ?, स्वामिना पाणिः प्रसारितः, तया परमया श्रद्धया दत्तं, पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि. * बाहिं पेढालुज्जाणमागओ भयवं प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]

ततो सामी दढभूमिं गओ, तीसे बाहिं पेढालं नाम उज्जाणं, तत्थ पोलासं चेइअं, तत्थ अट्ठमेणं भत्तेणं एगराइयं पडिमं ठिओ, एगपोग्गलनिरुद्धदिट्ठी अणमिसनयणो, तत्थवि जे अचित्ता पोग्गला तेसु दिट्ठिं निवेसेइ, सचित्तेहिं दिट्ठिं अप्पाइज्जइ, जहासंभवं सेसाणिवि भासियव्वाणि, ईसिंपब्भारगओ–ईसिं ओणयकाओ—

सक्को अ देवराया सभागओ भणइ हरिसिओ वयणं। तिण्णिवि लोग समत्था जिणवीरमणं न *चालेउं ॥ ४९८॥

इओ य सक्को देवराया भगवंतं ओहिणा आभोएत्ता सभाए सुहम्माए अत्थाणीवरगओ हरिसिओ सामिस्स नमोक्कारं काऊण भणति–अहो भगवं तेलोक्कं अभिभूअ ठिओ, न सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा चालेउं—

सोहम्मकप्पवासी देवो सक्कस्स सो अमरिसेणं। सामाणिअ संगमओ बेइ सुरिंदं पडिनिविट्ठो ॥ ४९९ ॥

तेल्लोक्कं असमत्थंति पेहए तस्स चालणं काउं। अज्जेव पासह इमं ममवसगं भट्ठजोगतवं ॥ ५०० ॥

अह आगओ तुरंतो देवो सक्कस्स सो अमरिसेणं। कासी य हउवसग्गं मिच्छदिट्ठी पडिनिविट्ठो ॥ ५०१ ॥

इओ य संगमओ नाम सोहम्मकप्पवासी देवो सक्कसामाणिओ अभवसिद्धीओ, सो भणति–देवराया अहो रागेण

१ ततः स्वामी दृढभूमिं गतः, तस्या बहिः पेढालं नामोद्यानं, तत्र पोलासं चैत्यं, तत्राष्टमेन भक्तेनैकरात्रिकीं प्रतिमां स्थितः, एकपुद्गलनिरुद्धदृष्टिरनिमेषनयनः, तत्रापि येऽचित्ताः पुद्गलास्तेषु दृष्टिं निवेशयति, सचित्तेभ्यो दृष्टिं निवर्त्तयति, यथासंभवं शेषाण्यपि भाषितव्यानि, ईषत्प्राग्भारगत ईषदवनतकायः। इतश्च शक्रो देवराजः भगवन्तमवधिनाऽऽभोग्य सभायां सुधर्मायामास्थानीवरगतो हृष्टः स्वामिनं नमस्कृत्य (स्वामिने नमस्कारं कृत्वा) भणति-अहो भगवान् त्रैलोक्यमभिभूय स्थितः, न शक्यः केनचिद्देवेन वा दानवेन वा चालयितुम्। इतश्च संगमको नाम सौधर्मकल्पवासी देवः शक्रसामानिकोऽभवसिद्धिकः, स भणति–देवराजः अहो रागेण * चलेयं जे प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

संगमदेवकृत् उपसर्गाणाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

उंलवेइ, को माणुसो देवेण न चालिज्जइ?, अहं चालेमि, ताहे सक्को तं न वारेइ, मा जाणिहिइ–परनिस्साए भगवं तवोकम्मं करेइ, एवं सो आगओ—

धूली पिवीलिआओ उद्दंसा चेव तहय उण्होला । विंछुय नउला सप्पा य मूसगा चेव अट्ठमगा ॥ ५०२ ॥
हत्थी हत्थीणिआओ पिसायए घोररूव वग्घो य । थेरो थेरीइ सुओ आगच्छइ पक्कणो य तहा ॥ ५०३ ॥
खरवाय कलंकलिया कालचक्कं तहेव य । पाभाइय उवसग्गे वीसइमो होइ अणुलोमो ॥ ५०४ ॥
सामाणिअदेवड्ढिं देवो दावेइ सो विमाणगओ । भणइ य वरेह महरिसि! निप्फत्ती सग्गमोक्खाणं ॥ ५०५ ॥
उवहयमइविण्णाणो ताहे वीरं बहु *प्पसाहेउं । ओहीए निज्झाइ झायइ छज्जीवहियमेव ॥ ५०६ ॥

ताहे सामिस्स उवरिं धूलिवरिसं वरिसइ, +जाहे अच्छीणि कण्णा य सव्वसोत्ताणि पूरियाणि, निरुस्सासो जाओ, तेण सामी तिलतुसतिभागमित्तंपि झाणाओ न †चलाइ, ताहे संतो तं तो साहरित्ता ताहे कीडिआओ विउव्वइ वज्जतुंडाओ, ताओ समंतओ विलग्गाओ खायंति, अण्णातो सोत्तेहिं अन्तोसरीरगं अणुपविसित्ता अण्णेणं सोएणं अतिंति अण्णेण णिंति,

१ उल्लपति, को मनुष्यो देवेन न चाल्यते?, अहं चालयामि, तदा शक्रस्तं न वारयति, मा ज्ञासीत् परनिश्रया भगवान् तपःकर्म करोति, एवं स आगतः। तदा स्वामिन उपरि धूलिवर्षा वर्षयति, यथाऽक्षिणी कर्णौ च सर्वश्रोतांसि पूरितानि, निरुच्छ्वासो जातः, तेन स्वामी तिलतुषत्रिभागमात्रमपि ध्यानान्न चलति, तदा श्रान्तस्तां ततः संहृत्य तदा कीटिका विकुर्वति वज्रतुण्डिकाः, ताः समन्ततो विलग्नाः खादन्ति, अन्यस्मात् श्रोतसोऽन्तःशरीरमनुप्रविश्यान्येन श्रोतसाऽतियान्ति (अन्येन निर्यान्ति). * बहु सहावेउं प्र०. + जाव प्र०. † चालिओ प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

चालिणी जारिसो कओ, तहवि भगवं न चालिओ, ताहे उद्दंसे वज्जतुंडे विउव्वइ, ते तं उद्दंसा वज्जतुंडा खाइंति, जे एगेण पहारेण लोहियं नीणिंति, जाहे तहवि न सक्का ताहे उण्होला विउव्वति, उण्होला तेल्लपाइआओ, ताओ तिक्खेहिं तुंडेहि अतीव डसंति, जहा जहा उवसग्गं करेइ तहा तहा सामी अतीव झाणेण अप्पाणं भावेइ, जाहे तेहिं न सक्किओ ताहे विच्छुए विउव्वति, ताहे खायंति, जाहे न सक्का ताहे नउले विउव्वइ, ते तिक्खाहिं दाढाहिं डसंति, खंडखंडाइं च अवणेंति, पच्छा सप्पे विसरोसपुण्णे उग्गविसे डाहजरकारए, तेहिवि न सक्का, मूसए विउव्वइ, ते खंडाणि अवणेत्ता तत्थेव वोसिरंति मुत्तपुरीसं, ततो अतुला वेयणा भवति, जाहे न सक्का ताहे हत्थिरूवं विउव्वति, तेण हत्थिरूवेण सुंडाए गहाय सत्तट्ठताले आगासं उक्खिवित्ता पच्छा दंतमुसलेहिं पडिच्छति, पुणो भूमीए *विंधति, चलणतलेहिं मलइ, जाहे न सक्को ताहे हत्थिणियारूवं विउव्वति, सा हत्थिणिया सुंडाएहि दंतेहिं विंधइ फालेइ य पच्छा काइएण सिंचइ, ताहे चलणेहिं मलेइ

१ चालनीसदृशः कृतः, तथापि भगवान्न चलति (चलितः,), तदा उद्दंशान् वज्रतुण्डान् विकुर्वति, ते तमुद्दंशा वज्रतुण्डाः खादन्ति, ये एकेन प्रहारेण रुधिरं निष्काशयन्ति, यदा तथापि न शक्तस्तदा घृतेलिका विकुर्वति, 'उण्होला इति तैलपायिन्यः' तास्तीक्ष्णैस्तुण्डैरतीव दशन्ति, यथा यथोपसर्गं करोति तथा तथा स्वाम्यतीव ध्यानेनात्मानं भावयति, यदा तैर्न शकितस्ततो वृश्चिकान् विकुर्वति, तदा खादन्ति, यदा न शक्तस्तदा नकुलान् विकुर्वति, ते तीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिर्दशन्ति, खण्डखण्डानि च अपनयन्ति, पश्चात् सर्पान् विषरोषपूर्णान् उग्रविषान् दाहज्वरकारकान्, तैरपि न शक्तो मूषकान् विकुर्वति, ते खण्डान्यपनीय तत्रैव व्युत्सृजन्ति मूत्रपुरीषं, ततोऽतुला वेदना भवति, यदा न शकितस्तदा हस्तिरूपं विकुर्वति, तेन हस्तिरूपेण शुण्डया गृहीत्वा सप्ताष्टतालानाकाशे उत्क्षिप्य पश्चाद्दन्तमुशलाभ्यां प्रतीच्छति, पुनर्भूम्यां विध्यति, चरणतलैर्मर्दयति, यदा न शक्तस्तदा हस्तिनीरूपं विकुर्वति, सा हस्तिनी शुण्डाभिर्दन्तैर्विध्यति विदारयति च पश्चात्कायिकेन सिञ्चति, तदा चरणैर्मर्दयति, * उ बंधति..

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

जाहे न सक्का ताहे पिसायरूवं विउव्वति, जहा कामदेवे, तेण उवसग्गं करेई, जाहे न सक्का ताहे वग्घरूवं विउव्वति, सो दाढेहिं नखेहि य फालेइ, खारकाइएण सिंचति, जाहे न सक्का ताहे सिद्धत्थरायरूवं विउव्वति, सो कट्ठाणि कलुणाणि विलवइ-एहि पुत्त! मा मा उज्झाहि, एवमादि विभासा, ततो तिसलाए विभासा, ततो सूयं, किह ?, सो ततो खंधावारं विउव्वति, सो परिपेरंतेसु आवासिओ, तत्थ सूतो पत्थरे अलभंतो दोण्हवि पायाण मज्झे अग्गिं जालेत्ता पायाण उवरिं उक्खलियं काउं पयइओ, जाहे एएणवि न सक्का ततो पक्कणं विउव्वति, सो ताणि पंजराणि बाहुसु गलए कण्णेसु य ओलएइ, ते सउणगा तं तुंडेहिं खायंति विंधंति सण्णं काइयं च वोसिरंति, ताहे खरवायं विउव्वेइ, जेण सक्का मंदरंपि चालेउं, न पुण सामी विचलइ, तेण उप्पाडेत्ता उप्पाडेत्ता पाडेइ, पच्छा कलंकलियवायं विउव्वइ, जेण जहा चक्काइद्धगो तहा भमाडिज्जइ, नंदिआवत्तो वा, जाहे एवं न सक्का ताहे कालचक्कं विउव्वति, तं घेत्तूणं उड्ढं गगणतलं गओ, एत्ताहे

१ यदा न शक्तस्तदा पिशाचरूपं विकुर्वति, यथा कामदेवे, तेनोपसर्गं करोति यदा न शक्तस्तदा व्याघ्ररूपं विकुर्वति, स दंष्ट्राभिर्नखैश्च पाटयति, क्षारकायिकया सिञ्चति, यदा न शक्तस्तदा सिद्धार्थराजरूपं विकुर्वति, स कष्टानि करुणानि विलपति–एहि पुत्र! मा मा उज्झीः एवमादिर्विभाषा, ततस्त्रिशलया विभाषा, ततः सूदं, कथं?, स ततः स्कन्धावारं विकुर्वति, स पर्यन्तेषु परितः आवासितः, तत्र सूदः प्रस्तरानलभमानो द्वयोरपि पदोर्मध्येऽग्निं ज्वलयित्वा पदोरुपरि पिठरिकां कृत्वा पक्तुमारब्धवान्, यदैतेनापि न शक्तस्ततश्चाण्डालं विकुर्वति, स तानि पञ्जराणि बाह्वोर्गले कर्णयोश्च उपलगयति, ते शकुनास्तं तुण्डैः खादन्ति विध्यन्ति संज्ञां कायिकीं च व्युत्सृजन्ति, तदा खरवातं विकुर्वति येन शक्यते मन्दरोऽपि चालयितुं, न पुनः स्वामी विचलति, तेनोत्पाट्य उत्पाट्य पातयति, पश्चात्कलङ्कलिकावातं विकुर्वति, येन यथा चक्राविद्धः तथा भ्राम्यते नन्द्यावर्त्तो वा, यदैवं न शक्तस्तदा कालचक्रं विकुर्वति, तद्गृहीत्वोर्ध्वं गगनतलं गतोऽधुना.
* कामदेवो तवो उवसग्गं प्र०।

॥२१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

[१]मारेमित्ति मुएइ वज्जसंनिभं जं मंदरंपि चूरेज्जा, तेण पहारेण भगवं ताव णिबुड्डो जाव अग्गनहा हत्थाणं, जाहे न सक्का तेणवि ताहे चिंतेति–न सक्का एस मारेउं, अणुलोमे करेमि, ताहे पभायं विउव्वइ, लोगो सव्वो चंकमिउं पवत्तो भणति–देवज्जगा ! अच्छसि अज्जवि ?, भयवंपि नाणेण जाणइ जहा न ताव पभाइ जाव सभावओ पभायंति, एस वीसइमो । अन्ने भणन्ति–तुट्ठोमि तुज्झ भगवं ! भण किं देमि ? सग्गं वा ते सरीरं नेमि मोक्खं वा नेमि, तिण्णिवि लोए तुज्झ पादेहिं पाडेमि ?, जाहे न तीरइ ताहे सुट्ठुयरं पडिनिवेसं गओ, कल्लं काहिति, पुणोवि अणुकड्ढइ—

वालुय पंथे तेणा माउलपारणग तत्थ काणच्छी । तत्तो सुभोम अंजलि सुच्छित्ताए य विडरूवं ॥ ५०७ ॥

ततो सामी वालुगा नाम गामो तं पहाविओ, *एत्थंतरा पंचचोरसए विउव्वति, वालुगं च जत्थ खुप्पइ, पच्छा तेहि माउलोत्ति वाहिओ पव्वयगुरुतरेहिं+ सागयं च वज्जसरीरा दिंति जहिं पव्वयावि फुट्टिज्जा, ताहे वालुयं गओ, तत्थ सामी

---

१ मारयामीति मुञ्चति वज्रसन्निभं यन्मन्दरमपि चूरयेत्, तेन प्रहारेण भगवान् तावत् ब्रूडितो यावदग्रनखा हस्तयोः, यदा न शक्तस्तेनापि तदा चिन्तयति–न शक्य एष मारयितुम्, अनुलोमान् करोमि, तदा प्रभातं विकुर्वति, लोकः सर्वश्चंक्रमितुं प्रवृत्तो भणति–देवार्य ! तिष्ठसि ? अद्यापि, भगवान् ज्ञानेन जानाति यथा न तावत्प्रभाति यावत्स्वभावतः प्रभातमिति, एष विंशतितमः । अन्ये भणन्ति–तुष्टोऽस्मि तुभ्यं भगवन् ! भण किं ददामि ? स्वर्गं वा ते शरीरं नयामि मोक्षं वा नयामि, त्रीनपि लोकान् तव पादयोः पातयामि, यदा न शक्नोति तदा सुष्ठुतरं प्रतिनिवेशं गतः, कल्ये करिष्यति, पुनरप्यनुकर्षति । ततः स्वामी वालुका नाम ग्रामस्तं प्रधावितः, अत्रान्तरे पञ्च चौरशतानि विकुर्वति, वालुकां च यत्र मज्ज्यते, पश्चात् तैर्मातुल इति वाहितः पर्वतगुरुतरैः स्वागतं वज्रशरीरा ददति, यत्र पर्वता अपि स्फुटेयुः, तदा वालुकां गतः, तत्र स्वामी. * तत्थंतरा प्र०. + सरीरेहिं कसाघाइं व० प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

भिंक्खं पहिंडिओ, तत्थावरेतुं भगवतो रूवं काणच्छि अविरइयाओ णडेइ, जाओ तत्थ तरुणीओ ताओ हम्मति, ताहे निग्गतो। भगवं सुभोमं वच्चइ, तत्थवि अतियओ भिक्खायरियाए, *तत्थवि आवरेत्ता महिलाणं अंजलिं करेइ, पच्छा तेहिं पिट्टिज्जति, ताहे भगवं णीति, पच्छा सुच्छेत्ता नाम गामो तहिं वच्चइ, जाहे अतिगतो सामी भिक्खाए ताहे इमो आवरेत्ता विडरुवं विउवइ, तत्थ हसइ य गायइ य अट्टट्टहासे य मुंचति, काणच्छियाओ य जहा विडो तहा करेइ, असिट्ठाणि य भणइ, तत्थवि हम्मइ, ताहे ततोवि णीति—

मलए पिसायरूवं सिवरूवं हत्थिसीसए चेव। ओहसणं पडिमाए मसाण सक्को अवण पुच्छा ॥ ५०८ ॥

ततो मलयं गतो गामं, तत्थ पिसायरूवं विउबति, उम्मत्तयं भगवतो रूवं करेइ, तत्थ अविरइयाओ अवतासेइ गेण्हइ, तत्थ चेडरूवेहि छारकयारेहि भरिज्जइ लेडु(ट्ठु)एहिं च हम्मइ, ताणि य बिहावेइ, ततो ताणि छोडियपडियाणि नासंति, तत्थ कहिते हम्मति, ततो सामी निग्गतो, हत्थिसीसं गामं गतो, तत्थ भिक्खाए अतिगयस्स भगवओ सिवरुवं विउवइ

१ भिक्षां प्रहिण्डितः, तत्रावृत्य भगवतो रूपं काणाक्षोऽविरतिका बाधते, यास्तत्र तरुण्यस्ता घ्नन्ति, तदा निर्गतः। भगवान् सुभौमं व्रजति, तत्रापि अतिगतो भिक्षाचर्यायै, तत्राप्यावृत्य महिलाभ्योऽञ्जलिं करोति, पश्चात्तैः पिट्टयते, तदा भगवान् निर्गच्छति, पश्चात् सुक्षेत्रनामा ग्रामस्तत्र व्रजति, यदाऽतिगतः स्वामी भिक्षायै तदाऽयमावृत्य विटरूपं विकुर्वति, तत्र हसति च गायति च अट्टाट्टहासांश्च मुञ्चति, काणाक्षिणी च यथा विटस्तथा करोति, अशिष्टानि च भणति, तत्रापि हन्यते, ततोऽपि निर्याति। ततो मलयं गतो ग्रामं, तत्र पिशाचरूपं विकुर्वति, उन्मत्तं भगवतो रूपं करोति, तत्राविरतिका अपत्रासयति गृह्णाति, तत्र चेटरूपैर्भस्मकचवरैर्भ्रियते लेष्टुकैश्च हन्यते तानि च भापयते, ततस्तानि छोटितंपतितानि नश्यन्ति, तत्र कथिते हन्यते, ततः स्वामी निर्गतो, हस्तिशीर्षं ग्रामं गतः, तत्र भिक्षायै अतिगतस्य भगवतः शिव (भव्य) रूपं विकुर्वति. * एत्थवि प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]

सागारियं च से कसाइययं करेइ ,जाहे पेच्छइ अविरइयं ताहे उट्ठवेइ,पच्छा हम्मति, भगवं चिंतेति–एस अतीव गाढं उड्डाहं करेइ अणेसणं च, तम्हा गामं चेव न पविसामि बाहिं अच्छामि, अण्णे भणंति–पंचालदेवरूवं जहा तहा विउव्वति, तदा किर उप्पण्णो पंचालो, ततो बाहिं निग्गओ गामस्स, जओ महिलाजूहं तओ कसाइततेण अच्छति, ताहे किर ढोंढसिवा पवत्ता, जम्हा सक्केण पूइओ ताहे ठिआ, ताहे सामी एगंतं अच्छति, ताहे संगमओ उहसेइ–न सक्का तुमं ठाणाओ चालेउं ?, पेच्छामि ता गामं अतीहि, ताहे सक्को आगतो पुच्छइ–भगवं ! जत्ता भे ? जवणिज्जं अव्वाबाहं फासुयविहारं ?, वंदित्ता गओ—

तोसलिकुसीसरूवं संधिच्छेओ इमोत्ति वज्झो य। मोएइ इंदालिउ तत्थ महाभूइलो नामं ॥ ५०९ ॥

ताहे सामी तोसलिं गतो, बाहिं पडिमं ठिओ, ताहे सो देवो चिंतेइ,एस न पविसइ, एत्ताहे एत्थवि से ठियस्स करेमि उवसग्गं, ततो खुड्डगरूवं विउव्वित्ता संधिं छिदइ उवकरणेहिं गहिएहिं धाडीए तओ सो गहितो भणति, मा ममं हणह,

१ सागारिकं (पुंश्चिह्नं) च तस्य कषायितं (स्तब्धं) करोति, यदा प्रेक्षतेऽविरतिकां तदोत्थापयति, पश्चाद्धन्यते, भगवान् चिन्तयति–एषोऽतीव गाढमपभ्राजनां करोति अनेषणां च, तस्माद्ग्राममेव न प्रविशामि बहिस्तिष्ठामि, अन्ये भणन्ति–पञ्चालदेवरूपं यथा तथा विकुर्वति, तदा किलोत्पन्नः पञ्चालः, ततो बहिर्निर्गतो ग्रामात्, यतो महिलायूथं ततः कापायितकेन तिष्ठति, तदा किल हेलना प्रवृत्ता, यस्मात् शक्रेण पूजितस्तस्मात्स्थिता (निवृत्ता), तदा स्वाम्येकान्ते तिष्ठति, तदा संगमकोऽपहसति-न शक्यस्त्वं स्थानाच्चालयितुं ?, प्रेक्षे तावद्ग्रामं याहि, तदा शक्र आगतः पृच्छति–भगवन् ! यात्रा भवतां ? यापनीयमव्याबाधं प्रासुकविहारः, वन्दित्वा गतः। तदा स्वामी तोसलिं गतः, बहिः प्रतिमया स्थितः, तदा स देवश्चिन्तयति–एष न प्रविशति, अधुनाऽत्रापि अस्य स्थितस्य करोम्युपसर्गं, ततः क्षुल्लकरूपं विकुर्व्य सन्धिं छिनत्ति उपकरणेषु गृहीतेषु धाव्या, ततः स गृहीतो भणति–मा मां वधिष्ट.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

आवश्यक- ॥२१९॥

हारिभद्री-यवृत्तिः विभागः १

अहं किं जाणामि ?, आयरिएण अहं पेसिओ, कहिं सो ?, एस बाहि अमुए उज्जाणे, तत्थ हम्मति, बज्झति य, मारेज्जउत्ति य बज्झो णीणिओ, तत्थ भूइलो नाम इंदजालिओ, तेण सामी कुंडग्गामे दिट्ठओ, ताहे सो मोएइ, साहइ य–जहा एस सिद्धत्थरायपुत्तो, मुक्को खामिओ य, खुड्डुओ मग्गिओ, न दिट्ठो, नायं जहा से देवो उवसग्गं करेइ—

मोसलि संधि, सुमागह मोएई रट्ठिओ पिउवयंसो। तोसलि य सत्तरज्जू वावत्ति तोसलीमोक्खो ॥ ५१० ॥

ततो भगवं मोसलिं गओ, तत्थवि बाहिं पडिमं ठिओ, तत्थवि सो देवो खुड्डुगरूवं विउव्वित्ता संधिमग्गं सोहेइ पडिलेहेइ य, सामिस्स पासे सव्वाणि उवगरणाणि विउव्वइ, ताहे सो खुड्डुओ गहिओ, तुमं कीस एत्थ सोहेसि ?, साहइ–मम धम्मायरिओ रत्तिं मा कंटए भंजिहिति सो सुहं रत्तिं खत्तं खणिहिति, सो कहिं ?, कहिते गया दिट्ठो सामी, ताणि य परिपेरन्ते पासंति, गहितो आणिओ, तत्थ सुमागहो नाम रट्ठिओ पियमित्तो भगवओ सो मोएइ, ततो सामी तोसलिं

१ अहं किं जाने ?, आचार्येणाहं प्रेषितः, क सः ?, एष बहिरमुकस्मिन्नुद्याने, तत्र हन्यते बध्यते च, मार्यतामिति च वध्यो निष्काशितः, तत्र भूतिलो नामेन्द्रजालिकः, तेन स्वामी कुण्डग्रामे दृष्टः, तदा स मोचयति, कथयति च–यथैष सिद्धार्थराजपुत्रो, मुक्तः क्षामितश्च, क्षुल्लको मार्गितः, न दृष्टः, ज्ञातं यथा तस्य देव उपसर्गं करोति। ततो भगवान् मोसलिं गतः, तत्रापि बहिः प्रतिमया स्थितः, तत्रापि स देवः क्षुल्लकरूपं विकुर्व्य सन्धिमार्गं शोधयति प्रतिलिखति च, स्वामिनः पार्श्वे सर्वाण्युपकरणानि विकुर्वति, तदा स क्षुल्लको गृहीतः, त्वं कथमत्र शोधयसि ?, कथयति-मम धर्माचार्यः रात्रौ मा कण्टका भाङ्क्षुः इति स सुखं रात्रौ खात्रं खनिष्यति, स क ?, कथिते गता दृष्टः स्वामी, तानि च परितः पर्यन्ते पश्यन्ति, गृहीत आनीतः, तत्र सुमागधो नाम राष्ट्रिकः पितृमित्रं भगवतः स मोचयति, ततः स्वामी तोसलीं ॥२१९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

गओ, तत्थवि तहेव गहिओ, नवरं–उक्कलंबिजिउमाढत्तो, तत्थ से रज्जू छिण्णो, एवं सत्त वारा छिण्णो, ताहे सिट्ठं तोसलियस्स खत्तियस्स, सो भणति–मुयह एस अचोरो निद्दोसो, तं खुड्डुयं मग्गह, मग्गिज्जंतो न दीसइ, नायं जहा देवोत्ति—

सिद्धत्थपुरे तेणेत्ति कोसिओ आसवाणिओ मोक्खो। वयगाम हिंडऽणेसण बिइयदिणे बेइ उवसंतो ॥ ५११ ॥

ततो सामी सिद्धत्थपुरं गतो, तत्थवि तेण तहा कयं जहा तेणोत्ति गहिओ, तत्थ कोसिओ नाम अस्सवाणियओ, तेण कुंडपुरे सामी दिट्ठिलओ, तेण मोयाविओ। ततो सामी वयगामंति गोउलं गओ, तत्थ य तद्दिवसं छणो, सव्वत्थ परमण्णं उवक्खडियं, चिरं च तस्स देवस्स ठियस्स उवसग्गे काउं सामी चिंतेइ–गया छम्मासा, सो गतोत्ति अतिगओ जाव अणेसणाओ करेति, ततो सामी उवउत्तो पासति, ताहे अद्धहिंडिए नियत्तो, बाहिं पडिमं ठिओ, सो य सामिं ओहिणा आभोएति–किं भग्गपरिणामो न वत्ति ?, ताहे सामी तहेव सुद्धपरिणामो, ताहे दट्ठुं आउट्टो, न तीरइ खोभेउं, जो

---

१ गतः, तत्रापि तथैव गृहीतः नवरं उल्लम्बयितुमारब्धः, तत्र तस्य रज्जुश्छिन्ना, एवं सप्त वारांश्छिन्ना, तदा शिष्टं तोसलिकाय क्षत्रियाय, स भणति–मुञ्चत एषोऽचोरो निर्दोषः, तं क्षुल्लकं मार्गयत, मार्ग्यमाणो न दृश्यते, ज्ञातं यथा देव इति। ततः स्वामी सिद्धार्थपुरं गतः, तत्रापि तेन तथा कृतं यथा स्तेन इति गृहीतः, तत्र कौशिकनामा अश्ववणिक्, तेन कुण्डपुरे स्वामी दृष्टः, तेन मोचितः। ततः स्वामी व्रजग्राममिति गोकुलं गतः, तत्र च तस्मिन् दिवसे क्षणः, सर्वत्र परमान्नमुपस्कृतं, तस्मिन् देवे च चिरमुपसर्गान्कृत्वा स्थिते स्वामी चिन्तयति–गताः षण्मासाः स गत इति अतिगतो यावदनेषणाः करोति, ततः स्वाम्युपयुक्त पश्यति, तदाऽर्धहिण्डितो निर्गतः, बहिः प्रतिमया स्थितः, स च स्वामिनमवधिनाऽऽभोगयति–किं भग्नपरिणामो नवेति, तदा स्वामी तथैव शुद्धपरिणामः, तदा दृष्ट्वाऽऽवृत्तः, न शक्यते क्षोभयितुं, यः. * तत्थवि प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

छहिं मासेहिं न चलिओ एस दीहेणावि कालेण न सक्का चालेउं, ताहे पादेसु पडिओ भणति–सच्चं जं सक्को भणति, सव्वं खामेइ–भगवं ! अहं भग्गपतिण्णो तुम्हे समत्तपतिण्णा—

वच्चह हिंडह न करेमि किंचि इच्छा न किंचि वत्तव्वो । तत्थेव वच्छवाली थेरी परमन्नवसुहारा ॥ ५१२ ॥
छम्मासे अणुबद्धं देवो कासीय सो उ उवसग्गं । दट्ठूण वयग्गामे वंदिय वीरं पडिनियत्तो ॥ ५१३ ॥

जाह एत्ताहे अतीह न करेमि उवसग्गं, सामी भणति–भो संगमय ! नाहं कस्सइ वत्तव्वो, इच्छाए अतीमि वा णवा, ताहे सामी बितियदिवसे तत्थेव गोउले हिंडंतो वच्छवालथेरीए दोसीणेण पायसेण पडिलाभिओ, ततो पंच दिव्वाणि पाउब्भूयाणि, एँगे भणंति–जहा तद्दिवसं खीरं न लद्धं ततो बितियदिवसे ऊहारेऊण उवक्खडियं तेण पडिलाभिओ । इओ य सोहम्मे कप्पे सव्वे देवा तद्दिवसं ओव्विग्गमणा अच्छंति, संगमओ य सोहम्मे गओ, तत्थ सक्को तं दट्ठूण परंमुहो ठिओ, भणइ

---

१ षड्भिर्मासैर्न चलित एष दीर्घेणापि कालेन न शक्यश्चालयितुं, तदा पादयोः पतितो भणति–सत्यं यच्छक्रो भणति, सर्वं क्षमयति–भगवन्तः ! अहं भग्नप्रतिज्ञो यूयं समाप्तप्रतिज्ञाः । याताऽधुनाऽत्र न करोम्युपसर्गं, स्वामी भणति–भोः संगमक ! नाहं केनापि वक्तव्य इच्छयाऽऽयामि वा नवा, तदा स्वामी द्वितीयदिवसे तत्रैव गोकुले हिण्डमानः, वत्सपालिकया स्थविरया पर्युषितेन पायसेन प्रतिलाभितः, ततः पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, एके भणन्ति–यथा तद्दिवसा क्षैरेयी न लब्धा ततो द्वितीयदिवसे अवधार्योपस्कृतं तेन प्रतिलाभितः । इतश्च सौधर्मे कल्पे सर्वे देवाः तद्दिवसं (यावत्) उद्विग्नमनसस्तिष्ठन्ति, संगमकश्च सौधर्मं गतः, तत्र शक्रस्तं दृष्ट्वा पराङ्मुखः स्थितो भणति * पडिलाभिओ इति पर्यन्तं न प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

[1]देवे–भो ! सुणह एस दुरप्पा, ण एएण अम्हवि चित्तावरक्खा कया अन्नेसिं वा देवाणं, जओ तित्थकरो आसाइओ, न एएण अम्ह कज्जं, असंभासो निविसओ य कीरउ—

देवो चु(ठि)ओ महिड्ढीओ वरमंदरचूलियाइ सिहरंमि । परिवारिउ सुरवहूहिं आउंमि सागरे सेसे ॥ ५१४ ॥

ताहे निच्छूढो सह देवीहिं मंदरचूलियाए जाणएण विमाणेणागम्म ठिओ,सेसा देवा इंदेण वारिता,तस्स सागरोवमठित्ती सेसा ।

आलभियाए हरि विज्जू जिणस्स भत्तिएँ वंदओ एइ। भगवं पियपुच्छा जिय उवसग्गत्ति थेवमवसेसं ॥५१५॥

हरिसह सेयवियाए सावत्थी खंद पडिम सक्को य । ओयरिउं पडिमाए लोगो आउट्टिओ वंदे ॥ ५१६ ॥

तत्थ सामी आलभियं गओ, तत्थ हरि विज्जुकुमारिंदो एति, ताहे सो वंदित्ता भगवओ महिमं काऊण भणति–भगवं ! पियं पुच्छामो, नित्थिण्णा उवसग्गा, बहुं गयं थोवमवसेसं, अचिरेण भे केवलनाणं उप्पज्जिहिति । ततो सेयवियं गओ, तत्थ हरिसहो पियपुच्छओ एइ, ततो सावत्थिं गओ, बाहिं पडिमं ठिओ, तत्थ खंदगपडिमाए महिमं लोगो

---

१ देवान्–भोः श्रृणुत एष दुरात्मा, नैतेनास्माकमपि चित्तावरक्षा कृता अन्येषां वा देवानां, यतस्तीर्थकर आशातितः, नैतेनास्माकं कार्यम्, असंभाष्यो निर्विषयश्च क्रियतां । तदा निर्व्यूढः सह देवीभिः मन्दरचूलिकायां यानकेन विमानेनागत्य स्थितः, शेषा देवा इन्द्रेण वारिताः, तस्य सागरोपमस्थितिः शेषा । तत्र स्वामी आलम्भिकां गतः, तत्र हरिर्विद्युत्कुमारेन्द्र एति, तदा स वन्दित्वा भगवतो महिमानं कृत्वा भणति–भगवन् ! प्रियं पृच्छामि निस्तीर्णा उपसर्गाः, बहु गतं स्तोकमवशेषम्, अचिरेण भवतां केवलज्ञानमुत्पत्स्यते । ततः श्वेताम्बीं गतः, तत्र हरिस्सहः प्रियप्रच्छक एति, ततः श्रावस्तीं गतः, बहिः प्रतिमया स्थितः, तत्र स्कन्दप्रतिमाया महिमानं लोकः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]
दीप अनुक्रम [–]

करेइ, सक्को ओहिं पउंजति, जाव पेच्छइ खंदपडिमाए पूयं कीरमाणं, सामिं णाढायंति, उत्तिण्णो, सा य अलंकिया रहं विलग्गिहितित्ति, ताहे सक्को तं पडिमं अणुपविसिऊण भगवंतेण पट्ठिओ, लोगो तुट्ठो भणति–देवो सयमेव विलग्गिहिति, जाव सामिं गंतूण वंदति, ताहे लोगो आउट्टो, एस देवदेवोति महिमं करेइ जाव अच्छिओ—

कोसंबी चंदसूरोयरणं वाणारसीय सक्को उ । रायगिहे ईसाणो महिला जणओ य धरणो य ॥ ५१७ ॥

ततो सामी कोसंबिं गतो, तत्थ चंदसूरा सविमाणा महिमं करेंति, पियं च पुच्छंति, वाणारसीय सक्को पियं पुच्छइ, रायगिहे ईसाणो पियं पुच्छइ, मिहिलाए जणगो राया पूयं करेति, धरणो य पियपुच्छओ एइ—

वेसालि भूयणंदो चमरुप्पाओ य सुंसुमारपुरे । भोगपुरि सिंदकंदग माहिंदो खत्तिओ कुणति ॥ ५१८ ॥

ततो सामी वेसालिं नगरिं गतो, तत्थेक्कारसमो वासारत्तो, तत्थ भूयाणंदो पियं पुच्छइ नाणं च वागरेइ । ततो सामी

---

१ करोति, शक्रोऽवधिं प्रयुनक्ति, यावत्प्रेक्षते स्कन्दप्रतिमायाः पूजां क्रियमाणां, स्वामिनं नाद्रियन्ते, अवतीर्णः, सा च अलङ्कृता रथं विलगयिष्यतीति, तदा शक्रस्तां प्रतिमामनुप्रविश्य भगवन्मार्गेण प्रस्थितः, लोकस्तुष्टो भणति–देवः स्वयमेव विलगिष्यति, यावत्स्वामिनं गत्वा वन्दते, तदा लोक आवृत्तः–एष देवदेव इति महिमानं करोति यावत् स्थितः । ततः स्वामी कौशाम्ब्यां गतः, तत्र सूर्याचन्द्रमसौ सविमानौ महिमानं कुरुतः, प्रियं च पृच्छतः, वाराणस्यां शक्रः प्रियं पृच्छति, राजगृहे ईशानः प्रियं पृच्छति, मिथिलायां जनको राजा पूजां करोति, धरणश्च प्रियप्रच्छक एति । ततः स्वामी विशालां नगरीं गतः, तत्रैकादशो वर्षारात्रः, तत्र भूतानन्दः प्रियं पृच्छति, ज्ञानं च व्यागृणाति । ततः स्वामी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

सुंसुमारपुरं एइ, तत्थ चमरो उप्पयति, जहा पन्नत्तीए, ततो भोगपुरं एइ, तत्थ माहिंदो नाम खत्तिओ सामिं दट्ठूण सिंदिकंदयेण आहणामित्ति पहावितो, सिंदी–खजूरी—

वारण सणंकुमारे नंदीगामे पिउसहा वंदे। मंढियगामे गोवो वित्तासणयं च देविंदो ॥ ५१९ ॥

एत्थंतरे सणंकुमारो एति, तेण धाडिओ तासिओ य, पियं च पुच्छइ। ततो नंदिगामं गओ, तत्थ णंदी नाम भगवओ पियमित्तो, सो महेइ, ताहे मेंढियं एइ। तत्थ गोवो जहा कुम्मारगामे तहेव सक्केग तासिओ वालरज्जुएण आहणंतो—

कोसंबिए सयाणीओ अभिग्गहो पोसबहुल पाडिवई। चाउम्मास मिगावई विजयसुगुत्तो य नंदा य ॥ ५२० ॥
तच्चावाई चंपा दहिवाहण वसुमई विजयनामा। धणवह मूला लोयण संपुल दाणे य पव्वज्जा ॥ ५२१ ॥

ततो कोसंबिं गओ, तत्थ सयाणिओ राया, मियावती देवी, तच्चावाती नामा धम्मपाढओ, सुगुत्तो अमच्चो, णंदा से भारिया, सा य समणोवासिया, सा य सड्ढित्ति मियावईए वयंसिदा, तत्थेव नगरे धणावहो सेट्ठी, तस्स मूला भारिया, एवं ते सकम्मसंपउत्ता अच्छंति। तत्थ सामी पोसबहुलपाडिवए इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ चउव्विहं–दव्वओ ४

१ सुंसुमारपुरमेति, तत्र चमर उत्पतति, यथा प्रज्ञप्तौ, ततो भोगपुरमेति, तत्र माहेन्द्रो नाम क्षत्रियः स्वामिनं दृष्ट्वा सिन्दीकण्डकेन आहन्मीति प्रधावितः, सिन्दी खर्जूरी। अत्रान्तरे सनत्कुमार आगच्छति, तेन निर्धाटितः त्रासितश्च,प्रियं पृच्छति। ततो नन्दीग्रामं गतः, तत्र नन्दीनामा भगवतः पितृमित्रम्, स महति। तदा मेण्ढिकामेति, तत्र गोपो यथा कूर्मारग्रामे तथैव शक्रेण त्रासितः वालरज्ज्वाऽऽघ्नन्। ततः कोशाम्ब्यां गतः, तत्र शतानीको राजा, मृगावती देवी, तत्त्ववादी नाम धर्मपाठकः, सुगुप्तोऽमात्यो, नन्दा तस्य भार्या, सा च श्रमणोपासिका, सा च श्राद्धीति मृगावत्या वयस्या, तत्रैव नगरे धनावहः श्रेष्ठी, तस्य मूला भार्या, एवं ते स्वकर्मसंप्रयुक्तास्तिष्ठन्ति। तत्र स्वामी पौष्णकृष्णप्रतिपदि इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्णाति चतुर्विधं द्रव्यतः ४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्तिः

चन्दनबालायाः कथानकं

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

दंवओ कुम्मासे सुप्पकोणेणं, खेत्तओ एलुगं विक्खंभइत्ता, कालओ नियत्तेसु भिक्खायरेसु, भावतो जहा रायधूया दासत्तणं पत्ता नियलबद्धा मुंडियसिरा रोवमाणी अट्ठमभत्तिया, एवं कप्पति सेसं न कप्पति, एवं घेत्तूण कोसंबीए अच्छति, दिवसे दिवसे भिक्खायरियं च फासेइ, किं निमित्तं ?, बावीसं परीसहा भिक्खायरियाए उइज्जंति, एवं चत्तारि मासे कोसंबीए हिंडंतस्सत्ति। ताहे नंदाए घरमणुप्पविट्ठो, ताहे सामी णाओ, ताहे परेण आदरेण भिक्खा णीणिया, सामी निग्गओ, सा अधितिं पगया, ताओ दासीओ भणंति–एस देवज्जओ दिवसे दिवसे एत्थ एइ, ताहे ताए नायं–नूणं भगवओ अभिग्गहो कोई, ततो निरायं चेव अद्धिती जाया, सुगुत्तो य अमच्चो आगओ, ताहे सो भणति–किं अधितिं करेसि ?, ताए कहियं, भणति–किं अम्ह अमच्चत्तणेणं ?, एवचिरं कालं सामी भिक्खं न लहइ, किं च ते विन्नाणेणं ?, जइ एयं अभिग्गहं न याणसि, तेण सा आसासिया, कल्ले समाणे दिवसे जहा लहइ तहा करेमि। एयाए कहाए वट्टमाणीए विजयानाम पडिहारी

---

१ द्रव्यतः कुल्माषाः सूर्पकोणेन, क्षेत्रतः देहलीं विष्कभ्य, कालतो निवृत्तेषु भिक्षाचरेषु, भावतो यथा राजसुता दासत्वं प्राप्ता निगडबद्धा मुण्डितशिराः रुदन्ती अष्टमभक्तिका, एवं कल्पते शेषं न कल्पते, एवं गृहीत्वा कोशाम्ब्यां तिष्ठति, दिवसे दिवसे भिक्षाचर्यां च स्पृशति, किं निमित्तम् ?–द्वाविंशतिः परीषहा भिक्षाचर्यायामुदीर्यन्ते, एवं चत्वारो मासाः कोशाम्ब्यां हिण्डमानस्येति। तदा नन्दाया गृहमनुप्रविष्टः, तदा स्वामी ज्ञातः, तदा परेणादरेण भिक्षा आनीता, स्वामी निर्गतः, साऽधृतिं प्रगता, ता दास्यो भणन्ति–एष देवार्यो दिवसे दिवसेऽत्रायाति, तदा तया ज्ञातं–नूनं भगवतोऽभिग्रहः कश्चित्, ततो नितरां चैवाधृतिर्जाता, सुगुप्तश्चामात्य आगतः, तदा स भणति–किमधृतिं करोषि ?, तया कथितं, भणति–किमस्माकममात्यत्वेन ? इयच्चिरं कालं स्वामी भिक्षां न लभते, किं च तव विज्ञानेन ?, यद्येनमभिग्रहं न जानासि, तेन साऽऽश्वासिता, कल्ये समाने (सति) दिवसे यथा लभते तथा करोमि। एतस्यां कथायां वर्त्तमानायां विजया नाम प्रतिहारिणी

॥२२२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

मिंगावतीए भणिया सा केणइ कारणेणं आगया, सा तं सोऊण उल्लावं मियावतीए साहइ, मियावतीवि तं सोऊण महया दुक्खेणाभिभूया,सा चेडगधूया अतीव अद्धितिं पगया, राया य आगओ पुच्छइ, तीए भण्णइ–किं तुज्झ रज्जेणं ? मते वा ?, एवं सामिस्स एवतियं कालं हिंडंतस्स भिक्खाभिग्गहो न नज्जइ, न च जाणसि एत्थ विहरंतं, तेण आसासिया–तहा करेमि जहा कल्ले लभइ, ताहे सुगुत्तं अमच्चं सद्दावेइ, अंबाडेइ य–जहा तुमं आगयं सामिं न याणसि, अज्ज किर चउत्थो मासो हिंडंतस्स, ताहे तच्चावादी सद्दावितो, ताहे सो पुच्छिओ सयाणिएण–तुब्भं धम्मसत्थे सव्वपासंडाण आयारा आगया ते तुमं साह, इमोऽवि भणितो–तुमंपि बुद्धिबलिओ साह, ते भणंति–बहवे अभिग्गहा, ण णज्जंति को अभिप्पाओ ?, दव्वजुत्ते खेत्तजुते कालजुत्ते भावजुत्ते सत्त पिंडेसणाओ सत्त पाणेसणाओ, ताहे रण्णा सव्वत्थ संदिट्ठाओ लोगे, तेणवि परलोयकंखिणा कयाओ, सामी आगतो, न य तेहिं सव्वेहिं पयारेहिं गेण्हइ, एवं च ताव एयं । इओ य सयाणिओ चंपं

१ मृगावत्या भणिता सा केनचित्कारणेनागता, सा तमुल्लापं श्रुत्वा मृगावतीं कथयति, मृगावत्यपि तं श्रुत्वा महता दुःखेनाभिभूता, सा चेटकदुहिताऽतीवाधृतिं प्रगता, राजा चागतः पृच्छति, तया भण्यते–किं तव राज्येन मया वा ?, एवं स्वामिन एतावन्तं कालं हिण्डमानस्य भिक्षाभिग्रहो न ज्ञायते, न च जानास्यत्र विहरन्तं, तेनाश्वासिता–तथा करिष्यामि यथा कल्ये लभते, तदा सुगुप्तममात्यं शब्दयति उपलभते च–यथा त्वमागतं स्वामिनं न जानासि, अद्य किल चतुर्थो मासो हिण्डमानस्य, तदा तत्त्ववादी शब्दितः, तदा स पृष्टः शतानीकेन–तव धर्मशास्त्रे सर्वपाषण्डानामाचारा आगतास्तान् त्वं कथय, अयमपि भणितः–त्वमपि बुद्धिबली कथय, तौ भणतः–बहवोऽभिग्रहाः, न ज्ञायते कोऽभिप्रायः, द्रव्ययुक्तः क्षेत्रयुक्तः कालयुक्तो भावयुक्तः सप्त पिण्डैषणाः सप्त पानैषणाः,
१८ तदा राज्ञा सर्वत्र संदिष्टा लोके, तेनापि परलोककाङ्क्षिणा कृताः, स्वाम्यागतः, न च तैः सर्वैः प्रकारैर्गृह्णाति, एवं च तावदेतत् । इतश्च शतानीकश्चम्पां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

पहाविओ, दधिवाहणं गेण्हामि, नावाकडएणं गतो एगाते रत्तीते, अचिंतिया नगरी वेढिया, तत्थ दहिवाहणो पलाओ, रण्णा य जग्गहो घोसिओ, एवं जग्गहे घुट्ठे दहिवाहणस्स रण्णो धारिणी देवी,तीसे धूया वसुमती, सा सह धूयाए एगेण होडिएण गहिया, राया य निग्गओ, सो होडिओ भणति–एसा मे भज्जा, एयं च दारियं विक्केणिस्सं, (ग्रं५५००)सा तेण मणोमाणसिएण दुक्खेण एसा मम धूया ण णज्जइ किं पाविहितित्ति अंतरा चेव कालगया, पच्छा तस्स होडियस्स चिंता जाया–दुट्ठु मे भणियं–महिला ममं होहित्ति, एतं धूयं से ण भणामि, मा एसावि मरिहित्ति, ता मे मोल्लंपि ण होहित्ति ताहे तेण अणुयत्तंतेण आणिया विवणीए उड्डिया, धणावहेण दिट्ठा, अणलंकियलावण्णा अवस्सं रण्णो ईसरस्स वा एसा धूया, मा आवई पावउत्ति, जत्तियं सो भणइ तत्तिएण मोल्लेण गहिया, वरं तेण समं मम तंमि नगरे आगमणं गमणं च होहितित्ति, णीया णिययघरं, कासि तुमंति पुच्छिया, न साहइ, पच्छा तेण धूयत्ति गहिया, एवं सा ण्हाविया, मूलावि

१ प्रधावितः, दधिवाहनं गृह्णामि, नौकटकेन गत एकया रात्र्या, अचिन्तिता वेष्टिता नगरी, तत्र दधिवाहनो राजा पलायितः, राज्ञा च यद्गहो घोषितः, एवं यद्गहे घुष्टे दधिवाहनस्य राज्ञो धारिणी देवी, तस्याः पुत्री वसुमती, सा सह दुहित्रा एकेन नाविकेन गृहीता, राजा च निर्गतः, स नाविको भणति–एषा मे भार्या, एतां च बालिकां विक्रेष्ये, सा तेन मनोमानसिकेन दुःखेन एषा मम दुहिता न ज्ञायते किं प्राप्स्यतीति इत्यन्तरैव कालगता, पश्चात्तस्य नाविकस्य चिन्ता जाता-दुष्ठु मया भणितं-महिला मम भविष्यतीति, एतां दुहितरं तस्या न भणामि, मा एषापि मृतेति, ततो मे मूल्यमपि न भविष्यतीति, तदा तेनानुवर्त्तयता आनीता विपण्यामूर्ध्वीकृता, धनावहेन दृष्टा, अनलङ्कृतलावण्याऽवश्यं राज्ञ ईश्वरस्य वैषा दुहिता, मा आपदः प्रापदिति, यावत्स भणति तावता मूल्येन गृहीता, वरं तेन समं मम तस्मिन्नगरे आगमनं गमनं च भविष्यतीति, नीता निजगृहं, कासि त्वमिति पृष्टा, न कथयति, पश्चात्तेन दुहितेति गृहीता, एवं सा स्नपिता, मूलाऽपि

॥२२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेण भणिया–एस तुज्झ धूया, एवं सा तत्थ जहा नियघरं तहा सुहंसुहेण अच्छति, ताएवि सो सदासपरियणो लोगो सीलेणं विणएण य सबो अप्पणिज्जओ कओ, ताहे ताणि सवाणि भणंति–अहो इमा सीलचंदणत्ति, ताहे से बितियं नामं जायं–चंदणत्ति, एवं वच्चति कालो, ताए य घरणीए अवमाणो जायति, मच्छरिज्जइ य, को जाणति ? कयाति एस एयं पडिवज्जेज्जा, ताहे अहं घरस्स अस्सामिणी भविस्सामि, तीसे य वाला अतीव दीहा रमणिज्जा किण्हा य, सो सेट्ठी मज्झण्हे जणविरहिए आगओ, जाव नत्थी कोइ जो पादे सोहेति, ताहे सा पाणियं गहाय निग्गया, तेण वारिया, सा मड्डाए पधाविया, ताहे धोवंतीए वाला बद्धेलया छुट्टा, मा चिक्खिल्ले पडिहिंतित्ति तस्स हत्थे लीलाकट्ठयं, तेण धरिया, बद्धा य, मूला य ओलोयणवरगया पेच्छइ, तीए णायं–विणासियं कज्जं, जइ एयं किहवि परिणेइ तो ममं एस नत्थि, जाव तरुणओ वाही ताव तिगिच्छामित्ति सिट्ठिमि निग्गए ताए ण्हावियं सद्दावेत्ता बोडाविया, नियलेहिं बद्धा, पिट्टिया

---

१ तेन भणिता–एषा तव दुहिता, एवं सा तत्र यथा निजगृहे तथा सुखसुखेन तिष्ठति, तयापि स सदासपरिजनो लोकः शीलेन विनयेन च सर्व आत्मीयः कृतः, तदा ते सर्वे मनुष्या भणन्ति–अहो इयं शीलचन्दनेति, तदा तस्या द्वितीयं नाम जातं चन्दनेति, एवं व्रजति कालः, तया च गृहिण्या अपमानो जायते, मत्सरायते च, को जानाति ? कदाचिदेष एतां प्रतिपद्येत, तदाऽहं गृहस्यास्वामिनी भविष्यामि, तस्याश्च वाला अतीव दीर्घा रमणीयाः कृष्णाश्च, स श्रेष्ठी मध्याह्ने जनविरहिते आगतः, यावन्नास्ति कोऽपि यः पादौ शोधयति, तदा सा पानीयं गृहीत्वा निर्गता, तेन वारिता, सा बलात् प्रधाविता, तदा प्रक्षालयन्त्या वाला बद्धाश्छुटिताः, मा कर्दमे पसन् (इति) तस्य हस्ते लीलाकाष्ठं तेन धृताः बद्धाश्च, मूला चावलोकनवरगता प्रेक्षते, तया ज्ञातं- विनष्टं कार्यं, यदि एतां कथमपि परिणेष्यति तदा ममैष नास्ति, यावत्तरुणो व्याधिस्तावच्चिकित्सामि इति श्रेष्ठिनि निर्गते तया नापितं शब्दयित्वा मुण्डिता, निगडैर्बद्धा, पिट्टिता.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

र्थ, वारिओ णाए परिजणो–जो साहइ वाणियगस्स सो मम नत्थि, ताहे सो पिल्लियओ, सा घरे छोढूणं बाहिरि कुंहंडिया, सो कमेण आगओ पुच्छइ–कहिं चंदणा ?, न कोइवि साहइ भयेण, सो जाणति–नूणं रमति उवरिं वा, एवं रातिंपि पुच्छिया, जाणति–सा सुत्ता नूणं, बितियदिवसेऽवि सा न दिट्ठा, ततिय दिवसे घणं पुच्छइ–साहह मा भे मारेह, ताहे थेरदासी एक्का, सा चिंतेइ–किं मे जीविएण ?, सा जीवउ वराई, ताए कहियं–अमुयघरे, तेण उग्घाडिया, छुहाहयं पिच्छित्ता कूरं पमग्गितो, जाव समावत्तीए नत्थि ताहे कुम्मासा दिट्ठा, तीसे ते सुप्पकोणे दाऊण लोहारघरं गओ, जा नियलाणि छिंदावेमि, ताहे सा हत्थिणी जहा कुलं संभरिउमारद्धा एलुगं विक्खंभइत्ता, तेहिं पुरओकएहिं हिययब्भंतरओ रोवति, सामी य अतियओ, ताए चिंतियं–सामिस्स देमि, मम एवं अहम्मफलं, भणति–भगवं ! कप्पइ ?, सामिणा पाणी पसारिओ, चउव्विहोऽवि पुण्णो अभिग्गहो, पंच दिव्वाणि, ते वाला तयवत्था चेव जाया, ताणिऽवि से नियलाणि फुट्टाणि

---

१ च, वारितोऽनया परिजनः–यः कथयति वणिजः स मम नास्ति, तदा स प्रेरितः(भीतः), तां गृहे क्षिप्त्वा कोष्ठागारो मुद्रितः, स क्रमेणागतः पृच्छति–क चन्दना ?, न कोऽपि कथयति भयेन, स जानाति नूनं रमते उपरि वा, एवं रात्रावपि पृष्टा, जानाति सा सुप्ता नूनं, द्वितीयदिवसेऽपि सा न दृष्टा, तृतीये दिवसे घनं पृच्छति–कथयत मा यूयं मारयत, तदा स्थविरदास्येका, सा चिन्तयति–किं मम जीवितेन ?, सा जीवतु वराकी, तया कथितम्–अमुकस्मिन् गृहे, तेनोद्घाटितं, क्षुधाहतां प्रेक्ष्य कूरः प्रमार्गितः, यावत्समापत्त्या नास्ति तदा कुल्माषा दृष्टाः, तस्यै तान् सूर्पकोणे दत्त्वा लोहकारगृहं गतो यन्निगडान् छेदयामि, तदा सा हस्तिनी यथा कुलं संस्मर्तुमारब्धा देहलीं विष्कभ्य, तेषु पुरस्कृतेषु हृदयाभ्यन्तरे रोदिति– स्वामी चातिगतः, तया चिन्तितं स्वामिने ददामि, ममैतदधर्मफलं, भणति–भगवन् ! कल्पते ?, स्वामिना पाणिः प्रसारितः, चतुर्विधोऽपि पूर्णोऽभिग्रहः, पञ्च दिव्यानि, ते वालास्तदवस्था एव जाताः, तस्या निगडे अपि ते स्फुटिते * कुडुम्बिया प्र०. + परियणं प्र०.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

<table>
<tr><td>आगम
(४०)</td><td>[भाग-२८] “आवश्यक”– मूलसूत्र-१/१ (मूलं+निर्युक्ति:+वृत्ति:)
अध्ययन [–], मूलं [– /गाथा-], निर्युक्ति: [५२१], भाष्यं [११४...]</td></tr>
<tr><td>प्रत
सूत्रांक
[–]

दीप
अनुक्रम
[–]</td><td>सोवण्णियाणि नेउराणि जायाणि, देवेहि य सव्वालंकारा कया, सक्को देवराया आगओ, वसुहारा अद्धतेरसहिरण्णकोडिओ पडियाओ, कोसंबीए य सव्वओ उग्घुट्ठं–केण पुण पुण्णमंतेण अज्ज सामी पडिलाभिओ ?, ताहे राया संतेउरपरियणो आगओ, ताहे तत्थ संपुलो नाम दहिवाहणस्स कंचुइज्जो, सो बंधित्ता आणियओ, तेण सा णाया, ततो सो पादेसु पडिऊण परुण्णो, राया पुच्छइ–का एसा ?, तेण से कहियं–जहेसा दहिवाहणरण्णो दुहिया, मियावती भणइ–मम भगिणीधूयत्ति, अमच्चोऽवि सपत्तीओ आगओ, सामिं वंदइ, सामीवि निग्गओ, ताहे राया तं वसुहारं पगहिओ, सक्केण वारिओ, जस्सेसा देइ तस्साभवइ, सा पुच्छिया भणइ–मम पिउणो, ताहे सेट्ठिणा गहियं । ताहे सक्केण सयाणिओ भणिओ–एसा चरिमसरीरा, एयं संगोवाहि जाव सामिस्स नाणं उप्पज्जइ, एसा पढमसिस्सिणी, ताहे कन्नंतेउरे छूढा, संवड्ढति । छम्मासा तया पंचहिं दिवसेहिं ऊणा जद्दिवसं सामिणा भिक्खा लद्धा । सा मूला लोगेणं अंबाडिया हीलिया य ।

१ सौवर्णे नूपुरे जाते, देवैश्च सर्वालङ्कारा कृता, शक्रो देवराज आगतः, वसुधाराऽर्धत्रयोदशहिरण्यकोटयः पतिताः, कोशाम्ब्यां च सर्वत्रोद्घुष्टं, केन पुनः पुण्यमताऽद्य स्वामी प्रतिलम्भितः ?, तदा राजा सान्तःपुरपरिजन आगतः, तदा तत्र संपुलो नाम दधिवाहनस्य कञ्चुकी, स बद्धाऽऽनीतस्तेन सा ज्ञाता, ततः स पदोः पतित्वा प्ररुण्णः, राजा पृच्छति–कैषा ?, तेन तस्मै कथितं–यथैषा दधिवाहनस्य राज्ञो दुहिता, मृगावती भणति–मम भगिनीदुहितेति, अमात्योऽपि सपत्नीक आगतः स्वामिनं वन्दते, स्वाम्यपि निर्गतः, तदा राजा तां वसुधारां ग्रहीतुमारब्धः, शक्रेण वारितः, यस्मै एषा ददाति तस्याभवति, सा पृष्टा भणति–मम पितुः, तदा श्रेष्ठिना गृहीतं । तदा शक्रेण शतानीको भणितः–एषा चरमशरीरा एतां संगोपय यावत्स्वामिनो ज्ञानमुत्पद्यते, एषा (स्वामिनः) प्रथमशिष्या, तदा कन्यान्तःपुरे क्षिप्ता संवर्धते । षण्मासास्तदा पञ्चभिर्दिवसैरूना यद्दिवसे स्वामिना भिक्षा लब्धा । सा मूला लोकेन तिरस्कृता हीलिता च ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरिरचिता वृत्ति:</td></tr>
<tr><td>भाग
28</td><td>‘आवश्यक’-मूलसूत्र [१/१] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:
मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब
किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]</td></tr>
</table>

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविध्या, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [40/1]

भाग-२८, निर्युक्ति:- (००१-५२१)

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

"आवश्यक मूलसूत्र" (मूलसूत्र-१/१) [मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्ति: नामेण परिसमाप्त:

"सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" श्रेणि, भाग-28

आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

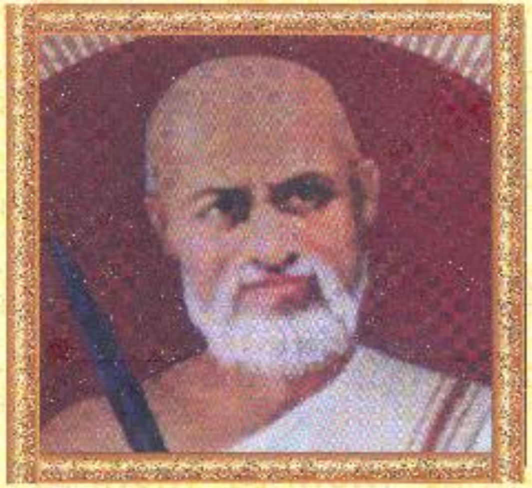

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

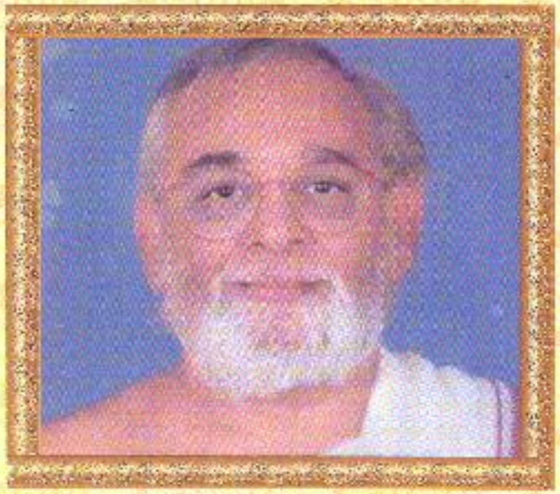

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

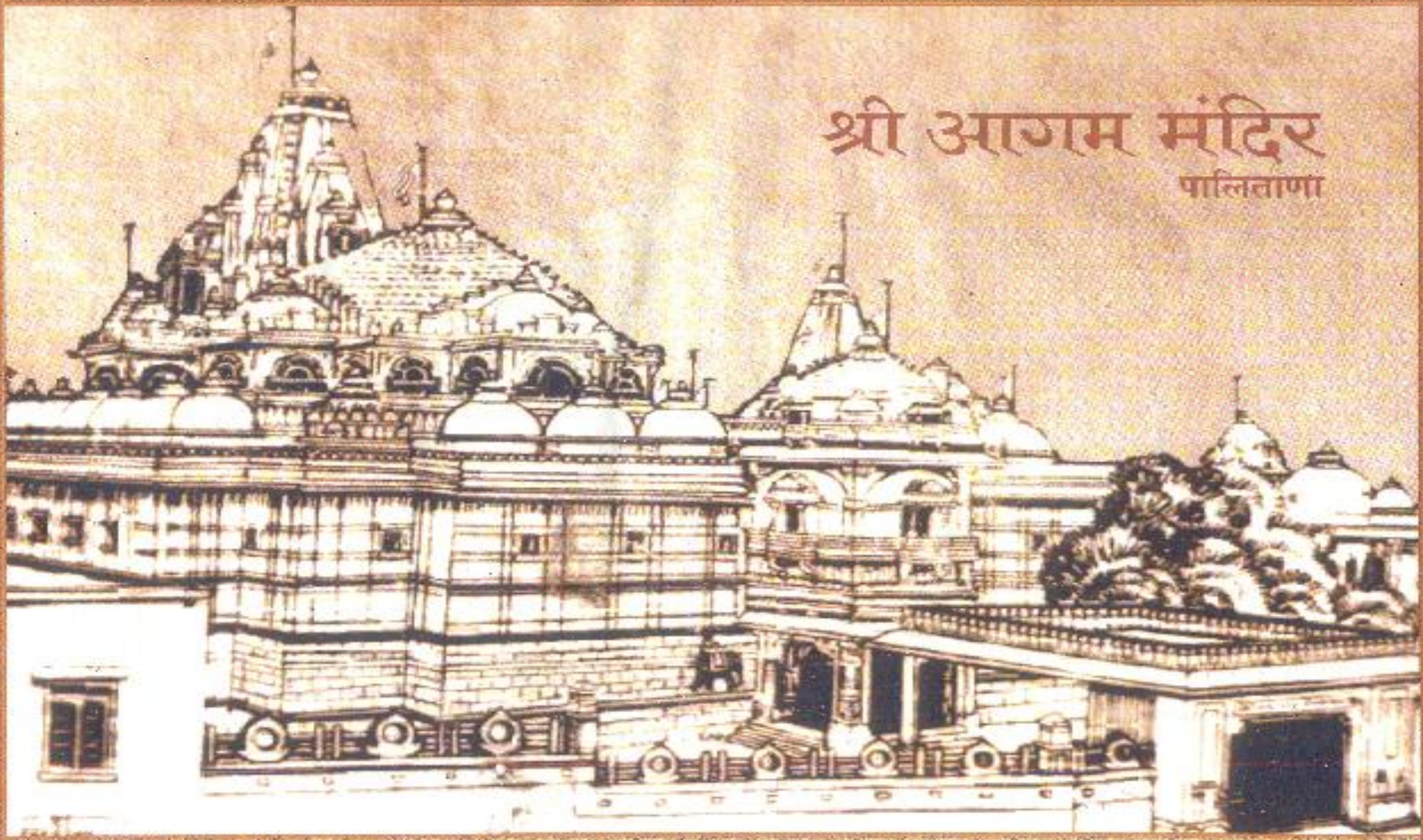

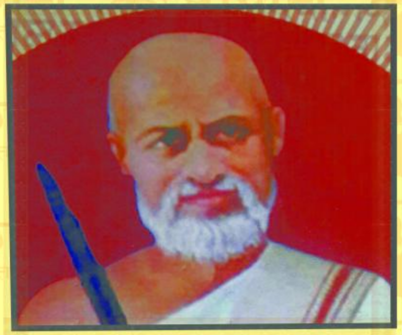

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम ४०

“आवश्यक” मूलं एवं वृत्तिः [१]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

आगम वाचना शताब्दी वर्ष